CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8-1

ॐ तत्सत

भूमिका

यस्यानिर्वचनीय शक्तिमहिमा कार्य्यं निदानादृते,
कुर्व्वन् येष्वखिलेष्वहो प्रतिपलं राष्ट्रेषु संराजते।
तेषां प्रेम परस्परं प्रकटयन् पापं प्रणश्यन् पति,
भूतानाम्भुवि वो भवतु भगवान् भूत्यै भवानीश्वरः॥

अन्ताराष्ट्रिय विधान बड़ा ही जटिल विषय है। इसका सम्बन्ध साधारण विधान और विधानशास्त्रके साथ साथ राजनीतिशास्त्रसे है। इसके साथ ही यह भी उचित प्रतीत होता है कि इस विषयपर लिखनेका वही मनुष्य साहस करे जो स्वतंत्र देशोंकी व्यावहारिक राजनीतिसे प्रत्यक्ष परिचय रखता हो, जिसे युद्ध, वास्तविक शान्ति और सच्ची तटस्थताका अनुभव हो, जिसने दौत्य किया हो, जिसे किसी स्वतंत्र देशके परराज-विभागमें प्रवेशाधिकार प्राप्त हो, जो सन्धि-परिषदोंमें सम्मिलित हुआ हो। मुझमें इनमेंसे एक गुण भी नहीं है—

तितीर्षुर्दुस्तरम्मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।

मैं राजनीतिशास्त्र और अन्ताराष्ट्रिय विधानका विद्यार्थी हूं और इन शास्त्रोंके प्रमुख आचार्य्योंके ग्रंथोंको यथासाध्य देखा करता हूं—बस यही मेरी एतद्विषयक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग्यता है। ऐसी दशामें पुस्तकमें बहुतसी त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है परन्तु मैंने यह प्रयत्न किया है कि निराधार और सन्दिग्ध बातें इसमें स्थान न पायें।

यह बहुत सम्भव है कि किसी किसी पाठकके हृदयमें इस पुस्तकके समयौचित्यपर सन्देह हो। यह सन्देह निःसार न होगा। भारत इस समय परतंत्र है। उसकी आत्मा इस समय मंत्रमुग्ध हो रही है। उसके निःशस्त्रीकरणको लगभग पचास वर्ष हो गये। भारतवासी आत्मसम्मान शून्यताको क्षमा, कायरताको अहिंसा और निर्वीर्य्यताको शान्ति समझने लगे हैं। तमोगुण सत्वगुणका नाट्य कर रहा है। जो अपनी मर्य्यादा और अपने स्वत्वोंकी रक्षामें असमर्थ होते हुए भी विदेशी स्वमियोंके सङ्केतपर अपने सहज हितैषियोंका गला काटनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं वह क्या जानें कि स्वतन्त्र राष्ट्र एक दूसरेके साथ किस प्रकारका व्यवहार करते हैं? पुस्तकोंसे ऐसा ज्ञान प्राप्त करके भी क्या होगा? जब 'चेरि छाँड़ि न कहाउब रानी' हमारे प्रारब्धमें ही लिख गया है तो हमें इन बातोंसे सरोकार ही क्या है? इस शास्त्रके तथ्य मस्तिष्कके विचित्रालयको भले ही सुशोभित करें पर उनकी व्यावहारिकता हमारे लिये किञ्चिन्मात्र भी नहीं है।

यह मर्मोत्पीड़क नैराश्य-जन्य विचार पहिले मेरे चित्तमें भी उठा था परन्तु देर तक ठहर न सका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतका भविष्य उसके अतीतसे भी समुज्ज्वल होगा। उसके पैरोंकी आहट हमें श्रुतिगोचर होने लगी है। अभी स्वराज्यका सूर्य उदयाचलपर नहीं आया है परन्तु हमारे तृषित नेत्रोंको उषा देवीके दर्शन मिल गये हैं। हमें दृढ़ विश्वास हो गया है कि अब कोई भी शक्ति हमें दीर्घकाल तक परतंत्र नहीं रख सकती।

यही विश्वास इस पुस्तकके लिखनेमें प्रेरक हुआ है। स्वतंत्र भारत दुर्बलोंका रक्षक और शान्तिका अभिभावक होगा। वह परतंत्रोंको स्वतंत्र बनाना, मनुष्यमात्रको एक बृहत् कुटुम्बकी परिधिमें लाना, और शान्तिको स्थापित कराना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझेगा। इसलिये यह परम आवश्यक है कि उसके भावी नागरिक अभीसे उन नियमोंसे परिचित हो जायँ जिन्हें उनको पहिले पहिल बर्तना होगा, और उन संस्थाओंका ज्ञान प्राप्त कर लें जिनको, समुचित संस्कारके उपरान्त, वह अपने उद्देश्यकी सिद्धिका साधन बनायेंगे।

पुस्तकके विषयके सम्बन्धमें मुझे विशेष नहीं कहना है। ऐसी पुस्तकोंमें सब नियमोपनियम नहीं दिये जा सकते। विस्तृत ज्ञानके लिये इस प्रकारकी पुस्तकोंके अतिरिक्त प्रायः सभी प्रधान प्रधान सन्धिपत्रों और सैनिक न्यायालयोंकी व्यवस्थाओंको पढ़ना होगा। प्रस्तुत पुस्तकका इतना ही उद्देश्य है कि मुख्य मुख्य सिद्धान्त-स्वरूपी नियमोंका दिग्दर्शन करा दे। इतनेसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके महत्त्व, इसका व्यापकता, और इसके गाम्भीर्यका पर्याप्त पता लग सकता है और यह बात स्पष्ट समझमें आजाती है कि सहस्र सहस्र विघ्नबाधाओंके आते रहने पर भी मानव-समाजमें क्रमशः भ्रातृभाव, सहिष्णुता और प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

मैंने इस बातका प्रयत्न किया है कि पुस्तकको भारतीय पाठकोंके लिये रोचक बनाऊँ। इसलिए कई ब्योरेकी बातें, जिनका विशेष सैद्धान्तिक महत्त्व नहीं है, छोड़ दी गयी हैं। सभी आवश्यक स्थलोंपर उदाहरण दिये गये हैं। इनमेंसे कुछ तो महासमर प्रत्युत उसके भी पीछेके हैं। पाश्चात्य भाषाओंकी एतद्विषयक पुस्तकोंमें भी ऐसी पुस्तकें थोड़ी ही हैं जिनमें इन सबका समावेश हो गया हो।

पुस्तकमें कई जगह दार्शनिक विचार आये हैं। यह मेरी समझमें सर्वथा उचित है। प्रत्येक सभ्य राष्ट्रके वैधानिक, सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक आदि विचारोंपर उसके दार्शनिक विचारोंकी छाप रहती है। अन्तिम प्रश्नोंका अन्तिम उत्तर दर्शनमें ही मिलता है। अध्यात्म शास्त्र ही सब विद्याओंका मूल है। मैं स्वयं अद्वैतवादी हूं और श्रुति-सम्मत अद्वैतवादको ही मनुष्यके अभ्युदय और निःश्रेयस्का एकमात्र साधन समझता हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि मनुष्यके सभी व्यवहार, जिनमें अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारका स्थान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी बहुत ऊँचा है, उसीके आधारपर स्थिर किये जायं तो जगत्में शाश्वत् शान्ति स्थापित हो सकती है।

ऐसी पुस्तकोंके लिखनेमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है वह छिपी नहीं हैं। देशी भाषाओंमें ऐसी पुस्तकें नहीं मिलतीं जिनसे सहायता ली जाय। सबसे बड़ी कठिनाई पारिभाषिक शब्दोंके सम्बन्धमें होती है। मैंने इस पुस्तकमें प्रायः जितने शब्दोंका प्रयोग किया है वह सब मेरे गढ़े हुए हैं। मैं नहीं कह सकता कि वह कहां तक ठीक हैं पर मैं उनसे अच्छे नाम न बना सका। दो एक शब्द पुराने भी हैं। 'राज' शब्द हमारी देशी रियासतोंमें प्रचलित है। 'मुल्कगीरी सेना' भी पुराना नाम है पर इस पुस्तकमें उसका वह अर्थ नहीं है जिस अर्थमें यह गुजरातकी रियासतोंमें, जहांसे मैंने इसे लिया है, प्रयुक्त होता है फिर भी मैं आशा करता हूं कि मेरे पीछे जो लोग इस विषयपर पुस्तक लिखेंगे उन्हें इससे कुछ न कुछ सहायता मिलेगी। दो शब्द पुस्तकके नामके विषयमें भी कहना है। आजकल हिन्दीमें 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द प्रचलित है पर मुझे विश्वास दिलाया गया है कि संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'अन्ताराष्ट्रिय' ही साधु प्रयोग है। अशुद्ध प्रयोगमें कोई लाभ न देखकर मैंने अन्ताराष्ट्रिय लिखना ही उचित समझा।

अभी हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंके पाठक बहुत कम हैं अतः ग्रन्थकार इन्हें लिखने और प्रकाशक इन्हें लेनेसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घबराते हैं। मैं अपने मित्र श्री शिवप्रसादजी गुप्तका चिरऋणी हूं। उन्हींके प्रोत्साहनसे यह पुस्तक लिखी गयी और उन्हींकी कृपासे आज पाठकोंके सामने रक्खी जा रही है।

पुस्तकके लिखनेमें मुझे अनेक प्रामाणिक ग्रंथोंसे सहायता लेनी पड़ी है। इनमेंसे कुछंके नाम पुस्तकमें तत्तदुपयुक्त स्थलोंपर दिये गये हैं। परन्तु मुख्यतया मैंने निम्नलिखित पुस्तकोंसे काम लिया है। इनके रचयिताओंका मैं आभारी हूं:—

१. इण्टरनैशनल लॉ—हॉल-कृत (International Law by Hall.)
२. प्रिंसिपल्स आव इण्टरनैशनल लॉ—लारेंसकृत (Principles of International Law by Lawrence.)
३. इण्टरनैशनल लॉ—स्मिथकृत (International Law by Sir Frederick Smith.)
४. डाक्युमेण्ट्स इलस्ट्रेटिव आव इण्टरनैशनल लॉ—लॉरेंसकृत (Documents Illustrative of International Law by Lawrence.)
५. इण्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आव इण्टरनैशनल आर्गनाइजेशन–पॉटर-कृत (Introduction to the Study of International Organization by Pitman B. Potter.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तिम पुस्तक अपने ढङ्गकी निराली ही है। इस प्रकारकी पुस्तकें पाश्चात्य भाषाओंमें भी वहुत कम हैं। मैंने अपना पञ्चम खण्ड मुख्यतः इसीके आधारपर लिखा है।

ईश्वर करे भारत शीघ्र ही स्वतंत्र हो और राज-समाजमें अपना समुचित स्थान ले ताकि भारतीय संस्कृति अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारको परिष्कृत करके पृथ्वीको अपवर्गकी अधिकारिणी मनुष्यजातिके लिये उपयुक्त निवास-स्थान बनाये।

जालिपादेवी, काशी
३० मिथुन १९८१

सम्पूर्णानन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

भूमिका

प्रथम खंड—प्रावेशिक

पृष्ठ

पहिला अध्याय-अन्ताराष्ट्रिय विधानकी परिभाषा और उसका स्वरूप १
दूसरा अध्याय-अन्ताराष्ट्रिय विधानका इतिहास ... १५
तीसरा अध्याय-अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र ... ३८
चौथा अध्याय-अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधार ... ८२
पाँचवाँ अध्याय-दौत्य ९४

द्वितीय खण्ड—सन्धिकालीन विधान

पहिला अध्याय-स्वातंत्र्यसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ... ११२
दूसरा अध्याय-समत्वसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ... १३८
तीसरा अध्याय-सम्पत्तिसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ... १५०
चौथा अध्याय-शासनाधिकार सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य १८५
पाँचवाँ अध्याय-सन्धियां २०२
छठवाँ अध्याय-अन्ताराष्ट्रिय पंचायतें और न्यायालय २१०

तृतीय खण्ड—युद्धकालीन विधान

पहिला अध्याय-अन्ताराष्ट्रिय जीवनमें युद्धका स्थान ... २२१
दूसरा अध्याय-असामरिक बलप्रयोग, और रणघोषणा २२७
तीसरा अध्याय-समरारम्भके तात्कालिक परिणाम ... २३८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा अध्याय–शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव—असैनिकोंके प्रति २४५
पाँचवाँ अध्याय–शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव—सैनिकोंके प्रति २६१
छठवाँ अध्याय–शत्रुसम्पत्तिके साथ व्यवहार—भूस्थित सम्पत्ति (युद्धारम्भके समय) ... २७६
सातवाँ अध्याय–शत्रुसम्पत्तिके साथ व्यवहार—भूस्थित सम्पत्ति (युद्धकालमें) ... २८६
आठवाँ अध्याय–शत्रु सम्पत्तिकेसाथ व्यवहार—जलस्थित सम्पत्ति ३०६
नवाँ अध्याय–बलप्रयोगकी सीमा ३२०
दसवाँ अध्याय–युद्धके उपकरण ३२७
ग्यारहवाँ अध्याय—युद्धकालीन अहिंसात्मक व्यापार ३३६

चतुर्थ खण्ड—ताटस्थ्यसम्बन्धी विधान

पहिला अध्याय–तटस्थताकी परिभाषा और उसका इतिहास ३५१
दूसरा अध्याय–तटस्थता और तटस्थीकरण ... ३५७
तीसरा अध्याय–तटस्थ राजोंके प्रति युद्धकारी राजोंके कर्तव्य ३६४
चौथा अध्याय–युद्धकारी राजोंके प्रति तटस्थ राजोंके कर्तव्य ३७७
पाँचवाँ अध्याय–युद्धकारी राज और तटस्थ व्यक्तियोंका साधारण वाणिज्य ३८३
छठवाँ अध्याय–निषिद्ध व्यापार ३९६
सातवाँ अध्याय–तटावरोध ४१०
आठवाँ अध्याय–अतटस्थाचरण ४१८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चम खण्ड—अन्ताराष्ट्रिय संगठन

पहिला अध्याय–संगठनकी आवश्यकता और उसके अनिवार्य साधन ४२५
दूसरा अध्याय–आंशिक अन्ताराष्ट्रिय संगठन ... ४३७
तीसरा अध्याय–अन्ताराष्ट्रिय पंचायत ... ४४५
चौथा अध्याय–राष्ट्रसंघ और मानवसमाजका भविष्य ४५२
परिशिष्ट १–६ ... ... ४५७
अनुक्रमणिका ४८६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमखण्ड—प्रावेशिक ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्ताराष्ट्रिय विधान ।

पहिला अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानकी परिभाषा और उसका स्वरूप ।

कोई शास्त्र हो, उसके आरम्भमें उसके विषयका स्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है। यह स्पष्टीकरण तब ही हो सकता है जब विषयके पूरे पूरे लक्षण बतला दिये जायँ अर्थात् उसके सामान्य और विशेष गुण बतला दिये जायँ ताकि उसके स्थानमें किसी अन्य विषयका भ्रम न हो जाय। इसीको सत्परिभाषा कहते हैं। इस दृष्टिसे अन्ताराष्ट्रिय विधानकी परिभाषा इस प्रकार होगी--अन्ताराष्ट्रिय विधान उन नियमोंके समूहको कहते हैं जिनके अनुसार सभ्य राज एक दूसरेके साथ प्रायः बर्ताव करते हैं।

परिभाषा

हमारे शास्त्रमें एक विचित्रता है। अन्ताराष्ट्रिय विधानके विषयमें भिन्न भिन्न आचार्य्योंके भिन्न भिन्न मत हैं। इस मत-वैषम्यका कारण यह है कि कोई तो इसको विधानशास्त्र (जूरिसप्रूडेन्स *) का अङ्ग मानता है अर्थात् इसको उसी दृष्टिसे देखता है जिस दृष्टिसे कि भिन्न भिन्न देशोंके साधारण फ़ौजदारी तथा दीवानीके विधानोंका विचार किया जाता है, और कोई इसको धर्म्मशास्त्रके उस विभागमें मिलाना चाहता है जिसे कर्तव्याकर्तव्य-शास्त्र (इथिक्स) कहते हैं।

*Jurisprudence,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमने अपनी परिभाषामें इन दोनों कठिनाइयोंसे बचनेका प्रयत्न किया है। हमने अन्ताराष्ट्रिय विधानको 'नियमों' का समूह बतलाया है, विधानोंका नहीं। विधान (या कानून) के भीतर दो पदार्थ निहित रहते हैं, स्वत्व और कर्तव्य। 'क' को 'ख' के साथ एक निश्चित प्रकारका व्यवहार करना चाहिये। यह 'क' का कर्तव्य हुआ। इसके बदले, 'ख' को 'क' के साथ भी एक निश्चित प्रकारका ही व्यवहार करना चाहिये, यह 'क' का स्वत्व हुआ। यदि 'क' या 'ख' अपने निश्चित मार्गसे च्युत हो तो उसे 'दण्ड' मिलेगा। अतः विधान शब्दका प्रयोग करनेसे कर्तव्य, स्वत्व और दण्डकी ओर ध्यान जाता है। यह सब विवादास्पद प्रश्न हैं कि अन्ताराष्ट्रिय जगत्में किसी प्रकारके निश्चित कर्तव्य, स्वत्व और दण्ड हैं या नहीं। इसीलिये हमने इस शब्दका प्रयोग नहीं किया है। 'नियम' के सम्बन्धमें यह सब आपत्तियां नहीं हैं। जिस ढङ्गपर बहुधा व्यवहार किया जाता है वह नियम कहलाता है, चाहे वह व्यवहार अपनी इच्छासे हो, चाहे किसी दण्डके भयसे।

इस परिभाषाकी विशेषता

हमने इन नियमोंके लिये किसी विशेषणका प्रयोग नहीं किया है। तात्पर्य यह है कि हम यहांपर इन नियमोंके औचित्य या अनौचित्यपर नहीं विचार करना चाहते। और चाहे जो कुछ मतभेद हो, पर इसको सभी आचार्य्य मानते हैं कि राजोंके परस्पर व्यवहारमें कुछ नियमोंका पालन होता है। यह नितान्त पृथक् प्रश्न है कि यह नियम कैसे बने, अच्छे हैं या बुरे, और इनका पालन क्यों किया जाता है।

परिभाषाके दो और अंशोंको स्पष्ट कर देना आवश्यक है। हमने कहा है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान उन नियमोंका समूह है जिनके अनुसार सभ्य राज एक दूसरेके साथ प्रायः व्यवहार करते हैं। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिभाषामें 'सभ्य' और 'प्रायः' के प्रयोगका कारण बतलाना आवश्यक है।

जहां मनुष्य रहते हैं वहां समाज बन जाते हैं और जहां समाज होता है वहां किसी न किसी प्रकारका राज भी स्थापित होता है। असभ्यसे असभ्य देशोंमें भी मनुष्य समाज बनाकर रहते हैं और किसी न किसी प्रकारके राज पाये जाते हैं। जहां पास पास कई राज होंगे वहां उनमें किसी न किसी प्रकारका सम्बन्ध भी होगा। सम्बन्ध स्थायी हो या न हो पर आपसके व्यवहारमें वह कुछ न कुछ नियम बर्तते ही होंगे। अतः जङ्गली देशोंमें भी किसी न किसी प्रकारका अन्ताराष्ट्रिय विधान पाया जायगा। यह बात अनुभवसिद्ध है। प्राचीनतम कालसे लेकर आजतक सभी देशोंमें अन्ताराष्ट्रिय विधान पाया गया है। परन्तु सभ्य और असभ्य राष्ट्रोंके व्यवहारमें बहुत अन्तर होता है। इस पुस्तकमें हम उन नियमोंपर विचार नहीं कर सकते जो भिन्न भिन्न असभ्य समाजोंमें प्रचलित हैं। कुछ बातें ऐसी हैं जिनको सभ्य असभ्य सभी मनुष्य स्वभावतः मानते हैं परन्तु असभ्य राष्ट्रोंके व्यवहारमें परस्परका वैषम्य बहुत है। इसके प्रतिकूल, सभ्य समाजका व्यवहार सर्वत्र एकसा है। जिन नियमोंका पालन आज सभ्य जगत्में हो रहा है उनका विकास यूरोपमें हुआ है पर यह देश, जाति, वर्ण, धर्म्म आदिकी अपेक्षा नहीं करते। सभी सभ्य राज इनके अनुसार चलते हैं।

परन्तु कोई विधान हो, उसका पालन सदैव नहीं होता, लोभादि कुप्रवृत्तियां मनुष्यको अन्धा कर देती हैं। उनके वशमें पड़कर वह कभी कभी अपने देशके विधानोंकी अवहेलना कर बैठता है। परिणाम यह होता है कि उसे दण्ड मिलता है पर कभी कभी बच भी जाता है। इसी प्रकार कभी कभी कोई राज उन्मत्त होकर स्वेच्छाचार कर बैठता है। बहुधा ऐसे राजको दण्ड मिल जाता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर कभी कभी वह भी बच जाता है। इससे विधानका अनस्तित्व सिद्ध नहीं होता पर ऐसी अवस्थाओंको ध्यानमें रखकर ही 'प्रायः' शब्द लिखा गया है।

अब हमको देखना है कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका क्षेत्र क्या है, कब कब और कहां कहां उससे काम लिया जा सकता है अर्थात् उसके क्षेत्रका देश और कालमें विस्तार क्या है।

अन्ताराष्ट्रिय विधानका क्षेत्र

एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है—उससे कौन काम ले सकता है, पर इसका विचार एक पृथक् अध्यायमें किया जायगा।

कालका प्रश्न सीधा है। विधानका उपयोग सब अवस्थाओंमें है। मनुष्योंके साधारण व्यवहारसे इसका उदाहरण मिलता है।

(क) काल

सभ्य जातियोंमें शान्तिकालीन व्यवहारके लिये तो नियम हैं ही, लड़ाई तकके नियम होते हैं। शस्त्र-हीनको न मारना चाहिये, पेटमें या कमरके नीचे चोट न करना चाहिये, भागतेको न मारना चाहिये, यह सब सभ्य-समाजमें व्यक्तिगत लड़ाईके नियम हैं। इसी प्रकार राजोंके भी नियम होते हैं। शान्तिकालीन व्यवहार तो नियमानुकूल होता ही है, युद्धके समय भी नियमोंका पालन होता है। शत्रुको कहांतक क्षति पहुंचानी चाहिये, आहतों और बन्दियोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, प्राणदान कब और कैसे देना चाहिये, इत्यादिके विषयमें भी नियम विद्यमान हैं। तात्पर्य्य यह है कि सदैव ही नियम बर्ते जाते हैं।

यों तो अन्ताराष्ट्रिय विधानके लिये कोई देशगत रुकावट नहीं है, परन्तु दो एक बातें ध्यानमें रखने योग्य हैं। अन्ताराष्ट्रिय विधान किसी देशके अन्तःशासनमें हस्तक्षेप नहीं करता। प्रत्येक सर्कार अपने देशका शासन अपने ढङ्गपर करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह विधान राजोंके ही बीचमें बर्ता जाता है। पर कभी कभी एक असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(ख) देश किसी राजविशेषको किसी अन्य राजकी प्रजामेंसे किसी व्यक्ति या समुदाय विशेषसे बर्तना पड़ जाता है। यह अवस्था दो प्रकारसे उत्पन्न होती है। जिस समय दो देशोंमें युद्ध होता है उस समय तटस्थ देशोंके निवासी दोनों लड़नेवाली सर्कारोंके हाथ युद्धसामग्री बेच बेच कर रुपया कमाते हैं। यह तो कोई सर्कार चाहती ही नहीं कि मेरे शत्रुका बल बढ़े, इसलिये वह इस ताकमें रहती है कि जो जहाज शत्रुके हाथ युद्धसामग्री बेचने जाता हो वह पकड़ा जाय। इस प्रकार तटस्थ देशोंकी प्रजाके जहाजोंको पकड़ना अन्ताराष्ट्रिय विधानके विरुद्ध नहीं है। पकड़कर जहाजको अपने देशमें ले जाते हैं। वहां उसके स्वामीपर अभियोग चलाया जाता है और यदि वह अपराधी पाया जाय तो सारा माल ज़ब्त कर लिया जाता है। यह सब भी अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुकूल है। वह तटस्थ राज जिसकी किसी प्रजाका माल ज़ब्त किया जा रहा है कुछ भी आक्षेप नहीं कर सकता। पर यदि वह राज जिसके न्यायालयमें अभियोग हुआ है अर्थात् जिसने उस जहाजको गिरफ्तार किया है, किसी प्रकारकी अनुचित कार्य्य-वाही कर बैठे तो तटस्थ राज अवश्य बीचमें पड़ेगा। यदि आपसमें शीघ्र समझौता न हो जाय तो लड़ाई छिड़ जानेकी सम्भावना है। अस्तु, यदि ऐसी कोई बात न हो तो अभियोगमें एक पक्षमें उस जहाज और मालका मालिक होगा और दूसरी ओर वह विदेशी राज।

दूसरा उदाहरण इससे भिन्न है। एक मनुष्य जिसकी कुछ सम्पत्ति अपने देशमें भी है किसी पराये राजमें जाकर व्यापार करता है। वहां दैवात् उसका दिवाला निकल जाता है। अब उसपर इसी पराये राजके न्यायालयोंमें अभियोग चलेगा। यह सम्भव है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके देश और इस देशके विधानोंमें अन्तर हो। न्यायालयके सामने यह प्रश्न है कि किस विधानसे काम लिया जाय। उसे अधिकार है कि अपने देशका ही विधान बर्ते पर वह यह भी कर सकता है कि दोनोंको मिला जुलाकर काम चलाये। ऐसा करना कुछ बहुत कठिन नहीं है क्योंकि आजकल सभी सभ्य देशोंके विधान एक दूसरेके सदृश होते जाते हैं। जिन सिद्धान्तोंसे ऐसे अवसरोंपर काम लिया जाता है उनको कभी कभी 'वैयक्तिक अन्ताराष्ट्रिय विधान' (प्राइवेट इण्टरनैशनल ला *) कहते हैं, क्योंकि यद्यपि यह सिद्धान्त सामान्य व्यक्तियोंके साथ बर्ते जाते हैं, फिर भी यह सभी देशोंमें माने जाते हैं। आजकल तो अधिकांश सभ्य राजोंने आपसमें सन्धि करके कई विषयोंपर अपने यहां सर्वथा एकसे ही विधान बना लिये हैं।

अब यह देखना है कि हम अन्ताराष्ट्रिय विधानको कहांतक विधान कह सकते हैं। हम ऊपर बतला चुके हैं कि 'विधान' नामके साथ ही तीन बातोंकी ओर ध्यान जाता है, कर्तव्य, स्वत्व और दण्ड। पाश्चात्य धर्मशास्त्र या विधानशास्त्रके आचार्योंमें आस्टिनका स्थान बहुत ऊंचा है। वह कहते हैं कि विधानके दो अङ्ग हैं, आज्ञा और दण्ड (कमाण्ड ऐण्ड सैङ्कशन†), जहां इनमें से एकका भी अभाव है वहां विधान नहीं है। ऐसा करो, यदि न करोगे तो अमुक दण्ड भुगतोगे, यही विधानका रूप है। यदि यह मत समीचीन है—इसमें सन्देह नहीं कि सभी देशोंके साधारण विधान इसी ढङ्गके होते हैं—तो अन्ताराष्ट्रिय विधानको विधान नहीं कह सकते। ऐसे विधानके लिये कोई विधाता अर्थात् आज्ञा और दण्ड देनेवाला चाहिये। परन्तु स्वतन्त्र राजोंको न तो कोई आज्ञा

क्या अन्ताराष्ट्रिय विधान सचमुच विधान है?

* Private International Law

† Command and Sanction

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देनेवाला है, न दण्ड देनेवाला। यह उनकी इच्छा है कि वह कुछ नियमोंको बर्तते हैं। इसमें उनको सुविधा होती है क्योंकि यदि कुछ व्यवहार–साम्य न हो तो किसी प्रकारका सम्बन्ध हो ही न सके। फिर भी यदि कोई राजविशेष किसी नियमका उल्लङ्घन कर जाय तो उसका ऐसा करना अनधिकार चेष्टा न होगा। आजकल राष्ट्रसंघका नाम बहुत सुननेमें आता है। यदि आगे चलकर सब सभ्य राष्ट्र उसको अपने ऊपर वही स्थान दे दें जो प्रत्येक सभ्य समाजमें सर्कारका प्रजापर होता है तो उसकी आज्ञाएं 'विधान' कहला सकेंगी। अभी जबतक कोई एक अधिपति नहीं है, तबतक विधान शब्दका प्रयोग अनुचित है।

यह आस्टिनके सिद्धान्तके अनुसार मीमांसा हुई। पर ऐसा भी हो सकता है कि कोई एक सर्कार या अधिपति न हो, फिर भी व्यवहारसम्बन्धी सर्वमान्य नियम प्रचलित हों। ब्राइसने 'हिस्ट्री आव जूरिसप्रूडेंस' में दिखलाया है कि आइसलैण्डमें सैकड़ों वर्ष तक कोई एक सर्कार न थी पर मुख्य मुख्य विषयोंपर विधान बने हुए थे। जनताके प्रतिनिधि सुनिश्चित समयोंपर एकत्र होकर इन नियमोंका निर्णय कर लेते थे। कोई आज्ञा देनेवाला न था, कोई नियत दण्ड देनेवाला भी न था। इन बातोंका भार लोकमतपर था। इतना निश्चय कर लिया जाता था कि अमुक अवसरपर अमुक व्यवहार होना चाहिये, पर निरीक्षण करनेवाला कोई न था। भिन्न भिन्न प्रदेशोंके लोग इन नियमोंका किसी न किसी प्रकार पालन कर लिया करते थे। यही दशा अन्ताराष्ट्रिय विधानकी है। कोई एक अधिपति नहीं है पर सभ्य राष्ट्रोंमें व्यवहार-साम्य है। अतः जिन नियमोंका सभी पालन करते हैं (या, कमसे कम, मान्य समझते हैं) उनको विधान कहनेमें कोई बड़ी आपत्ति नहीं है। व्यवहारमें इनका विधानवत् ही प्रयोग हो रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह ठीक है कि सभ्य राजोंने ही इन नियमोंका बीसों बार उल्लङ्घन किया है। संवत् १९१३ (सन् १८५६) में रूसने एक सन्धि-पत्र द्वारा यह वचन दिया कि कृष्णसागरमें रूसका जहाजी बेड़ा न रक्खा जायगा। इसके चौदह वर्ष पीछे फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध छिड़ गया। रूसने इस अवसरपर यह घोषणा कर दी कि संवत् १९१३ वाली सन्धि रूससर्कारको बाध्य नहीं कर सकती। तबसे रूसके बेड़े बराबर कृष्णसागरमें रहते हैं। इसके दूसरे साल लन्दनमें कई राजोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा की गयी। उसने यह घोषणा निकाली कि कोई राज अपने सन्धिपत्रोंसे हठात् मुकर नहीं सकता। इसको लन्दनकी घोषणा * कहते हैं। रूसवालोंने भी इसपर हस्ताक्षर कर दिये पर उनको जो करना था वह तो कर ही चुके थे।

एक उदाहरण और ले लीजिये। संवत् १९३५ में बर्लिनमें एक सन्धि हुई जिसके अनुसार तुर्क साम्राज्यके दो प्रांत बोस्निया और हर्ज़ेगोवीना अस्थायी रूपसे आस्ट्रियाके अधीन रख दिये गये। यह निश्चय हुआ कि इनपर आधिपत्य तुर्कोंका ही रहे पर शासन आस्ट्रिया करे। संवत् १९६५ में अवसर पाकर आस्ट्रियाने इन प्रान्तोंको अपने राज्यमें मिला लिया। तीस वर्ष पहिलेका सन्धि-पत्र धरा रह गया। तुर्कोंने बहुत शोर मचाया पर उनकी सुनता कौन। अन्य राजोंने बीचमें पड़कर उनको हर्जानेमें ३३० लाख रुपये दिला दिये। संवत् १९७१ में जर्मनीका बेल्जियमपर आक्रमण करना भी सन्धिपत्रके विरुद्ध था। इस प्रकारके और भी कई उदाहरण हैं पर इनसे अन्ताराष्ट्रिय विधानका अनस्तित्व सिद्ध नहीं होता। चोर, डाकू, जुआरी नित्य ही अवैध कार्य्यवाही किया करते हैं पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि फौजदारीका क़ानून है ही नहीं। सभ्य राजोंका व्यवहार ही आज्ञाका काम देता है।

---

* Declaration of London (डिक्लेरेशन आव लण्डन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब रहा दण्डका प्रश्न। यह ठीक है कि कोई ऐसा सर्वप्रधान अधिपति नहीं है जो दण्ड दे, पर नियमोल्लङ्घन करनेवालोंको दण्ड भी मिलही रहता है। विरोधी लोकमत ही बड़ा भारी दण्ड है। अब वह समय नहीं है कि राजे महाराजे लोकमतकी परवाह न करके अपनी महत्त्वाकांक्षाको तृप्त करनेके लिये युद्ध ठान लें। अब तो प्रत्येक सर्कारको अपनी जनताको सन्तुष्ट रखना पड़ता है। यदि प्रजा विरुद्ध हो तो रुपया मिल ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त परराष्ट्रोंके लोकमतका भी ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि युद्धके समयमें परराष्ट्रोंसे ही युद्धसामग्री मोल लेनी पड़ती है और ऋण लेना पड़ता है। इसी लिये जब आजकल कोई युद्ध होता है तो प्रत्येक पक्ष अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेका पूरा पूरा प्रयत्न करता है। अन्ताराष्ट्रिय विधानकी अवहेलना करनेमें करोड़ों रुपयों और लाखों प्राणोंके खोनेकी आशङ्का रहती है। ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें या तो किसी दुर्बल राजके विरुद्ध अवैध कार्य्यवाही की गयी है या ऐसे समयमें काम किया गया है जब प्रबल राज ऐसे झगड़ोंमें फँसे थे कि उनको प्रतिकार करनेका अवकाश न था। भविष्यत्में सम्भवतः ऐसा न हो सकेगा।

यहांपर हम इस प्रश्नपर भी विचार कर लेंगे कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका कर्तव्याकर्तव्य शास्त्रसे क्या सम्बन्ध है। कुछ आचार्य्यों-

अन्ताराष्ट्रिय विधानका कर्तव्याकर्तव्य शास्त्रसे सम्बन्ध

का कहना है कि यह विधान इसी शास्त्रकी नींवपर बना है। उनकी धारणा है कि न्याय और औचित्य सम्बन्धी कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जिनको सभी राष्ट्र स्वभावतः मानते हैं। इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर पारस्परिक व्यवहारके नियम बनाये गये हैं। यह मत पूर्णतया समीचीन नहीं है। वस्तुतः अन्ताराष्ट्रिय विधान अर्थात् व्यावहारिक नियमोंको किसीने बैठकर बनाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है। उनकी दशा ठीक व्याकरणके नियमोंकी सी है। लोग कहते हैं—रामने रावणको मारा, मैंने देखा, भूखने सताया, इत्यादि। वैयाकरण देखता है कि इन सब वाक्योंमें कर्त्तापदमें 'ने' वर्तमान है। बस, वह लिख लेता है कि अमुक प्रकारके वाक्योंमें प्रथमा विभक्तिका प्रत्यय 'ने' होता है। इस नियमको वह बनाता नहीं। बोलने वालोंकी परिपाटी देखकर जान लेता है। इसी प्रकार जो मनुष्य स्वतंत्र राजोंके पारस्परिक व्यवहारपर दृष्टि डालता है उसे ज्ञात हो जाता है कि यह राष्ट्र कुछ नियमोंका पालन करते आये हैं। न वैयाकरण इस बातके पीछे पड़ता है कि 'ने' कहांसे आया, न अन्तारराष्ट्रिय विधानका विद्यार्थी इस बातकी जाँच करनेके लिये विवश है कि यह नियम कहांसे आये। दोनों व्यावहारिक शास्त्र हैं और व्यवहार ही उनका मूल है। पारस्परिक व्यवहारके नियम अच्छे या बुरे जैसे भी हैं, उनके समुच्चयको अन्तारराष्ट्रिय विधान कहते हैं।

व्याकरणसे एक और भी समानता है। वैयाकरण नियमोंका कर्ता तो नहीं है पर वाक्परीक्षक अवश्य है। जो मनुष्य प्रचलित परिपाटीके प्रतिकूल बोलता है उसका वाक्प्रयोग असाधु कहलायगा। 'रावणको रामने मारा' साधु प्रयोग है, पर 'रावणको राम मारा' असाधु प्रयोग है। इसी प्रकार यद्यपि अन्तारराष्ट्रिय नियमोंका कोई रचयिता नहीं है तथापि जो राज प्रचलित पद्धतिके अनुसार व्यवहार नहीं करता उसकी कार्य्यवाही 'अवैध' कहलाती है। जब दो राजोंमें मतभेद हो जाता है तो प्रत्येक यह दिखलानेका प्रयत्न करता है कि दूसरेनें अन्तारराष्ट्रिय विधानकी अवहेलना की है। अतः इससे यही सिद्ध होता है कि अन्तारराष्ट्रिय विधानका कर्तव्याकर्तव्य शास्त्रसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

पर एक बात है। यदि इन प्रचलित नियमोंपर दृष्टि डाली जाय तो ऐसा देख पड़ेगा कि इनमेंसे अधिकांश न्याय्य और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युक्तिसङ्गत हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि किसीने धर्मशास्त्रको सामने रखकर इनकी सृष्टि नहीं की है पर मनुष्य प्रायः न्यायप्रिय है और उसका अनुभव उसे युक्तिसंगत और न्याय्य व्यवहारकी ओर झुकाता है। इसलिये व्यावहारिक नियम नैतिक सिद्धान्तोंके प्रायः अनुकूल होते हैं। इतना ही नहीं। आजकल लोगोंको इस बातका अनुभव हो गया है कि कोरी स्वार्थबुद्धि हानिकारक होती है। इस लिये यथासम्भव इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि न्याय और नीतिकी अवहेलना न की जाय। न्याय और नीतिकी परिभाषा सर्वथा निर्विवाद नहीं है, फिर भी सभ्य राष्ट्रोंमें इस विषयमें बहुत कुछ ऐकमत्य है। इसी लिये कुछ आचार्य्योंका कहना है कि अन्ताराष्ट्रिय सदाचार (इण्टरनैशनल मोरैलिटी*) कल्पित नहीं, प्रत्युत सत्य वस्तु है और हमको यह कहनेका अधिकार है कि अमुक काम सदाचारके अनुकूल है या प्रतिकूल।

वैयक्तिक जीवनसे इस बातका उदाहरण मिल सकता है। जाल फरेब करना या किसी लिखे इक़ारनामेसे मुकर जाना अपराध है। सर्कारी न्यायालयोंमें इनके लिये दण्ड दिया जाता है। पर झूठ बोलना किसी क़ानूनमें मना नहीं है। झूठेको न कोई अपराधी कह सकता है, न दण्ड दिला सकता है। पर हम झूठेको अच्छा नहीं समझते। हम झूठ बोलनेको पाप कहते हैं और सदाचारविरुद्ध समझते हैं। इसी प्रकार लिखे सन्धिपत्रसे मुकर जाना तो अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें अपराध है पर किसी राष्ट्रकी दुर्बलतासे अनुचित लाभ उठाना (जैसा कि बहुतसे राष्ट्र चीन, फारस, रूम आदिमें करनेका प्रयत्न कर रहे हैं) अवैध नहीं है। पर इसको, या इसके ऐसे दूसरे कामोंको, कोई अच्छा नहीं कहता। यह अपराध तो नहीं है पर अन्ताराष्ट्रिय सदाचारके विरुद्ध है। कहनेका

* International Morality

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तात्पर्य यह है कि कर्तव्याकर्तव्य शास्त्र अन्ताराष्ट्रिय विधानका मूल तो नहीं है पर उसकी कसौटी निःसन्देह है। आजकल उसका प्रभाव बढ़ता ही जाता है। अन्ताराष्ट्रिय शील (कामिटी आव नेशन्स*) का क्षेत्र भी इससे मिलता जुलता है। आपसके व्यवहारमें राष्ट्र एक दूसरेके साथ कुछ ऐसी रीतियोंको बर्तते हैं जो विधान द्वारा बाध्य नहीं हैं। वैयक्तिक व्यवहारमें ही अतिथिसत्कार, बड़ों, बराबर वालों और छोटोंके साथ पत्रव्यवहार आदिकी पद्धतियां, साथ भोजन करते समयके उपचार आदि न तो किसी क़ानूनके भीतर हैं, न इनका पुण्यपापसे कोई सम्बन्ध है। ऐसी ही बहुतसी परम्परागत बातें राष्ट्रोंके बीचमें बर्ती जाती हैं। यह केवल सभ्यताकी परिचायक हैं। इन्हींको अन्ताराष्ट्रिय शील कहते हैं।

अन्ताराष्ट्रिय विधानका स्थानीय विधानोंसे सम्बन्ध.

अन्तमें यह भी देख लेना चाहिये कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका स्थानीय विधानोंसे क्या सम्बन्ध है। यह हम पहिले भी कह चुके हैं कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका देशोंके भीतरी शासनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी जैसे गाँवकी पद्धतियोंका कौटुम्बिक जीवनपर और देशके विधानोंका ग्रामजीवनपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता, उसी प्रकार अन्ताराष्ट्रिय विधानका सभ्य देशोंके स्थानीय विधानोंपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। यह प्रभाव लेखबद्ध नहीं है, कोई राष्ट्रविशेष इसको माननेपर विवश नहीं किया जा सकता। ऐसे बहुतसे अवसर उपस्थित होते हैं जब कि स्थानीय विधान और अन्ताराष्ट्रिय विधानमें प्रत्यक्ष विरोध देख पड़ता है। कभी कभी ऐसे अवसर न्यायालयोंके सामने आते हैं। ऐसी स्थितिमें भिन्न भिन्न न्यायाधीशोंकी भिन्न भिन्न सम्मतियां हैं पर इंग्लैण्ड तथा अन्य कई देशोंका प्रचलित विचार यह प्रतीत

* Comity of Nations

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है कि अन्ताराष्ट्रीय विधान बाहरी व्यवहारमें मान्य होनेपर भी अनिवार्य्य नहीं है। कोई अन्ताराष्ट्रिय नियम कितना ही अच्छा क्यों न हो पर वह विधानोंकी गणनामें तभी आ सकता है जब वह एक बार पार्लमेण्ट तथा अन्य व्यवस्थापक संस्था द्वारा स्वीकृत हो जाय। जब तक ऐसा न हो तबतक न्यायालयकी दृष्टिमें वह विधान नहीं है। इसी लिये ब्रिटिश साम्राज्यकी यह प्रथा है कि जब किसी उपयोगी अन्ताराष्ट्रिय नियमको अपने न्यायालयोंमें मान्य बनाना होता है तो उसे अपनी पार्लमेण्टके सामने रखकर स्वीकृत करा लेते हैं।

अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रकी प्रथा भिन्न है। वहां यह सिद्धान्त मान लिया गया है कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका स्थान स्थानीय विधानोंसे ऊंचा है और जहां दोनोंमें विरोध हो वहां अन्ताराष्ट्रिय विधानको ही श्रेष्ठ मानना चाहिये। विचार करने पर यही प्रथा समुचित जान पड़ती है। देशके प्रत्येक कानूनका ग्राम्य पञ्चायतकी बैठकमें स्वीकार किया जाना पागलपन है। अंश अंशीके बाहर नहीं जा सकता। स्थानीय विधानोंको अन्ताराष्ट्रिय विधानोंके सामने, जो कि सर्वदेशीय हैं, प्रधानता नहीं दी जानी चाहिये।

संक्षेप

इस अध्यायमें जो कुछ लिखा गया है उसको संक्षिप्त करके यों कह सकते हैं—

(१) कुछ ऐसे नियम हैं जिनका व्यवहार सभ्य राज एक दूसरेके साथ करते हैं।

(२) इन नियमोंका कोई नियत विधाता नहीं है और न कोई ऐसी अधिष्ठात्री शक्ति है जिसके दबावसे उनका पालन किया जाता है। राष्ट्रोंका अनुभव और उल्लङ्घन करनेपर प्रतिकूल लोकमत तथा युद्धकी आशङ्का उनको इन नियमोंको माननेके लिये प्रेरित करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) बहुधा इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि व्यवहार युक्तिसङ्गत और सदाचारके अनुकूल हो।

(४) अन्ताराष्ट्रिय विधान देशोंके स्थानीय विधानोंसे पृथक् है पर उसका स्थान स्थानीय विधानोंसे ऊंचा है, इस लिये जहां द्वैधा हो वहाँ वह स्थानीय विधानोंको बाधित कर देता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानका इतिहास ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानकी प्राचीनता

वस्तुस्थिति तो यह है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान लगभग उतना ही प्राचीन है जितना कि मानवसमाज। मनुष्योंकी सृष्टि जब कभी और जिस किसी प्रकार हुई हो, वह कुछ दिनोंमें पृथक् समूहोंमें बँट गये। प्रत्येक समूहके स्त्री-पुरुष एक दूसरेके सम्बन्धी थे, इसलिये कुटुम्ब, गोत्र आदिका भेद होते हुए भी एक दूसरेको 'अपना' समझते थे। एक समूहवालों-के लिये दूसरे समूह वाले 'पराये' थे। 'जाति' 'राष्ट्र' आदि शब्द समूहके पर्य्याय हो सकते हैं। इन समूहोंको एक दूसरेसे कई प्रकारके काम पड़ते रहे होंगे। और कुछ नहीं तो लड़ाईके तो बहुतसे अवसर आते रहे होंगे। जङ्गल, आखेटभूमि, उर्वराभूमि, नदीतट आदिके लिये मुठभेड़ होती रहती ही होगी। पहिले पहिले तो किसी प्रकारके नियम रहे न होंगे पर धीरे धीरे कुछ नियम बन ही गये होंगे। जब दो समूह एक दूसरेके पड़ोसमें रहेंगे तो यह असम्भव है कि वह सदैव लड़ते ही रहें। बीच बीचमें शान्ति भी होगी। कभी कभी इस बातकी आवश्यकता भी पड़ जायगी कि दोनों मिलकर अपनी रक्षा किसी तीसरे प्रबल समूहसे करें। इस प्रकार युद्ध, शान्ति, सन्धि, आदिके नियम बन गये होंगे। जङ्गली देशोंमें भी ऐसे कुछ न कुछ नियम पाये जाते हैं। इनको अन्ताराष्ट्रिय विधानका मूल कह सकते हैं। उदाहरणतः, दूत सर्वत्र अवध्य माना जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत, आसुरदेश, (असीरिया), शल्दिया, मिश्र, चीन और फारस पृथ्वीके अति प्राचीन सभ्य देश थे। इनके धर्म्म, शिक्षा, कलाकौशल व व्यापारने किसी समय बड़ी उन्नति की थी। फलतः, इनको अपने व्यवहारमें अन्ताराष्ट्रिय नियम बर्तने ही पड़ते थे। एक ओर तो इन्हें आपसमें सम्बन्ध रखना होता था, दूसरा ओर अपने पड़ोसकी असभ्य जातियोंसे काम पड़ता था। भारतको ही लीजिये। आर्य्यनरेशोंको कई प्रकारके अन्ताराष्ट्रिय व्यापार करने पड़ते थे। एक ओर तो उनके आपसके व्यवहार, क्योंकि सारे भारतमें एकछत्र राज्य तो था नहीं। दूसरी ओर आसुर, चीनी, मिश्री जातियोंसे काम पड़ता था। तीसरी ओर भारतकी अर्द्ध सभ्य द्रविड़ जातियां थीं और चौथी ओर पूर्णतया असभ्य कोल, भील, गोंड आदि थे। यह तो असम्भव था कि आर्य्यगण नित्य सबसे लड़ते रहते। इसलिये उनको कई प्रकारको सन्धियाँ तथा शान्तिमूलक नियम बर्तने पड़ते थे। इतना ही नहीं, लड़ाई तकके लिये नियम थे। यदि ऐसा न होता तो आर्य्यजाति कबकी लुप्त होगयी होती। इन नियमोंके अनुसार जो कुछ होता था उसे धर्म्मयुद्ध कहते थे। आर्य्योंकी सभ्यताके प्रभावसे दैत्य और राक्षस तक इन नियमोंका पालन करते थे। हमको इन नियमोंका ज्ञान स्मृतियों, इतिहासों, पुराणों तथा नीतिग्रंथोंसे होता था। उदाहरणके लिये कौटिलीय अर्थशास्त्रका कुछ अंश परिशिष्टमें सानुवाद उद्धृत किया गया है। आर्य्योंके नियम अत्यन्त उदार थे। विजित शत्रुओंके राज्य प्रायः लौटा दिये जाते थे। शत्रुकी प्रजाको न तो प्राणोंका भय होता था, न लूट-मारका। दास रखनेकी प्रथा अवश्य थी पर दासोंके साथ दुर्व्यवहार नहीं हो सकता था।

प्राचीन सभ्य समाज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु यहां हमको यूरोपकी ओर अधिक ध्यान देना है क्योंकि वर्तमान अन्ताराष्ट्रिय विधानकी उत्पत्ति और वृद्धि यूरोपमें ही हुई है। यूरोपके सभ्य देशोंमें यूनान प्राचीनतम है।

यूनान

उसको मिश्रके सान्निध्यसे भी बहुत कुछ लाभ पहुंचा होगा। यूनान कई राज्योंमें विभक्त था। इन राज्यों-में कभी कभी भीषण युद्ध होता था। परन्तु इनको यह बात विस्मृत न थी कि इन सब राज्योंकी जनता एक ही जातिकी थी, एक ही भाषा बोलती थी, एक ही धर्म्मको मानती थी। यह लोग अपनेको हेलेनीज़ और दूसरोंको बार्वेरियन (बर्बर = अनार्य्य) कहते थे। कोई यवन (यूनान-निवासी) कैसा ही बुरा क्यों न हो, वह सारे संसारके बर्बरोंमे श्रेष्ठ था। अरस्तू ऐसे विद्वान्‌की भी धारणा थी कि ईश्वरने बर्बरोंको इसी लिये उत्पन्न किया है कि वह हेलेनी-ज़के दास होकर रहें। इन विचारोंका परिणाम यह था कि यवन दो प्रकारके अन्ताराष्ट्रिय नियमोंको बर्तते थे, एक आपसमें, दूसरे बर्बरोंके साथ। जो नियम आपसमें बर्ते जाते थे वह उदार और सभ्य थे, जो बर्बरोंके साथ बर्ते जाते थे वह अनुदार और क्रूर थे।

यूनानके पीछे रोम यूरोपीय सभ्यताका केन्द्र हुआ। वह सैकड़ों वर्ष तक इस पदपर आरूढ़ रहा। यद्यपि कलाकौशल, काव्य, नाटक, दर्शनमें यूनानने बहुत उन्नति की थी

रोम

परन्तु राजनीति, शासन, सैन्ययोजना, विधान आदिमें रोमको यूरोपका आचार्य कहना अत्युक्ति न होगी। विधानके अन्य अंगोंकी भांति अन्ताराष्ट्रिय विधानने भी रोममें ही जड़ पकड़ी

रोमका ऐतिहासिक अनुभव यूनानसे भिन्न था। पहिले तो उसे इटलीके राज्योंसे लड़ना पड़ा। इन राज्योंके निवासी कई बातोंमें रोमन लोगोंसे मिलते जुलते थे पर एक बात जो यूनानमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी वह यहाँ न थी। यूनानका देश छोटा था अतः यवन राज्य बहुत पास पास थे। इसके अतिरिक्त यूनानके लोग कुछ विशिष्ट देव-देवियोंकी पूजाके लिये तथा एकाध और अवसरोंपर एकत्र हुआ करते थे। इससे उनमें राज्यभेद होनेपर भी भाईचारा था। इटलीमें दोमेंसे एक भी बात न थी, इसलिये रोमको इन इटालियन राज्यों-के साथ भी परायों जैसा ही वर्ताव करना पड़ा। दक्षिणमें प्रबल कार्थेज राज्य था। इससे रोमको कई बार लड़ना पड़ा। एक बार तो जानके लाले पड़ गये। उत्तर और पश्चिममें असभ्य फ्रैंक, गाल, केल्ट आदि जातियाँ थीं। रोमने इनमेंसे कइयोंको जीता पर इनके भीतरी प्रबन्धमें हस्तक्षेप करना उचित न समझा। बहुधा इनके नरेश करद बना कर छोड़ दिये गये। जो प्रान्त पूर्णतया रोमन साम्राज्यमें मिला लिये गये उनपर रोमन प्रान्ताधीश शासन करते थे। रोम दक्षिण और पूर्वमें, यवन, यहूदी और मिश्री ऐसी सभ्य जातियों-पर राज्य कर रहा था। इसलिये रोममें कुछ अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका बन जाना स्वाभाविक था।

इन नियमोंको अन्ताराष्ट्रिय विधान नहीं कह सकते। अन्ता-राष्ट्रिय विधान तो तब होता जब रोमको अपने बराबर वालोंसे काम पड़ता। जिन दिनों रोमके साम्राज्यकी वृद्धि हो रही थी उन दिनों रोमने भी प्रायः यूनानकी नीतिका ही पालन किया था। विदेशियोंके साथ

राष्ट्रोंका विधान

किसी विशेष सभ्यताके वर्तावकी आवश्यकता न समझी जाती थी, केवल समयोचिततापर दृष्टि रहती थी पीछेसे साम्राज्यके स्थापित हो जानेपर तीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं।

क—कभी कभी रोम और उसके अधीनस्थ किसी राज्य या जातिमें मतभेद हो जाता था। दोनों पक्ष बराबरके न थे। रोम अधिपति था इसलिये उसकी आज्ञा मान्य थी पर निश्चय मनमानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज्ञा देना नीतिसम्मत न होता। इसलिये ऐसे अवसरोंके लिये कुछ व्यावहारिक नियमोंका पालन होने लगा।

ख—कभी कभी दो अधीनस्थ राज्यों या जातियोंमें मतभेद और कलह खड़ा हो जाता था। इनको आपसमें लड़नेकी अनुज्ञा तो थी ही नहीं, दोनोंको रोमका निर्णय स्वीकार करना पड़ता था। ऐसे अवसरोंके लिये भी कुछ व्यावहारिक नियम बन गये थे।

ग—सबसे महत्त्वके वह अवसर थे जब एक रोमन और एक अरोमनमें दीवानी या फ़ौजदारीका झगड़ा हो जाता था। दीवानीके झगड़े विशेष महत्त्वके थे। रोमका विधान 'नागरिक विधान' (जस सिविली*) कहलाता था पर रोमके बाहर यह प्रचलित न था। इससे बड़ी कठिनाई पड़ती थी। यदि रोमन विधानके ही अनुसार निर्णय किया जाता तो बाहर वालोंके साथ अन्याय होता अतः रोमन विधायकोंने एक युक्ति निकाली। उन्होंने इटली और उसके आसपासके देशोंके विधानों और रीतियोंका अनुशीलन करके एक विधान-संग्रह बनाया जिसे 'राष्ट्रोंका विधान' (जस जेंशियम†) कहते थे।

यह भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके विधानोंके आधारपर बना था, इसलिए इसे उन विधानोंका महत्तम समापवर्तक कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत वह विधान थे जो न्यूनाधिक रूपमें सर्वत्र मान्य थे। इस विधान-संग्रहसे उन्हीं अवसरोंपर काम लिया जाता था जब कि वादी प्रदिवादी दोनों अरोमन हों या उनमेंसे एक अरोमन हो, क्योंकि रोम वाले अपने नागरिक विधानको पवित्र समझते थे और परस्पर व्यवहारमें उसे ही बर्तते थे। धीरे धीरे राष्ट्रोंके विधानने आगे पाँव बढ़ाया। उसके सिद्धान्त इतने ग्राह्य प्रतीत

*Jus civile † Jus Gentium

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने लगे कि नागरिक विधानपर भी उसकी छाया पड़ने लगी। या तो वह इतना तुच्छ समझा जाता था कि केवल असभ्य जातियां ही उसकी पात्र थीं या उसने रोमके निजी विधानका ही रूप परिवर्तित कर दिया। इस 'जस जेंशियस'को कई अंशोंमें वर्तमान अन्ताराष्ट्रिय विधानका पूर्व रूप कह सकते हैं।

समय पाकर इसको एक और नाम या विशेषण दिया गया। रोमन शास्त्रियोंकी विचारधाराने यह रूप धारण किया कि जब यह विधान एकदेशीय नहीं वरन् सर्वराष्ट्रसान्य है तो यह उन विधानों, नियमों तथा प्रथाओंकी अपेक्षा जो किसी एक समाजमें ही प्रचलित हैं अधिक स्वाभाविक होगा। अतः वह इसको 'प्राकृतिक विधान'(जस नैचुरेली*) भी कहने लगे।

एक दिन रोम साम्राज्यका भी अन्त हो गया। उसका पश्चिमी भाग कई छोटे बड़े स्वतन्त्र राज्योंमें बंट गया, पूर्वी भागपर अब भी एक रोम जातीय सम्राट् शासन करता था। रोमन साम्राज्यके इस पूर्वीय साम्राज्यकी राजधानी कुस्तुन्तुनियाँ थी। विध्वंस होनेके इस समयको यूरोपियन इतिहासका तमोयुग पीछेका काल कहते हैं। चारों ओर घोर विप्लव छाया हुआ था। न कोई नियमको देखता था, न न्यायको पूछता था। बीचमें कुछ कालके लिये फिर अधिकार केन्द्रीभूत हुआ। पोपने जर्मनीके सम्राट्को 'रोमन सम्राट्' की उपाधि दी। धर्म और राजनीतिके मेलने उद्दण्डताको कुछ कम किया। पर यह बात भी बहुत दिनों तक न निभ सकी। मेल टूट गया। साम्राज्यका नाममात्र अवशिष्ठ रह गया। उसके कई टुकड़े हो गये। इंग्लैण्ड तो पृथक् था ही, फ्रांस, आष्ट्रिया, हंगरी भी पृथक् हो गये। स्वयं जर्मनीमें कई छोटे बड़े राज्य थे। यही दशा इटलीकी थी।

*Jus Naturale (Law of Nature)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पोलैण्ड, स्वीडन और रूसका बल बढ़ रहा था। उधर नैऋ‌र्त्य कोणपर स्पेन अत्यन्त समृद्ध हो गया था। यह तो राज्योंका नाम–कीर्तन हुआ। प्रत्येक राज्यमें कई बड़े बड़े सामन्त (जागीरदार) थे। यह अपनी जागीरोंमें राजसी ठाटसे रहते थे। सामन्त सामन्तका शत्रु था, राजा राजाका शत्रु था। इस झगड़ेमें प्रजा बेचारी पिसी जाती थी। दीनोंका कोई सहायक न था। नरेश अपने अपने स्वार्थ या वैर-परिशोधके लिये लड़ाइयां ठान देते थे फिर चाहे कोई जीते, कृषक और व्यापारी लूटे मारे जाते थे. स्त्रियोंके साथ अत्याचार होता था और देश उजाड़े जाते थे। इस महा अन्धकारके समयमें केवल एक प्रदीप टिमटिमा रहा था। ईसाई धर्म्म इन नरपशुओंकी कुछ रोक-थाम करता था। बहुतसे धर्म्माध्यक्ष स्वार्थी और विषयी हो गये थे पर धर्म्मका आतङ्क वही था। किसी नरेश-को यह साहस न होता था कि प्रत्यक्ष रूपसे पोपकी अवज्ञा करे। यह ठीक है कि पोप तथा उनके अनुयायी भी बहुधा नरेशोंसे मिल जाते थे पर उनको यह अभीष्ट न था कि नरेश बहुत बलवान हो जायँ, इसलिये वह समय समयपर बीचमें पड़कर प्रजाकी रक्षा भी कर देते थे। मार्टिन लूथरने पोपके मार्गमें भी एक अड़-चन डाल दी। उन्होंने प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायको जन्म दिया। अब झगड़े और बढ़े। धार्म्मिक द्वेषने उनको और दुःसाध्य बना दिया। उसपर विपत्ति यह थी कि अब कोई बीचमें पड़ने वाला भी न रहा।

यह ऐसा समय था जब कि अन्ताराष्ट्रिय विधानकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी पर दुर्भाग्यवशात् इसका अस्तित्व नहींके बराबर था। तीन ग्रंथकारोंने इस विषयपर पुस्तकें लिखीं। पहिली पुस्तक सं० १६३९ में प्रकाशित हुई। उसके लेखक बाल्थज़र अयला थे। उसका नाम डि ज्यूरे एट आफ़िसिइस बेलिसिस * था।

*De Jure et Officiis Bellicis by Balthazar Ayala.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In-Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरी पुस्तक संवत् १६५५ में प्रकाशित हुई। उसके लेखक आल्बेरिकस जेण्टाइलिस थे। उसका डि ज्यूरे बेलि लाइब्रि ट्रेस* नाम था। तीसरी पुस्तक सं० १६६७ में प्रकाशित हुई। उसके लेखक फ्रांसिस्को सुआरेज़ थे। उसका नाम था ट्रैक्टेटस डि लिजिबस एट डिओ लेजिस्लेटोरे† । इन सब ग्रंथकारोंने इस महत्वपूर्ण विषयपर न्यूनाधिक प्रकाश डाला पर इनका प्रभाव इतना न पड़ा कि तत्कालीन राजनीतिक जगत्में कोई बड़ा परिवर्तन देख पड़ता।

भगवान्की कृपासे यह अभाव भी दूर हुआ। अन्ताराष्ट्रिय विधानके सच्चे आचार्य्यका जन्म उपर्युक्त पुस्तकोंमेंसे पहिली पुस्तकके प्रकाशित होनेके लगभग एक साल पीछे

ग्रोशिअस

२७ चैत्र संवत् १६३९ को हुआ। उनका नाम ह्यूग वान ग्रूट था पर उनकी ख्याति ह्यूगो ग्रोशिअस‡ नामसे अधिक है। वह हालैण्डके निवासी थे। उन दिनों हालैण्ड-वाले अपनी धार्म्मिक तथा राजनीतिक स्वाधीनताके लिये स्पेनसे लड़ रहे थे। ग्रोशिअसने युद्धकी आपत्तियाँ अपनी आँखोंसे देखी थीं। वह बड़े ही प्रतिभा-शाली व्यक्ति थे। थोड़े ही वयमें उनकी प्रसिद्धि हो गयी। वह सार्वजनिक कामोंमें भी भाग लेते थे। फलतः संवत् १६६५ में वे पकड़े गये और उनको आजन्म कैदका दण्ड दिया गया। तीन वर्ष पीछे उनकी स्त्रीने उनके छुटकारेकी युक्ति निकाली। वह पुस्तकोंके बहाने एक संदूकमें बन्द हो कर बाहर निकल आये। जेलसे भाग कर पेरिस पहुंचे। फ्रांसके नरेशने उनको कुछ वृत्ति देना स्वीकार किया पर रुपया स्यात्

---

*De Jure Belli Libriyres by Albericus Gentilis.
†Tractatus de Ligibus et Deo Legislatore by Francisco Suarez. ‡ Huig van Groot (Hugo Grotius.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही कभी ठीक समयपर मिलता था। संवत् १६९२ में यह स्वीडनकी महारानीकी ओरसे फ्रांसमें राजदूत नियुक्त हुए। संवत् १७०२ में समुद्रमार्गसे कहीं जा रहे थे कि जहाज़ डूब गया। यह किनारे तो पहुंच गये पर स्वास्थ्य नष्ट हो गया। उसी साल १३ श्रावणको इनका देहान्त हो गया।

जिस पुस्तकके कारण इनकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी उसका नाम था डि ज्यूरे बेलि ऐक पेसिस † (युद्ध और शान्तिका विधान)। वह संवत् १६७२ में प्रकाशित हुई। उन दिनों ग्रोशिअस बड़े कष्टमें थे। बच्चोंके सामान्य भरण-पोषणका भी प्रबन्ध नहीं था, प्रकाशकसे उन्हें पारिश्रमिक स्वरूप २०० प्रतियां मिलीं। इनमेंसे वह बेचारे कुछको बेच पाये पर जो मूल्य मिला वह बहुत ही कम था।

पुस्तक छपते ही प्रसिद्ध हो गयी। केवल विद्वानोंने ही नहीं प्रत्युत नरेशों और राजपुरुषोंने भी इसका आदर किया। स्वीडनका विजयी नरेश गस्टेवस ऐडोल्फ़स❀ एक प्रति सदैव अपने पास रखता था। उसके प्रकाशनके पीछे उन दिनों सभी युद्धों और सन्धि-पत्रोंमें उसके सिद्धान्तोंका अनुसरण किया गया। उसने राजनीतिक जगत्का कायापलट कर दिया। एक जगह उन्होंने लिखा है "मैंने सारे ईसाई जगत्में युद्धविषयक ऐसी स्वेच्छाचारिता देखी जिससे कि जंगली जातियां भी लज्जित होती थीं। छोटी छोटी बातोंपर या बिना किसी कारणके ही लड़ाई छेड़ दी जाती थी। जब एक बार युद्ध आरम्भ हो जाता था तो दैवी और मानवी विधानोंका इस प्रकार अनादर किया जाता था कि जैसे लोगोंको सभी प्रकारके अपराधोंके बेरोकटोक करनेकी आज्ञा मिल गयी हो।" उनको इस बातका श्रेय है कि यह बात जाती रही। सब

† De Jure Belli ac Pacis ❀ Gustavus Adolphus.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्योंकी प्रकृति सात्विक नहीं हो गयी पर बहुत सी कुरीतियां जो पृथ्वीको नरकतुल्य बनाये हुए थीं दूर हो गयीं।

अब देखना यह है कि वह नयी शिक्षा क्या थी जो यूरोपके सामने रक्खी गयी। ह्यूगो ग्रोशिअसके उपदेशका सारांश यह था:

ग्रोशिअसका उपदेश

जिस प्रकार मानव व्यक्ति समाजके सदस्य हैं उसी प्रकार व्यक्तिसमूह अर्थात् राष्ट्र भी समाजके सदस्य हैं। बिना समाजके मनुष्यका जीवन पशुओं जैसा हो जायगा। राष्ट्र–समाजके प्रत्येक सदस्यके कुछ स्वत्व और कर्त्तव्य हैं। यह अधिकार किसी राष्ट्रको नहीं है कि वह मनमाना आचरण करे। चाहे युद्ध हो, चाहे शांति, राष्ट्रोंका परस्परका व्यवहार अवैध और अनुचित कदापि न होना चाहिये। यह ठीक है कि न तो सब राष्ट्रोंपर कोई एक अधिपति है, न सबका कोई एक धर्मगुरु है कि जिसका आदेश सब मानें, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्रोंके पास अपने आचरणके औचित्य तथा अनौचित्य जांचनेकी कसौटी नहीं है। एक कसौटी है। ईश्वरने प्रत्येक मनुष्य, कमसे कम प्रत्येक सभ्य मनुष्यके हृदयमें एक ऐसी शक्ति रख दी है जो उसे बतलाती रहती है कि क्या उचित है और क्या अनुचित। इस विवेकशक्ति या तर्क-शक्तिसे जो नियम सिद्ध होते हैं उनको 'जस नैचुरेली' (प्राकृतिक विधान) कहते हैं। सब राष्ट्रोंका परस्पर व्यवहार इसी प्राकृतिक विधान-के अनुसार होना चाहिये। इस सिद्धान्तके अनुसार ग्रोशिअसने बहुतसे व्यावहारिक नियम भी बतलाये। उनका उल्लेख यथास्थान होगा। उन्होंने यह भी दिखलाया कि यह नियम रोमके जस जेंशियम (राष्ट्रोंके विधान) के अनुकूल थे।

ग्रोशिअसकी सफलताके तीन प्रधान कारण थे (१) उस समयके विद्वानोंकी सभी रोमन बातोंके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। विधि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधानके विषयमें तो रोम एक मात्र आदर्श था। इसलिये जब ग्रोशिअसने जस जेंशियमके नामपर दुहाई दी तो सारा विद्वद्दल उनकी ओर आ गया। (२) प्राकृतिक विधानका नाम बड़ा हृदयग्राही था। प्राकृतिक विधान क्या वस्तु है यह तो कोई सोचता न था पर लोग यह सुनते आये थे कि इस नामका कोई तत्त्व है जिसके प्रतिकूल चलनेसे मनुष्य मनुष्यतासे गिरकर पशुवत् हो जाता है। इस लिये जब ग्रोशिअसने प्राकृतिक विधानको सदाचरणकी कसौटी बनाया तो सब ही उधर झुके। एक बात और थी। यदि प्राकृतिक विधानके नामपर ग्रोशिअसने कोई बड़े आदर्श स्वरूप नियम उपस्थित किये होते जिनके पालन करनेमें बहुत स्वार्थत्याग और धार्मिकताकी आवश्यकता होती तो स्यात् लोग तत्पर न होते। पर ऐसा न करके उन्होंने वही नियम सामने रक्खे जो रोमन कालसे चले आते थे और अब भी यदा कदा पालित होते थे। सिद्धान्तकी दृष्टिसे इनका कोई विरोधी न था; भेद इतना ही हुआ कि अब ग्रोशिअसने इनको अनिवार्य्य बतलाया। (३) लोग उच्छृङ्खलतासे ऊब गये थे। सभी ऐसा मार्ग ढूंढ़ रहे थे जिससे जीवनकी विकरालता कुछ कम हो। ग्रोशिअसकी पुस्तकका निकल जाना काकतालीय लाभ हो गया।

ग्रोशिअसकी सफलताके कारण

यह तो सब मानते हैं कि ग्रोशिअसने यूरोपियन जगत्का बड़ा उपकार किया पर आजकल 'प्राकृतिक विधान' के सिद्धान्तपर आक्षेप किया जाता है। यह कहा जाता है कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका वास्तविक मूल राष्ट्रोंका ऐकमत्य है। जिस परिपाटीको अधिकांश राष्ट्र स्वीकार कर लें वही अन्ताराष्ट्रिय विधान हो जायगा। यदि आज किसी कारणसे सभ्य राष्ट्रोंमें युद्धके बन्दियोंकी

प्राकृतिक विधान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाक काट लेनेकी प्रथा चल पड़े तो यह भी अन्ताराष्ट्रिय विधानके अन्तर्गत हो जायगी। उस समय जो राष्ट्र नाक काट लेगा वह कानूनके अन्दर' होगा। हां, यदि कोई राष्ट्र किसी दूसरे अंगको कटवाले तो उसका व्यवहार निःसन्देह अवैध होगा। अतः आपसके व्यवहारकी कसौटी कोई कल्पित प्राकृतिक विधान नहीं प्रत्युत राष्ट्रोंकी स्वीकृति है। यह आक्षेप न्याय्य है और एक प्रकारसे ग्रोशिअसने भी इसे मान लिया था क्योंकि उन्होंने जिन नियमोंके पालन करनेका आदेश किया वह वही थे जो अधिकांश राष्ट्रोंको मान्य थे और जिनमेंसे कुछको रोमन विधायकोंने बहुतसे राष्ट्रोंकी प्रथाओंका अनुशीलन करके स्थिर किया था।

दूसरा आक्षेप दार्शनिक है। मनुष्यके हृदय या मस्तिष्कमें किसी विशिष्ट विवेकशक्तिका होना असिद्ध है। आग सबको उष्ण लगती है, बर्फ सबको ठंढा लगता है, पर एकही काम सबको भला या बुरा नहीं लगता। किसी देशमें नर-मांस खाना भी बुरा नहीं समझा जाता, किसी समाजके लोग मांसमात्रको त्याज्य मानते हैं। सब राष्ट्रोंका पुण्य-पाप तथा कार्य-अकार्यका विचार एकसा नहीं है। अतः यह नहीं माना जा सकता कि ईश्वरने सबको कोई ऐसी शक्तिविशेष दे रक्खी हो जिससे उचित अनुचितका निश्चय हो सके। हां, यह ठीक है कि अधिकांश सभ्य राष्ट्र कुछ कामोंको अच्छा और कुछको बुरा मानते हैं। पर इससे किसी प्राकृतिक विधानका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। इन राष्ट्रोंका बुद्धिविकाश प्रायः एक सा ही हुआ है। सबने एक सी ही शिक्षा पायी है अतः इनके व्यवहारों और विचारोंमें भी समता है। यह हम अवश्य कह सकते हैं कि जो व्यवहार वर्तमान कार्य्याकार्य्य विचारके अनुकूल हैं वह उचित हैं, जो प्रतिकूल हैं वह अनुचित हैं। पर हम इन विचारोंको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राकृतिक नहीं कह सकते, न हमको इन्हें ईश्वर-प्रेरित कहनेका अधिकार है।

व्यावहारिक दृष्टिसे यह आक्षेप न्याय्य है पर इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि कोई ऐसा कर्म्ममार्ग हो ही नहीं सकता जो अचल हो। बाह्य क्रियाओंके रूपोंमें समय समयपर भेद होते रहते हैं पर उनका एक ऐसा मूल है जो स्थिर और असन्दिग्ध है। वह मूल "तार्किक शक्ति" नहीं है। तर्क तो अप्रतिष्ठित है। उस मूल, उस निश्चल तत्वका नाम है 'आत्मज्ञान'। जो निष्ठा मनुष्योंको मोक्षोन्मुख ले जाती है वही सच्ची कर्म्मनिष्ठा, खोटे-खरे कर्मोंकी सच्ची कसौटी है। जो परिपाटी जीव जीवके परस्परके भेदको मिटानेमें समर्थ हो वही उचित परिपाटी है। जो विधान जितना ही 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्तके अनुकूल होगा वह उतना ही 'प्राकृतिक' होगा।

कार्य्याकार्य्य-की सच्ची कसौटी

मोक्षका अर्थ है छुटकारा, स्वातंत्र्य। स्वर्गसुख मोक्ष नहीं है। अतः जो कार्य्यप्रणाली मोक्षको आदर्श मानकर चलेगी उसमें यह पांच गुण अवश्य होंगे—

यह सदैव इस बातको अपना लक्ष्य बनायेगी कि प्रत्येक राष्ट्र अधिकसे अधिक स्वाधीनताका उपभोग करे। इससे अराजकता नहीं फैल सकती। अराजकता तब फैलती है जब कि एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह दूसरोंकी स्वाधीनतामें विघ्न डालने चलता है, पर मोक्षमूलक कार्य्यप्रणालीका दूसरा लक्षण यह होगा कि प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रके बराबर माना जायगा। न कोई बड़ा होगा न छोटा।

युद्ध आदिके अकस्मात् छिड़ जानेपर भी यह सदैव स्मरण रक्खा जायगा कि दूसरोंको कमसे कम कष्ट दिया जाय। 'आत्मनः प्रतिकूलानि मा परेषां समाचरेत्', ही व्यवहारकी कुञ्जी होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरोंको जो कुछ दण्ड दिया भी जायगा वह प्रतिहिंसाके भावसे नहीं वरन् उनके सुधारके उद्देश्यसे।

प्रेम ही व्यवहारका आदर्श माना जायगा।

अन्ताराष्ट्रिय विधान जीवोंको मुक्त नहीं बना सकता पर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है जिसमें राष्ट्र राजनीतिक और आर्थिक तथा मानसिक और नैतिक स्वाधीनताका उपभोग करें। इसका परिणाम व्यक्तियोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता। अतः अन्ताराष्ट्रिय विधान वह परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है जिसमें जीवोंको शान्ति मिले और यदि वह चाहें तो अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकें। इस दृष्टिसे हम कह सकते हैं कि अन्ताराष्ट्रिय विधान जीवोंके सच्चे आध्यात्मिक कल्याणका एक अवान्तर साधन हो सकता है।

अस्तु, यह तो दार्शनिक सिद्धान्तकी बात हुई। ग्रोशिअसके पीछे प्यूफेण्डाफ़, वैटेल, आदि कई विद्वानोंने इस विषयपर पुस्तकें लिखीं। कोई ग्रोशिअसके मतसे सहमत हुआ, किसीने विरोध किया। आजकल लोग 'प्राकृतिक विधान' की सत्ता माननेको प्रस्तुत नहीं हैं। विद्वानोंकी सम्मति यह है कि जिन जिन नियमोंका पालन हो रहा है वह सभ्य राष्ट्रोंकी प्रथाओंके अनुसार बने हैं। इन प्रथाओंकी उत्पत्ति दर्शनशास्त्रके सिद्धान्त सामने रख कर नहीं हुई है। राष्ट्रोंको जिन बातोंमें सुविधा देख पड़ी है उन्हींका उन्होंने अवलम्बन किया है। लूटमारकी बात लीजिये। पहिले विजित देशकी प्रजा लूटी जाती थी और गांवके गांव जला दिये जाते थे। इसमें कई प्रकारकी असुविधाएं होती थीं। जो आज विजेता है वही कल विजित हो सकता है, फिर उसके सिरपर भी वही आपत्ति आयेगी। इन्हीं सब अनुभवोंके कारण धीरे धीरे लूटमारकी प्रथा

वर्तमान कालक वीचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठ गयी। अब विजित देशमें लूट-मार न करना और नगर तथा गाँवोंको अग्निसात् न करना अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक अङ्ग बन गया है। इसी प्रकार अन्य नियमोंकी भी सृष्टि हुई है। अतः जिस पद्धतिको सब या अधिकांश सभ्य राष्ट्र स्वीकार कर लेते हैं वही अन्ताराष्ट्रिय विधानके अन्तर्गत हो जाता है। ऐसे विधानको ग्रोशिअस राष्ट्रोंका 'विहित विधान' (इंस्टिट्यूटेड लॉ*) और वैटेल 'सिद्ध विधान' (पाजिटिव्ह लॉ †) कहते हैं।

परन्तु आजकल सभ्य देशोंमें बुद्धिका जैसा कुछ विकाश हुआ है उसके अनुसार मनुष्यकी विवेचनाशक्ति कुछ कामोंको कार्य्य अर्थात् अच्छा और कुछको अकार्य्य अर्थात् बुरा समझने लगी है। यह विवेचना-शक्ति अपनी तीव्र दृष्टि सर्वत्र डालती है। धार्म्मिक कृत्य, विवाहादि संस्कार, भोजनपान, सम्पत्ति-विभाग, दण्डविधान, शासनपद्धति आदि जीवनके सभी अङ्गोंकी आलोचना की जाती है और जो बातें बुरी प्रतीत होती हैं उनके स्थानमें अच्छी बातोंके रखनेका प्रयत्न किया जाता है। इसी प्रकार, अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारके भी कुछ नियम तो अच्छे और कुछ बुरे कहे जा सकते हैं और जो बुरे हैं उनके स्थानमें अच्छे नियमोंसे काम लिये जानेका प्रयत्न किया जा सकता है। यह अच्छे-बुरेका निर्णय बुद्धि-विकाश-पर निर्भर है अतः जो नियम आज अच्छा लगता है सम्भवतः वही कल बुरा जँचने लगे पर प्रत्येक समयमें कुछ ऐसे नियम अवश्य होंगे जो सर्वथा बुद्धिसंगत प्रतीत होंगे। इन्हींके समूह-को ग्रोशिअसके शब्दोंमें 'नैचुरल लॉ' (प्राकृतिक विधान)‡ और वैटेलके शब्दोंमें 'नेसेसरी लॉ' (आवश्यक विधान)§ कहते हैं।

* Instituted Law. † Positive Law.

‡ Natural Law (Grotius) § Necessary Law (Vattel).

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई विधान हो जब तक वह लेख-बद्ध नहीं होता तबतक उसका रूप अ-निश्चित रहता है। केवल विद्वानोंकी पुस्तकोंसे काम नहीं चल सकता। इनका महत्त्व चाहे कितना ही हो पर वह राजोंको बाध्य नहीं कर सकतीं। राज उन्हीं लेखोंसे बाध्य होते हैं जिनपर उनके प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर होते हैं। ऐसे लेखोंको सन्धि-पत्र या समय-पत्र (कॉन्हेनैण्ट*) कहते हैं।

अन्ताराष्ट्रिय विधान संग्रह

सब सन्धियोंका महत्व एकसा नहीं होता। जो सन्धियां दो राजोंके आपसके झगड़ोंके मिटानेके लिये होती हैं उनमें स्यात् ही कोई ऐसी बात हो सकती है जो सबके कामकी हो। पर कभी कभी ऐसी सन्धियाँ होती हैं जिनमें कई बड़े राष्ट्र सम्मिलित होते हैं। ऐसे सन्धिपत्रोंमें सिद्धान्तकी बातें लिखी जाती हैं और ऐसे नियम बनाये जाते हैं जिनको माननेकी सभी सम्मिलित राष्ट्र प्रतिज्ञा करते हैं। ऐसे सन्धिपत्रोंके संग्रहको अन्ताराष्ट्रिय विधान संग्रह कह सकते । इनमें जो बातें निश्चित होती हैं उनको प्रायः वह राज भी मान लेते हैं जिनके हस्ताक्षर नहीं होते। इस विषयपर एक और अध्यायमें भी विचार किया जायगा। यहां एक उदाहरण पर्य्याप्त होगा। संवत् १९२५ में पेट्रोग्रेडमें एक समयपत्र लिखा गया जिसको 'सेण्टपीटर्सबर्गकी घोषणा'† (उस समय रूसकी राजधानी पेट्रोग्रेडका नाम सेण्ट पीटर्सबर्ग था) कहते हैं। इसमें यह निश्चय हुआ कि अब युद्धमें ऐसी गोलियोंसे काम न लिया जाय जो शरीरके भीतर जाकर फूट जाती हैं, क्योंकि इनसे सिपाहियोंको व्यर्थका कष्ट होता है। इसपर पहिले पहिले केवल १८ राजोंके प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर थे। पर आज इसको सभी राज मानते हैं। यह एक लेखबद्ध विधान हो गया है।

* Covenant.

† The Declaration of St. Petersburg, 1868

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब अन्ताराष्ट्रिय विधानके लिये एक वस्तुकी कमी रह गयी, कोई निश्चित विधाता न था। आवश्यकता इस बातकी थी कि कोई ऐसी संस्था हो जो आवश्यक विधान बनावे और जिसकी आज्ञाएं सर्वमान्य हों। ऐसी संस्था सब राष्ट्रोंके मेलसे ही बन सकती थी क्योंकि कोई एक अधिपति तो है नहीं। दैव कृपासे यह अभाव भी पूरा हुआ।

अन्ताराष्ट्रिय व्यवस्थापकसभा, हेग सम्मेलन

रूसके ज़ार द्वितीय निकोलस शान्तिप्रिय मनुष्य थे। उनको वर्तमान कालके युद्धोंकी भीषणता और तत्सम्बन्धी आर्थिक अपव्यय देख कर दुःख होता था। इसलिये उन्होंने ८ भाद्र १९५५ (२४ अगस्त १८९८)को यह इच्छा प्रकट की कि सब राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंका एक महा-सम्मेलन हो जिसमें 'सच्ची और स्थायी शान्तिके स्थापित करने और सेना-वृद्धि घटानेके उपायों' पर विचार किया जाय। स्थायी सन्धि तो स्थापित हो नहीं सकी पर युद्ध-सम्बन्धी कई नियम बन गये। यह सम्मेलन संवत् १९५६ के वैशाखमें हेग (हालैण्डकी राजधानी) में हुआ। २६ राष्ट्रोंके प्रतिनिधि आये थे। सम्मेलनने कई उपयोगी नियम बनाये, जिनका यथास्थान कथन होगा। उठनेके पहिले प्रतिनिधियोंने कई ऐसे विषयोंका उल्लेख किया जो इस बार निर्णीत न हो सके थे और यह इच्छा प्रकट की कि दूसरी बार सम्मेलन करके इनपर विचार किया जाय।

दूसरा सम्मेलन भी हेगमें हुआ (१९६४)। इस बार ४४ राजोंके प्रतिनिधि आये थे। इसमें भी कई आवश्यक बातें निश्चित हुईं और शेषके सम्बन्धमें यह इच्छा प्रकट की गयी कि तृतीय सम्मेलनमें उनपर विचार किया जाय। इसके दूसरे साल लन्दनमें एक सम्मेलन हुआ। इसमें समुद्र-युद्धसम्बन्धी कई आवश्यक प्रश्नोंपर विचार और निश्चय हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसिद्ध अमेरिकन दानवीर स्वर्गीय श्री ऐण्ड्रयू कार्नेगीने सम्मेलनके लिये हेगमें एक विशाल और सुसज्जित भवन भी बनवा दिया है।

ऊपर जो संक्षिप्त वर्णन दिया गया है उससे विदित होता है कि हेग सम्मेलन एक प्रकारकी अन्ताराष्ट्रिय व्यवस्थापक सभा थी। सभी प्रधान राष्ट्रोंके प्रतिनिधि इसके सदस्य थे। कुछ ऐसे भी राष्ट्र थे जिनके प्रतिनिधि नहीं आये थे पर वह छोटे और अल्प-महत्त्वके थे। यह ठीक है कि जिस समयपत्रपर उनके हस्ताक्षर न थे उसको माननेके लिये वह बाध्य न थे पर इस बातकी बहुत ही कम सम्भावना थी कि कोई छोटा राज किसी ऐसे आचरणके करनेका साहस करेगा जो प्रमुख राजोंकी इच्छाके प्रतिकूल हो। तात्पर्य्य यह है कि हेगमें निर्धारित नियम सभी राजोंके मान्य थे चाहे उनके प्रतिनिधि वहां उपस्थित रहे हों, चाहे न रहे हों।

हेग सम्मेलनके व्यवस्थापक संस्था होनेमें केवल दो त्रुटियां थीं। एक तो यह कि उसके अधिवेशन अनिश्चित थे। पहिला सम्मेलन १९५६ में हुआ, दूसरा आठ वर्ष पीछे १९६४ में, तीसरा स्यात् १९७२,७३ तक होता पर महा-समरने ऐसा अवसर ही न दिया। व्यवस्थापक सभाकी स्थायी संस्था होनी चाहिये, यह नहीं कि जब सदस्योंकी इच्छा हुई तभी अधिवेशन हो गया।

दूसरी त्रुटि इससे बड़ी थी। मान लिया कि बहुतसे उत्तम उत्तम विधान बन गये पर यदि कोई राज उनको न माने तो उसके साथ क्या किया जाय? सम्मेलनके पास कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जिससे वह किसी उच्छृङ्खल राजको दण्ड दे सके। उसके सदस्य राज पृथक् पृथक चाहे जो करें पर स्वयं सम्मेलनके पास किसी प्रकारका बल न था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यूरोपीय महायुद्धने राष्ट्रोंकी आंखें खोल दीं। अधिक दोषी कौन था, यह हम नहीं कह सकते। पहिले बन्दूक किसीने चलायी हो पर अपराधी सब थे। अमेरिकाके राष्ट्रपति श्री वुडरो विल्सनने सोचा कि कोई ऐसा उपाय निकाला जाय जिससे भविष्यत्में युद्ध न हों या बहुत कम हों। राष्ट्रसंघ उन्हींके विचारोंका परिणाम है। जो लोग समाचारपत्रोंको पढ़ते रहते हैं वह उसके स्वरूपसे परिचित हैं। सभ्य राष्ट्रोंका एक संघ बन गया है। उसके समय-पत्रको राष्ट्र-संघका समय-पत्र* कहते हैं। राष्ट्र-संघमें पृथ्वीके सभी प्रधान-राजोंके प्रतिनिधि हैं, पर विचित्र बात यह है कि जिस अमेरिकाके राष्ट्रपति विल्सनने इसकी नींव डाली वही इसका सदस्य नहीं है। कई कारणोंसे अमेरिकन सि... ...संघकी सदस्यता अस्वीकार कर दी।

राष्ट्र-संघ

नियम यह है कि जिस राजका शासन स्थिर हो और संघके नियमोंका पालन करनेके लिये तैयार हो वह सदस्य हो सकता है। जर्मनी, रूम और बल्गेरिया, जो मित्रदलसे लड़े थे, उस समय सदस्य हो सकते हैं जब इनके व्यवहारसे इस बातका विश्वास हो कि अब यह उन्मार्गगामी न होंगे। और जो कोई राज सदस्य होना चाहे वह सदस्योंकी दो-तिहाई सम्मतियोंसे चुना जा सकता है।

अमेरिकाके निकल जानेसे एक बड़ी हानि हुई है। संघ चार महास्वार्थी राजोंके हाथमें आ गया है। इनके नाम हैं ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान। इनको 'चतुर्महत्'† कहने लग गये हैं। यह अन्य सदस्योंको जैसा नाच चाहते हैं नचाते हैं।

*Covenant of the League of Nations.

†The Big Four.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कितनी बातें यह आपसमें निश्चित कर डालते हैं जिनकी दूसरोंको रत्ती भर सूचना नहीं होती, फिर जब वह निश्चय संघकी बैठकमें रक्खा जाता है तो बड़ोंके अनुचित दबावमें पड़ कर सबको उसे स्वीकार करना होता है। अस्तु, संघके खुलनेके यह उद्‌देश्य बतलाये गये हैं—

राष्ट्रसंघके उद्देश्य

"युद्ध न छेड़नेके कर्तव्यको स्वीकार करने, राष्ट्रोंके लिये खुले, न्याय्य और प्रतिष्ठित सम्बन्धोंको निश्चित करने, शासनोंके व्यवहारमें अन्ताराष्ट्रीय विधानके नियमोंको दृढ़तापूर्वक आचरण-विधि बनाने, न्यायके स्थापित करने और सङ्गठित जनसमुदायोंके परस्पर व्यवहारमें सब सन्धि-जन्य कर्तव्योंको पूर्णतया पालन करने,के द्वारा अन्ताराष्ट्रीय सहयोगकी वृद्धि और अन्ताराष्ट्रीय शान्ति और रक्षाकी प्राप्तिके लिये…"❀

यहांपर हम केवल उन्हीं धाराओंका भावार्थ देते हैं जिनका हमारे विषयसे विशेष सम्बन्ध है।

❀ In order to promote international co-operation and to achieve international peace and security by the acceptance of obligations not to resort to war, by the prescription of open, just and honourable relations between nations, by the firm establishment of the understandings of international law as the actual rule of conduct among governments and by the maintenance of justice and a scrupulous respect for all treaty obligations in the dealings of organized peoples with one another............

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहली धाराके द्वारा संघके सदस्योंके प्रतिनिधियोंकी एक स्थायी समिति बनायी गयी और उसके लिये राष्ट्रसंघके समय एक स्थायी कार्य्यालय स्थापित करके स्थायी पत्रकी कुछ धाराएं कार्य्यकर्ता नियुक्त किये गये।

सातवीं धाराके द्वारा यह कार्य्यालय जेनीवा नगरमें खोला गया।

बारहवीं धाराके द्वारा यह निश्चय हुआ कि यदि संघके दो या अधिक सदस्योंमें कोई ऐसा मतभेद उत्पन्न हो जाय जो आपसमें न तय हो तो वह संघकी स्थायी समिति (कौंसिल आव दि लीग*) के सामने रक्खा जाय। समिति छः महीनेके भीतर उसपर अपनी रिपोर्ट देगी। निर्णय करनेके लिये यथासम्भव पञ्च चुने जायंगे। पञ्चोंको अपनी रिपोर्ट बहुत शीघ्र देनी होगी। यदि उभय पक्ष पञ्चोंके निर्णयको मान लें तो ठीक ही है पर यदि वह न मानें तब भी निर्णयके प्रकाशित होनेके तीन मासके भीतर युद्ध न होगा।

चौदहवीं धाराके द्वारा एक स्थायी अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय स्थापित किया गया।

सोलहवीं धारा द्वारा यह निश्चय हुआ कि यदि संघका कोई सदस्य उपर्युक्त बारहवीं धाराका उल्लङ्घन करके युद्ध छेड़ दे तो यह माना जायगा कि वह संघके सभी सदस्योंसे लड़ना चाहता है। इसलिये सभी राज उससे सब प्रकारके व्यापारिक और आर्थिक सम्बन्ध तोड़ देंगे और अपनी अपनी प्रजाको उसकी प्रजासे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखने देंगे। इतना ही नहीं, इस बातका भी प्रयत्न किया जायगा कि जो राज संघके सदस्य नहीं हैं वह भी उसका बहिष्कार कर दें। स्थायी समिति यह भीनिश्चित करेगी कि उसके विरुद्ध सैनिक बलका किस प्रकार प्रयोग किया जाय।

* Council of the League of Nations.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समयपत्रपर पहिले बेल्जियम, बोलिविया, ब्रिटिश साम्राज्य, [और उसके पाँच प्रधान अंग अर्थात् कनाडा, आष्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका और भारत (!!)], चीन, क्यूबा, ज़ेको-स्लोवेकिया, ईक्वेडर, फ्रांस, यूनान, ग्वाटिमाला, हैटी, हजाज़ होण्डुरास, इटली, जापान, लाइबीरिया, निकारागुआ, पनामा, पेरू, पोलैण्ड, पुर्तगाल, रूमानिया, सर्बिया, स्याम और युरुग्वेके हस्ताक्षर थे।

ऐसे प्रामाणिक पत्रको रद्दी कागज़ कहनेका साहस नहीं होता। हम ऊपर लिख चुके हैं कि अमेरिकाके निकल जानेसे संघ अपने आदर्शसे गिर गया है और चार स्वार्थी राजोंके हाथकी कठपुतली हो रहा है। परन्तु स्वार्थमूलक मेल बहुत दिनों तक नहीं ठहरता। सम्भवतः इन चारोंमें भी फूट होगी और तब न्याय और शान्तिको सिर उठानेका अवसर मिलेगा।

भविष्य

संघके उद्देश्य बड़े उत्तम हैं और समयपत्रकी धाराएँ ऐसी हैं कि यदि उनके अनुसार सचमुच चला जाय तो स्यात् भूमण्डलसे युद्धका नाम ही मिट जाय। यदि पञ्च निष्पक्ष होंगे तो उनका निर्णय इतना न्याय्य होगा कि सारा सभ्य संसार उसे मानेगा। जो राज उसे न मानकर लड़ने पर प्रस्तुत होगा वह समस्त जगत्में अपकीर्त्तिका भाजन होगा और उसकी साख तथा प्रतिष्ठा मिट्टीमें मिल जायगी। यदि वह लड़ना चाहे भी तो तीन महीने तक ठहरना होगा। इतनेमें शत्रु भी बहुत कुछ प्रबन्ध कर लेगा और सभ्य जगत्की सहानुभूतिसे लाभ उठानेका अवकाश पा जायगा। नियमोंका उल्लंघन करना असम्भव होगा क्योंकि ऐसा कोई राज नहीं है जो दस बीस राष्ट्रों द्वारा बहिष्कृत हो कर भी अपना काम चला सके। फिर समस्त राजोंके संयुक्त सैनिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलका कौन सामना करेगा ? अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय भी बड़ी ही उपयोगी संस्था हो सकता है। पर यह सब बातें तभी होंगी जब प्रमुख राज अपने अपने क्षुद्र स्वार्थको छोड़ कर लोकहितका संकल्प करें। इसी साधनसे अन्तमें उनका भी भला होगा। यदि भगवान् राजों और राष्ट्रोंको ऐसी सद्बुद्धि दे तो जगतीतलपर इतनी शान्ति, समृद्धि और सुखका अनुभव हो कि स्वर्ग भी इसके आगे तुच्छ प्रतीत हो। खेद इस बातका है कि संघके स्थापित हो जानेपर भी उसका भविष्य अभी सुनिश्चित नहीं कहा जा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

तीसरा अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र ।

जिन लोगोंके लिये कोई विधान बनाया जाता है, जिन लोगोंके साथ वह बर्ता जाता है, वह उसके पात्र कहलाते हैं। अब देखना यह है कि अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र कौन लोग हैं। इस प्रश्नका आंशिक उत्तर तो पहले अध्यायमें दिया जा चुका है। यह विधान राजोंके बीचमें ही बर्त्ता जाता है। व्यवहार और सब आचार्य्योंके मतने यह भी निश्चय कर दिया है कि स्वाधीन अर्थात् पूर्ण प्रभुत्वयुक्त राज वस्तुतः पात्र हैं। यह उचित ही है। समाजके कामोंमें भाग लेनेका अधिकार उन्हीं लोगोंको होता है जो प्राप्तवयस्क हैं और किसी न किसी प्रकारके निष्पाप स्वतंत्र व्यवसायसे अपनी जीविका चलाते हैं। पागल, चोर, डाकू आदिको समाज कोई अधिकार नहीं देता। पर लड़कोंको आंशिक अधिकार रहता है। वह न तो प्राप्तवयस्क होते हैं, न स्वतंत्र, पर बहुत सी बातोंमें उनका लिहाज़ किया जाता है। उनके अभिभावकोंके सिर निश्चित दायित्व होता है। इसी प्रकार कई अर्द्ध-प्रभु, पराधीन राज ऐसे हैं जो अन्ताराष्ट्रिय विधानके अंशतः पात्र हैं। किसी किसी अवस्थामें यह विधान ऐसे समुदायों और व्यक्तियोंपर भी लागू होता ह जिनको किसी दृष्टिसे 'राज' नहीं कह सकते। इस अध्यायमें इन सब भिन्न भिन्न प्रकारके पात्रोंका विचार होगा।

पात्रोंके भेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सबसे पहिले हम उन राजोंको लेते हैं जिनका पात्रत्व निर्विवाद है अर्थात् स्वाधीन राज। यहाँपर इन दोनों शब्दोंकी परिभाषापर विचार कर लेना आवश्यक है। राजनीतिशास्त्रका एक बहुत बड़ा भाग इसी परिभाषापर विचार करता है। यहाँ हम शास्त्रार्थमें प्रवेश न करके वह अर्थ सामने रखना चाहते हैं जो प्रायः सर्वसम्मत है। पहिले विशेष्य अर्थात् 'राज' को लीजिये। 'राज उस राजनीतिक समुदायको कहते हैं जिसके अङ्ग* किसी एक ऐसे अधिकारीके अधीन हों जिसकी आज्ञाएँ उनमें से अधिकांश अनायास माना करते हों।'

'राज' शब्दका अर्थ

इस परिभाषामें कई महत्त्वपूर्ण शब्द हैं जिनका अर्थ भली भाँति समझ लेना चाहिये। जो समुदाय 'राजनीतिक' नहीं है वह राज नहीं कहला सकता। किसी धार्म्मिक सम्प्रदायमें चाहे एक करोड़ उपासक हों पर वह राज नहीं कहा जायगा। सब लोगोंका एक अधिकारीके अधीन होना आवश्यक है चाहे वह अधिकारी एक व्यक्ति हो या बहुतसे व्यक्तियोंका समूह। यह भी आवश्यक है कि अधिकांश मनुष्य उसकी आज्ञा मानते हों। 'अधिकांश' इस लिये कहा गया कि प्रत्येक समुदायमें कुछ पागल, चोर, जुआरी (और कभी कभी साधु महात्मा) होते हैं जो अवज्ञा करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त, कभी कभी कोई ऐसा राजनीतिक दल भी हो सकता है जो स्थापित सरकारकी अवज्ञा कर रहा हो। 'अनायास' शब्द भी ध्यान देने योग्य है। कभी कभी ऐसा हो सकता है कि कोई देशी या विदेशी किसी समुदायके लोगोंको पशुबलका प्रयोग करके दबा ले और उनसे अपनी

*जिन लोगोंके एकत्र होनेसे कोई समुदाय बनता है वह उसके 'अंग' कहलाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छाके अनुसार काम कराये। ऐसा समुदाय राज नहीं कहा जा सकता। हां यदि सब लोग उस अधिकारीके अधीन रहना हृदयसे स्वीकार कर लें या कमसे कम बिना बलप्रयोगके ही उसकी बात मान लिया करें तो वह समुदाय 'राज' हो जायगा।

'राज्य' का अर्थ

यहांपर यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दीमें जिस 'राज्य' शब्दका बहुधा प्रयोग किया जाता है उसके और 'राज'के अर्थमें भेद है। राज्य शब्द तीन अर्थोंमें प्रयुक्त हो सकता है। (क) जो भूभाग किसी राजके अधीन हो (ख) जो भूभाग किसी नरेशके अधीन हो (ग) जितने दिनों तक कोई नरेश शासन करे। इस पुस्तकमें यह शब्द बराबर पहिले अर्थमें ही प्रयुक्त होगा। भारतमें अधिकांश राजोंके अधिकारी नरेश ही होते आये हैं इसलिये प्रायः (क) और (ख) में कम अन्तर प्रतीत होता है पर अन्य देशोंको वर्तमान स्थिति देखकर अर्थ-भेद समझ लेना अच्छा है। यदि किसी राज्यके पैतृक प्रधान अधिकारीकी ओर संकेत करना होगा तो हम 'राजा' शब्दके स्थानमें नरेशका प्रयोग करेंगे।

'प्रभुत्व'का अर्थ

अब प्रधान शब्द 'राज' की परिभाषा तो हो चुकी, उसके विशेषणोंको देखना है। 'स्वाधीन'के अर्थपर विचार करनेके पहिले हमको 'प्रभु' और 'प्रभुत्व'के अर्थको समझ लेना चाहिये। यद्यपि इस विषयमें अनेक मत-भेद हैं कि राजके कर्तव्य क्या क्या हो सकते हैं, पर गोल शब्दोंमें इतना सब मानते हैं कि राजको चाहिये कि समुदायकी सर्वप्रकारेण रक्षा करे और उसकी उत्तरोत्तर उन्नति करे। इस कर्तव्यके पालनके लिये राजको समय समयपर नाना प्रकारके साधनोंसे काम लेना पड़ेगा। इन सब साधनोंसे काम लेनेके अधिकारको 'प्रभुत्व'* कहते हैं। जिस राजको पूर्ण प्रभुत्व

* Sovereignty.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त है वह अपने समुदायके हितके लिये जब जो चाहेगा वह करेगा। वह अपने राज्यमें चाहे जैसे विधान बनाये, चाहे जैसे कर लगाये, राज्य के बाहर चाहे जिससे युद्ध छेड़ दे, युद्धके अन्तमें चाहे जैसी सन्धि करे। तात्पर्य यह है कि वह किसी दूसरे राज(या समुदाय) की बात माननेके लिये बाध्य नहीं है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जापान, अफगानिस्तान, आदि इस प्रकारके राजोंके उदाहरण हैं। ऐसे राजोंको पूर्णप्रभु, स्वाधीन या स्वतंत्र राज * कहते हैं।

'स्वतंत्र'का अर्थ

ऐसे भी राज हैं जिनको पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त नहीं है। वह कई काम तो अपनी इच्छाके अनुसार कर सकते हैं पर अन्य बातोंमें उनको किसी दूसरे राजकी इच्छाके अनुकूल चलना पड़ता है। भारतके देशी राजोंको ही लीजिये। इनमें बड़ेसे बड़ा राज भी न तो किसीसे युद्ध कर सकता है न सन्धि। उसे ब्रिटिश राजका मुँह ताकना पड़ता है। हां, भीतरी शासन—जैसे शिक्षा, लगान, न्याय, इत्यादि—में इनको पूर्ण अधिकार है, यद्यपि शासनका रूप परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ऐसे राजोंको अर्द्ध-प्रभु † या अंशप्रभु ‡ कहते हैं। कोई कोई इनको अर्द्ध-स्वतंत्र § कहते हैं पर विधानशास्त्र के आचार्य्योंकी रायमें यह संज्ञा ठीक नहीं है, 'स्वांतन्त्र्य अविभाज्य है' +।

'अंशप्रभु'का अर्थ

जो कुछ ऊपर कहा गया है उससे विदित है कि राजके प्रभुत्वका आश्रय या अधिष्ठान सारा समुदाय है। परन्तु यह असम्भव है कि प्रत्येक अवसरपर सारा समुदाय सब काम करे। समुदायकी ओरसे अर्थात् उसके नामसे कुछ लोग काम करते हैं। साधारण बोलचालमें इनको ही (चाहे यह कोई एक व्यक्ति या नरेश हो या

'दृश्यप्रभु'का अर्थ

*Independent States † Semi-Sovereign ‡ Part-Sovereign § Semi-Independent. + Independence is indivisible

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यक्तिसमूह अर्थात् पार्लमेण्ट हो) राजका प्रभु कहते हैं। इस सम्बन्धमें राजनीति शास्त्रमें 'दृष्टप्रभु' * (नामिनल साव्हरन) शब्दका प्रयोग होता है।

स्वतंत्र राजोंकी स्वेच्छाचारितामें रुकावटें

हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि स्वतंत्र राज पूर्णतया स्वेच्छाचारी होते हैं। उनको कुछ तो अपने अपने समुदायके अङ्गोंके नैतिक, आर्थिक और धार्मिक विचारोंका लिहाज़ करना पड़ता है, कुछ अन्य राजोंके बला-बलको देखना पड़ता है और कुछ सभ्य जगत्के लोकापवादसे भी डरते रहना पड़ता है। स्वाधीनताका अर्थ यही है कि किसी परराज-विशेषकी आज्ञाए नित्यमान्य न हों।

पात्रताके लिये आवश्यक अवान्तर गुण

उपर्युक्त परिभाषाओंसे यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि स्वतंत्र राज किसे कहते हैं। पर केवल स्वतंत्र राज होना ही पर्य्याप्त नहीं है। अन्तारा़ष्ट्रिय विधानकी पात्रताके लिये कुछ अवान्तर गुण भी होने चाहिये। पहिले गुणका नाम सभ्यता है। सभ्यताकी परिभाषा बहुत कठिन है। भारतीय, चीनी, अंग्रेज अपने अपनेको सभी सभ्य समझते हैं, सभी अपनी सभ्यताको सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। इनके आचार-विचारमें बहुत अन्तर है। पर आज कल पाश्चात्य देशोंकी बन आयी है इसलिये सभ्यताका अर्थ पाश्चात्य ढङ्गकी सभ्यता हो रहा है। यह आवश्यक है कि जो राज अन्ताराष्ट्रिय विधानसे लाभ उठाना चाहे वह न्यूनाधिक सीमा तक पाश्चात्य ढंगपर चले। यह दशा सदैव नहीं रहेगी। पाश्चात्य सभ्यतामें घुन लग चुका है और अब स्यात् शीघ्र ही उसका अग्नि-संस्कार होगा।

---

* Nominal Sovereign.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा अवान्तर गुण राज्य है। यह सम्भव है कि कुछ अत्यन्त सभ्य मनुष्योंका समुदाय, जो किसी एक अधिकारीका अनन्य आज्ञाकारी हो, ख़ानाबदोशोंकी भांति एक स्थानसे दूसरे स्थानपर घूमा करता हो। ऐसा समुदाय विधानका पात्र नहीं माना जा सकता। पात्रताके लिये किसी निश्चित भूभागपर बसा रहना आवश्यक है। तीसरा गुण यह है कि जो पात्र बनना चाहे वह स्वयं अन्ताराष्ट्रिय विधानके नियमोंका पालन करे। चौथा गुण स्थायित्व है। यह तो किसी राज या अन्य मानव संस्थाके लिये नहीं कहा जा सकता कि वह चिरकाल तक रहेगी परन्तु जो राज पात्र बनता है उसकी परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये जिससे कि उसके स्थायित्वकी आशा की जा सके। यह सम्भव है कि किसी गांवके निवासी परम सभ्य हों और वह स्वाधीन भी हों पर यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह गांव बहुत दिन तक स्वाधीन रह सकेगा। वह युद्ध या किसी अन्य प्रकारसे अवश्य किसी बड़े राजका टुकड़ा हो जायगा, अतः वह अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र नहीं हो सकता। इन सब बातोंपर विचार करके हॉलने पात्रके यह लक्षण बतलाये हैं—यदि किसी समुदायका उस भूमिपरके, जिसपर वह बसा हुआ है, सब मनुष्यों और वस्तुओंपर समष्टिरूपसे निर्विवाद और अनन्य अधिकार है, यदि वह अपने बाहरी व्यवहारमें किसी अन्य समुदायकी इच्छाके अधीन नहीं है और अन्ताराष्ट्रिय विधानके नियमोंका पालन करता है और यदि उसके अस्तित्वके स्थायी होनेकी आशा की जासकती है, तो वह अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र है। *

* The simple facts that a community in its collective capacity exercises undisputed and exclusive control over all persons and things within the terri-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तारा्ष्ट्रिय विधान इस बातपर दृष्टि नहीं डालता कि कोई समुदाय विशेष किस प्रकार पात्र हुआ। चाहे वह विद्रोह करके पृथक् हो गया हो, चाहे आपसके किसी प्रकारके समझौतेके कारण किसी बड़े राजसे पृथक् कर दिया गया हो, उसमें जब उपर्युक्त लक्षण होंगे तभी पात्र मान लिया जायगा।❀

अन्तारा्ष्ट्रिय विधान उन राजोंके भीतरी प्रबन्धकी ओर दृष्टि नहीं डालता जो उसके पात्र हैं। चाहे उनमें किसी एक नरेशके हाथमें सारा अधिकार हो, चाहे नरेश और पार्ले-मेण्टमें अधिकार बंटे हों, चाहे नरेश हो ही न, अन्तारा्ष्ट्रिय विधान केवल इतना चाहता है कि कोई एक ऐसा अधिकार-केन्द्र हो जिसकी परराज नीतिको सारा राज मानता हो। फिर भी राजोंके मुख्य भेदोंको समझ लेना आवश्यक है। राजोंके दो मुख्य वर्ग हैं-

राजोंके दो मुख्य वर्ग, निरवयव और सावयव राज

---

tory occupied by it, that it regulates its external conduct independently of the will of any other community and in conformity with the dictates of international law, and finally that it gives reason to expect that its existence will be permanent, are sufficient to render it a person in law.

International Law by Hall—Chapter I.

❀"International Law takes no cognizance of matters anterior to the acquisition of those marks (the marks of a state) and is, consequently, indifferent to the means which a community may use to form itself into a State"—Hall.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरवयव और सावयव*। जैसा कि नामसे ही प्रकट होता है, निरवयव राज वह हैं जो अकेले हैं अर्थात् जिनके टुकड़े नहीं हो सकते, जैसे फ्रांस, जापान, स्याम, नैपाल, अफ़ग़ानिस्तान। इन राजोंको चाहे जितने प्रान्तोंमें बाँट दें, पर यह प्रान्त स्वतन्त्र नहीं होते और इनको किसी दृष्टिसे राज नहीं कह सकते। सावयव राज वह हैं जिनके कई अवयव हैं अर्थात् जो कई राजोंके मिलनेसे बने हैं। यह अवयव प्रान्त नहीं वरन् पृथक् पृथक् राज हैं जो किसी कारणसे मिलकर एक हो गये हैं। ब्रिटेन, अमेरिकाका संयुक्त राज, जर्मनी, सावयव राजोंके उदाहरण हैं।

सावयव राजोंके दो भेद-पूर्ण संयुक्त और अपूर्ण संयुक्त राज

सावयव राजोंके भी दो प्रधान भेद होते हैं, पूर्ण-संयुक्त और अपूर्ण-संयुक्त†। पूर्णसंयुक्त राज वह हैं जिनके टुकड़े इस प्रकार मिल गये हैं कि बाह्य नीतिकी दृष्टिसे उनकी पृथक् सत्ताका लोप हो गया है। ब्रिटेनको लीजिये। इसके चार प्रधान भाग हैं, इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड, आयरलैण्ड, और वेल्स। इनके अतिरिक्त उपनिवेश आदि भी हैं। पर बाह्य नीतिमें इन सबको मिला कर जो संयुक्त राज बना है उसीके नामसे सब काम होता है, पृथक् पृथक् टुकड़ोंके नामसे नहीं। अकेले इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड, वेल्स आदि अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र नहीं हैं, हां इनके मेलसे जो राज बन गया है, वह पात्र है। अपूर्ण संयुक्त राजोंमें यह बात नहीं होती। उनमें संयुक्त राज तो पात्र होता ही है, अवयव भा पात्र होते हैं। कई काम मिलकर होते हैं, कई काम अवयव पृथक् पृथक् कर लेते हैं। भारतमें मराठोंके इतिहाससे इसके बड़े अच्छे उदाहरण मिलते हैं। महा राष्ट्रसंघ

---

*Unitary States and Composite States.

†Perfect Unions and Imperfect Unions.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक अपूर्णसंयुक्त राज था। कई काम तो पेशवा सारे महाराष्ट्रकी ओरसे करते थे पर ग्वालियर, इन्दौर, बड़ौदा, नागपुर, आदि पृथक् पृथक् भी युद्ध और सन्धि कर सकते थे। इन अपूर्णसंयुक्त राजोंमें अवयवोंकी अन्ताराष्ट्रिय सत्ता बनी रहती है।

पूर्णसंयुक्त राजोंके तीन प्रधान भेद होते हैं, अलिङ्ग संयुक्त राज, व्यक्तिशेष संयुक्त राज और लिङ्गशेष संयुक्त राज *। यदि दो या अधिक राजोंका इस प्रकार संयोग हो कि उनका पृथक् अस्तित्व पूर्णतया मिट जाय, उनकी पृथक् पृथक् राजसत्ताका कोई लिङ्ग ही न रह जाय, तो संयोगसे जो राज बनता है उसे अलिङ्ग संयुक्त राज कहते हैं। ब्रिटेन इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। पहिले इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड पृथक् पृथक् राज थे, दोनोंके पृथक् पृथक् नरेश थे, पृथक् पृथक् पार्लमेण्टें थीं। अब एक राज, एक नरेश, एक पार्लमेण्ट है। भीतर बाहर एक शासन, एक सर्कारकी आज्ञा सब मानते हैं।

पूर्णसंयुक्त राजों के तीन भेद—अलिंग संयुक्त, व्यक्तिशेष संयुक्त और लिंगशेष संयुक्त राज

व्यक्तिशेष उन संयुक्त राजोंको कहते है जिनमें परराज विषयक बातोंमें तो अवयवोंको कोई अधिकार नहीं होता परन्तु आभ्यन्तर शासनमें वह स्वतन्त्र होते हैं और उनका पृथक् व्यक्तित्व बना रहता है। विनष्ट आस्ट्रिया-हंगरीका राज इसका उत्तम उदाहरण था। आस्ट्रिया और हंगरीकी पृथक् पृथक् पार्लमेण्टें थीं जो भीतरी शासनके सम्बन्धमें यथेच्छ नियम बनाती थीं। पर नरेश दोनोंका एक था, सेना एक थी, परराजनीति एक थी। बाहरी राजोंसे व्यवहार करते समय आस्ट्रिया-हंगरी एक राज था पर भीतरी शासनकी दृष्टिसे दो स्वतन्त्र राज थे। दोनों भागोंको अपनी स्वतन्त्रताका यहां तक ध्यान था कि सम्राटको हंगरी देशमें हंगरीकी भाषा मेग्यारमें बात

*Incorporate Unions, Real Unions, Federal Unions

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चीत करनी पड़ती थी। लिङ्गशेष राज इन दोनोंसे भिन्न होते हैं। उनमें परराजनीति और बाह्य व्यवहार तो संयुक्त राजके हाथमें होता ही है, आभ्यन्तर शासनका बहुत बड़ा अंश भी उसीके हाथमें होता है। इसके दो उदाहरण स्वीजरलैण्ड और अमेरिकाके संयुक्त राज हैं। संयुक्तराजके अवयवभूत ४९ राज हैं। यह राज अपने अपने भीतरी शासनके सम्बन्धमें बहुत कुछ स्वतन्त्र हैं परन्तु पूर्णतया नहीं। भीतरी शासनके सम्बन्धमें भी बहुत से नियम और विधान संयुक्त राजकी सर्कार ही बनाती है। इन राजोंकी परिस्थिति अलिङ्ग, जिनमें अवयवोंका अस्तित्व मिट जाता है, और व्यक्तिशेष, जिनमें उनका अस्तित्व पूर्णतया बना रहता है, के बीचमें है क्योंकि अवयवोंके राजत्वके लक्षण रहते तो हैं परन्तु बहुत संकुचित रूपमें।

अपूर्ण संयुक्त राजोंके भी दो भेद माने जाते हैं—आकस्मिक और संघ *। जैसा कि नामसे ही प्रतीत होता है, आकस्मिक संयोग वास्तविक संयोग नहीं है। कभी कभी एक ही व्यक्ति दो भिन्न भिन्न देशोंका नरेश हो जाता है। ऐसी दशामें उन दोनों देशोंमें आकस्मिक संयोग माना जाता है। पर सचमुच यह कोई संयोग नहीं है। दोनों देश पृथक् हैं और उनकी परराज-नीति भी पृथक् हो सकती है। कुछ कालके लिये एक ही नरेश दोनोंपर शासन कर रहा है पर यह कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं है। संवत् १७७१ से १८९४ तक इंग्लैण्डका बादशाह हैनोवरका इलेक्टर भी था पर दोनों देशोंमें सिवाय इस इतनी सी बातके और कोई एकता न थी। संघका उदाहरण हम पहिले दे चुके हैं। इस समय कोई अच्छा उदाहरण है भी नहीं। भारतमें महाराष्ट्र संघके पहिले भी कई बार संघोंकी सृष्टि हो चुकी है। संघोंका रूप कुछ

अपूर्ण संयुक्त राजोंके दो भेद-आकस्मिक और संघ

* Personal Unions, Confederations.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिङ्गशेष राजोंसे मिलता है पर दोनोंमें कई बड़े भेद हैं। लिङ्गशेष राजोंके अवयव आंशिक आभ्यन्तर प्रभुत्व रखते हैं। परन्तु बाह्य बातोंमें वह कोई नीति निर्धारित नहीं कर सकते। संघके अवयव आभ्यन्तर बातोंमें तो पूर्णतया स्वाधीन होते ही हैं, बाह्य व्यवहारमें भी उनका प्रभुत्व न्यूनाधिक रहता है, या तो कुछ बाह्य व्यवहार पृथक् पृथक् और कुछ सम्पूर्ण संघकी ओरसे होते हैं या यह कि किसी कार्य्य विशेषके लिये कुछ काल-के लिये संघ बना लिया जाता है। उस कार्य्यको छोड़कर संघके अवयव जो चाहें और जैसे चाहें करें। युद्धके दिनोंमें ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, आदिका एक संघ बना हुआ था।

यह तो प्रधान भेद हुए पर और भी कई प्रकारके संयुक्त राज हो सकते हैं। सुविधाके लिये यह भेद निम्न-लिखित वृक्षमें दिखला दिये गये है।

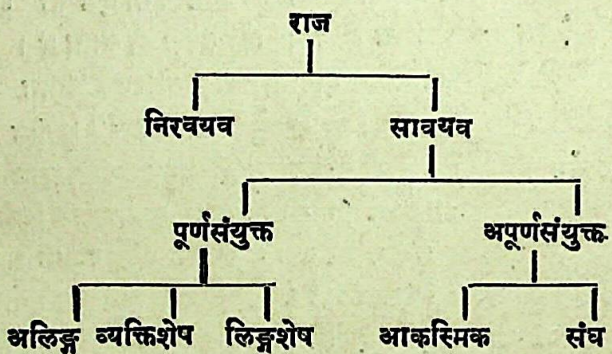

इस प्रकार भेद भली भांति स्मरण रक्खे जा सकते हैं।

हम अल्पप्रभु राजोंकी परिभाषा पहिले ही कर चुके हैं। हमने बतलाया है कि इन राजोंको अन्ताराष्ट्रिय विधानका पूर्ण पात्र नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान सकते, क्योंकि यह अपने बाह्य व्यवहारमें पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होते। अल्पप्रभु राजोंको दो कोटियोंमें विभक्त कर सकते हैं। पहिली कोटिमें वह राज हैं जिनका प्रभुत्व अंशतः किसी अल्पप्रभुराज और परराजके हाथमें चला गया है अर्थात् जो किसी अन्ताराष्ट्रिय परराजके अधीन हैं और उसकी इच्छाके अनुसार विधान,दो प्रकार-चलनेके लिये विवश हैं। दूसरी कोटिमें वह राज के अल्पप्रभु राज हैं जो पृथक् पृथक् तो पूर्णप्रभु हैं पर किसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये एक संघके अवयव बन गये हैं। अब बहुत सी बातोंमें इन सबके नामसे संघ ही बात करेगा, अतः इनके प्रभुत्वमें कमी आ गयी। पर कई विषयोंमें यह अवयव स्वतंत्र हैं। उन विषयोंके सम्बन्धमें यह परराजोंसे यथेच्छ व्यवहार कर सकते हैं और संघ कुछ नहीं बोल सकता। इस दृष्टिसे संघ भी अल्पप्रभु है। आजकल इस प्रकारका कोई अच्छा उदाहरण नहीं है। भारतमें, जैसा कि हम पहिले भी लिख चुके हैं, महाराष्ट्र संघ अच्छा उदाहरण था। गत महासमरके पहले जर्मन साम्राज्य भी कुछ इसी प्रकारका उदाहरण था। सन्धि और युद्ध तो जर्मन राजसंघ (या साम्राज्य) की ओरसे ही निश्चित होते थे पर कुछ अन्य बातोंमें संघके अवयव अर्थात् प्रशा, बवेरिया, सैक्सनी, इत्यादि यूरोपके अन्य राजोंसे पृथक् पृथक् भी सम्बन्ध कर सकते थे। कभी कभी एक ही यूरोपीय राजके यहां संघके भी राजदूत जाते थे और अवयवोंके भी राजदूत जाते थे।

इतिहास बतलाता है कि ऐसे संघ स्थायी नहीं होते। कुछ दिनोंमें इनका लोप हो जाता है। या तो संघका बल बढ़ता जाता है और उसके अवयवोंका बल घटता जाता है यहां तक कि कुछ काल पा कर अवयवोंका पृथक् राजत्व नाममात्रको ही रह जाता है और संघ वस्तुतः एक लिङ्गशेष संयुक्त राज बन जाता है या संघ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टूट जाता है और उसका प्रत्येक अवयव एक निरवयव स्वतंत्र राज बन जाता है। जर्मनीमें धीरे धीरे पहिली परिस्थिति होती जा रही थी। राजसंघ अर्थात् साम्राज्यकी शक्ति तो बढ़ती जाती थी और पृथक् राजोंकी शक्ति घटती जाती थी। सम्भवतः कुछ कालमें उनकी वही परिस्थिति हो जाती जो इस समय अमेरिकाके संयुक्त राजोंकी है। दूसरी परिस्थिति भारतमें महाराष्ट्र संघकी हुई। संघ टूट गया और शिन्दे, होल्कर, गायकवाड़, भोंसला, आदि सभी स्वतंत्र हो गये।

उन अंशप्रभु राजोंकी, जिनका प्रभुत्व अंशतः किसी पर-राजके हाथमें चला गया है, समस्या भी अत्यन्त टेढ़ी है। इनके दो भेद किये जाते हैं, एक तो वह राज जो किसी पर-राजकी रक्षामें हैं, दूसरे वह जो किसी परराजके आधिपत्यमें हैं। दोनोंमें अन्तर यह बतलाया जाता है कि जो राज पहिले स्वतंत्र थे पर अब किसी कारणसे अपना कुछ प्रभुत्व खो बैठे हैं वह तो रक्षितराज हैं और जो राज किसी बड़े राजके अंश हैं पर किसी न किसी प्रकार इतने प्रभावशाली हो गये हैं कि उनको कुछ प्रभुत्व प्राप्त हो गया है वह आधिपत्यमें हैं। पर यह अन्तर नाम मात्रका ही है। रक्षक और अधिपतिके ठीक ठीक अधिकार क्या हैं यह कोई नहीं कह सकता। होना यह चाहिये कि रक्षकके अधिकार थोड़े और अधिपतिके अधिक हों पर कभी कभी इसके विरुद्ध भी होता है। सर्बिया, बल्गेरिया, रूमानिया तुर्क साम्राज्यके अङ्ग थे पर धीरे धीरे इनकी शक्ति इतनी बढ़ गयी थी कि इनको एक प्रकारकी अन्तारराष्ट्रिय सत्ता प्राप्त हो गयी, यह एक प्रकारके राज हो गये। उस समय सुल्तान इनके अधिपति थे। होना यह चाहिये था कि यह पूर्णतया सुल्तानकी इच्छाके अनुकूल चलते पर ऐसा न होता था। बल्गेरिया बिना उनसे पूछे

आधिपत्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध और सन्धि करता था, उसने संवत् १९४२ में उनकी अवज्ञा करके पूर्वीय रूमीलियाको अपनेमें मिला लिया और १९४४ में बिना उनकी स्वीकृतिके एक नया नरेश चुन लिया। यही गति सर्बिया आदिकी भी थी। अन्तमें १९५५ में वह स्वतंत्र हो गया।

एक ओर तो अधिपतिका अधिकार इतना क्षीण हो सकता है, दूसरी ओर रक्षकका अधिकार इतना बढ़ सकता है कि रक्षित राजका प्रभुत्व लुप्तप्राय हो जाता है। संवत् १९७१ के पहिले मिश्र-की विचित्र परिस्थिति थी। वह देश सुल्तानके आधिपत्यमें था पर ब्रिटिश सर्कारने उसे इस तरह दाब लिया था कि सारा शासन अंग्रेजोंके ही हाथमें था। १९७१ में जब तुर्कोंने महासमरमें जर्मनीका पक्ष लिया तो मिश्र ब्रिटिश संरक्षणमें

संरक्षण

ले लिया गया पर शासनकी दशा वही रही। अब जाकर वह संरक्षणसे मुक्त कर दिया गया है। संरक्षण कालमें परराज-नीतिकी कौन कहे, आभ्यन्तर प्रबन्ध भी सारा ही अंग्रेजोंके हाथमें था। प्रत्येक विभागमें अंग्रेज अफसर भरे थे। नामको मिश्री मंत्री होते थे पर उनके साथ अंग्रेज सहा-यक और परामर्शदाता लगे रहते थे। यही दशा १९६९ से मरक्कोमें है। उस साल वह फ्रांसके संरक्षणमें आया, तबसे रक्षक उसका भक्षक बना हुआ है।

संरक्षण एक कर्णप्रिय शब्द है पर उसका अर्थ—राजनीतिक अर्थ—उतना मधुर नहीं है। जब कोई प्रबल राज किसी दुर्बल राजको हड़प लेना चाहता है पर किसी कारणसे ऐसा एकाएक करना नीतिसङ्गत नहीं समझता तो वह अपना संरक्षण स्थापित करता है। रक्षाके बहाने धीरे धीरे सारा अधिकार अपने हाथमें आ जाता है फिर अवसर पाकर उसका नाम भी मिटा दिया जाता है। संवत् १९५२ तक कोरिया चीनके संरक्षणमें था। १९५२ में चीन और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जापानमें शिमोनोसेकिकी सन्धि हुई। इसकी एक धाराके अनुसार कोरिया स्वतंत्र राज मान लिया गया। १९६२ में रूस-जापान युद्धके पीछे जापानने उसे अपने संरक्षणमें लिया और गला घोंटते घोंटते १९६७ में उसे अपने साम्राज्यमें ही मिला लिया।

ऊपर जिन दो प्रकारके अल्पप्रभु राजोंका वर्णन हुआ है उनकी परिस्थिति तो सहज ही समझमें आ जाती है। पर कुछ राजोंकी परिस्थिति विलक्षण होती है। यह सब जानते हैं कि अमुक राज पूर्णप्रभु नहीं है वरन् अमुक राजके दबावमें है पर ऐसा कोई सन्धि-पत्र नहीं है जो इस बातको स्पष्ट करता हो। इसका बहुत अच्छा उदाहरण क्यूबामें मिलता है। १९५५ तक यह द्वीप स्पेनके अधीन था। उस साल यह स्पेनके हाथसे निकालकर स्वतंत्र कर दिया गया। चार वर्ष तक उसमें अमेरिकाके संयुक्तराजके, जिसने उसे स्वतंत्र कराया था, कुछ सैनिक रखे हुए थे। १९५९ में उससे और संयुक्तराजसे एक सन्धि हुई। उसमें यह बात स्पष्ट-तया लिख दी गयी कि क्यूबा स्वतंत्र है पर संयुक्तराजको यह अधिकार दिया गया कि यदि क्यूबाकी स्वाधीनतापर कोई आपत्ति पड़े या क्यूबाकी सर्कार जानमालकी रक्षा न कर सके तो संयुक्त-राज हस्तक्षेप करे। १९६३ में क्यूबामें एक विद्रोह हुआ। तत्काल संयुक्तराजके सैनिकोंने जाकर शान्ति स्थापित की और जब तक फिर एक दृढ़ सर्कार सङ्गठित न हो गयी तब तक वहां एक अमेरिकन गवर्नर शासनकी देखरेख करता रहा। इस वर्णनसे यह तो निर्विवाद है कि क्यूबा संयुक्तराजके दबावमें है पर इस दबावका कोई लिखित प्रमाण नहीं है। लेखोंके अनुसार क्यूबा 'स्वतंत्र' राज है। ऐसे और भी उदाहरण हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि एक राज दूसरेपर किसी न किसी प्रकार दबाव तो बैठा लेता है पर जो राज

अनुगमन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दबाया जाता है उसकी लाज बनाये रखनेके लिये यह बात लेख-बद्ध नहीं की जाती। ऐसे दबे राजोंको न तो आधिपत्यगत कह सकते हैं न रक्षित। हम इनको सुविधाके लिये 'अनुगामी राज' की संज्ञा देते हैं। लारेंस इनको मुवक्किल राज * कहते हैं। जिस राजका अनुगमन किया जाता है उसको 'सहायक राज' कह सकते हैं। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि यह भी रक्षाका रूपान्तर मात्र है।

यूरोपीय युद्धके पश्चात् एक नये प्रकारके अल्पप्रभु राजकी सृष्टि की गयी है। हम ऊपर राष्ट्र-संघका कथन कर आये हैं।

आदेश

उसने निश्चित किया कि पृथ्वीके कुछ भाग ऐसे हैं जिनकी उन्नतिके लिये यूरोपके भिन्न भिन्न सर्कारोंको दायी बनाना चाहिये। इन दायी सर्कारोंको उन प्रदेशोंकी इस दृष्टिसे उन्नति करनी होगी कि कुछ कालमें वहांके निवासी पूर्ण स्वायत्तशासनके योग्य हो जायं, तब तक राष्ट्रसंघ इस बातकी बराबर जांच करता रहेगा कि यह काम ईमानदारीसे किया जा रहा है या नहीं और यदि वह असन्तोषजनक हुआ तो दायित्व ले लियां जायगा। राष्ट्रसंघके दिये हुए इस प्रकारके अधिकारको 'आदेश' या 'शासनादेश, † कहते हैं। जिस राजको आदेश मिलता है उसे आदेशप्राप्त या 'सादेश राज' ‡ कहते हैं। जिस भूभागके ऊपर आदेश मिलता है उसे आदिष्ट कहते हैं। इसके भी कई उदाहरण हैं। पश्चिमी एशियामें इराक़ और शाम दो अरब राजोंकी सृष्टि हुई है। दोनों अल्पप्रभु हैं। इराक़का आदेश अंग्रेज़ोंको और शामका फ्रांस वालोंको दिया गया है। अफ्रीकाका बहुतसा भाग जो पहिले जर्मन साम्राज्यमें था अब अंग्रेज़ोंके आदेशमें है।

---

* Client States (क्लाएंट स्टेट्स्)

†Mandate (मैण्डेट) ‡ Mandatory. (मैण्डेटरी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदेशका सिद्धान्त बहुत अच्छा है। यदि राष्ट्रसंघ सबल और ईमानदार हो तो आदेशोंसे लाभ हो सकता है। अशिक्षित और असभ्य देश किसी सभ्य देशके निरीक्षणमें रख दिये जायं। ज्यों ज्यों उनके निवासी योग्य होते जायं त्यों त्यों उनके अधिकारोंकी वृद्धि होती जाय और शीघ्रसे शीघ्र उनको पूर्ण स्वातन्त्र्य दे दिया जाय। राष्ट्रसंघमें सभी राज्योंके प्रतिनिधि होंगे इसलिये किसीके साथ पक्षपात न होगा और जो सादेश राज अपना काम बेईमानीसे करेगा उससे यह काम छीन लिया जायगा। पर इस समय ऐसा नहीं हो रहा है। राष्ट्रसंघमें इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली और जापान ऐसे स्वार्थियोंका प्राधान्य है। आदेशोंका बहाना है। जिन देशोंपर आदेश प्राप्त है उनको सचमुच योग्य और उन्नत बनानेका कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। केवल अपना स्वार्थ सिद्ध किया जा रहा है। वस्तुतः तत्तद्देश अपने अपने साम्राज्यमें मिला लिये गये हैं पर संसारको धोखा देनेके लिये आदेशोंका ढोंग रचा गया है। शाम और इराक़की जनता अपना काम संभाल सकती है पर उन देशोंमें तेल तथा अन्य खनिज सम्पत्ति है। उसके लालचके मारे अंग्रेज़ और फ्रांसीसी वहांसे हटना नहीं चाहते। जो सभ्य है उसे ज़बरदस्ती न जाने कौनसी सभ्यता सिखलायी जायगी। निःसन्देह अफ्रीका वालोंको सच्ची शिक्षा देनेकी आवश्यकता है पर सादेशने जो मार्ग पकड़ा है उससे तो बेचारे हब्शी दो हज़ार वर्षमें भी स्वायत्तशासनके योग्य न होंगे। उनके देशका सार चूस लिया जायगा, उनको मद्य पान करना और बहुमूल्य अंग्रेज़ी विलास-सामग्रीका प्रयोग करना सिखला दिया जायगा और बस। इसका अर्थ यह होगा कि वह यूरोपके राजनीतिक दास तो हैं ही नैतिक और आर्थिक दास भी हो जायंगे। यूरोपीय राष्ट्रोंका स्वार्थ उनको स्वाधीन नहीं देखना चाहता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस स्थानपर हमको भारतके देशी राजोंकी परिस्थितिपर भी विचार कर लेना है। ये राज तीन कोटियोंमें विभक्त हो सकते हैं। सबसे नीचे वर्गमें वे राज हैं जिनकी सृष्टि अंग्रेज़ सर्कारने की है। या तो ये पहिले थे ही नहीं या अंग्रेज़ सर्कारने इनको छीन कर फिर कुछ विशेष शर्तोंपर लौटा दिया या इनकी गिनती पहिले ज़मीनदारियोंमें थी, फिर अंग्रेज़ सर्कारने इन्हें राज बनाया या इनके प्रथम नरेश डाकू थे जिनको अंग्रेज़ सर्कारने कुछ भू-भागका नरेश बनाकर शान्त किया या किसी प्रबल शत्रुके गालसे निकाल कर पुनः स्थापित किया। इनके साथ जो शर्तें हुई हैं वे जिन समय-पत्रोंमें लिखी हैं उनको 'सनद' कहते हैं। ऐसे राजोंको 'सनदी राज़'* कहते हैं। मैसूर, बनारस, पन्ना, सरीला, मैहर इत्यादि सनदी राज हैं।

भारतके देशी राज

दूसरे वर्गमें वे राज हैं जिनके साथ अंग्रेज़ सर्कारकी सन्धियां हुई हैं पर इन सन्धियोंमें जहां यह लिखा है कि राजके नरेश अपने राजके पूर्ण स्वामी होंगे और ब्रिटिश सर्कार उनके आभ्यन्तर शासनमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न कर सकेगी वहीं यह भी लिखा है कि ये राज ब्रिटिश सर्कारके 'संरक्षण' में होंगे। उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, रीवां, त्रावणकोर इत्यादि इसी प्रकारके राज हैं।

तीसरे वर्गमें वे राज हैं जिनकी सन्धियोंमें यह लिखा है कि राज और ब्रिटिश सर्कारमें 'मैत्री और सहकारिता'† का सम्बन्ध है। इन सन्धियोंमें संरक्षणका शब्द नहीं आया है। सन्धियोंका ढंग भी प्रायः वैसा ही है जैसा कि आजकल दो बराबरके राजोंमें होता है। यह उनमें निःसन्देह लिखा है कि बिना ब्रिटिश सर्कारके परामर्शके ये राज किसी परराजसे कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते

*Sanad States † Friendship and Alliance.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु इसके साथ ही ब्रिटिश सर्कारके अधिकार भी कई बातोंमें परिमित कर दिये गये हैं। हैदराबाद, ग्वालियर, बड़ौदा इत्यादि इसी वर्गमें हैं।

अब यदि विचार करके देखा जाय तो कमसे कम पिछले दोनों वर्ग अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र हो सकते हैं। संवत् १८७० तक इनमेंसे कईको ब्रिटेन और फ्रांसकी सर्कारोंने पात्र माना भी था। संधिपत्रोंमें कईको स्वतन्त्र माना भी गया है। स्वतन्त्र न भी कहिये पर इनके राज्य-विस्तार, जन-संख्या, अधिकार, समृद्धि और सन्धियोंको देखते हुए इनको अल्पप्रभु माननेमें तो किसी प्रकारकी भी आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु ये राज दुर्बल हैं, इनमें ऐक्य नहीं है, इनके नरेशोंमें आत्माभिमान नहीं है और ये दास भारतके टुकड़े हैं इसीलिये अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र नहीं माने जाते। सर्कारने इस बातकी स्पष्ट घोषणा * कर दी है और इन्होंने इस पतित परिस्थितिको स्वीकार कर लिया है।

अभी तक हमने जितने प्रकारके पात्रोंका उल्लेख किया है वे चाहे अल्पप्रभु हों या पूर्णप्रभु पर उनका पात्रत्व स्थायी रहता है। अब हम एक ऐसे महत्वपूर्ण वर्गका उल्लेख करना चाहते हैं जिसका पात्रत्व स्थायी न होकर अल्प--कालीन होता है।

जब किसी विस्तृत राजका कोई अंश अपनी परिस्थितिसे असन्तुष्ट होकर स्वराज्यके लिए आन्दोलन करता है तो पहिले तो उससे परराजोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता इसलिये अन्ताराष्ट्रिय विधान उस की ओर द्रष्टि ही नहीं डालता। पर यदि आन्दोलन बल

---

*"The Principles of International Law have no bearing upon the relations existing between the British Government and the Native States under the Suzerainty of the Queen-Empress"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पकड़ता गया तो वह शीघ्र ही 'विद्रोह' का रूप धारण करता है। चाहे विद्रोह हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक परन्तु बिना विद्रोहके किसी समुदायको स्वराज्य मिल नहीं सकता। जब तक विद्रोहका क्षेत्र संकुचित रहता है तब तक तो परराज उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देते पर यदि उसका क्षेत्र बढ़ गया तो फिर उपेक्षाभावसे काम नहीं चल सकता। यदि देशका कोई बड़ा भाग विद्रोहियों-के कब्जेमें चला गया है तो वे उसमें मालगुजारी तथा अन्य कर उगाहते होंगे, उन्हींकी ओरसे पुलीस तथा न्यायका प्रबन्ध होगा, उनकी सेनाएं होंगी। जबतक विद्रोह छोटा था तबतक विद्रोही डाकू कहे जा सकते थे, पर अब उनको डाकू नहीं कह सकते, क्योंकि उन्होंने एक प्रकारका राज स्थापित कर लिया है। इसके साथही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि स्यात् वह राज जिसके विरुद्ध इन्होंने विद्रोह किया है इनको जीत ले। इसलिये इसके साथ वैसा वर्ताव नहीं किया जा सकता जैसा कि स्वाधीन राजोंके साथ किया जाता है। ऐसी अवस्थाओंमें एक मध्यम मार्गका अवल-म्बन होता है। इस विद्रोही सर्कारके साथ कोई परराज सन्धि नहीं करता, न इसके यहाँ कोई राजदूत भेजा जाता है। इसके अधिकारियोंके साथ जो पत्र-व्यवहार किया जाता है वह उस प्रकार-का होता है जैसा कि साधारण सज्जनोंके साथ किया जाता है। वह भी किसी परराजके यहां राजदूत नहीं भेज सकती। परन्तु उसको युद्ध-सम्बन्धी वे सब अधिकार मिल जाते हैं जो सभ्य समु-दायोंको अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार प्राप्त हैं। उसके सिपाहियों-के साथ सैनिकोंकी भांति बर्ताव किया जाता है, डाकुओंकी भांति नहीं। शस्त्र ढालने और मोल लेने, जीते हुए प्रदेशोंपर कब्जा करने, उनसे युद्ध और खाद्य सामग्री वसूल करने, तार, रेल, डाक आदिकी जांच-पड़ताल करने, जासूसोंको दण्ड देने, तटस्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परदेशियोंके जहाज़ोंकी तलाशी लेने इत्यादिके युद्ध-सम्बन्धी सब अधिकार उसको दे दिये जाते हैं। जिस भू-भागपर विद्रोही-का कब्ज़ा हो जाता है उससे जिन परराजोंका व्यापारादि सम्बन्ध होता है उनको बहुत शीघ्र यह निश्चय करना पड़ता है कि वे विद्रोहियोंके साथ कैसा बर्ताव करें। यदि वे देखते हैं कि विद्रोहके सफल होनेकी आशा है तो, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, विद्रो-हियोंको युद्ध-सम्बन्धी वे सब अधिकार (और कर्तव्य) दे दिये जाते हैं जो अन्य स्वतंत्र राजों अर्थात् अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्रोंको प्राप्त हैं। इस प्रकारके पात्रोंको राजातिरिक्त युद्धकारी सभ्य समुदाय कहते हैं। जब किसी राजक्रान्तिकारी समुदायके साथ दो एक परराज ऐसा बर्ताव करने लगते हैं तो विवश होकर उस राजको भी, जिसके विरुद्ध विद्रोह किया जाता है, ऐसा ही करना पड़ता है।

यह पात्रत्व स्वभावतः अल्पकालीन होता है। यदि विद्रोही हार गये तो फिर उनकी स्थापित की हुई सर्कारका अस्तित्व ही मिट जाता है। यदि उनकी जीत हुई तो फिर उनको पूर्ण पात्रत्व प्राप्त हो जायगा, क्योंकि वह एक पूर्णप्रभु राज स्थापित कर लेंगे। यदि उन्होंने अपने पुराने अधिपतिके संरक्षणमें एक अल्पप्रभु राज स्थापित कर लिया तो भी उनका पात्रत्व वैसा अनिश्चित और एकाङ्गी न रहेगा जैसा कि विद्रोहकालिक पात्रत्व था।

इतना और स्मरण रखना चाहिये कि यह युद्धकालिक पात्रत्व केवल 'सभ्य' क्रान्तिकारियोंको प्राप्त होता है। असभ्य मनुष्य अपनी स्वाधीनताके लिये प्रयास करनेपर विद्रोही और डकैत ही माने जाते हैं। सभ्य शब्दकी परिभाषा तो क्या हो सकती है, सिवाय इसके कि जो समुदाय न्यूनाधिक पाश्चात्य रंगमें रँगा है अर्थात् जो स्वराज्य संग्रामके समय और स्वराज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त करनेके पीछे पाश्चात्य जगत्के साथ पाश्चात्य ढंगका व्यवहार कर सकता है, वही सभ्य माना जाता है। अस्तु, इसीलिये प्रायः 'समुदाय' के पहिले 'सभ्य' जोड़कर इस प्रकारके अल्पकालीन आंशिक पात्रोंको 'राजातिरिक्त युद्धकारी सभ्य समुदाय'* कहते हैं।

व्यक्तियोंकी परिस्थिति

एक प्रश्न यह होता है कि व्यक्तियोंको इस विधानका पात्र मान सकते हैं या नहीं। प्रश्न उत्पन्न इसलिये होता है कि इस विधानके अनुसार ही व्यक्तियोंको युद्ध और शान्तिके समय कई प्रकारके अधिकार प्राप्त हैं। यह विधान उनके कई कर्तव्योंको भी स्थिर करता है। इन अधिकारों और कर्तव्योंका विस्तृत वर्णन अगले खण्डोंमें होगा। इसके उत्तरमें यह कहा जाता है कि व्यक्तियोंमें वे गुण नहीं मिल सकते जो पात्रोंमें होने चाहिये। युद्धादिके समय व्यक्तियोंके जो अधिकार और कर्तव्य होते हैं उनके विषयमें यह कहा जाता है कि सभी स्वतन्त्र राजोंने अपने गृह्य विधानोंको यथासम्भव अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार बनाया है और व्यक्तियोंको इन गृह्य विधानोंका पालन करना पड़ता है इसलिये उनका अन्ताराष्ट्रिय विधानसे कोई प्रत्यक्ष और अव्यवहित सम्बन्ध नहीं है। इसलिये आपेनहाइमकी सम्मतिमें व्यक्तियोंको इस विधानका पात्र न कहकर लक्ष्य† कहना चाहिये।

यही नियम समितियोंके लिये भी लागू होना चाहिये और साधारणतः लगता भी है। परन्तु कुछ समितियोंकी एक विशिष्ट

*Civilized belligerent communities not being States.

†Objects, not Subjects, of International Law.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिस्थिति होती है। भारतवासियोंको ईस्ट इण्डिया कम्पनी जिसने भारतपर लगभग सौ वर्षतक शासन किया कुछ समितियोंकी भूली नहीं है। वह कुछ अंग्रेज व्यापारियोंकी विशिष्ट परिस्थिति समिति थी। उसको ब्रिटिश सर्कारसे व्यापार करनेकी अनुज्ञा मिली थी। उसपर ब्रिटिश सर्कारका पूरा पूरा अधिकार था। यह सर्कार उसके प्रत्येक कामका निरीक्षण कर सकती थी और प्रत्येक कामको रद कर सकती थी। अन्तमें १९१५ (सन् १८५८) में पार्लमेंटने उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। इन बातोंको देखते हुए तो उसको न हम किसी प्रकार प्रभु कह सकते हैं न पात्र मान सकते हैं। परन्तु उसको व्यापारके साथ साथ शासन करनेकी भी अनुज्ञा थी। वह भारतीय नरेशोंसे युद्ध और सन्धि करती थी। प्रांतीय शासक नियुक्त करती थी। उसका भारतीय राजोंके अतिरिक्त फ्रांस इत्यादिके साथ भी सम्बन्ध था। संवत् १९१५ में ब्रिटिश सर्कारने उसकी सब सन्धियों, सनदों, ऋणों, आदिका दायित्व अपने ऊपर उसी प्रकार स्वीकार कर लिया जिस प्रकार एक राज दूसरे राजके प्रति, जिसका वह उत्तराधिकारी होता है, करता है। इस दृष्टिसे कम्पनीको अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र मानना चाहिये।

इस समय भी इस प्रकारकी दो एक समितियां हैं। इनमें ब्रिटिश साउथ अफ्रीका कम्पनी सबसे समृद्ध और प्रभावशाली है। इसका जन्म १९४६ में हुआ। दक्षिण अफ्रीकाका एक बहुत बड़ा भाग इसके अधीन है। ब्रिटिश औपनिवेशिक सचिवके निरीक्षणमें रहते हुए इसको प्रायः वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो एक राजको प्राप्त होते हैं।

ऐसी समितियोंकी परिस्थिति विचित्र होती है। उनको एक दृष्टिसे प्रभु और दूसरीसे प्रजा कह सकते हैं। वे युगपत् अन्ता-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राष्ट्रिय विधानकी पात्र भी हैं और लक्ष्य भी। जो पूर्णप्रभु राज किसी ऐसी समितिके साथ किसी प्रकारका व्यवहार करते हैं वे उसको अपने बराबर नहीं मानते वरन् यह समझ लेते हैं कि जिस प्रधान राजके अधीन यह समिति है उसने अपना कुछ अधिकार इसे सौंप रक्खा है और अन्तमें इसके सब कामोंके लिये वही दायी है।

अन्तमें कुछ अनिश्चित उदाहरणोंका उल्लेख करके हम पात्रोंकी प्रकार-सूचीको समाप्त करते हैं। अनिश्चित कोटिमें सबसे प्रथम गणना तटस्थकीत राजोंकी है। यूरोपीय महासमरके पहिले बेल्जियम इसी वर्गमें था पर अब वह इससे निकल गया है। आजकल स्वीजरलैण्ड ही इसका एकमात्र उदाहरण है। ऐसे राज अपने आभ्यंतर शासनमें पूर्णतया स्वाधीन होते हैं। उनका व्यवहार परराजोंके साथ पूर्ण बराबरीका होता है। बस एक बातमें उनका अधिकार परिमित रहता है। वे सिवाय आत्मरक्षाके और किसी अवस्थामें किसीसे युद्ध नहीं कर सकते। इसीलिये उनको तटस्थीकृत* कहते हैं। वे किसी राजसे कोई ऐसी सन्धि नहीं कर सकते जिससे उनकी तटस्थतामें बाधा पड़े। इस तटस्थतासे उनके पूर्ण प्रभुत्व या प्रतिष्ठामें किसी प्रकारकी कमी नहीं मानी जाती। ऐसा समझ लिया जाता है कि उनके प्रभुत्वका यह अंश प्रसुप्त है। इसके पुरस्कारमें कुछ बड़े राज उनकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेते हैं। १८७२ में ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया रूस और जर्मनी (प्रशा) ने स्वीजरलैण्डकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया। १८९६ में यही दायित्व बेल्जियमके सम्बन्धमें लिया गया। स्वीजरलैण्डकी बात तो अभीतक निभी आती है पर

अनिश्चित उदाहरण—तटस्थीकृत राज

---

*Neutralized. (न्यूट्रेलाइज्ड)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९७१ में बेल्जियमपर आक्रमण करके जर्मनीने उसे तटस्थताके बन्धनसे मुक्त कर दिया। प्रभुत्वमें आंशिक कमी देख पड़नेपर भी ये तटस्थीकृत राज पूर्ण पात्र माने जाते हैं।

दूसरा उदाहरण औपनिवेशिक संरक्षित राजोंका है। इस-प्रकारके कई राज अफ्रीकामें हैं। कोई ब्रिटेन, कोई इटली, कोई फ्रांस, कोई पुर्तगालके अधीन है। सीधा सादा तात्पर्य यह है कि इन देशोंने अफ्रीकाके बड़े बड़े टुकड़े दबा लिये हैं। उनमें किसी अन्य सभ्य राजको घुसने नहीं देना चाहते। उनमें गोरों-की संख्या थोड़ी है इस लिये पाश्चात्य ढङ्गकी शासनपद्धति चलायी नहीं गयी है। जो जंगली या अर्धसभ्य नरेश या सर्दार हैं वे अपनी अपनी प्रजापर शासन करते हैं पर सबके ऊपर वह यूरोपीय राज, जो उस भूभागका स्वामी बन बैठा है, किसी न किसी प्रकारकी देख-भाल करता है। नामको वह अपनेको संरक्षक कहता है, पर इस संरक्षणका उल्लेख हम पहिले कर आये हैं। जब यहां कोई एक सुनिश्चित रक्षित राज ही नहीं है तो संरक्षण किसका होता है? वास्तविक बात यह है कि जब तक गोरोंकी संख्या पर्य्याप्त न हो तब तक पाश्चात्य ढङ्गका महँगा शासन क्यों चलाया जाय? गोरोंकी संख्या बढ़नेपर आदिम सर्दारोंके अधिकारोंके छिन जाने और वहां उपनिवेश बन जानेमें देर नहीं लगती।

औपनिवेशिक संरक्षित राज*

जबतक उपनिवेश स्थापित नहीं होता तब तक बड़ी अड़चन रहती है। न यह कह सकते हैं कि कोई निश्चित राज है न यह कह सकते हैं कि नहीं है। इसलिये इस विचित्र शासनका पात्रत्व भी अनिश्चित रहता है।

---

*Colonial Protectorates. (कोलोनिअल प्रोटेक्टरेट्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोमन कैथलिक सम्प्रदायके प्रधान आचार्य पोपकी स्थिति भी विचित्र है। [संवत् १९२७ तक तो एक छोटा सा राज्य पोपकी गद्दीके अधीन था पर उस साल इटलीकी सर्कारने वह राज्य इटलीमें मिला लिया। अब पोप केवल धर्मगुरु हैं। पर उनको अब भी कई ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जो अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार केवल स्वतंत्र राजोंके शासनाध्यक्षोंको मिल सकते हैं। पोप क़ैद नहीं किये जा सकते न उनको कोई और शारीरिक दण्ड दिया जा सकता है, बिना उनकी अनुज्ञाके उनके महलमें इटालियन सर्कारका कोई कर्म्मचारी प्रवेश नहीं कर सकता, कई स्वतंत्र राजोंके दूत पोपके दर्बारमें रहते हैं और पोपके दूत कई राजोंमें रहते हैं। कई बार अन्ताराष्ट्रिय झगड़ोंका निपटारा पोपकी मध्यस्थतासे हुआ है। न तो पोपके पास कोई राज है न उनके हाथमें किसी प्रकारका भौतिक अधिकार है पर एक प्रभावशाली सम्प्रदायविशेषकी धार्मिक निष्ठाने उनको अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक विचित्र पात्रत्व दे रक्खा है।

पोप

तुर्की सर्कारकी दुर्बलताने कई विचित्र उदाहरणोंकी सृष्टि कर दी थी। सम्भव है अब उनकी तलवार इन समस्याओंको सुलझाकर अन्ताराष्ट्रिय विधानके आचार्य्योंको चिन्तामुक्त कर दे। १९३५ में तुर्क सर्कारने साइप्रस द्वीपका ब्रिटेनके नाम ९९ वर्षका पट्टा लिख दिया। वह द्वीप पूरा पूरा ब्रिटिश शासनमें है। तुर्कोंको शासनमें हस्तक्षेप करनेका किसी प्रकारका अधिकार नहीं है। परन्तु जिस समय पट्टा लिखा गया उस समय सब आवश्यक व्यय करनेके पीछे तुर्क सर्कारको साइप्रससे प्रति वर्ष ९२,८०० पौण्ड अर्थात् १३, ९२,०००) बचता था। इतना रुपया अभी ब्रिटेन

साइप्रस और क्रीट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे देता है। अब यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय साइप्रस-का स्वामी कौन है और उसकी अन्ताराष्ट्रिय स्थिति क्या है।

क्रीटकी दशा और भी निराली थी। यह द्वीप तुर्की आधिपत्य-में माना जाता था। इस आधिपत्यका एक मात्र प्रमाण यह रह गया था कि इसके ध्वजस्तम्भसे तुर्की झण्डा लहराया करता था। इसकी प्रजा प्रधानतः यूनानी है। ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और इटली इसके अभिभावक या संरक्षक माने जाते थे। वे चारों मिल कर हाई कमिश्नर उपाधिधारी एक अधिकारीको नियुक्त करते थे जो इस द्वीपके आभ्यन्तर शासनका अध्यक्ष होता था। वह निवासियोंमें से ही अपने मंत्री चुनता था। एक व्यवस्थापक सभा भी थी जिसके प्रायः सब सदस्योंको क्रीटवासी ही चुनते थे परन्तु वैदेशिक विषय हाई कमिश्नरके हाथमें न थे। उनका प्रबंध ब्रिटिश, फ्रेञ्च रूसी और इटालियन सर्कारके रोमस्थ प्रतिनिधि करते थे। ऐसी अवस्थामें यह कहना बड़ा ही कठिन था कि क्रीट तुर्क साम्राज्य-का एक प्रान्त मात्र था या सुल्तानके आधिपत्यमें एक अल्पप्रभु राज था या ब्रिटेन आदि चारों यूरोपीय राजों द्वारा संरक्षित राज था या तुर्क सर्कार भी उसकी संरक्षक थी या उसके पांच अधिपति थे।

अन्ताराष्ट्रिय समाजमें प्रवेश

यूरोपमें ही वर्तमान अन्ताराष्ट्रिय विधानका जन्म हुआ। सोल-हवीं तथा सत्रहवीं शताब्दीमें जो यूरोपीय राज थे उनके पारस्प-रिक व्यवहारमें जो नियम प्रायशः वरते जाते थे उनके सङ्कलनसे ही इस विधानकी सृष्टि हुई। उनके परस्पर संघर्षसे जिन नये राजोंकी उत्पत्ति हुई वे भी स्वभावतः उन्हीं नियमोंका पालन करने लगे क्योंकि ये सब उसी पाश्चात्य संस्कृतिकी गोदमें पले थे। अतः अमेरिका और यूरोपके पश्चिमी राज निसर्गतः अन्ताराष्ट्रिय समाजके अङ्ग और अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र माने गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु अन्ताराष्ट्रिय समाज जड़ संस्था नहीं है। उसमें नये नये सदस्य प्रवेश करते ही रहते हैं। नवागन्तुक तीन प्रकारके होते हैं।

नव-सभ्य राज

पहले वर्गमें वे राज आते हैं जो किसी समय असभ्य समझे जाते थे। हम पहिले भी कह चुके हैं कि सभ्यता एक ऐसा शब्द है जिसकी परिभाषा नहीं हो सकती। जो बात एक देश या कालमें असभ्यता-सूचक मानी जाती है वही दूसरे देशकालमें सभ्यताका चिह्न हो जाती है। चाहे कितने ही कर्णप्रिय शब्दोंका प्रयोग किया जाय पर स्पष्ट बात यह है कि जब कोई राजविशेष इतना बलवान् हो जाता है कि यूरोपीय शक्तियोंका यूरोपीय ढंगसे [अर्थात् तोप और कुटिलताका तोप और कुटिलतासे] उत्तर दे सकता है तो वह सभ्य कहलाने लगता है। अभी साल भरके भीतर अफगानिस्तानकी गिनती सभ्य राजोंमें हुई है। जापान सभ्य राजोंमें अग्रगण्य हो रहा है।

कभी कभी दुर्बल राजोंको भी सभ्य जगत्में प्रवेश करनेका सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। यह उस समय होता है जब कोई राजविशेष दुर्बल होते हुए भी हजम नहीं किया जा सकता पर बिना उससे अन्तरंग सम्बन्ध किये काम भी नहीं चलता या किसी अर्थ-विशेषको सिद्ध करना होता है। पुराने तुर्क राज, चीन और फारस दुर्बल तो थे पर उनकी स्वाधीनता छीनी भी नहीं जा सकती थी। एक तो वे स्वयं बहुत कुछ लड़ते भिड़ते, दूसरे पारस्परिक ईर्ष्याके कारण कई यूरोपीय राष्ट्र उनका साथ देते। इसके साथ ही उनसे नित्य ही काम पड़ता था। इसलिये विवश होकर उनको सभ्य मान लिया गया और उनको अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्रत्व मिला।

कोरिया चीनके संरक्षणमें था। जापानकी उसपर आंख थी पर उसे चीनके हाथसे छीननेसे चीन रुष्ट होता और स्यात् युद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता इस लिये जब उसने १९५२ में चीनसे सन्धि की तो उससे यह स्वीकार कराया कि कोरिया एक स्वतन्त्र राज है। ब्रिटेन जापानका मित्र ही था उसने भी इस बातको स्वीकार कर लिया और १९५९ में अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये रूसने भी इस बातको मान लिया। बस फिर क्या था, बेचारा कोरिया सभ्य बन गया और अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र हो गया। दूसरे ही साल रूसने उसमें कुछ सेना भेजकर उसे अपने संरक्षणमें ले लिया। भला जापानको यह बात कैसे भाती। जिस उद्देश्यसे उसने कोरियाको 'स्वतन्त्र' बनाया था वह रहा जाता था। बस उसने 'कोरियाकी स्वाधीनताकी रक्षा' के लिये उससे युद्ध ठाना। रूसके हारनेपर जापान कोरियाका संरक्षक बन बैठा। अन्तमें जिस बातके लिये यह षड्यन्त्र रचा गया था वह पूरी हुई—१९६७ में जापानने कोरियाको पूर्णतया अपने राज्यमें मिला लिया।

दूसरे वर्गमें वे नये राज हैं जो सभ्य मनुष्योंके द्वारा असभ्य देशोंमें बसाये जाते हैं। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। दक्षिण

असभ्य देशोंमें नव-स्थापित राज

अफ्रीकाके केपकोलोनी प्रदेशमें बहुतसे डच जातिके लोग बसे हुए थे। जब यह प्रदेश अंग्रेज़ोंके हाथमें आया तो कुछ डच कृषक और भीतरकी ओर बढ़ गये। जब वहां भी अंग्रेज़ पहुंचे तो वह वाल नदीके किनारेके जंगली प्रदेशमें जा बसे। यहां उन्होंने ट्रांसवाल (वाल-पार) नामक नया राज स्थापित किया। वे बोअर कहलाते थे। संवत् १९०९ में ब्रिटिश सर्कारने ट्रांसवालको स्वतन्त्र राज मान लिया। यह राज बहुत दिनों तक न चला। बोअर-युद्धके पीछे १९५९ में ट्रांसवाल अंग्रेजो राजमें मिला लिया गया।

पश्चिमी अफ्रीकाका लाइबीरिया राज कुछ इसी प्रकार स्थापित हुआ। आजसे १२५–१५० वर्ष पहिले अफ्रीकासे लाखों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हब्शी गुलाम बना बना कर अमेरिका भेजे गये। ये बेचारे पशुओंकी भाँति बेचे और मोल लिये जाते थे। लगभग १०० वर्ष हुए गुलामीकी प्रथा उठा दी गयी। सब गुलाम मुक्त कर दिये गये। उनके लाखों वंशज अमेरिकामें अब भी हैं। वे बहुत ही परिश्रमी और सुशिक्षित हैं पर उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता। संवत् १८७८ में अमेरिकाके कुछ उदार पुरुषोंने पश्चिम अफ्रीकामें कुछ भूमि मोल लेकर बहुतसे मुक्त हब्शी गुलामोंको वहाँ बसाना आरम्भ किया। ये लोग हब्शी तो थे ही, जलवायु इनके अनुकूल था और थोड़े ही समयमें इनके समाजने अच्छी उन्नति की। १९०४ में इन्होंने अपनी स्वतंत्रता घोषित की और अन्य स्वतन्त्र राजोंने भी इनकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। यही लाइबीरियाका प्रजातन्त्र राज है।

काङ्गोका इतिहास सबसे निराला है। यह मध्य पश्चिमी अफ्रीकाका एक बड़ा प्रान्त है। इसमेंसे गुलाम पकड़ पकड़ कर बाहर भेजे जाते थे। इस बातको रोकने और इसमें कुछ सभ्यता फैलानेके लिये इण्टर्नैशनल असोसिएशन आव दि काङ्गो (काङ्गोकी अन्तारार्ष्ट्रिय समिति) नामक एक समिति खुली। इस समितिके उद्देश्य बड़े ही उदार और प्रशंसनीय थे। धीरे धीरे इस प्रान्तके असभ्य निवासियोंसे सन्धि कर करके इसने एक बहुत बड़ा भूभाग मोल ले लिया जिसमें कमसे कम १,७०,००,००० प्राणी बसे थे। बेल्जियम-नरेश इसके प्रधान संरक्षक और पृष्ठपोषक थे। संवत् १९४२ में बर्लिनमें एक अन्ताराष्ट्रिय सभा हुई जिसमें यूरोपके उन सभी राजोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे जिनका पश्चिमी अफ्रीकासे कोई सम्बन्ध है। इस सभाने काङ्गोको एक तटस्थीकृत राज मान लिया, और बेल्जियम-नरेश इस नये राजके नरेश मान लिये गये। यह राज बेल्जियमसे पृथक था, यद्यपि दोनों देशोंका नरेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक ही व्यक्ति था। अब यह राज जिसे काङ्गो फ्री स्टेट (काङ्गोका स्वतन्त्र राज) का नाम दिया गया स्वयं अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र हो गया। इसके चार वर्ष पीछे बेल्जियम-नरेशने एक वसीयतनामा लिखकर यह राज बेल्जियमको दे दिया। परन्तु उनके जीवन भर इसका शासन सर्वथा पृथक् ही रहा। इधर उन उद्देश्योंपर, जिनको लेकर पहिले पहिले अन्ताराष्ट्रिय समिति स्थापित हुई थी, पानी फेर दिया गया। नामको गुलामी तो नहीं थी पर काङ्गोमें रबड़ उत्पन्न होता है और इस व्यापारके लिये वहाँके निवासियोंके साथ जो भीषण अत्याचार किये जाने लगे थे, जिस निर्दयताके साथ बेगार लिया जाता था, जिस पाशविकताके साथ अमानुषिक दण्ड दिये जाते थे, उन्होंने गुलामीके भी कान काटे थे। जब इन बातोंका समाचार सभ्य जगत्में पहुंचा तो लोग बहुत खिन्न हुए। बेल्जियमपर बहुत आक्षेप हुए। अन्तमें संवत् १९६६ में यह राज बेल्जियममें मिला लिया गया और बेल्जियमका एक प्रान्त हो गया। इस बातपर किसी राजने आक्षेप नहीं किया। अब शासनमें बहुत कुछ सुधार हो गया है।

ऊपर जिन दो वर्गोंका उल्लेख हुआ है उनके उदाहरण कम मिलते हैं और सम्भवतः भविष्यत्में मिलेंगे ही नहीं। परन्तु जिस तीसरे वर्गका अब उल्लेख होगा उसके उदाहरण बहुत मिलते हैं और स्यात् आगे भी मिलते रहेंगे। इस वर्गमें वे राज आते हैं जो किसी समुदायके स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने, स्वराज्य पा जाने, पर बनते हैं।

नव-स्वतंत्र राज

जब किसी राजका कोई अंशविशेष इतना असन्तुष्ट हो जाता है कि वह विना पृथक् हुए नहीं रह सकता तो एक नये राजकी सम्भावना होती है। यदि स्वातंत्र्यवादी एक निश्चित भूभागपर अपना अधिकार जमा लें और उसपर सभ्य ढंगसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शासन करने लग जायँ तो यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने एक नया राज स्थापित कर लिया है। परराज उस समय तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि यह सम्भावना रहती है कि स्यात् स्वराज्यवादी हरा दिये जायँ पर जब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अब उनकी जड़ दृढ़ हो गयी तो फिर उनके साथ वैसा व्यवहार करना ही पड़ता है जैसा कि स्वतन्त्र राजोंके साथ किया जाता है। इसपर वह राज भी आक्षेप नहीं कर सकता जिससे टूट कर नया राज अलग हुआ था।

१८६१ में दक्षिणी अमेरिकाके ब्योनस आयर्स प्रदेशके निवासियोंने स्पेनके विरुद्ध विद्रोह किया और लगभग ६ वर्षमें स्पेन वालोंको निकाल बाहर किया। स्पेन अब भी अपनेको ब्योनस आयर्सका स्वामी कहता था पर उसका अधिकार वहाँ रत्ती भर न था। १८८५ में ब्रिटेनने ब्योनस आयर्स की स्वाधीनताको स्वीकार किया। ऐसी अवस्थामें स्पेनको आक्षेप करनेकी जगह न थी। १८९३ में टेक्ससने मेक्सिकोके विरुद्ध विद्रोह किया। उन्होंने मेक्सिकन सेनाको तो पराजित किया ही, मेक्सिकोके राष्ट्रपतिको भी बन्दी कर लिया। ऐसी दशामें दूसरे ही साल अमेरिकाने उसकी स्वाधीनताको स्वीकार कर लिया।

परन्तु प्रत्येक अवसरपर इतनी निष्पक्षता नहीं दिखलायी जाती। अमेरिका चाहता था कि अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागरोंके बीचमें एक नहर खोदी जाय। यह नहर पनामाके स्थलडमरूमध्यको काटनेसे बन सकती थी। यह डमरूमध्य कोलम्बिया राजमें पड़ता था और कोलम्बियावाले अमेरिकाकी बात मानते न थे। भाग्यसे पनामा प्रान्तवालोंने विद्रोह किया। वे अपना पृथक् राज बनाया चाहते थे। अमेरिकाने पन्द्रह दिनके भीतर ही उनका स्वातंत्र्य स्वीकार कर लिया और इसके पीछे पाँच

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिनके भीतर पनामाके नये राजसे वे सब शर्तें स्वीकार करा लीं जिन्हें कोलम्बिया नहीं मानता था। अमेरिकाकी सहायताने पनामाको बलवान् बना दिया और कोलम्बिया मुंह देखता रह गया। यदि वह प्रबल राज होता या उसके भी प्रबल सहायक होते तो अमेरिकाको यह साहस न होता कि इतनी जल्दी विद्रोहियोंको स्वतन्त्र मान ले।

अभी हालकी ही बात है। अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये ब्रिटिश सर्कारने मक्काके शरीफ़को, जिसने तुर्की सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह किया था, तत्काल ही हजाज़ (अरब) का नरेश स्वीकार कर लिया।

ऊपर जितने उदाहरण दिये गये हैं वे सब हिंसात्मक विद्रोहके हैं। प्रायः हिंसात्मक असहयोग या सशस्त्र विद्रोह ही स्वतन्त्र होनेका साधन है। पर कभी कभी शान्तिके साथ भी नये राजोंका जन्म हो जाता है। १८८२ में दक्षिणी अमेरिकाका ब्रेज़ील प्रदेश जो उस समय तक पुर्तगालके अधीन था पृथक् हो गया और पुर्तगालवालोंने शान्तिपूर्वक उसका स्वातंत्र्य स्वीकार कर लिया। १९६२ में इसी प्रकार स्कैण्डिनेवियाके स्वीडन और नार्वे दोनों भाग पृथक् पृथक् राज हो गये। आज भारत भी अहिंसाके ही द्वारा स्वाधीन होना चाहता है। ईश्वर उसका प्रयत्न सफल करे।

अन्ताराष्ट्रिय विधान साधनोंको नहीं देखता। जो राज स्वतन्त्र है, वह इस विधानका पात्र है, चाहे उसने किसी प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त की हो। जैसा कि हॉल कहते हैं—यदि किसी समुदायका उस भूखण्डपरके, जिसपर उसका कब्ज़ा है, सब प्राणियों और वस्तुओंपर असंदिग्ध और अनन्य अधिकार है, यदि वह अन्य किसी समुदायकी इच्छाकी ओर ध्यान दिये बिना ही अपने बाह्य व्यवहारको निश्चित करता है, यदि वह अन्ताराष्ट्रिय विधानका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसरण करता है और यदि इस बातकी आशा होती है कि उसका समष्ट जीवन चिरस्थायी रहेगा, तो वह समुदाय अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र है। अन्ताराष्ट्रिय विधान उन बातोंको नहीं देखता जो किसी समुदाय–विशेषके राज-लक्षण प्राप्त करनेके पहिले होती हैं, इस लिये वह उन साधनोंकी ओरसे उदासीन है जिनके द्वारा कोई समुदाय अपनेको राज बनाता है।*

इन बातोंका अर्थ यही है कि जब कोई समुदाय येन केन प्रकारेण उन लक्षणोंसे सम्पन्न होता जाता है जो राजोंमें पाये जाते हैं तो सभी उसे राज मानने लगते हैं अर्थात् उसके साथ वही व्यवहार किया जाता है जो राजोंके साथ किया जाता है, उसके कर्तव्य और अधिकार अन्य राजोंके अधिकारों और कर्तव्योंके समान हो जाते हैं।

राज–समता सिद्धान्त

इस परिपाटीसे एक सिद्धान्त निकलता है जिसे राज–समता सिद्धान्त कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी देश विशेषके साधारण विधानकी दृष्टिमें सब नागरिक बराबर हैं उसी प्रकार अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें सब राज बराबर हैं। इस सिद्धान्तके मान लिये जानेसे मानव-समाजका बहुत कल्याण हुआ है। बहुत से छोटे और दुर्बल राजोंकी सत्ताकी रक्षा केवल इस सिद्धान्तने करायी है। बड़े राज छोटे राजोंके स्वत्वोंको हानि पहुंचानेमें इसलिये झिझकते हैं कि उन्हें निन्दाका डर रहता है।

परन्तु एक बात समझ लेनी चाहिये। साधारण विधानोंमें यह बात होती है कि उनके पीछे किसी न किसी सर्कारका बल होता है जो बड़े और छोटे, धनी और निर्धनमें न्याय कराती है। जो इतना निर्धन है कि वकील नहीं कर सकता उसकी ओरसे सर्कार

---

* हॉलकृत इण्टर्नेशनल लॉ–जनरल प्रिंसिपल्स–प्रथम अध्याय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वकील कर देती है। पर अन्तारांष्ट्रिय विधानमें अब तक ऐसा न था। यदि कोई सबल राजविधानकी अवहेलना करके किसी छोटे राजके स्वत्वोंको हानि पहुंचाना ही चाहे तो उसे कोई रोक नहीं सकता था। कोई ऐसा न्यायालय नहीं था जो सबल-निर्बलपर समान शासन करे। विवादोंके निर्णय करनेका एकमात्र साधन युद्ध था परन्तु युद्धमें सबलकी ही बन आती थी।

अब स्यात् ऐसा न हो। राष्ट्रसंघ स्थापित हो गया है। एक अन्तारांष्ट्रिय न्यायालय भी खुल गया है। सम्भव है आगे चल-कर बड़े छोटोंमें सचमुच न्याय होने लगे। अभी राष्ट्रसंघ विश्वस्त संस्था नहीं है परन्तु ऐसी आशा की जा सकती है कि भविष्यत्में इसका भी सुधार हो जायगा।

स्वीकृति और उसकी विविध रीतियां

किसी राजका पात्र होना तभी निश्चित हो सकता है जब अन्य राज जो पहलेसे पात्र हैं उसे पात्र मानें। इस माननेको 'स्वीकृति' कहते हैं। जो राज बहुत पहिलेसे चले आते हैं अर्थात् जिनका व्यवहार अन्तारांष्ट्रिय विधानका आधार है उनके लिये किसी प्रकारकी स्वीकृतिकी आवश्यकता नहीं है। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, हालैंड आदिको किसीने स्वीकृति नहीं दी। पर नवस्थापित राजोंको और ऐसे राजोंको जो पहिले असभ्य कोटिमें गिने जाते थे पर अब सभ्य माने जाने लगे हैं स्वीकृतिकी आवश्यकता होती है।

ऐसा बहुत कम होता है कि किसी राज-विशेषको अन्य सब राज या सब प्रमुख राज एक साथ ही स्वीकार कर लें। आरम्भ-में एक या दो जिनको उसके साथ किसी कारण विशेषसे अधिक सहानुभूति होती है या जिनको उससे कोई स्वार्थ सिद्ध करना रहता है उसे स्वीकार कर लेते हैं। फिर धीरे धीरे दूसरे भी ऐसा करने लग जाते है। जब किसी राजको प्रधान प्रधान राज स्वीकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर लेते हैं अर्थात् अन्ताराष्ट्रीय विधानका पात्र मान लेते हैं तो छोटे राज ऐसा करनेसे विमुख नहीं रह सकते। इस बातकी आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक नये राजके लिये कुछ समयके भीतर सभी राजोंकी स्वीकृति मिल जाय। यदि प्रमुख राजोंकी स्वीकृति मिल चुकी है तो दूसरोंकी मूक स्वीकृति मान ली जानी है।

स्वीकृति देनेके कई प्रकार हैं। सबसे सीधा और निर्विवाद ढंग यह है कि इस विषयकी एक विशेष विज्ञप्ति निकाली जाय। ऐसी विज्ञप्तिका एक मात्र उद्देश्य उस नये राजको स्वीकृति देना होता है। १९४१ में अमेरिकाके संयुक्त राजने काङ्गो फ्री स्टेटको इस प्रकारकी विज्ञप्ति द्वारा ही स्वीकृति दी थी। इसके मुख्यांशका भावानुवाद इस प्रकार है—

फ्रेडरिक टी० फ्रेलिङ्गहाइज़ेन (सेक्रेटरी आव स्टेट)' अमेरिकाके संयुक्तराजके राष्ट्रपतिके दिये हुए अधिकारके आधारपर और सिनेटके परामर्श और अनुज्ञाके अनुसार,......इस बातकी घोषणा करते हैं कि संयुक्त राजकी सर्कार काङ्गोकी अन्ताराष्ट्रिय समितिके उदार और दयालु उद्देश्योंसे सहानुभूति रखती है और संयुक्त राजके सब कर्मचारियोंको आज्ञा देते हैं कि जल और स्थलपर अन्ताराष्ट्रिय अफ्रीकन समितिके झण्डेको एक मित्र सर्कारका झण्डा स्वीकार किया करें।

इसके साक्ष्यमें वह आज २२ अप्रैल सन् १८८४ को वाशिंगटन नगरमें अपना हस्ताक्षर करते हैं और अपनी मुहर लगाते हैं। †

---

† Frederick T. Frelinghuysen, Secretary of State, duly empowered therefor by the President of the United States of America, and pursuant to the advice and consent of the Senate, heretofore given...declares that...the Government of the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा प्रकार सन्धि द्वारा है। स्वीकृति-दायक सन्धियां दो प्रकारकी होती हैं। कुछ तो ऐसी होती हैं जिनमें स्वीकृतिका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं होता। संवत् १८२५ में फ्रांस और अमेरिकाके संयुक्त राजमें एक सन्धि हुई। उस समय अमेरिकावाले ब्रिटिश साम्राज्यके बाहर निकल चुके थे और अपनी स्वाधीनता घोषित कर चुके थे पर तब तक किसी प्रमुख राजने उनको स्वीकार नहीं किया था। उपर्युक्त सन्धिमें फ्रांसकी ओरसे यह कहीं नहीं कहा गया कि उसने संयुक्त राजको स्वीकार कर लिया परन्तु सन्धिकी शर्तें ऐसी थीं जो दो स्वतंत्र राजोंके बीच ही हो सकती थीं। इसका यही अर्थ हो सकता था कि फ्रांसने संयुक्त राजको एक स्वतंत्र राज और अन्ताराष्ट्रिय विधानका पूर्ण पात्र मान लिया परन्तु इस स्वीकृतिको कहीं लेखबद्ध करना अनावश्यक समझा।

दूसरे प्रकारकी सन्धियोंमें और शर्तोंके साथ साथ स्वीकृतिका भी स्पष्ट उल्लेख रहता है। १९४१ में जर्मनीने कांगो फ्री स्टेटसे एक सन्धि की। इस सन्धिकी सात धाराएं थीं। चार

United States announces its sympathy with, and approval of, the humane and benevolent purposes of the International Association of the Congo... and will order the officers of the United States, both on land and sea, to recognize the flag of the International African Association as the flag of a friendly Government.

In testimony whereof, he has hereunto set his hand and affixed his seal, this twenty-second day of April, A. D. 1884, in the city of Washington.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धाराओंमें उन अधिकारोंका उल्लेख था जो जर्मनोंको कांगो राजमें प्राप्त होनेवाले थे। दोमें जर्मन सर्कारने नये राजको स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकृति प्रदान की थी। हम यहां उन्हीं दोनोंके भावानुवाद देते हैं *—

धारा ५

जर्मन साम्राज्य समितिके झण्डेको—नीले झण्डेको जिसके बीचमें एक सुनहरा तारा है—एक मित्र राजका झण्डा स्वीकार करता है।

धारा ६

जर्मन साम्राज्य समितिके, और जो नया राज बनने वाला है उसके, राज्यकी, संलग्न मानचित्र में दी हुई सीमाओंको, स्वीकार करनेको प्रस्तुत है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि कई राज मिलकर किसी राज विशेषको स्वीकार करते हैं। संवत् १९१३ में फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, अस्ट्रियाने मिलकर रूम (तुर्क साम्राज्य) को अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्रत्व प्रदान किया। १९३५में फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रिया और रूसने सर्बियाकी स्वतंत्रताको इस शर्तपर स्वीकार किया कि वह अपने शासनमें धार्मिक भेदभावको स्थान न दे।

---

*Article V—The German Empire recognizes the flag of the Association—a blue flag with a golden star in the centre—as that of a friendly State.

Article VI—The German Empire is ready on its part to recognize the frontiers of the territory of the Associatian and of the new State which is to be created, as they are shown in the annexed map.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्येक राजकी ओरसे उसकी सर्कार काम करती है। न तो सारा समुदाय विधान–निर्माण कर सकता है, न शासन कर सकता है, न परराजोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यह सब काम उसकी सर्कार करती है। जो काम सर्कार करती है उसके लिये सारा राज बाध्य होता है। सर्कारके लिये हुए ऋण, सर्कारकी सन्धिशर्तें, सर्कारके दिये हुए वचन; सारे समुदायके नामसे होते हैं और सारा समुदाय उनके लिये दायी है। इसमें अपवाद तभी होता है जब सर्कार अपने अधिकारके बाहर कोई काम कर बैठे। जैसे, ब्रिटेनमें नियम है कि बिना पार्लमेण्टकी अनुज्ञाके सर्कार ऋण नहीं ले सकती। अब यदि ब्रिटेन सर्कार बिना पार्लमेण्टसे पूछे ही ऋण ले ले तो ब्रिटिश राज उसके लिये दायी नहीं हो सकता।

राजसत्ताकी अविच्छिन्नता

प्रत्येक समुदायका यह नैसर्गिक स्वत्व है कि वह अपना शासन चाहे जैसा रक्खे। विदेशियोंको इस सम्बन्धमें बोलनेका कोई अधिकार नहीं है। चाहे किसी राजमें प्रजातन्त्र हो, चाहे गणतन्त्र हो, चाहे एक नरेशके हाथमें सारा अधिकार हो, इससे विदेशियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं। भीतरी शासनके सम्बन्धमें चाहे जितने परिवर्तन हों बाहरवालोंको तटस्थ रहना चाहिये। इन परिवर्तनोंसे राज-जीवनके प्रवाहमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। चाहे सर्कारके रूपमें कोई परिवर्तन हो जाय, चाहे राज्य बढ़ जाय चाहे घट जाय, परन्तु राज ज्योंका त्यों रहता है, उसके स्वत्वों और कर्तव्योंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। गत चार पांच वर्षके भीतर यूनान पहिले नरेशाधीन था, फिर प्रजातंत्र हुआ, फिर नरेशाधीन होगया, उसका राज्यविस्तार पहिले घटा, फिर बढ़ा और पीछेसे फिर घटा पर उसके जीवनमें कोई अन्तर नहीं आया। वह वही यूनान रहा। जो सन्धियां उसकी पहिली सर्कार कर गयी थी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह उसपर फिर भी बाध्य रहीं। कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक किसी राजकी नयी सर्कार अपनी पूर्ववर्ती सर्कारोंकी स्वीकृत की हुई सब शर्तोंको मञ्जूर करती है तबतक अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें राजकी सत्तामें कोई अन्तर नहीं आता। यदि विदेशी भीतरी शासनमें बोलते हैं तो यह उनका अन्याय और अनधिकार प्रयत्न है।

परन्तु कभी कभी राजसत्तामें परिवर्तन होता है। यदि कोई स्वतंत्र राज किसी अन्य राजकी संरक्षकता स्वीकार करले या तटस्थीकृत हो जाय तो उसकी सत्तामें परिवर्तन माना जायगा क्योंकि वह पूर्णप्रभुसे अंशप्रभु हो गया। इसी प्रकार यदि कोई अंशप्रभु-राज पूर्णप्रभु हो जाय तो उसकी सत्तामें परिवर्तन माना जायगा। यूरोपीय महासमरके पहिले बेल्जियम तटस्थीकृत राज था पर अब वह एक पूर्णप्रभु राज होगया है।

राजजीवनका अन्त भी हो सकता है। यह तीन मुख्य प्रकारोंसे होता है: सबसे साधारण प्रकार तो यह है कि उसको कोई दूसरा राज पूर्णतया अपनेमें मिला ले। महासमरके पश्चात् माण्टिनीग्रो सर्बियामें मिला लिया गया, कोरियाको जापानने पूर्णतया अपने साम्राज्यमें मिला लिया है। दूसरा प्रकार यह है कि उससे टूट कर कई पृथक् राज बन जायं। दक्षिणी अमेरिकामें कोलम्बिया नामका एक विशाल प्रजातंत्र राज था। १८८९ में उसके तीन टुकड़े हो गये। यह तीनों टुकड़े—वेनेज़ुएला, इक्वेडोर और न्यू ग्रनाडा—स्वतंत्र राज हो गये पर कोलम्बियाकी सत्ताका अन्त हो गया। (पीछेसे संवत् १९२० में न्यू ग्रनाडाने फिरसे कोलम्बिया नाम धारण कर लिया पर इसकी सत्ता पुराने कोलम्बियासे नितान्त भिन्न थी।) मध्यभारत में देवास राज टूटकर बड़ा देवास और छोटा देवास नामक दो पृथक् राजोंमें विभक्त होगया है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब इन दोनोंकी सत्ता तो है पर मूल देवासकी सत्ताका लोप हो गया है। तीसरा प्रकार यह है कि कई राज मिलकर एक नया राज बनायें। १९०५ में स्वीजरलैण्डके सब छोटे छोटे राज मिल गये। इनके मिलनेसे वह लिंगशेष प्रजातंत्र बना जिसे आज स्वीज़रलैण्ड कहते हैं। अब अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें उन छोटे राजोंका सत्ताका लोप हो गया है। किसी समय इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड पृथक् राज थे पर जब १७६४ में दोनोंके मिलनेसे ग्रेटब्रिटेनका अलिंगशेष राज बना तो इन दोनोंकी सत्ताका लोप हो गया।

जब एक राजका स्थान दूसरा राज लेता है तो कई बड़े टेढ़े प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसको राजोत्तराधिकार कहते हैं। कुछ आचार्य्योंकी तो यह सम्मति है कि जिस समय एक राज दूसरेका उत्तराधिकारी हो उस समय वही नियम बरते जायं जो उस समय काममें लाये जाते हैं जब एक व्यक्तिका उत्तराधिकारी दूसरा व्यक्ति होता है।

राजोत्तराधिकार

उत्तराधिकारी पूर्वाधिकारीकी सारी सम्पत्तिका स्वामी होता है पर इसके साथ ही वह उसके समस्त ऋणोंके लिये भी दायी होता है। यदि राजोंके लिये भी यह नियम बन जाय तो अच्छा हो। जो मनुष्य किसी राजको ऋण देता है या उसकी सेवा करता है या उसके हाथ कोई सामग्री बेचता है वह इसी आशामें रहता है कि समय पाकर मेरा रुपया मुझे मिल जायगा। अब यदि बीचमें युद्धादि कारणोंसे उस राजका स्थान कोई दूसरा राज ले ले तो उन बेचारोंका रुपया तो न मारा जाना चाहिये। पर दिलाये कौन? इसी लिये भिन्न भिन्न समयोंपर भिन्न भिन्न राजोंके व्यवहारमें बहुत कुछ ऐसे नियम हैं जिनका आजकल न्यूनाधिक पालन होता है। यहां हम उनका ही उल्लेख कर सकते हैं। इतना बतला देना आवश्यक है कि आजकल सभ्य देशोंमें राजपरिवर्तनसे नागरिकोंके नागरिक और साम्पत्तिक स्वत्वोंपर कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् न उनके व्यापार बन्द किये जाते हैं, न सम्पत्ति छीनी जाती है, न धर्म्ममें हस्तक्षेप किया जाता है। इस नियममें एकही अपवाद देख पड़ता है। रूसके बोल्शेविक शासक निजी सम्पत्तिके सिद्धान्ततः विरोधी हैं। यदि उनको कहीं अधिकार मिले तो स्यात् निजी सम्पत्ति, कमसे कम बड़ी जमीनदारियों और कलकारखानों, को जब्त कर लें।

उत्तराधिकारके दो प्रकार हो सकते हैं—पूर्ण और आंशिक। इन दोनोंपर पृथक् पृथक् विचार करना होगा।

पूर्ण उत्तराधिकार प्रायशः उसी अवस्थामें होता है जब एक राज दूसरेको युद्धमें जीतकर उसके राज्यको पूर्णतया अपने राज्यमें मिला लेता है। इस दशामें विजित राजकी सत्ताका लोप हो जाता है। इसमें तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता कि विजेता विजितकी सारी सम्पत्तिका स्वामी हो जाता है और विजितके सब अधिकार उसको मिल जाते हैं। अब रहा कर्तव्योंका प्रश्न। कर्तव्योंमें सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि विजितके ऋणोंको विजेता देगा या नहीं। इसके लिये कोई स्पष्ट नियम नहीं है पर आजकल सभ्य देशोंमें ऋणोंका चुकाना ही श्रेष्ठ समझा जाता है। हां, वह ऋण नहीं चुकाया जाता जो विजित राजने उसी युद्धके लिये लिया था। आपेनहाइम आदि कुछ आचार्य्योंकी सम्मतिमें तो यह ऋण भी चुकाया जाना चाहिये पर मानव स्वभाव ऐसा है कि उस ऋणको चुकानेके लिये कोई राज प्रस्तुत नहीं होता जो उसीको हरानेके लिये लिया गया था।

विलुप्त राजकी सत्ताके साथ साथ उसकी राजनीतिक सन्धियोंका भी लोप हो जाता है पर व्यापारिक सन्धियोंका प्रायः पालन होता है। यदि पूर्ववर्ती राजने विदेशी व्यापारियोंको कुछ विशेष शर्तोंपर व्यापार करनेके अधिकार दे रक्खे थे तो अपनी मीयाद भर उन शर्तोंका प्रायः पालन होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो समुदाय किसी राज विशेषका उत्तराधिकारी बननेकी आशा रखता है उसको यह अधिकार है कि पहिलेसे ही बतला दे कि जो लोग उस राजको किसी विशेष प्रकारकी सहायता देंगे उनको इस बातकी आशा न रखनी चाहिये कि उनकी क्षतिपूर्ति आगे चलकर होगी। इसी सिद्धान्तको मानकर गयामें भारतकी राष्ट्रीय महासभाने [पौष १९७९ (दिसम्बर १९२२)] यह निश्चय किया कि भविष्यत्में [अर्थात् माघ १९७९ (जनवरी, १९२३) से] भारतकी ब्रिटिश सरकार जो ऋण लेगी उसका दायित्व स्वराज होनेपर भारतीय सरकारपर न होगा। और भी इस प्रकारके कई उदाहरण हैं।

यह तो आर्थिक बातें हुईं। विजित राजके नागरिकोंकी क्या स्थिति होती है? इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि यदि वह वहीं रह जायं तो विजेताकी प्रजा हो जायंगे पर यह अभी सुनिश्चित नहीं है कि यदि वह तत्काल देश छोड़ दें या यदि परदेश गये रहे हों और लौटें ही न तो वह किसकी प्रजा गिने जायंगे। आजकल प्रथा यही है कि यदि वह किसी अन्य देशमें बसना चाहें तो उनको ऐसा करने दिया जाय।

आंशिक उत्तराधिकार उस अवस्थामें होता है जब कि एक राज अपने राज्यका कुछ भाग दूसरे राजको दे देता है। यह भी प्रायः युद्धका ही परिणाम होता है और इस दशामें भी प्रायः वही नियम बरते जाते हैं जो पूर्णोत्तराधिकारमें बरते जाते हैं। जो अन्तर होता है वह इसलिये होता है कि उत्तराधिकारीके साथ साथ पूर्वाधिकारीकी सत्ता भी बनी रहती है।

जो भूभाग दिया जाता है उसका तथा उसपरकी सारी अचल राज-सम्पत्तिका उत्तराधिकारी स्वामी हो जाता है। रहा प्रश्न ऋणका। आजकल प्रथा यह है कि पूर्वाधिकारी राज जो ऋण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस भूखण्डके विशेष उपयोगके लिये लेता है उसका भार उत्तराधिकारीपर पड़ता है। कुछ आचार्योंका यह मत है कि उत्तराधिकारीको पूर्वाधिकारीके साधारण ऋणका भी कुछ अंश अपने ऊपर लेना चाहिये। जो राज ऋण लेता है वह उसे अपने सारे राज्यके लिये लेता है और सारे राज्यको उससे कुछ न कुछ लाभ पहुंचता है। यदि राज्यका कुछ अंश दूसरेके हाथमें चला गया तो यह हिसाव लगा लेना चाहिये कि उस टुकड़ेको कुल ऋणके कितने अंशसे लाभ पहुंचा होगा। उतनेका दायित्व उत्तराधिकारीपर होना चाहिये। यह बात है तो न्याय्य पर बहुधा इसका पालन नहीं होता। कभी कभी किसी अर्थ–विशेषको सिद्ध करनेके लिये ही राज इसके अनुसार चलते हैं। १९१७ में इटलीने पोपसे रोम नगर छीन लिया। इससे स्वभावतः रोमन कैथलिक मतके अनुयायी, जो सारे यूरोपमें फैले हुए हैं, असन्तुष्ट हुए। उनको प्रसन्न करनेके लिये इटलीने पोपके ऋणके एक अंशका भार अपने ऊपर ले लिया।

इस राज्यांशके नागरिकोंको आजकल यह अधिकार रहता है कि वह चाहें तो उसे छोड़कर अन्यत्र जा बसें। प्रायः एक वर्षका समय मिलता है। इस सम्बन्धकी विशेष शर्तें पूर्वाधिकारी और उत्तराधिकारीमें सन्धि-द्वारा निश्चित हो जाती हैं। बड़े टेढ़े टेढ़े प्रश्न उठते हैं। स्त्रियोंकी राष्ट्रीयता क्या होगी ? क्या स्त्री उसी राजकी नागरिक मानी जायगी जिसमें उसका पति रहना चाहता है या उसकी नागरिकता पृथक् हो सकती है ? अवयस्क बच्चोंकी राष्ट्रीयताका निश्चय कैसे किया जाय ? इन सब विवादास्पद प्रश्नोंके उत्तर आपसके समझौतेसे ही निश्चित होते हैं।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा अध्याय।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधार।

जिसके सहारे कोई वस्तु खड़ी रहती है उसे उस वस्तुका आधार कहते हैं। यदि आधार शब्दका यही अर्थ लिया जाय तो कोई भी विधान हो, उसका आधार उस राजका दण्डबल होगा जिसके राज्यमें वह प्रचलित है। जो विधानकी अवहेलना करेगा वह दण्डित होगा—यही मुख्य आधार हो सकता है। पर अन्ताराष्ट्रिय विधानको अभी तक कोई ऐसा सहारा प्राप्त न था, उसका कोई नियत पृष्ठपोषक न था। उसको यदि सहारा था तो अधिकांश सभ्य राजोंका व्यवहार। अब राष्ट्रसंघ स्थापित हो गया है। यदि उसका संघटन स्थायी रहा तो उसके हाथमें दण्डबल भी रहेगा।

यहां हमने आधार शब्दका इस अर्थमें प्रयोग नहीं किया है। आधारसे हमारा तात्पर्य्य उन मार्गोंसे है जिनसे अन्ताराष्ट्रिय विधानकी उत्पत्ति हुई है। अंग्रेज़ी ग्रंथकार बहुधा सोर्स* शब्दका प्रयोग करते हैं पर उनको इसकी भी लम्बी व्याख्या करनी पड़ती है क्योंकि सोर्सका अर्थ है उद्गमस्थान। यह शब्द बुरा नहीं है पर यह समझ लेना चाहिये कि उद्गमस्थानसे उस देश विशेषसे अभिप्राय नहीं है जिसमें कोई नियम विशेष पहिले पहिले बरता या शब्दोंमें स्पष्टतया व्यक्त किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाको ध्यानमें रखते हुए, अन्ताराष्ट्रिय विधानके सात मुख्य आधार हैं—

* Source

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) स्मृतिकारोंके ग्रन्थ
(२) सन्धियां
(३) शास्त्रियोंकी व्यवस्था
(४) अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायतोंके निर्णय
(५) सामरिक न्यायालयोंके निर्णय
(६) राजोंके पत्र-व्यवहार
(७) वह निर्देश जो समय समयपर राजोंकी ओरसे कर्म्मचारियों या न्यायालयोंकी सुविधाके लिये निकाले जाते हैं।

अन्ताराष्ट्रिय विधान और दूसरे विधानोंमें जो प्रधान अन्तर है उसे न भूलना चाहिये—अन्ताराष्ट्रिय विधानको अबतक कोई भी उतना प्रबल आधार नहीं मिला है जितनी कि साधारण विधानोंके लिये एक छोटेसे छोटे देशकी सर्कार होती है।

स्मृतिकारोंके ग्रन्थ

स्मृतिकारोंसे हमारा तात्पर्य उन विद्वानोंसे है जिन्होंने इस विषयपर प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं। जिस समय ऐसी पुस्तकें पहिले पहिल लिखी गयीं उस समय सुनिश्चित सामग्री बहुत कम थी। यूरोपके सभ्य राजोंके व्यवहारोंमें कुछ कुछ साम्य अवश्य था पर ऐसा कोई नियम नहीं था जो अनिवार्य्य तथा परिपाल्य माना जाता हो। जेंटाइलिस, ग्रोशिअस, बिङ्करशोएक और वैटेलने जो कुछ लिखा वह केवल साम्प्रत व्यवहारको देख कर ही नहीं लिखा। उन्होंने कई बातोंपर औचित्यानौचित्यकी दृष्टिसे भी विचार किया और विधानशास्त्र, कर्तव्यशास्त्र तथा मनोविज्ञानके परिज्ञात मौलिक सिद्धान्तोंके अनुसार नियम बनाये। इनमें कहीं कहीं मतभेद भी है पर जिन बातोंका समर्थन सबने किया है वह अन्ताराष्ट्रिय विधानके सर्वसंम्मत सिद्धान्तोंमें परिणत हो गयो हैं। किसी ऐसी बातको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवहेलना करनेका, जिसके पक्षमें प्रायः सभी प्रामाणिक आचार्य हों, साहस सभ्य राष्ट्र प्रायः नहीं ही करते।

आरम्भमें इन स्मृतिकारोंके ही हाथमें अन्तारांष्ट्रिय विधान-का निर्माण था। पीछेसे जब सभ्यताकी वृद्धिके साथ साथ युद्ध, सन्धि, व्यापार, ताटस्थ्य इत्यादिसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्ता-राष्ट्रिय व्यवहारकी भी वृद्धि हो चली तो यह काम राजपुरुषों और राजकर्मचारियोंके हाथमें चला गया। इन लोगोंके निर्णयोंपर विधानका विकाश निर्भर हो गया। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ग्रन्थकारोंका कोई काम ही नहीं रहा। उनका काम अब भी बड़े महत्त्वका है। अन्तर इतना ही है कि अब उनको स्मृतिकार न कह कर भाष्यकार या व्याख्याकार कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। उनका प्रधान काम प्रचलित नियमों और विधानोंका ठीक ठीक अर्थ बतलाना है। यह काम वह अधिक योग्यतासे कर सकते हैं। राजपुरुष अपने अपने राजके हितको ही प्राधान्य देते हैं और उनका ऐसा करना जघन्य नहीं माना जाता परन्तु ग्रन्थकार या भाष्यकारका पक्षपाती होना अत्यन्त निंद्य है। इस लिये जब राजोंमें किसी नियमविशेषके विषयमें विवाद उपस्थित होता है तो अब भी प्रामाणिक ग्रन्थोंके वाक्योंके आधारपर उसका निर्णय करनेकी चेष्टा की जाती है।

ग्रन्थोंका एक उपयोग और है। राजपुरुष उन्हीं प्रश्नोंपर विचार कर सकते हैं जो समयोचित अर्थात् उनकी आंखोंके सामने हों पर ग्रन्थकारके लिये यह बंधन नहीं है। वह बहुतसे प्रश्नोंके भावी महत्त्वका अनुमान करके उनपर भी विचार करता है इस लिये जब उनका समय आता है तो उसकी सम्मति, जो बहुत पहिले दी हुई होनेके कारण स्वभावतः निष्पक्ष होती है, आदरके साथ देखी जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्ताराष्ट्रिय विधानका दूसरा आधार सन्धियां हैं। साधारणतः सन्धिसे तात्पर्य्य उस समझौतेसे होता है जो युद्धके पीछे होता है पर यह इस शब्दका संकुचित अर्थ है। वस्तुतः यह शब्द एक व्यापक अर्थमें प्रयुक्त होता है। दो या दोसे अधिक राज किसी समय और किसी भी उद्द श्यसे जो कुछ भी निर्णय करते हैं वह सन्धि है।

संधियां

सन्धियाँ प्रधानतः तीन प्रकारकी होती हैं—

(१) व्यवस्थापक।

(२) अर्थ-द्योतक।

(३) विधायक।

अब हम संक्षेपतः इन तीनों प्रकारकी संधियोंपर विचार करेंगे।

व्यवस्थापक सन्धियां

व्यवस्थापक सन्धियां वह हैं जो दो या अधिक राजोंमें कुछ विशेष प्रश्नोंकी व्यवस्था करनेके लिये की जाती हैं। यह प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका सम्बन्ध अन्य राजोंसे नहीं होता। व्यवस्थापक सन्धियोंको भी दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं (क) विग्रह-शोधक (ख) समयपत्र। विग्रह-शोधक सन्धियां वह हैं जो प्रायः युद्ध या विवादके पीछे होती हैं। यह आपसके समझौतेके रूपमें होती हैं। अमुक राज अमुक राजको इतना राज्य या रुपया देगा, अमुक राज अमुक राजके घरेलू प्रबन्धमें हस्तक्षेप न करेगा, इत्यादि। संवत् १८६२ (सन् १८०५) में द्वितीय मराठा युद्धके पीछे होल्कर और अंग्रेजोंमें जो सन्धि हुई थी वह विग्रहशोधक सन्धियोंका शुद्ध उदाहरण है। उसकी नव धाराएं थीं। हम उदाहरणके लिये उसकी दो धाराएँ उद्धृत करते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय धारा

यशवन्तराव होल्कर टोंक रामपुरा, बुन्दी, लखेरी, समेढ़ी, भामनगांव, देस, इत्यादि उन सब स्थानोंपर से, जो बुन्दी पहाड़ोंके उत्तर हैं और इस समय ब्रिटिश सरकारके हाथमें हैं, अपना स्वत्व छोड़ते हैं।

तृतीय धारा

कम्पनी इस बातका वचन देती है कि वह होल्कर वंशके राज्यके उस अंशसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रक्खेगी जो मेवाड़, मालवा या हाड़ावतीमें है और न वह उन नरेशोंसे किसी प्रकारका सरोकार रक्खेगी जो चम्बल नदीके दक्षिण हैं।......

समयपत्र वह सन्धियां हैं जिनका सम्बन्ध किसी युद्धसे नहीं होता। इनमें सन्धि करनेवाले राज परस्पर व्यवहारके लिये कुछ शर्तें तय करते हैं। यद्यपि यह सन्धियां थोड़ेसे राजोंमें होती हैं और इनका कोई अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व न होना चाहिये पर कभी कभी इनके द्वारा अन्ताराष्ट्रिय विधानपर प्रभाव पड़ता है। दो प्रभावशाली राज परस्पर व्यवहारके लिये जो नियम बनायेंगे उनका अन्य राजों द्वारा स्वीकृत होकर अन्ताराष्ट्रिय विधानमें सम्मिलित हो जाना असम्भव नहीं है। जिस समय ऐसी सन्धियां लिखी जाती हैं उस समय इनको अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधारोंमें नहीं गिन सकते। इनमें बहुधा ऐसी बातें लिखी जाती हैं जो प्रचलित विधानके विरुद्ध होती हैं। यदि सब बातें विधानके अनुकूल हों तो पृथक् सन्धि करनेकी आवश्यकता ही न हो। संवत् १८४२ में प्रशा और संयुक्त राज (अमेरिका) में जो सन्धि हुई थी उसमें जान बूझकर दो ऐसी शर्तें रक्खी गयी थीं जो प्रचलित विधानके विरुद्ध थीं। सन्धिकी तेरहवीं धारा यह थी कि यदि दोनों सन्धिकारी राजों (प्रशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और अमेरिका) में से एकसे किसी तीसरे राजसे लड़ाई छिड़ जाय और दूसरे सन्धिकारी राजके जहाजोंपर शत्रुकी सहायताके लिये ऐसी चीज़ें (जैसे गोला बारूद, शस्त्र इत्यादि) लदकर जाती हों जिनको पहुंचाना युद्धके समयमें मना है तो वह जहाज़ जब्त न किये जाकर युद्धकी मीयाद भर केवल रोक लिये जायं। तेईसवीं धारा * यह थी कि यदि सन्धिकारी राजोंमें कभी आपसमें ही युद्ध छिड़ जाय तो एक दूसरेके व्यापारी जहाजोंको न जब्त करेंगे, न लूटेंगे, न नाश करेंगे और न उनके व्यापारमें विघ्न डालनेका प्रयत्न करेंगे। लिखी जानेके समय ये शर्तें अपवाद स्वरूप ही होती हैं पर यदि प्रधान राज इनपर चलने लग जायं तो काल पाकर नियम अपवाद और अपवाद नियम हो जायगा।

अर्थ-द्योतक सन्धियां

जैसा कि नामसे ही प्रकट है इस प्रकारकी सन्धियां कोई नया नियम नहीं बनातीं। इनका उद्देश्य प्रचलित नियमोंको स्पष्ट कर देना है। ऐसा बहुधा होता है कि सभ्य राज कुछ नियमोंका पालन करते आते हैं पर उन नियमोंका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। यह काम अर्थद्योतक सन्धियां करती हैं। कभी कभी इस विषयमें मतभेद होता है कि अमुक अवस्थाके लिये कौन सा नियम उपयुक्त है। ऐसी दशामें यदि कुछ राज मिलकर स्पष्ट शब्दोंमें नियमोंको लिख डालते हैं तो उनका यह लेख अर्थद्योतक सन्धि ही समझा जाता है क्योंकि उसके द्वारा अस्पष्ट प्रचलित नियमोंकी स्पष्ट व्याख्या हो जाती है।

इस प्रकारकी सन्धियोंका पहिला उदाहरण १८३७ में मिलता है। उस साल रूस और डेन्मार्कमें एक सन्धि हुई जिसे प्रथम

---

* १८५१ के बाद यह धारा नहीं दुहरायी गयी। पहिली सन्धिकी मीयाद १८५१ में पूरी हुई थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सशस्त्र तटस्थता * कहते हैं। इसमें युद्धके समय तटस्थ राष्ट्रोंके अधिकार स्पष्ट किये गये हैं। उसकी कुछ धाराएं इस प्रकार हैं—

(१) युद्ध करनेवाले राष्ट्रोंके समुद्र-तटोंपर और उनके नौ-स्थानोंमें सभी जहाज जा सकते हैं।

(२) युद्ध करने वाले राजोंकी प्रजाओंकी सम्पत्ति तटस्थ राजोंके जहाजोंपर से ज़ब्त न की जायगी; इत्यादि।

हम ऊपर हेगके अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलनोंका उल्लेख कर आये हैं। इनमें भी प्रायः पूर्व प्रचलित नियमोंका स्पष्टीकरण, वर्गीकरण और संग्रह किया जाता था। कभी कभी इस प्रकारकी सन्धियोंसे एक और काम लिया जाता है। ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जब एक बलवान् राज किसी अल्प बलशाली राजको कुछ ऐसे नियमोंके माननेपर बाध्य करता है जो प्रचलित विधानके अन्तर्गत नहीं होते। नियम होते तो हैं नये पर छोटे राजकी प्रतिष्ठा बचानेके लिये उन्हें अर्थद्योतक सन्धिके रूपमें लिखते हैं जिससे यह प्रतीत हो कि यह नये नियम नहीं हैं प्रत्युत पुराने नियमोंकी व्याख्या मात्र हैं।

विधायक सन्धियां

यह नाम ही बतलाता है कि इस प्रकारकी सन्धियां नये नियम बनाती हैं। आजकल अन्ताराष्ट्रिय जीवन इतना जटिल हो गया है कि साधारण और प्रचलित नियम सर्वथा पर्य्याप्त नहीं होते। इसलिये समय समयपर नये नियमोंकी आवश्यकता पड़ती है। यह प्रायः निश्चय है कि नये नियमोंके बनाते समय सभी राजोंके प्रतिनिधि एकत्र नहीं होते पर यदि प्रमुख राज मिलकर कुछ नियमोंको बनायें और अन्य राज, कमसे कम अल्प

* Armed Neutr ty.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रमुख राज, उसका विरोध न करें तो वह काल पाकर सर्वमान्य हो जाता है।

इस प्रकारकी सन्धियोंके कई उदाहरण हैं। पहिले यह निश्चय नहीं था कि युद्धकालमें योद्धाओं और तटस्थोंमें समुद्रपर कैसा सम्बन्ध होना चाहिये अर्थात् योद्धाओंको तटस्थोंके साथ छेड़छाड़ करनेका कहांतक अधिकार है। संवत् १९१३ में पेरिस नगरमें एक सन्धि लिखी गयी जिसे पेरिसकी घोषणा* कहते हैं। इस घोषणाको इस विषयकी नियमावली कह सकते हैं [जो नियम निर्धारित हुए उनका यथास्थान आगे चलकर उल्लेख होगा]। इसपर पहिले पहिले ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया, सार्डिनिया और तुर्कीके हस्ताक्षर हुए। इसके बाद क्रमशः चालीस अन्य राजोंके हस्ताक्षर हो गये। पर अमेरिकाके संयुक्त राजने आजतक हस्ताक्षर नहीं किये। फिर भी जब जब काम पड़ा है वह इस घोषणाके अनुसार ही व्यवहार करता रहा है, इससे यह अनुमान होता है कि उसे भी यह नियम स्वीकार हैं।

कुछ ऐसी सन्धियां होती हैं जो नये नियम तो नहीं बनातीं पर इस प्रकारके नये निश्चय करती हैं जिनका प्रभाव अन्ताराष्ट्रिय जगत्पर पड़े विना नहीं रह सकता। इनको भी सुविधाके लिये विधायक सन्धियोंके ही अन्तर्गत मानते हैं। १९३५ में बर्लिनकी सन्धिके द्वारा सर्बिया, माण्टिनीग्रो और रूमानिया तुर्क साम्राज्यसे निकालकर स्वतंत्र कर दिये गये। यद्यपि संधिमें थोड़े से राज ही सम्मिलित थे पर उनके इस निश्चयका प्रभाव सारे अन्ताराष्ट्रिय जगत्पर पड़ा। इसलिये उस संधिको विधायक संधि कह सकते हैं। महासमरके पश्चात् यूरोपमें जो संधियां हुई हैं वह प्रायः सब इसी ढंगकी हैं।

---

*The Declaration of Paris (1856).

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब किसी राजके सामने कोई ऐसा अन्ताराष्ट्रिय प्रश्न आता है जिसकी व्यवस्थाके विषयमें उसका मंत्रिमण्डल स्वयं निर्णय करनेमें असमर्थ होता है तो वह अपने देशके प्रख्यात शास्त्रियों अर्थात् विधानशास्त्रके ज्ञाताओंसे सम्मति लेता है। यह विद्वान्लोग जो व्यवस्था देते हैं उसका मानना अनिवार्य्य तो नहीं होता पर अपने देशके ही शास्त्रियोंसे सम्मति माँगकर फिर उसका तिरस्कार करना भी सुकर नहीं होता। यदि वह राज भी जिससे विवाद चल रहा हो इस सम्मतिको मानले तब तो वह सम्मति और भी मान्य हो जाती है। निष्पक्ष विद्वानोंकी सम्मतियोंका यही महत्त्व है कि अधिकांश राज उन्हें मान लेते हैं।

शास्त्रियोंकी व्यवस्था

यदि दो राजोंमें किसी विषयमें मतभेद हो जाय तो उसे दूर करनेके दो ही मार्ग हैं, युद्ध या समझौता। समझौता कभी कभी तो आपसकी लिखा-पढ़ीसे हो जाया करता है पर बहुधा नहीं भी होता। तब दोनों राज मिलकर किसी तीसरे राजको या तीन चार राजोंको पञ्च मान लेते हैं। उस पञ्चायतके निर्णयको दोनों पक्ष मान लेते हैं। युद्धके पीछे राष्ट्रसंघने तो एक अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय ही स्थापित कर दिया है। यद्यपि इन न्यायालयोंके सामने विशेष विशेष प्रश्न ही आते हैं पर इनके निर्णयोंमें बहुधा सिद्धान्तकी बातें रहती हैं। यह ठीक वैसी ही बात है जैसे कि साधारणतः हाईकोर्ट और प्रिवीकौंसिलके न्यायाधीशोंके महत्त्वपूर्ण निर्णय भविष्यत्के लिये प्रमाण (नज़ीर) हो जाते हैं।

अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायतोंके निर्णय

युद्धके समय कई बड़े जटिल प्रश्न उपस्थित होते हैं। प्रत्येक राजको शत्रुके जहाजोंको पकड़ लेने और उन परकी सारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पत्तिको ज़ब्त करलेनेका अधिकार होता है । विशेष अवस्थाओंमें, जिनका उल्लेख आगे होगा, शत्रु के अतिरिक्त तटस्थ राज्योंके जहाज़ भी पकड़े जाते हैं । पकड़ने वाले जहाज़ इन्हें अपने देश लाते हैं । वहां एक विशेष न्यायालय युद्धकालके लिये बैठाया जाता है जिसे सामरिक न्यायालय कहते हैं । इस न्यायालयको इन मामलोंका निर्णय करना पड़ता है । काम बड़ा टेढ़ा होता है । एक ओर न्याय और अन्ताराष्ट्रिय विधानके अस्पष्ट नियम होते हैं, दूसरी ओर अपने देशको युद्धमें फंसा देख कर यह भाव स्वतः होता है कि जो उसके विरोधमें खड़ा हो या विरोधियोंको सहायता दे उसे कड़ा दण्ड दिया जाय, पर जो निष्पक्ष न्यायाधीश होते हैं उनके निर्णय स्वभावतः निर्भीक होते हैं । ऐसे न्यायाधीश अपने देशकी सर्कारके विरुद्ध निर्णय करनेमें भी सङ्कोच नहीं करते । ऐसे निर्णय स्वभावतः अन्य देशोंमें भी प्रमाण स्वरूप हो जाते हैं ।

सामरिक न्यायालयोंके निर्णय

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं अन्ताराष्ट्रिय प्रश्नोंका सबसे प्रामाणिक निर्णय सन्धियों द्वारा होता है । सन्धियां प्रायः प्रकाशित की जाती हैं अतः उनके तात्पर्यसे सभी परिचित हो जाते हैं । राज्योंके पत्र-व्यवहारके लिये साधारणतः यह नियम उपयुक्त नहीं है । यह पत्र-व्यवहार प्रायः विशेष प्रश्नोंके सम्बन्धमें होता है जिनसे अन्य लोगोंसे कोई सम्बन्ध नहीं होता । इस लिये वह प्रायः प्रकाशित भी नहीं किया जाता । यदि प्रकाशित किया भी जाय तो उसका महत्व केवल ऐतिहासिक होगा । पर कभी कभी ऐसे प्रश्न उठ आते हैं जिनमें कोई सिद्धान्त अन्तर्गत होता है । ऐसे पत्र-व्यवहारके प्रकाशित हो जानेसे उस सिद्धान्तपर

राज्योंके पत्र-व्यवहार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाश पड़ता है। इसके कई उदाहरण हैं। जर्मनीके सम्राट् षष्ठ चार्ल्स ने कुछ अंग्रेज़ महाजनोंसे ऋण लिया था और उसे चुकानेके लिये उन्होंने साइलीशिया प्रान्तकी वार्षिक आयका एक भाग नियत कर दिया। संवत् १७९९ में यह प्रान्त प्रशाके नरेश फ्रेडरिकके हाथमें आया। उसने भी यह वचन दिया कि ऋण पूर्ववत् चुकाया जाता रहेगा। यह बात दस वर्ष तक रही। इस बीचमें प्रशा और इंग्लैण्डमें कुछ अनबन हो गयी और अंग्रेज़ोंने प्रशाके कुछ जहाज़ ज़ब्त कर लिये। फ्रेडरिककी सम्मतिमें यह अन्याय था और उन्होंने इसके बदले अंग्रेज़ महाजनोंका ऋण देना बन्द कर दिया। इसपर बहुत कुछ पत्र-व्यवहार चला। अंग्रेज सर्कारकी ओरसे यह दिखलाया गया कि राजोंकी अनबनके कारण महाजनोंको क्षति पहुंचाना अनुचित है। प्रशाकी सर्कारने भी अन्तमें इस तर्कको स्वीकार कर लिया। साइलीसियन ऋणका प्रश्न तो १८१३ में सन्धि द्वारा तय हो ही गया पर जिस सिद्धान्तपर अंग्रेज़ोंने आग्रह किया था उसे अन्य राजोंने भी स्वीकार कर लिया और इस पत्र-व्यवहारको अन्ताराष्ट्रिय जगत्में एक नये विधानको प्रचलित करनेका श्रेय प्राप्त हो गया।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके एक आधारका उल्लेख शेष है। अभीतक जितने आधारोंका ज़िक्र किया गया है उनमें प्रायः दो या तीन राजोंके सहयोगकी आवश्यकता है। कभी कभी एक राज भी विधानमें प्रामाणिक परिवर्तन कर सकता है। जितने नियम हैं वह सब एक साथ तो बने हैं नहीं। ज्यों ज्यों आवश्यकता प्रतीत हुई त्यों त्यों नियम बनते गये। युद्धके समय शत्रुके जहाजोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इस विषयमें कोई ठीक

राजोंके द्वारा दिये गये निर्देश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियम न थे। १७१८ में फ्रेञ्च सर्कारने अपने जहाजोंके लिये कुछ नियम बनाये। यह नियम इतने अच्छे प्रतीत हुए कि अन्य राजोंने भी इन्हें मान लिया। इसी प्रकार १९२० में अमेरिकन सर्कारने अपनी सेनाके लिये कुछ नियम बनाये। यह नियम भी शीघ्र ही सर्वमान्य हो गये। यह तो स्पष्ट ही है कि किसी एक राजका अपने भृत्योंके नाम भेजा हुआ निर्देश स्वतः कोई अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व नहीं रखता पर जब अन्य नियमोंके अभावमें दूसरे दूसरे राज भी उस निर्देशके अनुसार व्यवहार करने लग जाते हैं तो वह निर्देश-कोटिसे निकल कर अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक अंग हो जाता है।

ऊपर जिन सात आधारोंका उल्लेख किया गया है उन्हींपर अन्ताराष्ट्रिय विधानकी भित्ति खड़ी है, पर यह बात कदापि न भूलना चाहिये कि अन्ताराष्ट्रिय विधान अन्य विधानोंसे भिन्न है। उसके साथ अभी तक कोई निश्चित दण्डधर नहीं है। उसके नियमोंका पालन इस लिये होता है कि बहुत से नियम बुद्धिसंगत हैं अतः उनको माननेमें सुविधा होती है और उनको मानना सभ्यताका परिचायक समझा जाता है। यह डर रहता है कि जो राज इन नियमोंकी उद्दण्ड अवहेलना करेगा उससे सारा सभ्य जगत् असन्तुष्ट होकर एक प्रकारका असहयोग करने लग जायगा। फिर भी जो राज अपनेको बलवान् समझता है वह लोकमतकी भी उपेक्षा कर बैठता है। सब नियम धरे ही रह जाते हैं पर बलशाली राज अपनी मनमानी कर डालते हैं। इतना अवश्य है कि आज कल धीरे धीरे लोकमत प्रबल होता जाता है। स्यात् कभी ऐसा भी समय आ जाय जब कोई उसके विरुद्ध आचरण करनेका साहस न कर सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँचवाँ अध्याय।

दौत्य।

यह एक बड़ा ही रोचक विषय है। प्राचीन कालसे ही एक राजसे दूसरे राजमें दूत भेजनेकी प्रथा चली आती है। जङ्गली जातियों तकको इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है। दूत सर्वत्र अवध्य माना गया है। प्राचीन कालमें और जङ्गली जातियोंमें भी परराजसे आये हुए दूतको मारना घृणित कार्य्य समझा जाता था।

जिस प्रकार मनुष्योंका काम बिना एक दूसरेसे मिलेजुले नहीं चल सकता उसी प्रकार राजोंके लिये भी एक दूसरेसे सम्पर्क और संसर्ग रखना आवश्यक और अनिवार्य्य होता है। जिन व्यक्तियों-के द्वारा यह सम्बन्ध स्थापित और प्रचलित होता है अर्थात् जो व्यक्ति इस कामके लिये राजोंके प्रतिनिधि होते हैं उन्हें दूत कहते हैं। आर्य्यकालमें एक राजसे दूसरे राजमें दूत

प्राचीन आर्य काल

भेजनेकी बराबर प्रथा थी। कभी कभी दूत शब्दके अन्तर्गत 'चार' का भी अर्थ ले लिया जाता है पर दोनोंमें बड़ा अन्तर है। 'चार' गुप्त रूपसे भेष बदल कर भेद लेने जाता था। वह छिपा जासूस था। वह यह नहीं कहता था कि मैं अमुक राजका भेजा हुआ हूं। उसके पकड़े जानेपर उसको भेजनेवाला राज भी उसकी रक्षाके लिये कोई प्रकट प्रयत्न नहीं करता था। परन्तु दूतकी यह बात न थी। वह स्पष्ट रूपसे आता जाता था। उसके लिये यह नियम था—'अविज्ञातो दूतः परस्थानं न प्रविशेन्निर्गच्छेद्वा'* अर्थात् बिना बतलाये हुए, दूत न तो परस्थानमें प्रवेश करे, न परस्थानसे

---

* इस अध्यायमें जो गद्य सूत्र दिये गये हैं वह श्रीमत्सोमदेव सूरिके 'नीति वाक्यामृतम्'से लिये गये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाहर निकले। यह हम ऊपर कह चुके हैं कि दूत था। इस विषयमें यह स्पष्ट निर्देश था 'तेषामस्त्यावसायिनोऽप्यवध्याः' अर्थात् यदि चाण्डालादि दूत बनकर आये हों तो वह भी अवध्य हैं।

दूतके हाथमें स्वभावतः बड़ा अधिकार होता था। मनु भगवान् कहते हैं, 'दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्' तथा 'दूते संधिविपर्य्ययौ' अर्थात् दूत ही बिगड़े हुओंको मिलाता और मिले हुओंको बिगाड़ता है। दूतके ही हाथमें संधि और विपर्य्यय है।

दूतकर्मके लिये प्रत्येक मनुष्य उपयुक्त नहीं हो सकता। इतने दायित्वका काम सबके हाथमें नहीं सौंपा जा सकता। मनुने दूतके यह लक्षण बतलाये हैं—

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित्।
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥

राजाका दूत अनुरक्त, शुचि, दक्ष, स्मृतिमान्, देशकालका ज्ञाता, सुन्दर शरीर वाला, निर्भय और सुवक्ता होना चाहिये। यही बात अन्यत्र इस प्रकार कही गयी है—'स्वामिभक्तिरव्यसनिता दाक्ष्यं शुचित्वममूर्खता प्रागल्भ्यं प्रतिभावत्वं क्षान्तिः परमर्मवेदित्वं जातिश्चेति प्रथमा दूतगुणाः' अर्थात् स्वामिभक्ति, व्यसनोंसे मुक्त होना, चतुरता, पवित्रता, अमूर्खता, सुवक्ता होना, तीव्र बुद्धि, क्षान्ति, दूसरेका रहस्य समझना और जाति—यह दूतके प्रथम गुण हैं।

अधिकार-भेदसे दूत कई प्रकारके होते थे। जिस दूतको सन्धि-विग्रहादिका पूरा अधिकार होता था वह 'निसृष्टार्थ' कहलाता था, जिसे कुछ विशेष काम ही सौंपे जाते थे वह परिमितार्थ कहलाता था*।

* बँगला विश्वकोषमें 'युक्तिकल्पतरु' के आधारपर तीन प्रकारके दूत कहे गये हैं 'निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारकः'। जो अपने
ऊ अपने स्वामीकी आज्ञाका प्रतिपालन करे वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब बौद्धकालमें भारतका यूनान; चीन आदिसे सम्बन्ध हुआ तो उन देशोंसे भी दौत्यसम्बन्ध स्थापित हुआ। चन्द्रगुप्तके दर्बार में पलक्षके यूनानी नरेश सेल्यूकसका भेजा हुआ दूत मेगस्थनीज़ कई बरस रहा था।

मुसल्मानी कालमें दो प्रकारके राजदूत होते थे। जो स्वतंत्र देशोंसे आते थे वह तो 'एलची' कहलाते थे और जिनको अधीन हिन्दू नरेश अपने प्रतनिधि स्वरूप सम्राट्के दर्बारमें छोड़ जाते थे वह 'वकील' कहलाते थे। यह नरेश एक दूसरेके दर्बारमें जो दूत भेजते थे वह भी वकील ही कहलाते थे। आजकल भी कई देशी नरेशोंके वकील अंग्रेज सर्कारकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। इन बेचारोंको राजदूत कहना इस शब्दकी हँसी उड़ाना है। कुछ राज अब भी आपसमें वकील भेजते हैं।

राजदूतका काम (मध्ययुगीय यूरोपमें)

यूरोपमें दूत भेजनेकी प्रथा निश्चित रूपसे लगभग छः सौ वर्षसे निकली है। पहिले पहिले राजदूत थोड़े दिनोंके लिये और किसी विशेष कार्य्यके लिये नियुक्त किये जाते थे। उस कामके हो जाने पर वह अपने देश लौट जाते थे। सबसे पहिले फ्रांसके ग्यारहवें लुई (१५१८–१५४०) ने परराजोंमें स्थायी रूपसे दूत भेजे। इन दूतोंको उन देशोंमें रहकर वहांका सारा वृत्त लुईके पास भेजना पड़ता था। वस्तुतः इनका वही काम था जो आर्य्यकालमें 'चारों' का होता था। भेद केवल इतना था कि चार

'विसृष्टार्थ' जो अपना काम पूरा करनेके बाद चुप हो जाय, उत्तर–प्रत्युत्तर न करे, वह मितार्थ और जो लिखित पत्रादि ले जाय वह शासनहारक है। कौटिल्यने अमात्यके गुणोंसे युक्त दूतको निसृष्टार्थ, चौथाई गुणोंसे हीन दूतको परिमितार्थ, और आधे गुणोंसे हीन दूतको शासनहर माना है—सं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाहर निकले। यह हम ऊपर कह चुके हैं कि दूत अवध्य होता था। इस विषयमें यह स्पष्ट निर्देश था 'तेषामन्त्यावसायिनोऽप्यवध्याः' अर्थात् यदि चाण्डालादि दूत बनकर आये हों तो वह भी अवध्य हैं।

दूतके हाथमें स्वभावतः बड़ा अधिकार होता था। मनु भगवान् कहते हैं, 'दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्' तथा 'दूते संधिविपर्य्ययौ' अर्थात् दूत ही बिगड़े हुओंको मिलाता और मिले हुओंको बिगाड़ता है। दूतके ही हाथमें संधि और विपर्य्यय है।

दूतकर्मके लिये प्रत्येक मनुष्य उपयुक्त नहीं हो सकता। इतने दायित्वका काम सबके हाथमें नहीं सौंपा जा सकता। मनुने दूतके यह लक्षण बतलाये हैं—

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित्।
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥

राजाका दूत अनुरक्त, शुचि, दक्ष, स्मृतिमान्, देशकालका ज्ञाता, सुन्दर शरीर वाला, निर्भय और सुवक्ता होना चाहिये। यही बात अन्यत्र इस प्रकार कही गयी है—'स्वामिभक्तिरव्यसनिता दाक्ष्यं शुचित्वममूर्खता प्रागल्भ्यं प्रतिभावत्वं क्षान्तिः परमर्मभेदित्वं जातिश्चेति प्रथमा दूतगुणाः' अर्थात् स्वामिभक्ति, व्यसनोंसे मुक्त होना, चतुरता, पवित्रता, अमूर्खता, सुवक्ता होना, तीव्र बुद्धि, क्षान्ति, दूसरेका रहस्य समझना और जाति—यह दूतके प्रथम गुण हैं।

अधिकार-भेदसे दूत कई प्रकारके होते थे। जिस दूतको सन्धि-विग्रहादिका पूरा अधिकार होता था वह 'निसृष्टार्थ' कहलाता था, जिसे कुछ विशेष काम ही सौंपे जाते थे वह परिमितार्थ कहलाता था*।

* बँगला विश्वकोषमें 'युक्तिकल्पतरु' के आधारपर तीन प्रकारके दूत कहे गये हैं 'निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारकः'। जो अपने 'कार्यकाल' में केवल अपने स्वामीकी आज्ञाका प्रतिपालन करे वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब बौद्धकालमें भारतका यूनान, चीन आदिसे सम्बन्ध हुआ तो उन देशोंसे भी दौत्यसम्बन्ध स्थापित हुआ। चन्द्रगुप्तके दर्बार-में बलक्षके यूनानी नरेश सेल्यूकसका भेजा हुआ दूत मेगस्थ-नीज़ कई बरस रहा था।

मुसल्मानी कालमें दो प्रकारके राजदूत होते थे। जो स्वतंत्र देशोंसे आते थे वह तो 'एलची' कहलाते थे और जिनको अधीन हिन्दू नरेश अपने प्रतिनिधि स्वरूप सम्राट्के दर्बारमें छोड़ जाते थे वह 'वकील' कहलाते थे। यह नरेश एक दूसरेके दर्बारमें जो दूत भेजते थे वह भी वकील ही कहलाते थे। आजकल भी कई देशी नरेशोंके वकील अंग्रेज सर्कारकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। इन बेचारोंको राजदूत कहना इस शब्दकी हँसी उड़ाना है। कुछ राज अब भी आपसमें वकील भेजते हैं।

यूरोपमें दूत भेजनेकी प्रथा निश्चित रूपसे लगभग छः सौ वर्षसे निकली है। पहिले पहिले राजदूत थोड़े दिनोंके लिये और किसी विशेष कार्य्यके लिये नियुक्त किये जाते थे। उस कामके हो जाने पर वह अपने देश लौट जाते थे। सबसे पहिले फ्रांसके ग्यारहवें लुई (१५१८–१५४०) ने परराजोंमें स्थायी रूपसे दूत भेजे। इन दूतोंको उन देशोंमें रहकर वहांका सारा वृत्त लुईके पास भेजना पड़ता था। वस्तुतः इनका वही काम था जो आर्य्यकालमें 'चारों' का होता था। भेद केवल इतना था कि चार

राजदूतका काम (मध्ययुगीय यूरोपमें)

'विसृष्टार्थ', जो अपना काम परा करनेके बाद चुप हो जाय, उत्तर-प्रत्युत्तर न करे, वह मितार्थ और जो लिखित पत्रादि ले जाय वह शासनहारक। कौटिल्यने अमात्यके गुणोंसे युक्त दूतको निसृष्टार्थ, चौथाई गुणोंसे हीन दूतको परिमितार्थ, और आधे गुणोंसे हीन दूतको शासनहर माना है—सं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुप्त रहते थे, यह दूत प्रकट थे। लुईने इनको आज्ञा दे रक्खी थी "यदि लोग तुमसे झूठ बोलें, तो तुम उनसे और अधिक झूठ बोला करो"। उस समयके राजदूतोंको देख कर ही एक लेखकने लिखा था "राजदूत उस व्यक्तिको कहते हैं जो अपने देशके हितके लिये विदेशमें झूठ बोलने भेजा जाता है"। * यद्यपि उपचार-दृष्टिसे आदर करना ही पड़ता था पर कोई राज पराये राजोंके दूतोंका अपने यहां बहुत दिनों तक टिकना पसन्द नहीं करता था। इसका प्रधान कारण यही था कि राजदूत जासूसी करनेके लिये ही नियुक्त होते थे। धीरे धीरे यह परिस्थिति बदली। अब तो एक राजमें अन्य राजोंके दूतोंका रहना एक साधारण बात हो गयी है।

दूतोंके भेद

यह स्मरण रखना चाहिये कि जिस समय यह प्रथा पहिले पहिले यूरोपमें निकली उस समय प्रायः सभी प्रधान और बलशाली देश नरेशाधीन थे। इसलिये जो दूत भेजा जाता था वह न केवल राजका वरन् नरेशका भी प्रतिनिधि होता था। उसको अपने नरेशकी प्रतिष्ठाके अनुसार ठाटबाटसे रहना पड़ता था। पीछेसे इसमें एक अड़चन पड़ने लगी। इस ठाटबाटसे काममें रुकावट पड़ने लगी। इसलिये दूतोंके दो भेद किये गये। एक तो वह जो नरेशकी व्यक्तिके प्रतिनिधि होत थे, दूसरे वह जो उसके व्यावहारिक प्रतिनिधि (अर्थात् राजके प्रतिनिधि) होते थे। पर इतनेसे भी काम न चला। इन दूतोंमें पौर्वापर्य्यका बड़ा झगड़ा रहता था। प्रत्येक दूत अपनी कुर्सी और अपनी सवारी औरोंसे आगे रखना चाहता

---

*An ambassador is a person who is sent to lie abroad for the benefit of his country—Sir Henry Wotton.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। इस बातके पीछे झगड़े हो जाते थे। प्रत्येक राज अपने दूतका पक्ष लेना चाहता था इसलिये इस बातके पीछे राजोंमें युद्ध छिड़नेका अवसर आ जाता था। १७१८ में लन्दनमें एक जलूस निकला। उसमें अपनी गाड़ी आगे रखनेके लिये फ्रांस और स्पेनके राजदूत लड़ पड़े। एक स्पेनवालेने फ्रेञ्च राजदूतके घोड़ोंके गलोंमें रस्सी डालकर फांसी लगा दी। उस समय तो स्पेनकी गाड़ी आगे निकल गयी पर समाचार पाते ही फ्रेञ्च नरेशने स्पेनसे युद्धकी ठान ली। अन्तमें हानिपूर्तिके लिये रुपया देकर स्पेनने पिण्ड छुड़ाया।

संवत् १८७२ में वियना नगरमें वियनाकी कांग्रेस नामी एक राजसभा हुई। उसमें भिन्न भिन्न राजोंके प्रतिनिधि दूतोंका पौर्वापर्य्य एकत्र हुए थे। उस समय राजदूत निम्नलिखित तीन वर्गोंमें बाँट दिये गये—

(क) निःशेष दूत* और नंशिओ†—यह लोग नरेश‡ की व्यक्ति और राज—दोनोंके प्रतिनिधि होते थे।

(ख) मितार्थदूत ¶, विशिष्ट दूत† इत्यादि।

(ग) उपदूत §।

यह नियम कर दिया कि 'क' वर्गवाले 'ख' वर्ग वालोंसे और 'ख' वर्ग वाले 'ग' वर्ग वालोंमे ऊपर होंगे। यदि किसी स्थानमें एक ही वर्गके द तीन दूत हों तो उनमें जो अधिक कालसे आया हुआ हो वह ऊपर हो।

---

*Ambassadors. † Nuncio=पोपके दूत।

‡ नरेशके स्थानमें अब अध्यक्ष कहना चाहिये, चाहे वह नरेश हो चाहे राष्ट्रपति।

¶ Envoys .† Ministers Plenipotentiary

§ Charges d' Affaires.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह वर्गीकरण भी सन्तोषप्रद न निकला। 'ख' वर्गमें अड़चनें पड़ीं। ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस उस समय महाशक्ति गिने जाते थे। इनको नियमानुसार आगे पीछे होनेमें तो कोई आपत्ति न थी पर छोटे राजोंके पीछे जाना इन्हें स्वीकार न था। कभी कभी ऐसा होता था कि किसी राजके दर्बारमें एक तो किसी छोटे राजका बहुत दिनोंसे आया हुआ 'ख' वर्गका दूत और एक किसी महाशक्तिका थोड़े दिनोंसे आया हुआ 'ख' वर्गीय दूत होता था। अब नियमानुसार उस छोटे राजके दूतको ऊपर बैठना चाहिये पर महाशक्तियां इसमें अपना अपमान समझती थीं। उनको सन्तुष्ट करनेके लिये १८७५ में एक्सला शैपेलकी कांग्रेस-में पुनः वर्गीकरण हुआ। उसने पुराने 'ग' वर्गको 'घ' बनाकर एक नया 'ग' वर्ग बनाया। इस नये वर्ग और 'ख' वर्गके अधिकारादिमें कोई भेद नहीं है। है तो इतना ही कि 'ख' में महाशक्तियोंके और 'ग' में छोटे राजोंके प्रतिनिधि होते हैं।

वर्तमान वर्गीकरण इस प्रकार है—

(क) निःशेष दूत और नंशिओ।

(ख) मितार्थ दूत, विशिष्ट दूत इत्यादि।

(ग) परिमितार्थ दूत।*

(घ) उपदूत†

राजोंमें बराबरीका ही व्यवहार रहता है अर्थात् वह एक दूसरेके यहाँ बराबर वर्गके ही दूत भेजते हैं। 'क' वर्गवाले दूतोंको प्रतिष्ठा स्वभावतः अधिक होती थी। पहिले तो यह प्रथा थी कि जब किसी देशमें किसी परराजका 'क' वर्गका दूत आता

---

*Resident Ministers.

†वक्तव्य—अन्य वर्गोंके दूत तो जिस देशमें जाते हैं उसके अध्यक्षके पास भेजे जाते हैं, पर 'घ' वर्ग वाले उस देशके परराज-सचिवके पास जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था तो उसका स्वागत बड़े समारोहके साथ किया जाता था। अब यह प्रथा उठ गयी है। उनको यह भी अधिकार था कि जिस राजमें भेजे गये हों उसके अध्यक्षसे भेंट कर सकें। अब प्रायः सभी वर्गोंके दूतोंको यह अधिकार प्राप्त है। इससे अब कोई विशेष लाभ भी नहीं है क्योंकि अब अध्यक्षसे मिलनेसे ही राजकार्य्य नहीं हो सकते। यह अधिकार तब उपयोगी था जब नरेश अध्यक्ष हुआ करते थे।

दूत भेजनेका अधिकार

यह तो नहीं कहा जा सकता कि कोई राज इस बातके लिये बाध्य है कि वह परराजोंके दूतोंको अवश्य ही अपने यहां स्थान दे पर पारस्परिक सौजन्य यही है कि स्वतंत्र राजोंके दूत एक दूसरेके यहां रहें। बड़े राजोंका तो इसके बिना काम ही नहीं चल सकता और छोटे राज इसमें अपना गौरव समझते हैं। जब कोई राष्ट्र स्वतंत्र होता है तो उसका पहिला प्रयत्न यह होता है कि बड़े बड़े राजोंसे उसका दौत्य-सम्बन्ध स्थापित हो जाय। अभी हालकी ही बात है कि अफ़गानिस्तान अंशतः ब्रिटिश सर्कारके अधीन था। स्वतंत्र होते ही उसने प्रयत्न करके फ्रांस, अमेरिका, इटली इत्यादिसे दौत्य-सम्बन्ध स्थापित किया।

दूतको हटा लेना या बिदा कर देना

एक बार स्थापित हो जानेके बाद यह सम्बन्ध बराबर जारी रहता है। किसी राजसे अपने दूतको हटा लेना उस राजसे अप्रसन्नताका सूचक माना जाता है। यह हो सकता है कि कभी किसी आकस्मिक घटनाके कारण कोई राज थोड़े दिनोंके लिये अपना दूत किसी अन्य राजसे हटा ले फिर भी कोई विशेष आपत्ति न हो पर ऐसा बहुत कम होता है। १८६० में सर्बियामें एक छोटी सी क्रान्ति हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि सर्बियन नरेश अलेग्जैण्डर मारे गये। इसके बाद खूनियोंमें-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से कुछ लोगोंको उच्च सरकारी पद मिले। इससे रुष्ट होकर सभी बड़े राजोंने सर्वियासे अपने दूत हटा लिये। इससे सर्वियाकी क्षति हुई क्योंकि वह सभ्य समाजमें अछूत सा हो गया। जब फिर यह अपराधी लोग पदच्युत कर दिये गये तब जाकर सम्बन्ध फिर स्थापित हुआ। ब्रिटेनने १८६३ में फिर दूत भेजा।

परन्तु सर्विया छोटा देश है। उससे और राजोंका विशेष काम नहीं रहता। इस लिये उसके साथ तीन वर्ष तक अप्रसन्नता दिखलाना सम्भव था। बड़े राजोंके विषयमें ऐसा नहीं हो सकता। उनका पारस्परिक व्यवहार बहुत दिनों तक अनिश्चित रूपमें नहीं रह सकता। उनमें या तो खुलकर लड़ाई ही होती है या शान्ति ही रहती है। इस लिये प्रचलित प्रथा यह है कि जब दो राजोंमें वैमनस्य इतना बढ़ जाता है कि शान्तिसे काम चलनेकी आशा नहीं रह जाती तो एक राज दूसरेके दूतको बिदा कर देता है। इसका अर्थ यही है कि अब युद्ध छिड़ेगा। कभी कभी भेजने वाला राज अपने दूतको आप ही बुला लेता है। सन्धि हो चुकनेके बाद पहिला काम इस सम्बन्धका पुनः स्थापन करना होता है।

किसी दूतविशेषको स्वीकार न करनेका अधिकार

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह साधारण सम्बन्धके विषयमें था। राजोंको यह अधिकार सदैव प्राप्त है कि किसी मित्र राजके भेजे हुए किसी दूत विशेषको, जिसका आचरण उन्हें पसन्द न हो, अपने यहाँ न आने दें। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। १९४२ में अमेरिकन सर्कारने काइली नामक एक सज्जनको इटलीमें दूत बना कर भेजा। इसके पहिले यह एक बार किसी सार्वजनिक सभामें इस आशयका व्याख्यान दे चुके थे कि इटलीका वह भाग जो पोपके अधीन है उनके अधीन ही रहने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देना चाहिये। इस भाषणके कुछ ही दिनोंके बाद इटलीकी सर्कारने बलप्रयोग द्वारा पोपके सारे शासनाधिकार छीन लिये थे। अब श्रीयुत काइलीकी नियुक्तिपर उसने इसलिये आक्षेप किया कि वह उसकी आभ्यन्तर नीतिकी विरोधपूर्ण आलोचना कर चुके थे। उसके आक्षेपपर काइली महाशयका जाना रुक गया।

इसी प्रकार यदि किसी राजदूतका आचरण अनुचित हो तो वह लौटाया भी जा सकता है। १९४५ में लार्ड सैक्विल अमेरिकामें इंग्लैण्डके राजदूत थे। उस साल वहां राष्ट्रपतिका चुनाव होनेवाला था। राजदूतको ऐसे आभ्यन्तर प्रश्नोंसे पृथक् रहना चाहिये। यह तो उसका कर्तव्य है कि स्वदेशके हितकी दृष्टिसे उन सब बातोंको ध्यानपूर्वक देखता रहे जो उस राजमें हो रही हों जहां वह भेजा गया हो पर उसे स्वयं किसी दल या वर्गका पक्ष न लेना चाहिये। सैक्विलने एक व्यक्तिको एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने एक वर्गविशेषके साथ सहानुभूति प्रकट की। वह पत्र था तो निजी अतः उसको प्रकाशित करना सरासर अशिष्टता थी पर जिसके नाम लिखा गया था उसने उसे छपवा ही दिया। इससे उनका एक वर्गका साथ देना सिद्ध हो गया। १० कार्तिक (२७ अक्तूबर) को अमेरिकन सर्कारने ब्रिटिश सर्कारको इस आशयका तार दिया सैक्विल लौटा लिये जायं। उसने उनके दोषका प्रमाण मांगा। प्रमाण मिल जाने पर ब्रिटिश सर्कारने उनको लौटाया ही नहीं वरन् निकाल भी दिया।

यदि किसी राजसे यह प्रार्थना की जाय कि आपके दूतका आचरण सन्तोषजनक नहीं है, इसे लौटा लीजिये तो वह इस प्रार्थनाको स्वीकार करनेके लिये बाध्य नहीं है। पहिले उसे दूतके अपराधका प्रमाण मिलना चाहिये। पर बिना पुष्ट प्रमाणके ऐसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रार्थना की ही नहीं जाती। इसी प्रकार, उधरसे आग्रह होनेपर भी अपने दूतको न हटाना अच्छा नहीं है। दूत वहाँ भले ही जमा रहे पर जब उससे उस देशके मंत्रिगण सब प्रकारका सम्बन्ध परित्याग करके असहयोग ही कर लेंगे तो वह वहांपर रहकर ही क्या कर लेगा। इसलिये ऐसी प्रार्थनाएँ प्रायः स्वीकार ही कर ली जाती हैं। वस्तुतः ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं।

दूतोंके आने और जानेके समयके उपचार

दूतोंके आने और जानेके समय कई प्रकारके उपचार बरते जाते हैं। पहिले इन उपचारोंकी संख्या बहुत अधिक थी पर अब इनमेंसे कई छोड़ दिये गये हैं। जब कोई व्यक्ति दूत नियुक्त होता है तो सबसे पहिले उसको अपने यहाँसे निर्देश पत्र मिलते हैं जिनमें उसे यह बतलाया जाता है कि उसे जाकर क्या क्या करना होगा। सबसे महत्वका वह काग़ज़ होता है जिसे अधिकार-पत्र* कहते हैं। यदि दूत 'क' 'ख' या 'ग' वर्गका हो तो पत्र भेजनेवाले राजके अध्यक्षकी ओरसे दूसरे राज (अर्थात् जहां दूत जायगा) के अध्यक्षके नाम होता है, पर यदि यह अध्यक्ष स्थायी नरेश न होकर कुछ कालके लिये चुना गया राष्ट्रपति हो तो पत्र उसके नाम नहीं प्रत्युत उसके राजके ही नाम जाता है। 'घ' वर्गके दूतोंके लिये परराज-सचिव परराज-सचिवके नाम पत्र भेजता है। इन पत्रोंमें दूतका नाम, उसकी उपाधि और उसके भेजे जानेका उद्देश्य लिखा रहता है और यह प्रार्थना रहती है कि उसके साथ सद्व्यवहार किया जाय और उसकी बातोंपर पूरा पूरा विश्वास किया जाय। जो दूत किसी एक विशेष उद्देश्यसे भेजे जाते हैं, अर्थात् जो किसी एक कामको समाप्त करके लौट आनेके लिये जाते हैं, उनको एक अधिकार-पत्र दिया जाता है जिसे उनका

* Letter of Credence or Credentials.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्णाधिकार ❀ कहते हैं। इसपर भेजनेवाले राजके अध्यक्ष और परराज-सचिव दोनोंके हस्ताक्षर होते हैं। जब किसी स्थानपर कोई अन्ताराष्ट्रिय परिषद् एकत्र होती है उस समय जो राज-प्रतिनिधि आते हैं वह अपने साथ जो अधिकार-पत्र लाते हैं वह सामान्य पूर्णाधिकार-पत्र† होते हैं। यह किसी व्यक्तिविशेषके नाम नहीं लिखे होते। सब प्रतिनिधि एक दूसरेके पत्र देख लेते हैं। इन पत्रोंके अतिरिक्त प्रत्येक दूतको एक निर्देश पत्र‡ दिया जाता है। इसमें उसे यह बतलाया रहता है कि उसे किस अवसरपर किस प्रकार काम करना होगा। इन सबके साथ उसे एक यात्राधिकार (पास-पोर्ट ||) भी मिलता है। इसमें उसका नाम और पदवी लिखी होती है ताकि मार्गमें किसी देशमें उसके साथ किसी प्रकारकी रोक टोक न की जाय।

राजधानीमें पहुंच कर दूत अपने पहुंचनेकी सूचना परराज-सचिवको देता है और यदि वह 'घ' वर्गका है तो उससे मिलनेकी प्रार्थना करता है। यदि वह ऊपरके तीनों वर्गोंका है तो राजके अध्यक्षसे मिलनेका अधिकारी है। 'क' वर्ग वालोंका स्वागत खुले दर्बारमें होता है, शेष दोनों वर्गवाले एकान्तमें मिलते हैं। भेंट होने पर वह अपना अधिकारपत्र पेश करता है और दोनों ओरसे सौहार्द-सूचक छोटी छोटी वक्तृताएं होती हैं। यही उपचार लौटते समय होता है। उस अवसरपर उसे वह पत्र पेश करना पड़ता है जिसमें उसके अध्यक्षकी ओरसे उसे स्वदेश लौटनेकी आज्ञा दी गयी होती है। पहिले ऐसे अवसरोंपर लौटते हुए दूतोंको कुछ भेंट देनेकी प्रथा थी पर अब यह उठ सी गयी है। यदि भेजनेवाले देशका या जिस देशमें दूत भेजा गया है उस देशका अध्यक्ष नरेश हो तो उसकी मृत्युपर नये दूतकी नियुक्ति (या पुराने दूतकी पुनर्नियुक्ति)

❀ Full Powers.

† General Full Powers. ‡ Instructions. || Pass-port.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती है। प्रजातंत्रोंके लिये यह नियम नहीं है। यदि दूतकी वार्गिक उपाधि बढ़ जाय अर्थात् यदि वह किसी नीचेसे ऊपर वर्गमें रख दिया जाय तब भी वही सब उपचार होते हैं जो नयी नियुक्तिके समय होते हैं। भेंटके समय वह अपने एक पदसे बुलाये जाने और दूसरेपर नियुक्त होनेके पत्र साथ ही साथ पेश करता है।

राजदूतोंको अपने कर्तव्यके पालन करनेमें कई प्रकारकी सुविधाओंकी आवश्यकता होती है। इस लिये उनको कई प्रकारके विशेषाधिकार प्राप्त हैं। यह अधिकार दो प्रकारके होते हैं—

राजदूतोंके विशेषाधिकार

(क) शरीर सम्बन्धी (ख) सम्पत्ति सम्बन्धी।

(क) शरीर-सम्बन्धी विशेषाधिकार।

पहिला अधिकार यह है कि दूत चाहे जिस धर्म्मको माने, उसे इस बातका अधिकार है कि अपने आवासस्थानमें अपने धार्म्मिक विचारोंके अनुसार उपासना करे। पर उसको अपनी उपासना निजी रूपसे करनी चाहिये, सार्वजनिक रूपसे नहीं और यदि वह धर्म्म उस देशमें, जहां वह भेजा गया है, निषिद्ध है तो उपासनाके समय उस देशके निवासियोंको न उपस्थित रहने देना चाहिये। मान लीजिये किसी देशमें मुसल्मानी धर्म्म निषिद्ध है। यदि वहां कोई मुसल्मान दूत पहुंच जाय तो उसे नमाज़ पढ़नेका पूरा अधिकार होगा पर नमाज़के समय उस देशके किसी निवासीको न आने देना होगा और अज़ान देकर नमाज़की सार्वजनिक सूचना न देनी होगी।

दूत अवध्य तो होता ही है वह स्थानीय कानूनकी परिधिके भी बाहर माना जाता है। वह किसी दीवानी या फौजदारी अपराधके लिए पकड़ा नहीं जा सकता। उसपर किसी प्रकारका अभियोग नहीं चल सकता। साक्ष्य देनेके लिये भी उसे न्यायालयमें जाने-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर विवश नहीं कर सकते। पर यदि वह स्वयं किसीपर अभियोग चलाये तो उसे न्यायालयमें जाना ही होगा। कई अवसरोंपर न्यायमें सहायता देनेके लिये राजदूत स्वतः अपनी इच्छासे साक्ष्य दे जाते हैं। अग्राह्यताके लिये भी एक अपवाद है। यदि दूत उस राजके विरुद्ध, जिसके पास वह भेजा गया है, कोई षड्यन्त्र करे तो वह पकड़ा जा सकता है पर पकड़ कर भी उसे दण्ड नहीं दिया जाता प्रत्युत स्वदेश लौटा दिया जाता है। पर बिना अति पुष्ट प्रमाण और अत्यन्त अनिवार्य्य आवश्यकताके ऐसा न करना चाहिये।

इसी प्रकारके अधिकार दूतकी स्त्री और बच्चों, पुजारी और प्राइवेट सेक्रेटरी तथा निजी भृत्योंको भी प्राप्त हैं क्योंकि यह माना गया है कि इनका अस्तित्व दूतके आरामके लिये आवश्यक है। पर दूतके पिता, माता, भाई इत्यादि इस कोटिमें नहीं आते। १७५० में इंग्लैण्ड-स्थित पुर्तगाली दूतके भाई डान पन्तेलिअन लाने एक अंग्रेजकी हत्या कर डाली। अंग्रेज सर्कारने उसे पकड़वाया और हत्या सिद्ध होनेपर फांसी दी। नौकरोंके लिये किसी किसी देशमें तो यह प्रथा है कि उनपर दीवानी अभियोग नहीं चल सकता पर यदि वह दूतावासके बाहर कोई फौजदारी अपराध करें तो अभियोग चल सकता है। किसी किसी देशमें उन्हें दोनों प्रकारकी रुकावटोंसे स्वतंत्रता दी जाती है। ऐसी कठिनाइयां थोड़ी सी बुद्धिमत्तासे टल जाती हैं। समझदार दूत अपने नौकरोंपर दीवानी अभियोग चलानेकी आप ही अनुज्ञा दे देते हैं ताकि पुलिस उन्हें पकड़ सके।

अपने आवासस्थानके भीतर दूतको कई अधिकार प्राप्त होते हैं। वह स्वदेशवासियोंके दस्तावेजोंकी रजिस्टरी करता है और उनके विवाहादि भी स्वदेशी प्रथाके अनुसार कराता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि उसके मातहतोंमें छोटे फौजदारी या दीवानी झगड़े हों तो उनका निर्णय करता है और बड़े मामलोंकी मिसिल तैयार करके वादी प्रतिवादीको न्यायके लिये स्वदेश भेज देता है। इस विषयमें मतभेद है कि दूतोंको न्याय करने और दण्ड देनेका कहां तक अधिकार है। पहिले उनके अधिकार बहुत विस्तृत थे पर अब ऐसा नहीं है।

(ख) सम्पत्ति-सम्बन्धी विशेषाधिकार।

जब पहिले पहिले स्थायी दूत भेजे जाने लगे तो यह कहा गया कि दूतका आवासस्थान, जिसे यूरोपमें प्रायः होटेल कहते हैं, उसके स्वदेशका एक टुकड़ा है। आजकल इतना बड़ा अधिकार तो नहीं मांगा जाता पर यह नियम है कि बिना किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारणके किसी दूतके आवासमें स्थानीय पुलिस प्रवेश नहीं कर सकती। यदि किसी गम्भीर अपराधके लिये उसके किसी भृत्यको पकड़ना ही हो तो पहिले दूतको सूचना दे कर उससे अनुज्ञा ले ली जाती है। दूतकी सम्पत्ति किसी कारणसे कुर्क नहीं हो सकती, न ऋण आदिके परिशोधमें नीलाम करायी जा सकती है। दूतके कामके लिये जो माल बाहरसे आता है उस-पर ज़कात या महसूल नहीं लगता। उसे किसी प्रकारका सर्कारी या म्युनिसिपल टिक्स नहीं देना पड़ता पर बहुधा दूत रोशनी, पानी, सफ़ाई आदिके म्युनिसिपल टिक्स आप ही दे देते हैं।

पहिले दूतोंको यह भी अधिकार था कि अपराधियों, विशेषतः राजनीतिक अपराधियों, को शरण दें पर अब यूरोपमें यह अधिकार जाता रहा है। हाँ एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिकामें यूरोपियन और अमेरिकन राजोंके दूत इस अधिकारसे काम लेते हैं। चीनमें आये दिन छोटी बड़ी क्रांतियां होती रहती हैं और क्रान्तिकारी भाग कर दूतावासोंमें शरण लेने चले जाते हैं। इससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ तो लाभ होता है क्योंकि जिन देशोंकी शासनपद्धति अव्यवस्थित हो उनमें राजनीतिक आन्दोलनकारियों और देशभक्तोंकी रक्षाका यही एकमात्र साधन होता है पर इसमें यूरोपियन राजोंकी कुछ न कुछ चाल भी होती है। वह शरण देनेका प्रलोभन देकर राजमें दलोंको उभाड़ा और एक दूसरेसे भिड़ाया करते हैं।

वकील

एक राज दूसरे राजमें जिन प्रतिनिधियोंको भेजता है वह सबके सब राजदूत ही नहीं होते। एक और प्रकारके प्रतिनिधि भी होते हैं जो दूतोंके किसी भी वर्गमें नहीं आ सकते क्योंकि इनके कर्तव्य और अधिकार दूतोंसे सरासर भिन्न होते हैं। इन प्रतिनिधियोंको वकील* कहते हैं। वकीलोंके भी कई भेद होते हैं। इनका प्रधान् काम अपने देशके व्यापारको सहायता देना है। व्यापारियोंको स्थानीय नियमोपनियमोंके पालन करनेमें सहायता देना, नाविकोंको सहायता देना, स्वदेशवासियोंकी स्थानीय न्यायालयोंमें रक्षा करना, उनको यात्रा करनेकी सुविधाएं दिलवाना, उनके कानूनी काग़ज़ोंकी रजिस्टरी करा देना—यही उनके काम हैं। उनको समय समयपर स्थानीय व्यापारी और आर्थिक दशापर रिपोर्ट भेजना पड़ता है। प्रत्येक वकील एक नगर या अन्य परिमित क्षेत्रके लिये नियुक्त होता है। जिस देशमें वह रहता है वहांका परराजविभाग उसे एक अनुज्ञापत्र † देता है। इसके आधारपर वह स्थानीय शासकोंसे पत्रव्यवहार कर सकता है।

वकीलको वह सब विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते जो दूतको

---

* Consul.—यह इस शब्दका पारिभाषिक प्रयोग है। जैसा कि आरम्भमें लिखा जा चुका है, मुसल्मानी कालमें वकील एक प्रकारका राजदूत ही होता था।

† Exequatur

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं। वह पकड़ा भी जा सकता है, उसकी सम्पत्ति भी कुर्क हो सकती है। वह किसीको शरण नहीं दे सकता। उसे इतनी ही सुविधा होती है कि उसे अपने आवासके लिये टिकस नहीं देना पड़ता और उसके सर्कारी कागज़ ज़ब्त नहीं किये जाते।

कभी कभी सन्धि द्वारा वकीलोंको इससे अधिक अधिकार भी दे दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, एशिया और अफ्रीकाके दुर्बल राजोंमें वकीलोंके भी बहुतसे विशेष अधिकार होते हैं। उनके स्वदेशवासियोंके किये अपराधोंका निर्णय उनके ही यहां होता है, स्थानीय न्यायालयोंमें नहीं। उनको शरण देनेका भी अधिकार प्राप्त है और उनके आवासोंमें बिना अनुज्ञा पाये स्थानीय अधिकारी प्रवेश नहीं कर सकते। इन सब बातोंका केवल एक कारण है—इन प्राच्य राजोंकी दुर्बलता। जापान सबल है इस लिये उससे कोई ऐसी शर्तें नहीं कर सकता।

वकीलोंके गमनागमनका कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। बहुधा तो कोई बड़ा व्यापारी नियुक्त कर दिया जाता है। कभी कभी तो ऐसा होता है कि जिस देशमें वकील भेजना होता है उसी देशके किसी विश्वस्त निवासीको यह काम सौंप दिया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

25 March, 1954

Pravachan Shahrud

Bilkull Sahin

Sahityobhushan

Bihar

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय खण्ड—सन्धि-कालीन विधान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहिला अध्याय।

स्वातन्त्र्यसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य।

हम स्वातन्त्र्यकी परिभाषा पहिले भी कर आये हैं। बिना किसी अन्य राजके दबावके अपने सारे बाह्य और आभ्यन्तर कामोंको सम्पादित करनेके अधिकारको स्वातन्त्र्य कहते हैं। इस परिभाषा और प्रभुत्वकी परिभाषा में विशेष अन्तर नहीं है। वस्तुतः जो राज पूर्णप्रभु है वह स्वतन्त्र है। अन्ताराष्ट्रिय विधानके सारे पात्र पूर्णप्रभु अर्थात् स्वतन्त्र होते हैं।

स्वातन्त्र्यका अर्थ और उसका स्वरूप

स्वातन्त्र्य शब्दके तात्विक अर्थपर भी थोड़ा सा विचार कर लेना आवश्यक है। साधारणतः स्वतन्त्रका अर्थ होता है 'अपने मनका'। यह समझ लिया जाता है कि जो स्वतन्त्र है वह जो चाहे सो कर सकता है। यह भी कहा जाता है कि स्वाधीनता मनुष्यका नैसर्गिक अधिकार है।

स्वातन्त्र्यका तात्विक अर्थ

यदि यह बात सच है तो फिर वही मनुष्य स्वतन्त्र हो सकता है जो संसारके और सब मनुष्योंसे पृथक् और दूर रहता हो। पर जो सबसे पृथक् रहता है वह मनुष्योंके से हाथ पांव शरीर रखते हुए भी मनुष्य नहीं है। जैसा कि कार्लाइलने कहा है 'जो एकान्तवासको पसन्द करता है वह या तो देवता है या पशु है।' यह सच है। या तो ब्रह्मीभूत ऋषि मुनि और देवकल्प तपस्वीगण ही पूर्णतया एकान्तवासी हो सकते हैं या पशुवदाचारी पागल। पर इन दोनों कोटिके मनुष्योंका साधारण मनुष्योंसे बहुत कम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधर्म्य है। जङ्गलमें वधिक लोग प्रायः ग्राम बना कर नहीं रहते। पर जहां केवल दो प्राणी—स्त्री और पुरुष—भी साथ रहते हैं वहाँ वह मनमानापन जाता रहता है। एकको दूसरेका लिहाज़ करना ही पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि दो प्राणियोंके साथ रहनेसे भी पूर्ण स्वातन्त्र्यका लोप हो जाता है। पर मनुष्य-का स्वभाव ऐसा है कि वह बिना कुटुम्ब, बिना समाज, बनाये रह ही नहीं सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य कभी पूर्ण-तया मनमाना अर्थात् पूर्णतया स्वतन्त्र रह ही नहीं सकता।

यदि हम स्वातन्त्र्यका अर्थ 'मनमानापन' कर लें तो हम उपर्युक्त विचित्र परिणामपर पहुंचते हैं। वस्तुतः हमारी परिभाषा ही अयुक्त है। यह असन्दिग्ध है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह भी निश्चय है कि समाजमें मनमानापन चल नहीं सकता। ऐसी दशामें यह कहना पड़ेगा कि स्वातन्त्र्य मनुष्यका नैसर्गिक गुण होनेके स्थानमें उसकी प्रकृतिके विरुद्ध है और मनुष्य तब ही स्वतन्त्र हो सकता है जब वह अपनी स्वाभा-विक सामाजिकता त्याग कर अमनुष्य बन जाय। ऐसी उलटी बात न कह कर हम यह कहेंगे कि "अपनी शक्ति और मनःप्रवृत्तिके अनुसार अपनी इच्छाओंको तुष्ट करनेके उस अधिकारको स्वातन्त्र्य कहते हैं जिसकी सीमा यह है कि हम दूसरोंके इसी प्रकारके अधिकारमें विघ्न न डालें।" सबकी ही इच्छाएँ हैं और सभी अपनी अपनी इच्छाओंको पूरा करना चाहते हैं। यदि सब मनमाना काम करें तो किसीकी कोई इच्छा पूरी न हो और निरन्तर मात्स्य-न्याय युद्ध लगा रहे। इसलिये यदि इच्छाओंकी पूर्ति करनी है तो इस प्रकार काम करना चाहिये कि हम एक दूसरेके मार्गमें बाधा न डालें। यह बात पृथक् पृथक् रहनेसे सिद्ध न होगी क्योंकि बहुत सी इच्छाएं ऐसी हैं जिनकी पूर्ति समाजके सिवाय हो ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं सकती। फिर भी लोग आपसमें टकरा ही जाते हैं। इसी लिये 'राज' और 'दण्ड' की सृष्टि हुई है। एवं-विशिष्ट परिमित मनमानापन ही सच्चा स्वातंत्र्य है और यह स्वातन्त्र्य नर-समाजके भीतर ही सम्भव है। जो समाजके बाहर है वह स्वतन्त्र नहीं है।

जो नियम मनुष्योंके लिये लागू हैं वही नर-समूहों अर्थात् राष्ट्रों और राजोंके लिये लागू हैं। सम्भव है किसी घने जंगलमें या किसी टापूपर बस्तीसे सैकड़ों कोस दूर कुछ मनुष्य रहते हों। उनका समुदाय एक राज होगा। वह चाहे जैसे विधान बनाये, चाहे जैसी शासन-पद्धति रक्खे, अपने द्वीपमें चाहे जो करे। उसपर किसी दूसरेका दबाव नहीं है। पर इस राजको हम स्वतन्त्र नहीं कह सकते। इसकी अवस्था उन अल्पप्रभु राज्ञोंसे भिन्न नहीं है जो आभ्यन्तर शासनमें स्वाधीन हैं। जब किसी बाहर वालेसे सरोकार ही नहीं है, फिर स्वातन्त्र्य कैसा ? कारण भिन्न होते हुए भी प्रत्यक्ष फल यही देख पड़ता है कि ऐसा द्वीपस्थ राज अल्पप्रभु राजोंकी भाँति अन्य राजोंसे किसी प्रकार-का सम्बन्ध नहीं रखता। जब वह राज-समाजमें सम्मिलित होगा उस समय दो बातें होंगी। वह अपने मनमाने ढङ्गसे रहना पसन्द कर सकता है पर मनमाने ढङ्गसे रहनेका जितना अधिकार उसे है उतना ही अन्य राजोंको भी है। परिणाम यह होगा कि जहाँ सभी मनमाने ढङ्गसे रहना चाहेंगे वहां किसीके भी मनकी बात न होगी। 'मन'की कई बातें ऐसी हैं जो बिना मन मारे, बिना औरोंसे मिलकर रहे, बिना समाजका अङ्ग बने, पूरी हो ही नहीं सकतीं। अतः अपने हितकी दृष्टिसे ही उसे निरन्तर लड़ाई, निरन्तर मनमानापन, से हाथ खींचना पड़ेगा। इसी अवस्थामें, जब कि मनमानापनमें कुछ कमी हो जाती है, स्वातंत्र्य देख पड़ता है। यहां भी स्वातंत्र्यकी वही परिभाषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करनी चाहिये जो ऊपर व्यक्तियोंके लिये की गयी है। वस्तुतः स्वतंत्र राज वही है जो अपनी इच्छा और शक्तिके अनुसार व्यवहार करता है पर इस बातको नहीं भूलता कि अन्य राजोंको भी ठीक वैसा ही अधिकार है। इस जगत्में अन्य किसी प्रकारका स्वातंत्र्य सम्भव नहीं है। अतः जब कहीं स्वातंत्र्यका उल्लेख हो तो यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वातंत्र्य और मनमानापनका एक ही अर्थ नहीं है वरन् मनमानापनको त्याग कर ही स्वातन्त्र्यका सुख मिलता है।

व्यक्ति और समाजमें एक बड़ा भेद है जो ध्यान देने योग्य है। जैसा हम ऊपर कह आये हैं व्यक्तियोंके हितोंमें संघर्ष हो ही जाता है पर राज इस संघर्षको मिटाता है। ऐसे किसी समयके ऐतिहासिक अस्तित्वका पता नहीं चलता जब कि मनुष्योंमें किसी प्रकारका राज रहा ही न हो। जबसे मनुष्य हैं तबसे ही राज है क्योंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः राजका अस्तित्व मनुष्यकी प्रकृतिका एक अनिवार्य्य परिणाम है। इसीसे बहुत से दार्शनिक और प्रायः सभी धर्मशास्त्र राजसत्ताको दैवी मानते हैं। पर राजोंके लिये यह बात नहीं है। राजोंमें भी हितसंघर्ष होता है पर अभी तक सिवाय लड़नेके उसको मिटानेका और कोई उपाय नहीं रहा है। कई बड़े बड़े बहुदेशशासक नरेश हो गये हैं पर आज तक कोई ऐसा सार्वभौम नहीं हुआ जो सब राजोंका शासन करे। यह एक कविकल्पना ही रही। सम्भव है राष्ट्रसंघके ढंगकी कोई संस्था यह स्थान आगे चल कर ले पर यह संस्था एक प्रकारसे कृत्रिम ही होगी या यों कहिये कि राज तो मनुष्यकी मूल प्रकृतिका परिणाम है परन्तु राष्ट्र (या राज) संघकी उत्पत्ति उसको संस्कृत प्रकृतिसे होती है। अस्तु, यह सब कहनेका तात्पर्य्य यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि यद्यपि हमने परिभाषा यह की है कि बिना किसी अन्य राजके दबावके अपने सारे बाह्य और आभ्यन्तर कामोंको सम्पादित करनेके अधिकारको स्वातन्त्र्य कहते हैं पर कई दबाव ऐसे हैं जो स्वातन्त्र्यके अन्तर्गत हैं। बिना उन दबावोंके स्वातंत्र्य ही नहीं हो सकता। शुद्ध स्वेच्छाचार स्वातंत्र्यका रूप होना तो दूर रहा उसका बाधक है क्योंकि वह उस सामाजिकता, उस संहतिभाव, का विरोधी है जो मनुष्यताका एक प्रधान लक्षण और स्वातंत्र्यका उपयुक्त क्षेत्र है।

प्रभुराजोंके स्वनिर्मित वन्धन

यह तो तात्विक बात हुई। समय समयपर पूर्णप्रभु राज अपनी स्वाधीनताको आप भी किसी किसी अंशमें बद्ध कर देते हैं। यह बन्धन सुविधाकी दृष्टिसे होते हैं और इनसे उन राजोंके स्वातन्त्र्य या प्रभुत्वमें कोई ह्रास नहीं होता। इस प्रकारके बन्धन सन्धियों द्वारा स्वीकार किये जाते हैं। ऐसी सन्धियोंके कई उदाहरण हैं। हम नीचे उस सन्धिसे कुछ अंश उद्धृत करते हैं जो १९०७ में ब्रिटेन और अमेरिकामें इस विषयमें हुई थी कि इन दोनोंमें से कोई भी मध्य अमेरिकामें अपना राज्य न बढ़ावे। इस सन्धिको बहुधा क्लेटन-बुलवर सन्धि कहते हैं।

प्रथम धारा

संयुक्त राज और ग्रेटब्रिटेनकी सर्कारें यह बात घोषित करती हैं कि दोमें से एक भी उक्त सामुद्रिक नहरपर अपना एकाकी अधिकार न कभी प्राप्त करेगी न स्थापित करेगी; दोमें एक भी उसके किनारे या आस पास किसी प्रकारकी किलाबन्दी न बनवायेगी, न स्थापित करेगी, न निकाराग्युआ, कॉस्टारिका, मस्कीटो कोस्ट या दक्षिण अमेरिकाके किसी भागपर अपना राज्य स्थापित करेगी—इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार १९६४ में ब्रिटेन, फ्रांस और स्पेनमें इस प्रकार-की सन्धि हुई कि इन तीनों राजोंका भूमध्य सागरमें उस समय जितना जितना राज्य था उसमें वृद्धि करनेका प्रयत्न न किया जाय। १९४३ में ब्रिटेन और जर्मनीने सन्धि-द्वारा यह निश्चय किया कि प्रशान्त महासागरके किस भागमें कौन अपना राज्य तथा प्रभाव बढ़ावे। जब भारतमें अंग्रेज़ आये थे उस समय उनसे देशी राजों-से इस प्रकारकी कई सन्धियां हुई थीं।

स्वनिर्मित बन्धनोंसे तो स्वातंत्र्यमें कमी नहीं होती पर कभी कभी स्वतन्त्र राजोंपर अन्य बलवान् राजों द्वारा भी बन्धन डाल दिये जाते हैं। इन बन्धनोंसे वास्तविक स्वातन्त्र्य और प्रभुत्वमें निःसन्देह कुछ कमी पड़ती है पर जब तक उस राजको बिना परायी मध्यस्थताके अन्ताराष्ट्रिय जगत्‌में व्यवहार करनेका अधिकार रहता है तब तक व्यवहारमें उसे स्वतन्त्र ही गिनते हैं। ऐसे बन्धन प्रायः युद्धके पीछे विजेताके द्वारा विजितपर डाले जाते हैं। गत महासमरके बाद जर्मनी, आस्ट्रिया, तुर्की आदि पर बड़े बड़े बन्धन डाले गये। तुम्हारी सेनामें इतनेसे अधिक सिपाही न होने पावें, पुलिसमें इतनेसे अधिक मनुष्य न हों, इतनेसे अधिक सैनिक जहाज मत रखना, अमुक अमुक समुद्रमें तुम्हारे जहाज न रहने पावेंगे, तुम अमुक अमुक शर्तोंपर ही व्यापार कर सकोगे, इत्यादि।

प्रभुराजोंके पर-निर्मित बन्धन

ऐसी शर्तें बहुत दिनों तक निभतीं नहीं। इतिहासमें इसके कई उदाहरण हैं। १८६५ में नैपोलियनने प्रशाको यह शर्त मान-नेपर विवश किया कि प्रशाकी सेनामें ४०,००० से अधिक सैनिक न रहेंगे। प्रशाने शर्त तो मान ली पर उसे एक ऐसी युक्ति सूझी जिसके आगे नैपोलियनकी नीति निष्फल हो गयी। प्रशन नरेशने पहिले ४०,००० सैनिक रक्खे। जब यह लोग काम सीख गये तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनको पृथक् करके नये ४०,००० भर्ती किये गये, इनके बाद फिर तीसरे ४०,००० की बारी आयी। क्रमशः सारे देशके युवक सैनिक शिक्षा पा गये पर कागजपर सेना ४०,००० ही रही। ब्रिटिश सर्कारने इस घटनासे लाभ उठाया है। उसने देशी राजोंकी सेनाओंको सीमाबद्ध करनेके साथ साथ उनसे यह भी शर्त कर रक्खी है कि कोई ऐसी युक्तिः न की जायगी जिससे सभी नवयुवक रणशिक्षा प्राप्त कर लें। इसी प्रकार १९१३ में पेरिसकी सन्धिकी १३ वीं धारा द्वारा रूस और तुर्की इस बातके लिये विवश किये गये कि कृष्णसागरमें न तो सैनिक जहाज रक्खें न उसके तटपर शस्त्रागार या किले बनवावें पर १९२८ में यह धारा तोड़ दी गयी। गत महायुद्धकी सन्धियाँ भी टूट रही हैं। अभी जर्मनी, आस्ट्रिया इत्यादि तो दुर्बल हैं पर तुर्कोंने यूरोपियन राजोंके छक्के छुड़ा दिये हैं और उन सब शर्तोंको जो उनके स्वातन्त्र्यमें बाधा डाल रही थीं रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया है।

जब स्वातन्त्र्यका यह अर्थ ही है कि एक राज दूसरेके दबावमें न हो तो यह भी स्पष्ट है कि एक राजको दूसरेके कामोंमें किसी प्रकारकी छेड़छाड़ न करनी चाहिये। युद्धकी अवस्था तो अस्वाभाविक है। उसका उद्देश्य, या कमसे कम परिणाम, यही होता है कि दूसरेके स्वातन्त्र्यमें बाधा डाली जाय। पर इस अस्वाभाविक अवस्थाको छोड़ कर प्रत्येक राजको दूसरे राजोंके स्वातन्त्र्यको अपने स्वातन्त्र्यके समान ही पवित्र और अखण्ड्य मानना चाहिये। इस सिद्धान्तकी एक निष्पत्ति यह है कि एक राज दूसरेके राज्यमें किसी प्रकारका अधिकार नहीं रखता। दूसरेके राज्यमें किसी प्रकारका अधिकार स्थापित करनेका प्रयत्न करना अमैत्रीका सूचक माना जाता है। एक उदाहरणसे

एक राजका दूसरेके राज्यमें अधिकाराभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो हम भारतवासियोंके लिये विशेषतः रोचक है, यह बातें भली भाँति समझमें आ जायंगीं।

१९६६ में विनायक सावरकर पर राजद्रोहका अभियोग चलाया गया। किसीने मुज़फ्फ़रपुरके जज श्री किंग्सफोर्डके धोखेमे श्री केनेड की पत्नी और कन्या को मार डाला। उसी वर्ष नासिकके मजिस्ट्रेट श्री जैक्सन भी मार गये। इन हत्याओंके लिये उत्तेजना देने, इनकी प्रशंसा करने तथा सर्कारके प्रति अशान्ति फैलानेके अपराधमें सावरकर बन्धु तथा लोकमान्य तिलकपर अभियोग चला। गणेश वरकरको आजन्म कालापानी और लोकमान्यको ६ वर्ष कारावासका दण्ड दिया गया। विनायक सावरकर उन दिनों इंग्लैण्डमें थे। वह वहांसे पकड़ कर भारतलाये गये। मार्गमें जहाज फ्रांसके मार्सेल्ज़ नौस्थानमें ठहरा। सावरकर उसपरसे कूद पड़े और तैर कर नगरमें पहुंचे। जहाज वालोंने फ्रेञ्च पुलिसको सूचना दी। सावरकर पकड़ कर उनको सौंपे गये। भारतमें आकर उन्हें भी कालापानीका दंड मिला। इसके बाद फ्रेञ्च सर्कारने यह आरोप किया कि जब सावरकर एकबार फ्रांसकी भूमिपर पहुंच गया तो फिर वह विना फ्रेञ्च सर्कारकी आज्ञाके नहीं पकड़ा जा सकता था और न अंग्रेजी जहाजको सौंपा जा सकता था। ऐसा करना फ्रांसके प्रभुत्वके विरुद्ध हुआ अतः सावरकर एक बार फ्रेञ्च सर्कारको लौटा दिया जाय और फिर उससे उसे सौंपनेकी प्रार्थना की जाय। ब्रिटेनने इसका विरोध किया। अन्तमें १९६७ में हेगकी अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायतने ब्रिटेनके पक्षमें निर्णय किया। उसने कहा कि यह भूल अवश्य हुई कि फ्रांससे नियमित प्रार्थना नहीं की गयी पर सावरकरको फ्रेञ्च पुलिसने ही पकड़ा और अंग्रेजोंके सपुर्द किया। अंग्रेजोंने उसे स्वयं नहीं पकड़ा अतः उन्होंने फ्रेञ्च प्रभुत्वके विरुद्ध जान बूझ कर कोई काम नहीं किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वातंत्र्यका तो यह अर्थ ही है कि एक राज दूसरेके ऊपर दबाव न डाले क्योंकि जिसपर दबाव डाला जायगा या यों कहिये कि जिसे दबावमें पड़कर काम करना होगा उसको स्वतंत्र कह ही नहीं सकते पर व्यवहारमें कभी कभी इस सिद्धान्तकी अवहेलना भी हो जाती है। एक राज दूसरे राजके ऊपर दबाव डालता है और सारा जगत् जानता है कि दूसरा राज दबावमें पड़कर काम कर रहा है फिर भी उसके स्वातंत्र्यमें विच्छेद नहीं माना जाता।

हस्तक्षेप

इस प्रकारके दबाव डालनेको हस्तक्षेप* कहते हैं। हस्तक्षेप परामर्श देनेसे भिन्न है। एक राज दूसरे राजको मित्रभावसे सदैव सत्परामर्श दे सकता है और यह भी बहुधा होता है कि जो बात करनेकी इच्छा नहीं होती वह भी कभी कभी दूसरेके सुझानेसे की जाती है पर इसको दबाव नहीं कह सकते। मित्र किसी प्रकारकी धमकी नहीं देता। वह हितकी बात कह देता है, मानना न मानना हमारी इच्छापर निर्भर है। पर हस्तक्षेप इस प्रकारका परामर्श नहीं होता। हस्तक्षेप करनेवाला राज अवसर विशेषपर किसी विशेष आभ्यन्तर या बाह्य नीतिपर आग्रह करता है। उसके शब्द चाहे कैसे ही मधुर हों पर उनके भीतर एक धमकी होती है। यदि हमारी बात न मानी जायगी तो हम उसे बलात् मनवा लेंगे। जब बलात् मनवानेका समय आ जाता है तब तो युद्ध ही छिड़ पड़ता है पर उसके पहिले शान्तिकाल ही कहा जा सकता है।

हस्तक्षेपका सार है शक्ति या शक्तिप्रयोगकी धमकी। प्रायः होता यही है कि पहिले तो नीतिका निर्देश करके धमकी दी जाती है और फिर यदि वह नीति तत्काल न मानी गयी तो बलप्रयोग किया

* Intervention.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। अतः हस्तक्षेप और युद्धमें बहुत कम अन्तर होता है। इस लिये यह विषय बड़ा ही जटिल है और इसके सम्बन्धमें बहुत कुछ मतभेद है।

हस्तक्षेप कई अवसरोंपर और कई बहानोंसे किया जाता है। जो राज हस्तक्षेप करता है उसे ही अपने इस कामके लिये समुचित कारण दिखलाना पड़ता है ताकि लोकमत उसके विरुद्ध न हो जाय। जिसपर दबाव डाला जाता है उसकी भी विचित्र स्थिति होती है। जो राज हस्तक्षेप करता है वह प्रायः यही कहता है कि मैं इसके प्रभुत्वमें विघ्न नहीं डालना चाहता पर केवल इस एक बातमें हाथ डालनेके लिये विवश हूं। अतः जिसपर दबाव पड़ता है वह दूसरेकी इच्छाके अनुसार चलते हुए भी स्वतंत्र माना जाता है।

हस्तक्षेपका न्याय्य अवसर

बहुधा तो हस्तक्षेप केवल नीतिका परिणाम होता है पर कभी कभी उसका आधार न्याय्य होता है। यदि दो राजोंमें किसी प्रकारकी सन्धि हो गयी हो और उनमेंसे एक राज उसके विरुद्ध आचरण करता हो तो दूसरेको यह अधिकार है कि उसकी रक्षा करे। कभी कभी सन्धिमें ही हस्तक्षेप करनेका अधिकार दिया रहता है। संवत् १९५८ में संयुक्तराज और क्यूबामें एक सन्धि हुई थी जिसके अनुसार संयुक्तराजने क्यूबाके स्वातंत्र्यकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया था। १९६३ में क्यूबामें सशस्त्र विद्रोह हुआ। क्यूबन सर्कार उसका दमन न कर सकी। क्यूबाके राष्ट्रपतिने संयुक्त राजकी सर्कारको बार बार लिखा कि आकर शान्ति स्थापित कीजिये और स्वयं त्यागपत्र देने पर प्रस्तुत हुए। यदि दशा शीघ्र न सुधरती तो अपनी प्रजाओंकी रक्षाके लिये यूरोपियन राज सेनाएं भेजते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विवश होकर अमेरिकन राष्ट्रपति रूज़वेल्टने अमेरिकन नौसेना भेजी। उसके जाते ही विद्रोह शान्त हो गया। विद्रोहियोंने हथियार डाल दिये। राष्ट्रपतिने पदत्याग कर दिया। पर शासन ठीक न हुआ। नयी कांग्रेस (पार्लमेण्ट) बुलायी गयी पर लोग जान बूझकर न आये। तब विवश होकर एक अमेरिकन प्रान्ताधीश नियुक्त किया गया और थोड़ी सी अमेरिकन सेना रक्खी गयी। पर यह प्रबन्ध अस्थायी था। अमेरिकन सर्कारने स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा कर दी कि ज्यों ही क्यूबामें पार्लमेण्टका नया चुनाव हो जायगा और नयी सर्कार स्थापित हो जायगी, त्योंही अमेरिकन प्रबन्ध हटा लिया जायगा।

यह पूर्ण हस्तक्षेपका उदाहरण है। बलप्रयोगकी धमकी देना अनावश्यक था क्योंकि क्यूबन सर्कार आप ही हस्तक्षेप करनेकी प्रार्थना कर चुकी थी अतः बलप्रयोगके सिवाय कोई गत्यन्तर न थी। परन्तु हस्तक्षेप न्याय्य था क्योंकि १९५८ की सन्धिके अनुसार संयुक्त राजका कर्तव्य था कि वह क्यूबाके स्वातंत्र्यकी रक्षा करे। यदि हस्तक्षेप न किया जाता तो कोई यूरोपियन राज हस्तक्षेप करता ही। क्यूबाके स्वातंत्र्यमें कोई स्थायी क्षति इस लिये नहीं हुई कि अमेरिकन सर्कारने यह घोषित कर दिया कि नयी क्यूबन सर्कारके स्थापित होते ही अमेरिकन प्रबन्ध हटा लिया जायगा।

यदि कोई राज अन्ताराष्ट्रिय विधानके किसी सर्वसम्मत और आधारस्वरूप सिद्धान्तकी अवहेलना करे तब भी उसके साथ हस्तक्षेप करना न्याय्य समझा जायगा। इसका भी एक अच्छा उदाहरण मिलता है। १९५७ में चीनमें ईसाइयोंके विरुद्ध कुछ आन्दोलन चल पड़ा था जिसका फल यह हुआ कि एक अंग्रेज पादरी मारा गया। इस सम्बन्धमें चीन और ब्रिटिश सर्कारमें लिखापढ़ी हो ही रही थी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि दो और अंग्रेज़ पादरी मारे गये। उन्हीं दिनों चीनमें 'बाक्सरों' का ज़ोर था। बाक्सरका अर्थ है 'घूंसा मारनेवाला'। बाक्सर दलमें वह लोग थे जो चीनसे सारे विदेशियोंको निकाल देना चाहते थे। उन लोगोंने इस अवसरपर सिर उभारा, चुन चुन कर चीनी ईसाई तथा विदेशी मारे जाने लगे। इन लोगोंने चीनकी राजधानी पेकिंगके उस भागमें शरण ली जिसमें विदेशी राजदूत रहते थे। विद्रोहियोंने वहां भी पीछा न छोड़ा। ११ जूनको जापानी दूतावासका चांसलर और २० जूनको जर्मन राजदूत मारा गया।

अभी तक चीन सर्कार चुपचाप थी। २० जूनको स्वयं सर्कारी सेनाने विदेशी दूतावासोंपर गोले चलाये और एक घोषणा-द्वारा प्रजाको यह आज्ञा दी गयी कि सब विदेशी मार डाले जायँ। एक तो यह बड़ी मूर्खताका था क्योंकि ऐसा करके चीनने सारे सभ्य जगत्से लड़ाई मोल ले ली, दूसरे यह अन्तारराष्ट्रिय विधानके सर्वथा विरुद्ध था। जङ्गली तक दूतको अवध्य मानते हैं पर चीन सर्कारने दूतोंपर ही गोले चलवा दिये।

इस व्यवहारसे रुष्ट होकर ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, रूस, जापान, अमेरिका, आस्ट्रिया—हंगरी. इटली, हालैण्ड, वेलजियम और स्पेन-ने चीनपर आक्रमण किया। इस आक्रमणमें इनमें से कइयोंका और भी स्वार्थ था, इसमें सन्देह नहीं पर इनको बहाना अच्छा मिला था। दूतोंपर हाथ उठा कर चीनने सारे सभ्य जगत्को अपना शत्रु बना लिया था। भला वह इतने राष्ट्रोंसे क्या लड़ता, पांच छः महीनेके भीतर सारा युद्ध समाप्त हो गया। राजवंश तथा सर्कारने पेकिंग खाली कर दिया। शत्रु-सेनाका राजधानीपर कब्ज़ा हो गया। अन्तमें सन्धि हुई। चीनने १ अरब ३५ करोड़ रुपये कई किस्तोंमें हर्जानेमें देना स्वीकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया, कई चीनी उच्च कर्मचारियोंको फांसी तकका दण्ड दिया गया। पेकिंगके जिस भागमें विदेशी दूत रहते हैं उसमें उन्हें किलाबन्दी करनेका अधिकार दिया गया, इत्यादि।

यद्यपि चीनकी बहुत क्षति हुई और उसे बहुत अपमान सहना पड़ा पर विदेशी राजोंका इस अवसरपर हस्तक्षेप करना न्याय्य था। चिट्ठी-पत्रीका समय ही न था इस लिये हस्तक्षेपने धमकी की कक्षाका अतिक्रमण करके तत्काल बलप्रयोगका रूप धारण कर लिया।

दूसरेके अनुचित हस्तक्षेपको हटानेके लिये जो हस्तक्षेप किया जाता है वह भी न्याय्य होता है। १९१८ में ब्रिटेन, फ्रांस तथा स्पेनने मेक्सिकोमें कुछ सेना भेजी। कारण यह था कि मेक्सिकन सर्कारपर कुछ ऋण था जिसे चुकानेमें वह कुछ बहाना कर रही थी तथा कुछ और भी शिकायतोंके दूर करनेमें सुस्ती कर रही थी। यह तो खुला उद्देश्य था पर वस्तुतः फ्रांसकी और ही इच्छा थी। वह मेक्सिकोके आभ्यन्तर शासनमें हाथ डाला चाहता था। इस बातका पता लगनेपर ब्रिटेन और स्पेनने अपनी अपनी सेनाएं हटा लीं। अब फ्रांस अकेला रह गया। उसने मेक्सिकोमें एक नये सम्राट्को सिंहासनारूढ़ किया और स्वयं उसका रक्षक बना। यह सर्वथा अनुचित था। इसको दूर करनेके लिये अमेरिकाके संयुक्तराजने १९२२ में फ्रांससे बातचीत आरम्भ की। उसने फ्रांसको खुली धमकी दी कि यदि फ्रेञ्च सेना न हटायी गयी तो हम उसे हटानेके लिये बल-प्रयोग करेंगे। सब बातचीत गुप्त रक्खी गयी पर पीछेसे खुल गयी। फ्रांस युद्धके लिये तय्यार न था अतः फ्रेञ्च सम्राट्को अपनी सेना हटानेपर विवश होना पड़ा। १९२४ के वैशाखमें फ्रेञ्च सेनाने मेक्सिको खाली कर दिया। इस अवसरपर बल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। धमकीसे ही काम चल गया।

ऊपर जो तीन उदाहरण दिये गये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि अन्तारराष्ट्रिय विधान किस किस अवस्थामें हस्तक्षेपको न केवल क्षम्य वरन् वैध समझता है। पर यह सम्भव है कि कोई काम वैध होते हुए भी अनुचित और अन्याय्य हो। ऊपर क्यूबाका ही उदाहरण लीजिये। यदि क्यूबाकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके बहाने अमेरिका थोड़ी थोड़ी सी बातपर हस्तक्षेप करने लग जाय तो उसका यह कार्य वैध परन्तु अनुचित होगा।

क्या व्यक्ति, क्या समुदाय, आत्मरक्षा सबका ही अनिवार्य्य कर्त्तव्य है। 'आत्मानं सततं रक्षेत्' की नीति सर्वोपरि मानी गयी है। धर्म्मशास्त्रोंने आत्मरक्षाके लिये धर्म्मके प्रमुख सिद्धान्तोंमें अपवाद बनाकर आपद्धर्म्म स्थिर किये हैं। परन्तु व्यक्तियोंके लिये एक नियम है जो राजोंके लिये नहीं है। व्यक्तियोंकी रक्षाका भार राजपर होता है अतः बहुधा उनको निश्चिन्त रहना पड़ता है। फिर भी यदि कोई ऐसी घटना आ पड़े जब राज रक्षा न कर सके तो जो कुछ किया जाता है वह ठीक माना जाता है। स्त्री यदि अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये हत्या भी कर डाले तो वह क्षम्य मानी जाती है। राजोंके ऊपर कोई दूसरा रक्षक नहीं है, अतः उनको सदैव सावधान रहना पड़ता है।

आत्मरक्षाके लिये हस्तक्षेप

कभी कभी किसी राजको किसी पड़ोसी राजकी ओरसे आशंका हो जाती है कि यह हमारे ऊपर आक्रमण करनेकी तय्यारी कर रहा है या हमारे राज्यमें हस्तक्षेप करनेवाला है। ऐसी अवस्थामें भावी हस्तक्षेप या आक्रमणको रोकनेके लिये वह आप ही अग्रसर हो कर तय्यारीको रोक देता है। जो हस्तक्षेप करनेवाला है उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहां आपही हस्तक्षेप किया जाता है ताकि उसके दाँत तोड़ दिये जायं। यह तो निश्चय है कि साधारण सन्देहपर ऐसा नहीं करना चाहिये। जिसने देखनेमें अपनी कोई क्षति नहीं की उसके साथ छेड़छाड़ करना उचित नहीं है। अपने सन्देहको जगत्के सामने सहैतुक सिद्ध करना बड़ा कठिन होता है। यदि हस्तक्षेप किया भी जाय तो उतना ही जितना आत्मरक्षाके लिये अत्यन्त आवश्यक हो, उससे रत्ती भर अधिक नहीं। इस सम्बन्धमें अमेरिकाके एक भूतपूर्व सचिव श्रीवेबस्टरने कहा था कि जो राज हस्तक्षेप करे उसे यह प्रमाणित करना चाहिये कि 'उसकी आत्मरक्षाकी आवश्यकता तात्कालिक और अति प्रबल है और उसमें न तो साधनान्तरका स्थान है, न सोचनेका अवसर है' * और उसे कोई ऐसा काम न करना चाहिये 'जो अयुक्त या आवश्यकतासे अधिक हो क्योंकि जो काम आत्मरक्षाके नामपर किया जाय वह उस आवश्यकता तकही परिसीमित रहना चाहिये'।* १८६४ में ब्रिटेन और फ्रांसमें लड़ाई थी। रूस भी फ्रांसकी ओर था। उन दिनों डेन्मार्ककी नौसेना बहुत अच्छी थी। ब्रिटेनको पता चला कि डेन्मार्क उसके शत्रुओंसे मिल जानेवाला है। यदि डेन जहाज़ फ्रांसको मिल जाते तो उसका पक्ष बहुत प्रबल हो जाता। ब्रिटेनने यकायक एक बेड़ा डेन्मार्क भेजा और डेन सर्कारसे कहा कि अपने जहाज़ हमें दे दीजिये, हम युद्धके पीछे इन्हें ज्योंका त्यों लौटा देंगे। डेन सर्कारके नहीं करनेपर बल-

* 'A necessity of self-defence, instant, overwhelming and leaving no moment for deliberation,' 'nothing unreasonable or excessive, since the act justified by the necessity for self-defence must be limited by that necessity and kept clearly within it.'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयोग द्वारा बेड़ा छीन लिया गया और लड़ाई समाप्त होनेपर लौटाया गया। इस घटनाके सम्बन्धमें आज तक मतभेद चला आता है। एक पक्ष कहता है कि ब्रिटेनने सरासर बलात्कार किया, दूसरेका कहना है कि उसने जो कुछ किया वह केवल आत्मरक्षा-की दृष्टिसे किया। हां, यदि उसने बेड़ा लेकर डेन्मार्कके साथ कुछ और छेड़छाड़ की होती तो निःसन्देह बलात्कार होता।

पर इतना ध्यान रखना चाहिये कि हस्तक्षेप करना वहीं उचित होगा जहां कि यह सबल सन्देह हो कि यदि हस्तक्षेप न किया गया तो इस राज द्वारा हमारी आत्मरक्षाको धक्का लगेगा। ऊपरके उदाहरणमें ब्रिटेनको यह आशंका थी कि डेन नौसेना फ्रेंच नौसे-नासे मिल जायगी और फिर दोनों मिलकर ब्रिटेनपर आक्रमण करेंगे। गत महायुद्धमें इस प्रकारके कई प्रश्न उठे। जर्मनीने फ्रांसपर आक्रमण करनेके लिये बेल्जियमसे मार्ग मांगा। उसने अपने राज्यमेंसे मार्ग देना अस्वीकार किया। इसपर जर्मन सेनाने बेल्जियमपर आक्रमण किया और बलात् मार्ग निकाला। यह हस्तक्षेप सर्वथा अनुचित हुआ। अपने शत्रुपर आक्रमण करना आत्मरक्षा नहीं है। कोई राज इस बातको पसन्द नहीं करेगा कि उसका राज्य दो शत्रु-सेनाओंके लिये सड़क बन जाय। पर कई जर्मन नीतिज्ञोंका यह कहना है कि फ्रांस स्वयं जर्मनीपर आक्रमण करने वाला था और ब्रिटेन उसके साथ था। बेल्जियम-ने फ्रेंच सेनाके लिये मार्ग देना भी स्वीकार कर लिया था। यदि जर्मनी अग्रसर न होता तो पहिले उसपर ही आक्रमण हो जाता। यह कहना कठिन है कि इस वक्तव्यमें कहांतक सत्यका अंश है। कोई प्रमाण प्रकाशित नहीं हुआ है। जर्मनी हार गया है नहीं तो स्यात् कुछ प्रमाण देख पड़ता। यदि यह बात ठीक है कि बेल्जियमकी ओरसे फ्रेन्च सेना जर्मनीपर आक्रमण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करनेवाली थी तो जर्मनीका बेल्जियममें हस्तक्षेप करना उचित था।

यों तो प्रत्येक प्रभुराज अपने आभ्यन्तर शासनमें स्वतंत्र है पर कभी कभी इस स्वातन्त्र्यमें अपवाद भी होता है। यदि

मनुष्यताके नाते हस्तक्षेप

कोई मनुष्य अपने लड़केको निर्दयतासे पीट रहा हो तो उससे कुछ कहनेका किसीको वैध अधिकार हो या न हो पर नैतिक कर्तव्य अवश्य है। किसीको अनाचार करते देख कर रोकना एक ऐसा धर्म्म है जो मनुष्यके बनाये सब कानूनोंके ऊपर है। इसी प्रकार यदि कोई राज कोई ऐसा काम कर रहा हो जो मनुष्यताके सर्वथा विपरीत हो तो दूसरे राजोंका यह नैतिक कर्तव्य है कि हस्तक्षेप करके उसे रोकें।

कई बार ऐसा किया भी गया है। मनुष्यताके नामपर यूरोपियन राजोंने कई बार अन्य राजोंके शासनमें हस्तक्षेप किया है। पर इस प्रकारका कोई ठीक उदाहरण देना कठिन है। सिद्धान्त समुचित है पर कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसे सर्वथा साधु कह सकें। इसका प्रधान कारण यह है कि यूरोपके राज इतने स्वार्थी, कूटाचारी और दम्भी हैं कि उनका विश्वास नहीं होता। वह चाहे जितना मनुष्यताका नाम लें पर सन्देह यही होता है कि भीतर कोई न कोई गुप्त चाल है। तुर्कीके लेबानन प्रदेशमें ईसाइयोंकी हत्या हो रही थी और उनके साथ घोर अत्याचार किये जा रहे थे इसलिये १९१७ में प्रधान यूरोपियन शक्तियोंने तुर्कोंपर दबाव डालकर इस बुराईको दूर कराया। तुर्कोंकी ईसाई प्रजाकी रक्षा और भी दो तीन बार की गयी है। पर इन हस्तक्षेप करने वालोंमें ही रूस था जहां प्रति वर्ष कई सौ यहूदी बातकी बातमें केवल यहूदी होनेके कारण मार डाले जाते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। लूटपाट तथा अन्य अत्याचारोंकी तो कोई गणना ही न थी। अमेरिका ऐसे सभ्य देशमें सैकड़ों हबशी यों ही लात घूंसोंसे पीट कर, पानीमें डुबा कर तथा गोलियोंसे मार डाले जाते हैं पर न तो किसीने अमेरिकामें हस्तक्षेप किया न रूसमें। इससे अनुमान यह होता है कि मनुष्यताका ध्यान तो कम था, तुर्कीको दबाना और उसकी ईसाई प्रजाको उभारना ही मुख्य उद्देश्य था।

१८८४ में यूनानवालोंने तुर्कोंके विरुद्ध विद्रोह किया। तुर्क प्रबल थे, उन्होंने विद्रोहको दबा दिया। पर यूरोपके महारथियोंसे न देखा गया। उन्होंने मनुष्यताके नामपर हस्तक्षेप किया और हारे हुए यूनानियोंको १८८९ में स्वाधीन करा दिया। पर सैकड़ों वर्षों तक पोल जाति आस्ट्रिया, जर्मनी और सर्वोपरि रूसमें दुःख भोगती रही, उसकी सहायता किसीने न की। आज भी भारत, मिश्र या इराककी ओरसे मनुष्यताके नामपर कोई ब्रिटेनमें हस्तक्षेप नहीं करता। मनुष्यताका पवित्र नाम स्वार्थ-सिद्धिका साधन मात्र है।

यूरोपके प्रधान राजों—जर्मनी, रूस, फ्रांस, नवीन इटली, ब्रिटेन—का अभ्युदय गत दो सौ वर्षोंके प्रायः भीतर ही हुआ।

शक्ति-साम्यकी रक्षाके लिये हस्तक्षेप

इनमें फ्रांस पुराना है। ब्रिटेनका उदय फ्रांसके पीछे पर जर्मनी आदिके पहिले हुआ। इन उन्नतिशील राजोंमें स्पर्धा और अविश्वासका होना स्वाभाविक था। अतः व्यवहार चलानेके लिये शक्ति-साम्यका* सिद्धान्त निकला। इसका तात्पर्य्य यह था कि कोई एक राज इतना प्रबल न हो जाय कि दूसरोंको उससे क्षति पहुंचनेकी सम्भावना हो। यदि कोई

* Balance of Power

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज बहुत बढ़ने लगता था तो कई राज मिलकर उसे दबानेका प्रयत्न करते थे। इस कारण बहुत से दीर्घकालव्यापी युद्ध हुए परन्तु प्रत्येक युद्धके पीछे शक्तिसाम्यके रूपमें अन्तर पड़ जाता था। जो जीतता था उसका राज्य और बल कुछ न कुछ बढ़ ही जाता था, जो हारता था उसका राज्य और बल घट ही जाता था। वस्तुतः प्रबल राज दुर्बलोंको दबानेके लिये शक्तिसाम्यकी रक्षाका बहाना करते थे। फ्रांसके अन्तिम सम्राट् तृतीय नैपोलियनने यह नियम निकाला कि यदि यूरोपके किसी राजके राज्यकी वृद्धि हो तो शक्ति-साम्य बनाये रखनेके लिये फ्रांसकी भी उतनी ही वृद्धि होनी चाहिये।

इस सिद्धान्त या नीतिके मूलमें एक सत्य है। यह पूर्णतया ठीक है कि किसी राजके लिये यह उचित नहीं है कि दूसरोंकी क्षति करे। यदि कोई राज ऐसा करना चाहे तो यह उचित है कि और सबल राज मिलकर उसे रोकें। सब दुर्बल राजोंको भी चाहिये कि मिलकर उसका सामना करें। पर शक्ति-साम्यका तो यह अर्थ था कि यूरोपके बड़े बड़े राजोंकी शक्ति तुल्यप्राय रहे। यदि मैत्री भी हो तो इस प्रकार कि यदि एक ओर दो या तीन मित्र राज हों तो दूसरी ओर भी उतने ही बल वाले मित्रराज हों। इससे दुर्बलोंकी रक्षा नहीं होती थी। यदि कभी रक्षा हो गयी होगी तो वह अकस्मात् हो गयी होगी। रक्षाकी कौन कहे यहां तो यह होता था कि यदि एकने एक दुर्बल देश दबा लिया तो दूसरा उसकी बराबरी करनेके लिये तत्काल ही दूसरा दुर्बल देश दबा बैठता था। प्रान्तों और छोटे देशोंकी जनता खिलौनेकी भाँति इस हाथसे उस हाथ फेंकी फिरती थी। आजकल ऐसा होना बहुत कठिन है। प्रजाओंकी देशभक्ति नीतिज्ञोंकी चालोंसे प्रबल हो गयी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभी तक हस्तक्षेपके जिन कारणोंका उल्लेख हुआ है वह ऐसे कि उनको किसी न किसी दृष्टिसे न्याय्य कह सकते हैं और किसी न किसी प्रामाणिक आचार्य्यने उनका समर्थन भी किया है। परन्तु दो ऐसे कारण हैं जो सर्वथा अयुक्त, अन्याय्य और अनुचित हैं। किसी भ उनका समर्थन नहीं हो सकता। वस्तुतः कारण दो नहीं एक ही है पर बहुधा एकके ही दो भेद करके उनका पृथक् विचार किया जाता है, इसलिये हम भी पृथक् ही उल्लेख करेंगे

अनुचित हस्त-क्षेप

पहिला कारण है विद्रोहका शमन करना। यह निश्चय है कि नरेशाधीन राज अपनी शासन-पद्धतिको अच्छा समझते हैं और प्रजातन्त्र अपनीको, पर प्रत्येक स्वतन्त्र राजका यह स्वत्व है कि अपने यहां चाहे जैसी शासन-पद्धति रक्खे। दूसरेको इस विषयमें बोलनेका अधिकार नहीं है। यदि किसी प्रजातन्त्रमें किसी नरेशको सिंहासनारूढ़ करनेके लिये विद्रोह हो तो अन्य प्रजातन्त्र राजोंको हस्तक्षेप न करना चाहिये; इसी प्रकार यदि किसी नरेशाधीन राजकी जनता नरेशको उतार कर प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहती है तो अन्य नरेशाधीन राजोंको हस्तक्षेप न करना चाहिये। यदि किसी देशकी जनता, जिसपर विदेशियों-का शासन हो, विदेशियोंको निकाल कर स्वराज्य स्थापित करना चाहती हो तो अन्य राजोंको तटस्थ रहना चाहिये।

विद्रोह-शमनके लिये हस्तक्षेप

प्रायः ऐसा ही होता है पर कभी कभी अपवाद भी हो जाता है अर्थात् कभी कभी परराज विद्रोह-शमन करनेके लिये हस्त-क्षेप कर बैठते हैं। प्रायः इसमें उनका भी कोई न कोई स्वार्थ होता है और सभ्य जगत् उनके व्यवहारको अच्छा नहीं समझता। १८४०में फ्रांसकी प्रसिद्ध राजक्रान्ति हुई। फ्रेंच प्रजाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरेशको प्राणदण्ड दे डाला और प्रजातन्त्र स्थापित किया। इसका उसे पूर्ण अधिकार था पर ब्रिटेन, प्रशा इत्यादि उससे लड़ पड़े। उन्होंने इस बातका पूर्ण प्रयत्न किया कि फ्रांसका राजवंश फिर अधिकार पा जाय। यह काम निःस्वार्थ भावसे नहीं किया गया था। ब्रिटेन आदि स्वयं नरेशाधीन थे और इन्हें डर था कि कहीं फ्रांसका रोग हमारे देश तक संक्रमण करके हमारे राजवंशोंको भी सत्ता-हीन न कर दे। १८०६ में आस्ट्रियाकी हंगेरियन प्रजाने स्वाधीन होनेके लिये विद्रोह किया पर रूसने आस्ट्रियाकी सहायता की। इसका कारण यह था कि आस्ट्रियाकी भाँति रूस भी कई देशोंको बलात् दबाये बैठा था और उसे डर था कि हंगरीकी देखादेखी हमारे यहां भी विद्रोह न होने लगे।

'पवित्र मैत्री' का इतिहास भी बड़ा ही रोचक है। १८७२ में आस्ट्रिया, रूस और प्रशामें एक सन्धि हुई जिसके द्वारा यह तीनों राज मित्र राज हुए। इनकी मैत्री 'पवित्र मैत्री' कहलायी। उस सन्धिके कुछ अंश देखने योग्य हैं—

उन घटनाओंको देख कर जो गत तीन वर्षोंसे यूरोपमें हो रही हैं और विशेषतः उन उपकारोंपर दृष्टि डाल कर जिनको जगन्नियन्ताने दया करके उन राजोंमें वितरित किया है जिन्होंने उस (ईश्वर) को ही अपनी श्रद्धा और आशाका एक मात्र आधार बनाया है, आस्ट्रियाके सम्राट्, प्रशाके महाराज और रूसके सम्राट्को इस बातका पूर्ण विश्वास हो गया है कि राजोंको चाहिए कि अपने परस्पर सम्बन्धोंका आधार उन दिव्य सत्योंको बनायें जिनकी शिक्षा पवित्र त्राता (ईसा) के सनातन धर्म्मसे मिलती है।......इत्यादि।

सारी सन्धि इसी ढङ्गपर लिखी गयी है। बात बातमें ईश्वर, ईसा, ईश्वरके उपदेश (बाइबिल) तथ धर्म्मका नाम आता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्योंमें प्रेम और भ्रातृभाव फैलाना ही सन्धिका उद्देश्य बतलाया गया है। शब्दोंको देखकर तो सचमुच 'पवित्र मैत्री' कहनेको जी चाहता है, पर इस शब्दाडम्बरके भीतर उद्देश्य कुछ और ही था। यह तीनों नरेश शासन-सुधारके कट्टर विरोधी थे। इनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि सारा शासनाधिकार नरेशोंके ही हाथमें रहे, इसलिये यूरोपके जिस किसी देशमें प्रजा सिर उठा कर शासन-सुधार कराना चाहती वहीं पवित्र मित्रोंके सिपाही पहुंच जाते। तीनों ही राज प्रबल थे इसलिये इनके हस्तक्षेपका विरोध करना कठिन था। धीरे धीरे इन्होंने अपना क्षेत्र बढ़ाना चाहा। उन दिनों स्पेनके दक्षिणी अमेरिका वाले उपनिवेश स्वाधीन होकर प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहते थे। १८८० में मित्रोंने स्पेनकी सहायताके लिये दक्षिण अमेरिकामें सेना भेजनी चाही। पर संयुक्त राजसे यह न देखा गया। उसने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि यदि कोई यूरोपियन राज अमेरिका महाद्वीपके किसी देशकी घरेलू बातोंमें हस्तक्षेप करेगा तो संयुक्त राज उसका सशस्त्र विरोध करेगा। इस धमकीके आगे मित्र रुक गये क्योंकि अमेरिका इतना दूर था कि वहां संयुक्त राजका सामना करना इनके लिये असम्भव था। जैसा कि हम कह चुके हैं अब विद्रोह-शमनके लिये हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं समझा जाता।

हस्तक्षेपका दूसरा अयुक्त कारण भी इसका रूपान्तर मात्र है। कभी कभी किसी राजमें शासनाधिकारके लिये दो दलोंमें युद्ध होता है और उनमेंसे एक किसी बाहरीको सहायतार्थ बुलाता है। ऐसे अवसरपर हस्तक्षेप न करना ही उचित है। बाहरवालोंको देखना चाहिये कि यादवीय (आपसकी लड़ाई) में कौन दल जीतता है, जो जीतता है वही सर्कार चलायेगा। कुछ

यादवीयमें हस्तक्षेप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगोंकी सम्मति है कि यदि स्थापित सर्कारके विरुद्ध विद्रोह हुआ हो और सर्कार सहायता मांगे तो देना चाहिये पर विद्रोहियोंको न देना चाहिये। यह नीति अधिकांश आचार्य्योंको सम्मत नहीं है और प्रायः सभ्य जगत् इसे बुरा समझता है। जैसा कि हाल कहते हैं "विदेशी सहायता मांगना ही यह सिद्ध करता है कि उसके विना युद्धका परिणाम अनिश्चित प्रतीत होता है इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसा दल अन्तमें राजका द्रुष्टप्रभु बन सकेगा"। ऐसे अवसरपर विदेशियोंका तटस्थ रहना ही उचित है। प्रायः ऐसा होता भी है पर इसके भी अपवाद मिलते हैं। १९१६ में रूसमें सोविएत सर्कार स्थापित हुई। यूरोपके सभी पूंजीपति बोल्शेविज्मसे घबराते हैं अतः पूंजीपतियोंके प्रमुख ब्रिटेनने सोविएतके उन्मूलनका बीड़ा उठाया। नयी सर्कार तो थी ही उसके विरोधी भी थे। डेनिकिन, कालचक आदि कई सेनापतियोंने बारी बारी सिर उठाया और ब्रिटिश सर्कारने सबकी पूरी पूरी सहायता की। रूसका सौभाग्य था कि ब्रिटेनकी एक न चली। जिस ब्रिटिश सर्कारने १८७८ में पवित्र मैत्रीके उत्तरमें कहा था "जहां किसी राजके आभ्यन्तर कामोंसे अन्य राज या राजोंकी तात्कालिक रक्षा या प्रधान हितोंको आघात पहुंचता हो वहां ब्रिटिश सर्कार हस्तक्षेप करनेके अधिकारका सबसे पहिले समर्थन करनेको तैय्यार है पर उसकी यह धारणा है कि इस अधिकारसे अत्यन्त आवश्यकताके समय ही और आवश्यकताके अनुसार ही काम लेना चाहिये"* वही रूसमें हस्तक्षेप करने लगी। स्वार्थ

*Though no government could be more prepared than the British Government was to uphold the right of any State or States to interfere where their own immediate

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी बुरी वस्तु है कि वह बड़े बड़े सिद्धान्तोंकी विस्मृति करा देता है।

अभी तक ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह विदित हो गया होगा कि स्वाधीनता क्या वस्तु है। फिलिमोरने उसकी दस अधिकारोंमें इस प्रकार व्याख्या की है—

स्वाधीनता और हस्तक्षेप

१. बिना किसी विदेशी राजके हाथ डाले, अपनी शासनपद्धतिको जब जैसी इच्छा हो तब वैसी बनाने और परिवर्तन करनेका अधिकार।

२. अपने राज्यको अखण्ड्य रखने और सम्पत्तिके उपभोग करनेका अधिकार।

३. सर्वप्रकारेण आत्मरक्षा करनेका अधिकार।

४. व्यापार द्वारा राष्ट्रीय सम्पत्तिकी वृद्धि करनेका अधिकार।

५. नवीन राज्य और अधिकार प्राप्त करनेका अधिकार।

६. अपने राज्यके भीतर, और विशेष अवस्थाओंमें बाहर, के सब मनुष्यों और वस्तुओंपर एक मात्र और अनियंत्रित शासन करनेका अधिकार।

७. अपनी प्रजावर्गके मनुष्य चाहे कहीं हों, उनकी रक्षा करनेका अधिकार।

८. विदेशी राजों द्वारा अपनी राष्ट्रीय सर्कारको स्वीकृत करानेका अधिकार।

---

security or essential interests are seriously endangered by the internal transactions of another State, it regarded the assumption of such a right as only to be justified by the strongest necessity, and to be limited and regulated thereby.'—Lord Castlereagh's Circular.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. (राष्ट्र-समुदायमें समत्व-सूचक) प्रतिष्ठा पानेका अधिकार ।

१०. अन्ताराष्ट्रिय सन्धियों और इकरारनामोंके लिखनेका अधिकार ।

हस्तक्षेपसे इन अधिकारोंमें से कइयोंमें बाधा पड़ती है । उपचार-दृष्टिसे स्वातंत्र्यमें कमी न मानी जाय पर वस्तुतः जिस राजके साथ हस्तक्षेप किया गया उसकी स्वाधीनतामें अवश्य कमी आती है । वह अपने पूर्ण प्रभुत्वसे काम नहीं ले सकता । इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि हस्तक्षेप कभी किया ही न जाय । जैसा कि हमने ऊपर दिखलाया है कभी कभी हस्तक्षेप करना परमावश्यक होता है पर जब तक हस्तक्षेप करनेवाला अपने सद्भाव और हस्तक्षेप करनेकी अनिवार्य्य आवश्यकताको प्रमाणित न कर दे तब तक वह अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें अपराधी है । सम्भवतः भविष्यत्का राष्ट्रसंघ पूर्णतया निष्पक्ष हस्तक्षेप कर सकेगा ।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वह पाश्चात्य जगत्के हैं पर भारतको हस्तक्षेपके नियमके हाथों भयानक क्षति उठानी पड़ी है । अंग्रेजी राज्यकी अधिकांश वृद्धि हस्त-

भारत

क्षेपके द्वारा ही हुई है । कहीं मनुष्यताके नामपर हस्तक्षेप करके पीड़ित प्रजाकी सहायता की गयी, कहीं विद्रोह-शमन करनेके लिये हस्तक्षेप करके नरेशके गले भारी ऋण बाँध दिया गया, कहीं आपसकी लड़ाईमें भाग लिया गया, कहीं आत्मरक्षाका बहाना पेश किया गया । देशी राज दुर्बल थे, जो कुछ बल था वह आपसके कलहमें लग रहा था, ब्रिटेनकी चाल सदैव फलवती रही और भारतका बहुत बड़ा हिस्सा उसके कब्जेमें आ गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा अध्याय ।

समत्व-सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ।

यह बात बहुत दिनोंसे मानी चली आती है कि सब राज एक दूसरेके बराबर हैं पर इस स्थलपर 'बराबरी' शब्दका अर्थ विचारने योग्य है। यह तो कोई कह नहीं सकता कि राज्य धन, बल, या प्रभावमें सब बराबर हैं। कुछ लोग इसका अर्थ यह लगाते हैं कि राजनीतिक दृष्टिसे असम होते हुए भी वैध दृष्टिसे यह सब बराबर हैं अर्थात् कानूनके सामने इनमें कोई बड़ा छोटा नहीं है। सबके स्वत्व और कर्तव्य एकसे हैं। जिस प्रकार प्रत्येक सभ्य समाजमें कानूनके सामने धनी-निर्धन, बलवान्-दुर्बल सभी बराबर होते हैं, उसी प्रकार अन्ताराष्ट्रिय विधानके सामने सब राज बराबर हैं।

समत्वका सिद्धान्त

पर यह उदाहरण भी ठीक नहीं है। साधारण समाजमें राज सर्वोपरि होता है। उसके हाथमें दण्डाधिकार होता है, इसलिये वह अपने बनाये विधानकी मर्य्यादा रख सकता है। इसी लिये वैध समता सब विषमताओंको दबा देती है। राज-समाजमें यह बात नहीं है। अन्ताराष्ट्रिय विधान राजोंकी इच्छा-मात्रपर निर्भर है। उसका कोई पृथक् रक्षक नहीं है, इसलिये जो बात राज-समाजमें चलती हो उसीको वैध कहना चाहिये। यदि इस दृष्टिसे देखा जाय तो बराबरीका कहीं पता नहीं चलता। बात बातमें विषमता है। जैसा कि प्रसिद्ध जर्मन नीतिविशारद ट्राइट्श्के* ने कहा है 'तुल्यप्राय क्षेत्रफलके बड़े राजोंमें ही

* Treitschke

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्ताराष्ट्रिय विधान बरता जा सकता है क्योंकि इतिहास दिखलाता है कि अवनत छोटे राजोंसे बड़े राज बराबर ही बनते रहते हैं। बेल्जियम ऐसा छोटा राज यदि अपनेको अन्ताराष्ट्रिय विधानका क्षेत्र समझे तो यह हास्यास्पद बात होगी।'

इस सम्बन्धमें राजोंकी वर्तमान अवस्था और कार्य्यप्रणालीपर एक दृष्टि डालनेसे लाभ होगा क्योंकि इससे पता चलेगा कि व्यवहारमें बराबरी कहाँ तक बरती जाती है।

सबसे पहिले हम यूरोपका ही विचार करते हैं क्योंकि आजकलके अन्ताराष्ट्रिय विधानका यूरोपमें ही जन्म हुआ है। आरम्भमें

शक्ति-गोष्ठी

हम जो उदाहरण देंगे वे सब महायुद्धके पहिलेके ही होंगे। १९ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें फ्रांसमें राजक्रान्ति हुई। तब तक यद्यपि कोई राज बड़ा कोई छोटा था पर उपचारतः सब बराबर कहे जाते थे। फ्रेञ्च राजक्रान्तिका परिणाम यह हुआ कि फ्रांससे प्रायः सारे महाद्वीपसे लड़ाई छिड़ गयी। नैपोलियनके उदयने फ्रांसको एकबार सर्वजेता बना दिया पर अन्य राज उसके पीछे पड़ गये और अन्तमें उसे हरा कर ही छोड़ा। इस काममें आस्ट्रिया, रूस, प्रशा और ब्रिटेन अग्रणी थे। अतः इन चारोंका प्रभाव बढ़ जाना स्वाभाविक था। यह चारों महाशक्ति* कहलाये। महाशक्तियोंके गुटको शक्ति-गोष्ठी † कह सकते हैं। फ्रांस हार तो गया था पर अब भी वह बहुत बलवान् था। अतः १८७५ में वह भी महाशक्ति माना गया। १९२४ में इटली भी इस कोटिमें आ गया। अतः यूरोपकी शक्ति-गोष्ठीमें ब्रिटेन, रूस, जर्मनी (जब प्रशा और जर्मनीके अन्य छोटे राजोंके मिलनेसे जर्मन साम्राज्यकी सृष्टि हुई तो प्रशाका स्थान जर्मनीने लिया), फ्रांस, आस्ट्रिया और इटली-

* Great Power. † Concert of Powers.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की गणना थी। यह स्मरण रखना चाहिये कि महाशक्तियोंमें गिने जानेकी कोई विशेष रीति नहीं है। जो राज बलवान् और प्रभावशाली हो जाय और जिसे अन्य महाशक्तियां अपने बराबर मानकर अपने परामर्शमें सम्मिलित करने लगें वही महाशक्ति गिना जायगा।

शक्ति-गोष्ठीका यह अर्थ नहीं है कि इन राजोंमें आपसमें लड़ाइयां नहीं हुई हैं। लड़ाइयां तो कई हुई हैं पर कई काम ऐसे हैं जिन्हें इन्होंने मिलकर किया है और इनके निर्णयको यूरोपके अन्य राजोंने मान लिया है। यदि सब राज बराबर हों तो कोई राज उसी बातको माननेके लिये बाध्य होगा जो उसकी सम्मतिसे किया जाय पर ऐसा होता नहीं। यह छः राज मिल-कर जो बात कर डालते हैं उसे आगे पीछे सभी राज मान लेते हैं। १८८९ में इन्होंने मिलकर तुर्कीपर दबाव डाल कर यूनानको स्वतन्त्र कराया और १८९६ में बेल्जियमको हालैण्डसे पृथक् करके उसे एक तटस्थीकृत राज बनाया। बाल्कन-प्रायद्वीपके प्रबन्धमें बहुधा इनका हाथ रहा है यद्यपि वह इनमेंसे किसीके राज्यमें नहीं है।

इस गोष्ठीका कार्य्य-क्षेत्र यूरोप तक ही परिमित नहीं है। अफ्रीकाका बहुत बड़ा भाग यूरोपवालोंके ही अधिकारमें है और वहां भी शक्ति-गोष्ठीके मतके अनुसार काम होता है। स्वयम् अफ्रीकामें कोई सबल राज नहीं है। हब्श स्वतन्त्र है पर वह अर्ध-सभ्य भी नहीं कहा जा सकता। मिश्र इस योग्य था कि वह अफ्रीकामें प्रमुख स्थान लेता पर वह अभी अपने आपको भी स्वतन्त्र नहीं कर सका है।

एशियाकी दशा अफ्रीकासे अच्छी है पर सन्तोषजनक नहीं है। नामको जापान, चीन, श्याम, फारस, अरब, अफगानिस्तान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वतन्त्र हैं पर वस्तुतः एक जापान ही ऐसा राज है जिसका एशियाके बाहर कुछ आतंक है। रूसको हरानेके पीछे जापानकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। १९६४ में उसकी भी गणना महाशक्तियोंमें हुई। एक समय था जब कि भारत, चीन और फारस एशिया ही नहीं सारे सभ्य जगत्के गुरु थे। आज भारत पराधीन पड़ा है। स्वतन्त्र होना चाहता है पर अभी तक अपनी बेड़ियोंको काटनेमें समर्थ नहीं हुआ है। फारस स्वतन्त्र परन्तु अत्यन्त दुर्बल है। चीन स्वतन्त्र है पर यादवीयमें फंस कर आत्महत्या करनेको प्रस्तुत प्रतीत होता है। जापान अपने स्वार्थमें उन्मत्त हो रहा है। उसे स्यात् यह ज्ञात नहीं है कि एक दिन उसे अपने एशियाई बन्धुओंकी सहायताकी आवश्यकता होगी। इस समय वह ऐसा कोई काम नहीं कर रहा है जिससे यह विदित हो कि उसे भारत, चीन या अन्य किसी एशियाई देशसे कुछ सहानुभूति है। यदि ईश्वर अच्छे दिन दिखाये तो भारत, फारस, चीन और जापान ही अनतिदूर भविष्यत्में एशियाकी शक्तिगोष्ठी होंगे। यह गोष्ठी एशिया ही नहीं सारे जगत्में मान्य होगी। इन चारोंकी जनसंख्या ८५ करोड़के लगभग है और इनके पास अटूट वैभव हैं। इनका सामना करनेवाला कोई संघ हो ही नहीं सकता।

अमेरिकाकी अवस्था और सब महाद्वीपोंसे भिन्न है। वह सबसे दूर है। उसके कुछ भागोंको छोड़कर शेषमें छोटे बड़े स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज हैं। सिद्धान्तदृष्ट्या यह सब बराबर हैं। पर एक ऐसी बात है जो यह सिद्ध करती है कि समता सिद्धान्त इनके लिये एक प्रकारसे नहीं लगता। हम बतला चुके हैं कि १८८० में पवित्र मैत्री (अर्थात् आस्ट्रिया, प्रशा और रूस) ने यह चाहा कि स्पेनको उसके दक्षिणी अमेरिकाके उपनिवेशोंको दबानेमें सहायता दें। उन दिनों संयुक्त राजके राष्ट्रपति श्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्रो थे। उन्होंने एक विज्ञप्ति द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि 'यूरोपियन राजोंका पश्चिमी गोलार्द्ध अर्थात् अमेरिकामें अपना विस्तार करनेका प्रयत्न करना अमेरिकाकी शान्ति और रक्षाके लिये भयङ्कर समझा जायगा।' एक दूसरी विज्ञप्तिमें यह कहा गया कि अमेरिकन महाद्वीपके दोनों भाग अब इस प्रकार स्वाधीन हो गये हैं कि उनमें यूरोपियन शक्तियोंको उपनिवेश स्थापित करनेका क्षेत्र नहीं है।

इन दोनों विज्ञप्तियोंको मिलानेसे जो नीति निर्धारित होती है उसे मन्रो सिद्धान्त कहते हैं। उसका सारांश यह है कि

मन्रो सिद्धान्त

भविष्यत्में (अर्थात् १८८० के बाद) कोई यूरोपियन राज अमेरिकन महाद्वीपके किसी भागमें न तो नया उपनिवेश स्थापित कर सकेगा न अपना राज्य बढ़ा सकेगा। यदि कभी ऐसा प्रयत्न किया गया तो संयुक्त राज उसका विरोध करेगा।

यह सिद्धान्त अच्छा हो या बुरा पर समताके विरुद्ध है। संयुक्त राज अपने आप ही अमेरिकाके सब राजोंका संरक्षक बन बैठा है। यदि कोई अमेरिकन राज हार कर या किसी अन्य कारणसे अपने राज्यका कुछ भाग किसी यूरोपियन राजको देना चाहे तो स्वाधीनताका यह अर्थ है कि वह ऐसा कर सकता है पर संयुक्त राज ऐसा करने नहीं देता। यूरोपियन राजोंने इस नियमको प्रायः स्वीकार कर लिया है, कमसे कम इसका व्यावहारिक विरोध किसीने नहीं किया है, इससे यह सिद्धान्त अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक अंग हो गया है।

संयुक्त राजने कई अवसरोंपर इससे काम लिया है। १८८१ में रूसने अमेरिकन महाद्वीपके वायव्य कोणमें एक उपनिवेश स्थापित करना चाहा पर संयुक्त राजकी सर्कारने उसे रोक दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९५२ में ब्रिटेन और वेनेज़्वीलामें सीमा-सम्बन्धी झगड़ा था। वेनेज़्वीला ब्रिटिश गियाना नामी अंग्रेजी उपनिवेशसे मिला जुला है। वह स्वतन्त्र राज था पर संयुक्त राज बीचमें पड़ गया। उसने कहा कि हम अंग्रेजोंकी सीमा न बढ़ने देंगे। युद्ध होते होते बच गया। पीछे यह निश्चय हुआ कि इस प्रश्नका निर्णय निष्पक्ष पञ्चोंपर छोड़ दिया जाय पर पञ्चोंके सामने भी वेनेज़्वी-लाकी ओरसे संयुक्त राज ही वकालत करता रहा।

इस काममें बड़ा दायित्व उठाना पड़ता है। इससे वेनेज़्वीला-के ऊपर बहुत सा ऋण हो गया था। १९५८ में ब्रिटेन, जर्मनी और इटलीने तंग आकर उसपर शस्त्र-प्रयोग करनेकी ठानी। उस अवसरपर राष्ट्रपति रूज़वेल्टने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि 'हम (अर्थात् संयुक्त राज) यह नहीं कहते कि यदि कोई राज दुरा-चारी हो जाय तो उसे दण्ड न दिया जाय। हम इतना ही चाहते हैं कि उसे चाहे और जो दण्ड दिया जाय, पर उसके राज्यका कोई अंश किसी अनमेरिकन राजके कब्जेमें न जाय।' इसी प्रकार साण्टो डोमिंगोपर बहुत ऋण हो गया था और उसमें ऐसी अरा-जकता सी फैली हुई थी कि उस ऋणके चुकनेकी कोई आशा न थी। विवश होकर यूरोपियन राज हस्तक्षेप करते। इसलिये संयुक्त राजने उसका शासन स्वयं संभाला और आभ्यन्तर प्रबन्धमें बाधा न डालते हुए भी यह इन्तिजाम किया कि ज़कात (बाहरसे आये मालपर कर) का $\frac{५५}{१००}$ भाग ऋण चुकानेमें लगाया जाय।

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि संयुक्त राजने अपनेको एक प्रकारसे अमेरिकाके सभी राजोंसे बड़ा ठहराया और उनके बाह्य सम्बन्धोंको निश्चित करनेका अधिकार अपने आप ही ले लिया। वह महाशक्ति तो था ही, उसकी नीति भी हितकर थी, इसलिये कुछ दिनों तक तो अमेरिकाके अन्य राजोंने इस विषयमें कोई

१०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपत्ति न की। पर धीरे धीरे अमेरिकामें भी ब्रैजिल, मेक्सिको, चिली आदि बल-वैभवयुक्त राजोंका उदय हुआ। इनको संयुक्त राजका यह प्राधान्य सह्य न था। यह स्वतंत्र तो थे ही अतः इस बातको माननेके लिये सम्मत न थे कि संयुक्तराजको इनके बीचमें बोलनेका कोई अधिकार है। संयुक्तराजने भी देखा कि अब नीतिमें परिवर्तन करना ही श्रेयस्कर है। अतः अब एक नये भावका जन्म हुआ है। इसे अभ्यमेरिकन (अभि+अमेरिकन) भाव * कहते हैं। धीरे धीरे अमेरिकन राजोंमें मैत्री बढ़ानेका प्रयत्न हो रहा है। चार अन्ताराष्ट्रिय अमेरिकन महासभाएं हो चुकी हैं जिनमें सभी अमेरिकन राजोंके प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इन सभाओंने आपसके कई प्रश्नोंको सुलझाया है और एक स्थायी समिति भी वाशिंगटन (संयुक्तराजकी राजधानी) में स्थापित कर दी गयी है। यह एक प्रकारकी अमेरिकन शक्ति-गोष्ठीका जन्म हो रहा है।

ऊपरके संक्षिप्त वर्णनसे पता चलता है कि कुछ बड़े बड़े राज प्रधान स्थान पाते रहे हैं और बहुत सी बातोंमें अन्य राजोंको उनका परामर्श और नियंत्रण मानना पड़ा है। एक यूरोपियन शक्ति-गोष्ठी थी ही जो यूरोपमें कर्ता हर्ता बनी हुई थी, एक जगच्छक्तिगोष्ठी भी थी।

वर्तमान युग

इसमें ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस, आस्ट्रिया, इटली, संयुक्तराज और जापान सम्मिलित थे। यह आठों महाशक्तियां थीं और अन्य राजोंपर इनका आतंक था। बहुत से अवसरोंपर इस गोष्ठीने उपयोगी काम भी किये। रेल, तार, डाकके लिये अन्ताराष्ट्रिय नियम बनाये गये, अफीम रोकनेका अन्ताराष्ट्रिय प्रयत्न किया गया, कुछ रोगोंके प्रतिकारका अन्ताराष्ट्रिय प्रबन्ध किया गया। इसके साथ

*Pan-Americanism.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो सारा अफ्रीका भी आपसमें बाँट लिया गया, यह प्रश्न भी न उठा कि अफ्रीकावालोंकी क्या इच्छा है।

यह दशा १९७१ तक रही। उस साल महायुद्ध छिड़ा युद्धका परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया और जर्मनी छिन्न भिन्न हो गये। ब्रिटेन, फ्रांस, इटली अब भी महाशक्ति हैं। संयुक्त राज और जापान भी महाशक्ति हैं। रूसके बलवान् होनेमें कोई सन्देह नहीं क्योंकि उसने अकेले इन सब महाशक्तियोंके बलप्रयोग और आर्थिक कौटिल्यको नीचा दिखाया है पर अभी वह राजसमाजसे बहिष्कृत है। बेल्जियमका असाधारण अभ्युदय हुआ है और वह यूरोपके लिये तो एक प्रकारसे महाशक्ति हो गया है।

अवस्था बड़ी ही अनिश्चित है। सन्धि हो गयी है पर लड़ाई होती जाती है। जो महाशक्ति हैं उनमें आपसमें ऐक-मत्य नहीं है। हाँ, राष्ट्रसंघका जन्म आशा-जनक है। इसके संगठनमें छोटे राजोंको भी स्थान है, इसलिये यह असम्भव नहीं है कि आगे चलकर यही सच्ची शक्ति-गोष्ठी हो जाय। पर यह तभी होगा जब या तो यूरोपके बड़े राज अपना क्षोभ संवरण कर सकें या उनका बल ही टूट जाय।

ऊपर जितने उदाहरण दिये गये हैं उनसे यह तो स्पष्ट है कि वास्तविक समताका कहीं पता नहीं है। बड़े राजोंका प्रभाव छोटोंसे अधिक होता है और छोटोंको बड़ोंकी बात माननी ही पड़ती है। छोटे बड़ेका भेद एक प्रत्यक्ष सत्य है। पर समता सिद्धान्तसे दो लाभ हुए हैं। एक तो यह कि उसने उद्दण्डताको कुछ न कुछ रोका। यों तो जो प्रबल होता है उसे कोई रोकता नहीं, फिर भी प्रबलसे प्रबल राजको दुर्बलसे दुर्बल राजपर आक्रमण करनेके पहिले कुछ न कुछ बहाना ढूंढ़ना

समता और विषमता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ता था। किसी बराबरवालेकी स्वाधीनता नष्ट करना अपराध है और लोकमतके सामने कोई अपराधी नहीं बनना चाहता, इससे कोई न कोई कारण, हेतु नहीं तो हेत्वाभास ही सही, दिखलाना पड़ता था, इससे छोटोंकी कुछ रक्षा हो जाती थी। दूसरी बात यह हुई कि यद्यपि सामूहिक रूपसे महाशक्तियोंको कई अलिखित अधिकार प्राप्त थे पर व्यक्तिगत अवस्थामें इनके वही अधिकार थे जो छोटे राजोंके थे। युद्ध, सन्धि, ताटस्थ्य, दौत्य, सलामी इत्यादिमें सबके लिये एकसे ही नियम थे, यह दूसरी बात है कि जो बलवान् हो वह किसी नियमकी अवहेलना करके भी अदण्डित रह जाय। जब तक मनुष्यके स्वभावमें ही कोई प्रचण्ड परिवर्तन न हो जाय तब तक संसारसे विषमताका सर्वतः उठ जाना कठिन ही प्रतीत होता है।

उपचारोंका महत्व

आपसके मिलने जुलने, पत्र-व्यवहार और सलामी आदिके नियम सब बराबरीकी नींवपर बने हैं। सिद्धांत यह है कि सब स्वतंत्र राज बराबर हैं पर कभी कभी व्यावहारिक उपचारोंमें इसे बरतनेमें अड़चन पड़ती है। पहिले इस बातके पीछे ही युद्ध छिड़ जाते थे। सभी देशोंमें उपचारोंका बड़ा आदर रहा है। भारतके राजोंमें भी बहुत से नियम हैं। किसका स्वागत कमरेके बाहर तक आकर किया जाय, किसके लिये आधे कमरे तक आया जाय, किसके लिये केवल खड़ा हुआ जाय, कौन आगे चले, किसको छत्र और डंकेके साथ निकलनेका अधिकार है, यदि दो नरेश मिलें तो कब कौन दाहिने बैठे, कौन बायें बैठे—यह सब बड़े टेढ़े प्रश्न हैं। आज कल पाश्चात्य जगत्में इनपर कम ध्यान दिया जाता है पर दिया अवश्य जाता है। किसी नियमके उल्लङ्घनके लिये युद्ध चाहे न हो पर कुछ मनमुटाव अवश्य होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आजकल एक दूसरेसे मिलनेके समय प्रायः निम्न–लिखित क्रमसे पौर्वापर्य्य बरता जाता है।

(१) सबसे पहिले पूर्णप्रभु राज आते हैं।

सम्मिलन-कालके उपचार

(२) यदि किसी स्थलपर पोप उपस्थित हों तो रोमन कैथलिक सम्प्रदायानुयायी राजोंके ऊपर उनका स्थान होगा। अन्य मतावलम्बी उनको यह प्रतिष्ठा नहीं देते।

(३) स्वतंत्र राजोंमें भी जिनके मुख्याधिष्ठाता अभिषिक्त नरेश होते हैं उनका स्थान दूसरोंसे पहिले होता है। जहांपर अभिषिक्त नरेशोंके साथ छोटे अनभिषिक्त नरेश जैसे (ड्यूक, एलेक्टर या भारतमें ठाकुर या सर्दार) मिलते हैं वहां तो यह नियम चलता है पर संयुक्तराज और फ्रांस ऐसे प्रबल प्रजातंत्र इसे नहीं मानते। उनका स्थान बड़े नरेशाधीन राजोंके साथ ही होता है।

इन नियमोंका पालन उन सब स्थलोंपर होता है जहां कि कई राजोंके प्रतिनिधि किसी कार्य्यविशेषसे सम्मिलित होते हैं, चाहे वह प्रतिनिधि स्वयं मुख्याधिष्ठाता (नरेश या राष्ट्रपति) हों या कोई मुख्य कर्म्मचारी।

सन्धिपर हस्ताक्षर करनेके नियम

सन्धिपर हस्ताक्षर करनेके समय किस क्रमसे हस्ताक्षर किये जायं इसका भी बड़ा झगड़ा था। कभी तो यह करते थे कि चिट्ठी डालकर क्रम निश्चित होता था पर सन्धिकी जो प्रति जिस राजमें रहती थी उसपर उस राजके प्रतिनिधिका हस्ताक्षर सबसे ऊपर होता था। आजकल प्रायः दूसरा नियम बरता जाता है। यह देखा जाता है कि राजोंके नामके प्रथम अक्षर फ्रेञ्च वर्णमालाके अनुसार किस प्रकार आगे पीछे आते हैं और फिर उसी क्रमसे उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजोंके प्रतिनिधि हस्ताक्षर करते हैं। इससे आपसकी बराबरीकी बात बनी रहती है।

जहाजों तथा जहाजों और किलोंकी सलामीके नियम भी बहुत महत्त्व रखते हैं। पहिले तो यह सर्वथा अनिश्चित थे और इनके पीछे झगड़ा हो जाता था। इस सलामीके नियम आये दिनके झगड़ेसे तंग आकर १८४४ में फ्रांस और रूसने आपसकी सलामी बन्द ही कर दी। आजकल यह नियम प्रचलित हैं—

(१) यदि कोई लड़ाईका जहाज किसी विदेशी बन्दरमें प्रवेश करता है या उसके सामनेसे निकलता है तो वह पहिले सलाम करता है। पर यदि उसपर उसके राजका मुख्याधिष्ठाता या राजदूत हो तो पहिले बन्दर सलामी देता है। फिर सलामीका जवाब दिया जाता है। यदि बन्दरमें कोई किला हो तो वह सलामी देता है नहीं तो कोई लड़ाईका जहाज देता है। जवाबमें भी उतनी ही बार तोप दागते हैं।

(२) यदि कई राजोंके जहाज मिलते हैं तो पहिले वह जहाज सलाम करता है जिसका नायक छोटे दर्जेका होता है

(३) यदि सैनिक जहाज और व्यापारी जहाजका सामना हो तो व्यापारी जहाज सलाम करता है। यदि उसपर तोप न हो तो वह अपना टापसेल (ऊपर वाला मस्तूल) झुका देता है।

(४) सलामी २१ तोपसे अधिककी नहीं होती।

प्रत्येक राजको अधिकार है कि वह अपने प्रधान अधिष्ठाता-को जो उपाधि चाहे दे। उपाधिसे अधिकारमें कोई भेद नहीं पड़ता। भारतमें ही महाराणा, महाराजा, राजा, राणा, ठाकुर, नव्वाब, महारावल आदि अनेक प्रकारकी उपाधियां हैं पर अन्य राज इस बातके लिये बाध्य नहीं हैं कि किसी अधिष्ठाताकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नयी उपाधिको अङ्गीकार करके पत्र-व्यवहारादिमें उसका ही प्रयोग करें। बहुधा ऐसा होता है कि यदि नयी उपाधि पुरानी उपाधिके ही दर्जेकी होती है तो वह अंगीकार कर ली जाती है पर यदि सन्देह होता है तो यह स्पष्ट कह दिया जाता है कि हम उपाधिको माने लेते हैं पर इससे आपके पदमें कोई वृद्धि न होगी। १७५२ में रूसके नरेशोंने ज़ार (सम्राट) की उपाधि धारण की पर कई राजोंने लगभग ६० वर्ष तक उसे न माना। फ्रांसने १८०२ में उसे माना भी तो उपर्युक्त शर्त लगा कर।

उपाधियोंकी स्वीकृति

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरा अध्याय ।

सम्पत्ति-सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ।

प्राचीनकालसे ही यह माना गया है कि राज्योंको सम्पत्ति रखनेका अधिकार है। जिस समुदायका किसी भूमि-विशेषपर क़ब्ज़ा न हो उसे राज ही नहीं कहते। पर राज्योंकी सम्पत्ति भूमिके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी भी होती है। उनके पास घर, मकान, मशीन, रुपया पैसा, पशु, शस्त्र, पुस्तकें, कुर्सियाँ, इत्यादि, अनेक वस्तुएं होती हैं। इनका क्रयविक्रय प्रत्येक देशके घरेलू क़ानूनके अनुसार होता है जिससे अन्ताराष्ट्रिय विधानसे कोई सम्बन्ध नहीं है पर यदि युद्धके समय शत्रुसेना इनपर क़ब्ज़ा कर लेती है तो अलबत्ता अन्ताराष्ट्रिय विधान उनके उपयोग और उपभोगके नियम बताता है।

इन फुटकर वस्तुओंके अतिरिक्त राजकी सम्पत्तिमें भूमि, जल और वायु सम्मिलित हो सकते हैं। इन तीनोंपर पृथक् पृथक् विचार करना होगा, फिर अन्तमें यह निश्चय हो सकेगा कि राजकी सम्पत्तिकी क्या सीमा हो सकती है।

भूमिपर अधिकार ।

सबसे पहिले यह देखना है कि राज्योंकी भौम सम्पत्ति किस प्रकार बढ़ती है। इसके दो प्रकार हैं, प्राथमिक और गौण *। प्राथमिकके भी दो भेद हैं, अधिकृति और प्राकृतिक वृद्धि †

* Original, derivative. † Occupation, accretion.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और गौणके तीन भेद हैं: हस्तान्तर, विजय और उपभोग§। दोनोंमें भेद यह है कि जो भूमि किसी अन्य सभ्य राजके कब्जेमें नहीं थी या यदि कभी बहुत पहिले थी भी तो अब उसपर किसी सभ्य राजका न तो कब्जा है न स्वत्व, उसपर अधिकार प्राप्त करनेके प्रकारको प्राथमिक कहते हैं और किसी अन्य सभ्य राजके कब्जेकी भूमिपर कब्जा करनेके प्रकारोंको गौण कहते हैं।

अधिकृति।

अधिकृतिका प्रकार

जो भूमिखण्ड किसी अन्य सभ्य राजके अधिकारमें न हो उसे अपने हाथमें लेनेको अधिकृति कहते हैं; यह आवश्यक नहीं है कि वह निर्जन हो। इतना ही पर्य्याप्त है कि उसके निवासी किसी ऐसे राजकी प्रजा न हों जो अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र हो। जब पहिले पहिले अमेरिका महाद्वीपका पता लगा तो यूरोपके राजोंके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इसपर किसका और किस नियमके अनुसार अधिकार हो। अन्तमें प्राचीन रोमन विधानकी शरण ली गयी। उसमें एक नियम था कि यदि सड़कपर कोई लावारिस चीज पड़ी हो तो जिसके हाथ वह पहिले लगे वह उसे ले सकता था। इस नियमका विचार इस प्रकार किया गया कि जो पहिले अमेरिका पहुंचा अर्थात् जिस राजके जहाजने अमेरिकाका पहिले पता लगाया वही उसका स्वामी होगा। पर इससे काम न चला। स्पेनवाले कहते थे कि १५५५ में अमेरिगो वेस्पूची* जो स्पेन-वासी था उत्तरी अमेरिकाके तटपर सबसे पहिले उतरा था इसलिये उत्तरी अमेरिका हमारा है। अंग्रेज कहते थे जान केवट यहां १५५४ में ही आ चुका था।

§ Cession, conquest, prescription. * Amerigo Vespucc

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फ्रांस और पुर्तगाल भी इसी प्रकारकी बातें कहते थे। तत्कालीन पोप षष्ठ सिकन्दरने सारे अमेरिकाको स्पेन और पुर्तगालमें बांटना चाहा पर उनकी बात कौन सुनता। फ्रेञ्च नरेशने स्पेनके पञ्चम चार्ल्ससे इस प्रयत्नकी हंसी उड़ाते हुए पूछा था "आप और पुर्तगालके नरेश किस अधिकारसे सारी पृथ्वीके स्वामी बनना चाहते हैं? क्या बाबा आदमने आपको ही अपना एक-मात्र उत्तराधिकारी बनाया है? यदि ऐसा है तो वसीयतनामेकी प्रतिलिपि तो दिखलाइये"। कहनेका तात्पर्य यह है कि किसी स्थान विशेषका पहिले पहिले पता लगा लेना पर्य्याप्त नहीं है। केवल इतनेसे ही उसपर स्वाम्य नहीं होता, हां पहिले पता लगाना एक गौण प्रमाण निःसन्देह है। आजकल केवल इतनेसे अधिकार नहीं मिलता पर प्रचलित प्रथा यह है कि यदि किसी राजका जहाज किसी नये भूखण्डका पता लगाता है तो अन्य राज थोड़े दिन ठहर कर देखते हैं कि वह उसपर कब्जा करता है या नहीं। उसको ऐसा करनेका पर्य्याप्त अवकाश दिया जाता है।

अस्तु, तो पता लगाना ही कब्जा नहीं है। जिस राजका जहाज पता लगाये या जो अन्य राज कब्जा करना चाहे उसे चाहिये कि यह स्पष्ट प्रकट कर दे कि इस स्थानपर कब्जा कर-नेकी हमारी इच्छा है। इसका साधारण नियम यह है कि वहांपर राजका झण्डा गाड़ दिया जाय और कब्जेकी घोषणा कर दी जाय। पर यह घोषणा उस राजकी सर्कारकी ओरसे ही होनी चाहिये। कोई अन्य व्यक्ति, चाहे वह राजका उच्च कर्म्मचारी ही क्यों न हो, घोषणा नहीं कर सकता। इसलिये ऐसे अवसरपर एक कर्म्मचारी, विशेष अधिकार देकर, इसी कामके लिये भेजा जाता है। १७५६ में डैम्पियर नामक एक ब्रिटिश नाविकने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आस्ट्रेलियाके निकट न्यूब्रिटेन और न्यूआयरलैण्ड नामक दो नये द्वीपोंका पता लगाया। १८२४ में कप्तान कोर्टरेटने ब्रिटेनके नामपर इनमें कब्जेकी घोषणा कर दी। वह ब्रिटिश जल-सेनाके ऊंचे दर्जेके अफसर थे पर उन्हें ब्रिटिश सर्कारकी कोई विशेष आज्ञा न थी अतः उनकी घोषणा अन्य राजोंके लिये मान्य न थी। १९४१ में जर्मनीने इन द्वीपोंपर अपना अधिकार जमा लिया। कभी कभी ऐसा होता है कि अधीन संस्थाएं या कर्म्मचारी विना आज्ञाके ही किसी प्रदेश विशेषपर कब्जेकी घोषणा कर देते हैं पर ऐसी अवस्थामें यथासम्भव शीघ्र ही उनकी सर्कार उनके ऐसा करनेका स्वयं समर्थन करती है। यदि वह ऐसा न करे तो घोषणा निरर्थक होती है।

पर केवल घोषणासे ही काम नहीं चलता। जिस प्रकार साधारण कानूनमें दाखिल खारिज अर्थात् सम्पत्तिपर नाम चढ़नेके लिये यह देखा जाता है कि वस्तुतः उस सम्पत्तिका उपभोग कौन करता रहा है उसी प्रकार अन्ताराष्ट्रिय विधान भी यह देखता है कि वस्तुतः उस भूखण्डका कोई उपभोग भी हुआ है या नहीं। इसलिये अब घोषणाके बाद ही थोड़ी बहुत बस्ती बसानी पड़ती है। यदि जगह छोटी हो तो कुछ सर्कारी कर्मचारी ही रख दिये जाते हैं नहीं तो शीघ्र ही कृषकों और व्यापारियोंको बसानेकी चेष्टा की जाती है। बस्ती भी निरन्तर होनी चाहिये। थोड़े दिनोंके लिये हट जाना दूसरी बात है पर यदि कुछ काल तक बस्ती इस प्रकार हटा ली जाय कि इस बातका कोई प्रमाण न रह जाय कि फिर आकर बसना है तो दूसरे राजोंको वहां कब्जा करनेका पूर्ण अधिकार है। यह स्मरण रखना चाहिये कि बस्तीमें कुछ सर्कारी कर्मचारियोंका, जो वहींके लिये नियुक्त हुए हों, रहना परमावश्यक है। केवल व्यापारियों या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्काके बसनेसे सर्कारी कब्जा नहीं होता। बहुधा पहिले सर्कार कब्जा जमा लेती है फिर बस्ती बसाती है, पर कभी कभी इसके विपरीत भी होता है। दक्षिणी अफ्रीकाके नेटाल प्रदेशमें १८८१ में ही कुछ अंग्रेज बस गये थे पर सर्कारी घोषणा १९०० में हुई। इसमें डर यही रहता है कि यदि बीचमें कोई और राज उसे अधिकृत करना चाहता तो अंग्रेज सर्कार उसे वैध रूपसे नहीं रोक सकती थी।

अतः यह निश्चय हुआ कि किसी लावारिस भूमिपर पूर्ण अधिकार जमानेके लिये यह आवश्यक है कि अधिकार जमानेकी घोषणा करके उसके शासनके लिये कुछ सर्कारी कर्मचारी नियुक्त किये जायं जो वहीं रहें।

अधिकृत भूमिका क्षेत्रफल

इस समय यह प्रश्न बड़े महत्व का इसलिये नहीं प्रतीत होता कि पृथ्वी इस प्रकार छान डाली गयी है कि स्यात् कोई ऐसा देश ही नहीं बच गया है जिसपर किसी किसी सभ्य राजका अधिकार न हो। कभी कभी भूकम्प आदिके कारण प्रशान्त महासागरमें एकाध छोटासा द्वीप भले ही उत्पन्न हो जाय पर किसी बड़े द्वीप या देशके मिलनेकी आशा नहीं है। पर दो बातें ध्यानमें रखने योग्य हैं। एक तो अब भी अफ्रीकाके बहुत बड़े भागपर किसी सभ्य राजका कब्जा नहीं है, दूसरे यह असम्भव नहीं है कि जिन देशोंपर आज सभ्य राज अधिकार जमाये बैठे हैं वहांसे भविष्यत्में उनका अधिकार उठ जाय। किसी समय ब्रिटेनपर रोमका अधिकार था पर जब रोमके पतनका समय आया तो वह इतना दुर्बल हो गया कि उसे ब्रिटेनसे हाथ खींचना पड़ा और ब्रिटेन लावारिस हो गया। यह कौन कह सकता है कि यदि फिर कोई भीषण महायुद्ध हुआ तो ब्रिटेन, फ्रांस,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हालैण्ड इत्यादि एशिया और आस्ट्रेलियाके पासके द्वीपोंपर अपना अधिकार स्थिर रख सकेंगे। यदि यह द्वीप एक बार इनके हाथ-से निकल गये तो फिर लावारिस हो जायँगे और अन्य सभ्य राजोंको उनपर कब्जा करनेमें कोई रुकावट न होगी। उस समय यह नियम काम देंगे।

एक बड़े महत्त्वका प्रश्न यह है कि एक बार घोषणा करने और कुछ कर्मचारी नियुक्त कर देनेसे कितनी भूमिपर अधिकार हो जाता है। इसमें तो सन्देह नहीं कि छोटे द्वीप या द्वीपसमूहपर एक साथ ही कब्जा हो जाता है पर समूचे महाद्वीपपर इस प्रकार कब्जा नहीं हो सकता। फ्रांस या स्पेन चाहते थे कि सारा अमेरिका ही उन्हें मिल जाय पर उनकी बात किसीने न मानी। एक दो नहीं दस पांच बस्तियां बसानेसे भी महाद्वीप या बड़ा देश नहीं अपनाया जा सकता। आज आस्ट्रेलियाका द्वीप, जो एक महाद्वीप कहा जा सकता है, ब्रिटेनका हो गया है। कारण यह है कि उसके चारोंओर समुद्रतटपर ब्रिटिश बस्तियां हैं और किसी अन्य राजने उसमें अपना उपनिवेश बसाया ही नहीं। पर यह अवस्था बहुतोंको अच्छी नहीं लग रही है। देश बहुत बड़ा है और अंग्रेज बहुत थोड़े हैं। भारतीय, चीनी, जापानी अभी उसमें घुसने नहीं पाते हैं यद्यपि आस्ट्रेलिया एशियाके निकट है और एशियावासियोंके लिये सर्वथा उपयुक्त है। सम्भवतः एक दिन उसमें भारत, चीन और जापानके ही उपनिवेश होंगे।

विधान शास्त्रका यह एक सिद्धान्त है कि स्थलसे संलग्न जल होता है, जलसे संलग्न स्थल नहीं। स्थलपर स्वाम्य होनेसे जलपर स्वाम्य हो जाता है परन्तु जलपर स्वाम्य होनेसे स्थलपर स्वाम्य नहीं होता। यदि किसी नदीके मुहानेपर कब्जा कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिया जाय तो उस सारे भूखण्डपर कब्जा नहीं माना जायगा जिसमें से वह नदी या उसकी सहायक नदियां बहती हैं पर यदि समुद्र-तटके पासके बड़े भूखण्डपर कब्जा हो जाय तो उस ऊँची भूमि या पहाड़ी तक कब्जा माना जाता है जहांसे नदियां इस तटकी ओर झुकती हैं। यदि दो राजोंकी बस्तियोंके बीचमेंसे नदी बहती है तो दोनोंका नदीके अपने अपने तट तक कब्जा माना जाता है और नदीके जिस भागमें नाव चल सकती है उसके मध्यकी कल्पित रेखा दोनों बस्तियोंकी सीमा मानी जाती है। जहां नदी, पहाड़ इत्यादि प्राकृतिक सीमाएं नहीं मिलती वहां कल्पित और कृत्रिम सीमाएं बनानी पड़ती हैं। बहुधा यह करते हैं कि दोनों ओरकी अन्तिम इमारतोंके बीचकी भूमिके बीचों बीचकी कल्पित रेखाको सीमा मान लेते हैं।

इन नियमोंका पालन करनेसे झगड़े बहुत कम हो जाते हैं पर उनके लिये अवकाश निकल ही आते हैं। इसीको बचानेके लिये अफ्रीकाके विषयमें ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, पुर्तगाल इत्यादिने आपसमें समझौता करके यह निश्चय कर लिया कि कौन देश कहां तक कब्जा करेगा। आजकल तो यह नियम हो गया है कि कब्जा करने वाला राज स्वयं पहिलेसे ही कह दे कि वह कहां तक कब्जा करना चाहता है। १९४५ में लोसानमें अन्ताराष्ट्रीय विधान परिषद्‌ने पहिले पहिले यह परामर्श दिया था। यह कहना अनावश्यक है कि यदि वह राज बहुत बड़े भूखण्डको दबाना चाहेगा तो अन्य राज उसकी एक न सुनेंगे। साथ ही यह भी शर्त है कि वह जितनी भूमिपर कब्जा करे उसमें ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न न होने दे जिससे सभ्य मनुष्य उसमें बस ही न सकें या वहाँ व्यापार, कृषि आदि करना असम्भव हो जाय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम देख चुके हैं कि जिन देशोंपर किसी सभ्य राजका शासन न हो उनपर कब्जा हो सकता है। यदि वह देश निर्जन हो तो कोई अड़चन नहीं होती पर यदि वहाँ कुछ मनुष्य पहिलेसे बसे हों तो एक प्रश्न उठता है। माना कि यह लोग असभ्य हैं पर हैं तो मनुष्य। क्या इनका इस भूमिपर कोई अधिकार नहीं है ? आजसे सौ दो सौ वर्ष पूर्व तो यह प्रश्न किसीको नहीं सताता था पर आजकल लोगोंकी विवेक-बुद्धि कुछ तीक्ष्ण हो गयी है अतः यह बात खटकती है। पहिलेके लोगोंका तो यह भाव था कि आदिम निवासियोंका कोई अधिकार नहीं है। आजकल ऐसा नहीं कहा जाता। उत्तरी अमेरिकामें अंग्रेजोंने जो बस्तियाँ स्थापित कीं उनके सम्बन्धमें फिलिमोर कहते हैं—'उत्तरी अमेरिकाके आदिम निवासियोंको यह अधिकार था कि अपनी आखेट-भूमियोंमें अंग्रेज व्यापारियोंको न बसने देते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसलिये यह समझना चाहिये कि भूमिके स्वाम्यमें अंग्रेज भी सम्मिलित कर लिये गये। फिलिमोर इस बातको छिपाते हैं कि उन जंगलियोंने प्रेमवश होकर अंग्रेजोंको अपना हिस्सेदार (!) नहीं बनाया वरन् तोप बन्दूक और शराबके आगे उनकी एक न चली। अस्तु, आजकल बहुधा यह मत है—कोई विधान हो वह अपने पात्रोंका ही नियंत्रण कर सकता है, उन्हींके अधिकारों और कर्तव्योंका निर्णय कर सकता है। सभ्य राज अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र हैं अतः वह विधान उनके ही लिये नियम बना सकता है। इसने कब्जा करनेके सम्बन्धमें कुछ नियम बनाये हैं। यदि उसके पात्र अर्थात् सभ्य राज उन नियमोंका पालन करते हैं और उनके अनुसार कब्जा करते हैं तो वह सन्तुष्ट है। असभ्य या अर्द्ध-सभ्य समुदाय उसके पात्र नहीं हैं इसलिये वह न तो उनके

आदिम निवासी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकारोंको जानता है न कर्तव्योंको। इसलिये यदि सभ्य राज इस प्रकारके देशोंपर कब्जा कर लेते हैं तो उनका ऐसा करना पूर्णतया वैध है। परन्तु विधानके अतिरिक्त धर्म्म भी एक वस्तु है और न्याय धर्म्मका एक प्रधान अंग है। धर्म्म यह कहता है कि जो समुदाय, चाहे वह कैसा ही जंगली हो, किसी भूखण्ड-पर बस गया है उसका उसपर अधिकार हो गया है। अतः सभ्य राजोंपर वैध नहीं तो नैतिक दबाव अवश्य है। इसलिये आजकल यह चाल चल पड़ी है कि एक वार अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार कब्जा करके फिर तत्रस्थ जंगली सर्दारोंसे सन्धियां की जाती हैं। इन सन्धियोंके अनुसार उस भूखण्डका कुछ भाग तो आदिम निवासियोंके लिये छोड़ दिया जाता है, कुछ उनसे ले लिया जाता है। जो भाग लिया जाता है उसका मूल्य भी उन्हें दिया जाता है। इस युक्तिसे यूरोपकी सभ्यता अपनी धर्म्मपरताका परिचय देती है। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि यह सर्दार जंगली होते हैं। यह बेचारे लिखित सन्धियोंके ढंगसे अपरिचित होते हैं, कानूनी शब्दोंके दावपेचसे सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं, धनके महत्त्वको समझते नहीं, पाश्चात्य सभ्यताकी शक्तिसे घबराते हैं और उसके प्रलोभनोंमें फँस जाते हैं। अतः उन्हें बहंकाकर ऐसी सन्धियां लिखवायी जाती हैं कि थोड़ेसे ही कालमें सारा देश यूरोपियनोंका हो जाता है और वह बेचारे या तो अन्नादिके कष्टसे प्रायः सारे नष्ट हो जाते हैं या गुलामोंसे भी बुरी दशामें जा गिरते हैं। दक्षिणी और पूर्वीय अफ्रीका तथा उत्तरी अमेरिकाका इतिहास ऐसी घटनाओंसे परिपूर्ण है। आजकल जिन राज्योंको राष्ट्रसंघने शासनादेश दिये हैं उनसे यह शर्त की है कि इन देशोंका शासन इस प्रकार करो कि आदिम निवासी सभ्य हो जायं और उनको किसी संरक्षककी आवश्यकता ही न रहे। देखा चाहिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या होता है। अभी तो सर्वत्र ऐसा ही शासन रहा है कि यदि कल यूरोपियन सभ्यता उन देशोंसे उठ जाय तो वहांके निवासी हर्षोत्फुल्ल होकर परमात्माकी वन्दना करेंगे और मनायेंगे कि हे भगवन्, अब हमें इन सभ्य मूर्तियोंके दर्शन न दीजिये। यूरोपियन राज कहते अवश्य हैं कि हम जब कहीं कब्जा करते हैं तो केवल अपने बलवैभवकी वृद्धि या उपनिवेश स्थापित करनेके उद्देश्यसे नहीं प्रत्युत आदिम निवासियोंको सुसभ्य बनाना भी हमारा एक प्रधान लक्ष्य रहता है, पर आजतक ऐसी बातें देखनेमें नहीं आयीं जिनसे इस कथनकी सत्यतापर विश्वास हो।

प्राकृतिक वृद्धि।

यह कोई बहुत महत्त्वका विषय नहीं है क्योंकि इस प्रकार राज्यवृद्धि बहुत कम होती है और यदि कभी होती है तो उसके विषयमें प्रायः मतभेद और विवाद भी नहीं होता। प्राकृतिक वृद्धि समुद्र या नदी-तटपर ही सम्भव है। कभी कभी पानी हट जाता है और इस प्रकार कुछ नयी भूमि बढ़ जाती है। यह उसी राजकी सम्पत्ति होती है जिससे मिली होती है। यदि पानीमें कुछ नये द्वीप बन जायं तो वह भी उसी राजकी सम्पत्ति माने जाते हैं जिसके राज्यके निकट होते हैं। यदि दो राजोंके बीचमें पानी पड़ता हो और ठीक बीच धारमें ही नयी भूमि निकल आये तो वह बीच धारकी उस कल्पित रेखा द्वारा, जो दोनों राजोंकी सीमा मानी जाती है, दो भागोंमें बांट दी जाती है। पर यदि दो राजोंके बीचमें कोई नदी या झील हो और वह किसी दैवी दुर्घटनाके कारण यकायक अपना मार्ग ही छोड़ दे या विलुप्त हो जाय तो दोनों राजोंके राज्योंमें कुछ भी वृद्धि-ह्रास न होगा प्रत्युत उनकी सीमा पुरानी अदृष्ट धाराकी कल्पित मध्यरेखा ही मानी जायगी और इसीके अनुसार पानीके हट जानेसे जो नयी

११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमि निकल आयेगी वह आपसमें बांट ली जायगी। प्रायः इसी प्रकारके नियम सभी देशोंमें खेतों और उन जमीनदारियोंके लिये प्रचलित हैं जो नदीके किनारे होती हैं

हस्तान्तर।

एक सभ्य राजसे दूसरे सभ्य राजके हाथमें बहुधा हस्तान्तरित होकर ही भूखण्ड जाया करते हैं। इसका अर्थ तो यह है कि भूखण्ड अपनी इच्छासे दिया जाय पर कभी कभी ऐसा होता है कि भूखण्ड लिया तो जाता है बलात् ही पर दिखलानेको, ताकि देनेवालेकी अप्रतिष्ठा न हो, हस्तान्तरका स्वरूप दिया जाता है। हस्तान्तर सन्धि द्वारा होता है। सन्धिपत्रमें यह लिखा जाता है कि नये अधिकारीको पुराने अधिकारीके ऋणका कौनसा भाग अपने ऊपर लेना होगा, हस्तान्तरित प्रदेशकी प्रजाके किन किन स्वत्वोंकी विशेष रक्षा की जायगी, इत्यादि। हस्तान्तर कई प्रकारोंसे होता है। उनमें विक्रय, भेंट और विनिमय मुख्य हैं।

आजकल विक्रय कम होता है क्योंकि राजोंके पास ऐसी परती भूमि ही नहीं है जिसे अनावश्यक समझ कर बेच डाला जाय। पर कभी कभी अब भी विक्रय होता है। १९२४ में संयुक्त राजने रूससे उत्तरी अमेरिकाके वायव्य कोणका अलास्का प्रान्त ७२,००,००० डालर (अर्थात् लगभग २,४०,००,००० रुपये) में मोल ले लिया। भेंट आपसके सौहार्दकी द्योतक है। इस प्रकार-की भेंट स्यात् ही कभी होती है। पहिले होती थी। १८१९ में फ्रांसने स्पेनको लूइज़ीआनाका उपनिवेश भेंट कर दिया था। बम्बईका द्वीप ब्रिटिश नरेश प्रथम चार्ल्सको पुर्तगालसे अपने विवाहके उपलक्ष्यमें मिला था। जबरदस्तीकी भेंट अब भी होती है। यदि दो राजोंमें युद्ध होकर एक हार जाता है और उसे कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूखण्ड विजेताको देना पड़ता है तो इसे भी भेंट ही कहते हैं। १९२८ में फ्रांसको जर्मनीने हराया। परिणाम यह हुआ कि फ्रांसने अल्सास और लारेन दो प्रान्त जर्मनीको भेंट किये। यह भेंट फ्रांसको कभी न भूली। उसीका प्रतिकार वह जर्मनीसे अब ले रहा है। कभी कभी भेंट और विक्रयको मिला कर हस्तान्तर होता है। १९५५ में संयुक्त राजने स्पेनको हराया और उसे फिलिपाइन द्वीपसमूह भेंट करनेपर विवश किया पर स्वतः द्वीपके लिये २,००,००,००० डालर (७,००,००,००० रुपये) स्वीकार किया। इसे जबरदस्तीका विक्रय कह सकते हैं। कभी कभी आपसमें विनिमय भी होता है। १९४७ में जर्मनीने ब्रिटेनको अपने पूर्वीय अफ्रीकाके राज्यका एक भाग दे दिया जिसके स्थानमें ब्रिटेनने जर्मनीको हेलिगोलैण्ड दे दिया।

विजय।

जब किसी राजके राज्यके किसी भागमें किसी दूसरे राजकी सेना उसकी सेनाओंको हरा कर अपना अधिकार जमा लेती है तो वह राज जिसकी सेना जीत गयी होती है उस प्रदेशका विजेता कहलाता है अर्थात् यह कहा जाता है कि उस प्रदेशमें उसकी विजय हुई है। पर यह सैनिक विजय मात्र है, इससे वह विजेता उस प्रदेशका स्वामी नहीं हो जाता। गत युद्धमें तीन चार वर्ष तक बेल्जियम तथा फ्रांसका बहुत बड़ा भाग जर्मन सेनाओंके अधीन था पर जर्मनी उन भूखण्डोंका स्वामी नहीं हुआ। ऐसे प्रान्तोंमें विजेताकी सेना तो रहती है पर शासन पुरानी सर्कारके कर्मचारी ही करते हैं। उसीके बनाये कानून बरते जाते हैं, उसीके न्यायालय होते हैं, उसीका सिक्का चलता है। यह अवश्य होता है कि विजेता सर्कारी कोषका स्वयं उपयोग कर लेता है और सैनिक सुविधाके लिये कुछ नियमोपनियम बना देता है पर वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आभ्यन्तर शासनमें हस्तक्षेप नहीं करता। यदि वह जबरदस्ती कुछ हस्तक्षेप कर दे, कुछ निरपराधियोंको दण्ड दे दे, अपराधियोंको छोड़ दे, किसीकी सम्पत्ति कुर्क कर ले, तो जब युद्धकी समाप्ति पर यह प्रान्त फिर पुराने स्वामीके अधीन जायगा तो वह बातें वैध न मानी जायँगी और उलट दी जायंगी।

यदि विजेता उस भूखण्डको अपने राज्यमें मिलाना चाहे तो उसे चाहिये कि इस बातकी स्पष्ट घोषणा कर दे और अन्य राजोंको इसकी सूचना दे दे। फिर उसको अपनी ओरसे शासक नियुक्त करना होगा, अपने बनाये कानून चलाने होंगे, अपने न्यायालय नियुक्त करने होंगे, अपना सिक्का चलाना होगा अर्थात् वह सब काम करने होंगे जो एक सभ्य सर्कार करती है। कभी कभी ऐसा होता है कि विजेता न तो घोषणा करता है न सूचना देता है पर शासन करने लग जाता है। कुछ दिनों तक ऐसा करते जाना सूचना देनेके बराबर ही है। कानूनकी दृष्टिमें इसीका नाम विजय है। इस प्रकार विजयके द्वारा किसी भूखण्डको अपने राज्यमें मिला लेना वैध माना जाता है। ऐसी अवस्थामें विजेता जो कानून बनाये, जो और सर्कारी काम करे, सब वैध हैं। यह निश्चय है कि कोई राज तभी अपना शासन बैठाता है जब उसे इस बातका दृढ़ निश्चय हो जाता है कि युद्धमें मेरी ऐसी पक्की जीत होगी कि फिर यह प्रान्त मेरे हाथसे न निकलेगा। जहाँ ऐसा निश्चय नहीं होता या सचमुच राज्यवृद्धिकी इच्छा नहीं होती वहां युद्धके अन्त तक सैनिक अधिकार मात्र रक्खा जाता है।

विजय और हस्तान्तरमें एक बड़ा भेद है। हस्तान्तर चाहे बलात् ही कराया जाय पर वह लिख पढ़ कर होता है। सन्धिपत्रपर दोनों ओरके हस्ताक्षर होते हैं, कुछ शर्तें होती हैं। यदि बलका प्रयोग या धमकी हुई भी हो तो वह छिपी रहती है। विजय शुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तिकी मूर्ति है। विजेता अपनी इच्छामात्रसे उस प्रान्तका स्वामी हो जाता है। यदि शत्रुका सारा राज्य ही मिला लिया जाय तो कोई सन्धि करनेवाला रह ही नहीं जाता, पर यदि एक टुकड़ा ही इस प्रकार मिलाया जाता है—और प्रायः यही होता है—तो युद्धके अन्तमें जो सन्धिपत्र लिखा जाता है उसमें बहुधा उस प्रदेशका नाम ही नहीं लिखा जाता। लज्जा छिपानेके लिये विजित राज उस विषयमें चुप रह जाना ही पसन्द करता है।

कुछ लोगोंका मत है कि विजय द्वारा राज्य-वृद्धि करना अनैतिक है। छोटे राज बहुधा ऐसा कहते हैं पर अभी तक अन्ताराष्ट्रिय विधान विजयको वैध मानता आया है। प्रबल राज बराबर इस प्रकार अपना राज्य बढ़ाते आये हैं। हाँ, यह अवश्य हुआ है कि कभी कभी बड़े राजोंने छोटे राजोंको विजय द्वारा राज्य-वृद्धि करनेसे रोक दिया है।

उपभोग।

अन्ताराष्ट्रिय विधानमें भी उपभोग या दख़लका वही स्थान है जो साधारण विधानमें है। यदि कोई मकान या ज़मीन किसी मनुष्यके पास बहुत दिनोंसे चली आती हो तो वह उसकी ही हो जाती है, चाहे उसका उसपर कोई स्वत्व हो चाहे न हो। यदि किसीका घर गिर जाय और बहुत दिनों तक लोग उसमेंसे आते जाते रहें तो वह सड़ककी गिनतीमें आ जाता है। इसी प्रकार यदि कोई भूखण्ड बहुत दिनों तक किसी राजके दख़लमें रहे तो चाहे उसका उसपर कोई न्याय्य स्वत्व हो या न हो पर वह उसकी ही सम्पत्ति हो जाता है। एक अन्तर है। साधारण विधानमें कुछ नियम होता है कि इतने वर्षोंके दख़लके बाद स्वाम्य मिल जाता है पर राजोंपर कोई अधिष्ठाता न होनेसे इस प्रकारका कोई नियम नहीं है। बस इतना ही देखा जाता है कि बहुत दिनोंसे दख़ल चला आता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो प्रदेश उपर्युक्त किसी भी प्रकारसे किसी राजके राज्यका अंश बन जाता है उसपर तो वह राज अपने पूर्ण प्रभुत्वसे काम लेता है पर आजकल बड़े राजोंके अधीन कई ऐसे भी भूखण्ड हैं जो उनके राज्यके अंश नहीं हैं। उनके सम्बन्धमें यह विचारणीय होता है कि उन राजोंका उनपर कहां तक स्वाम्य है और क्या क्या अधिकार हैं। पुरानी राजनीति स्वाम्य और प्रभुत्वके विच्छेदसे परिचित न थी। जो राज जिस भूखण्डका प्रभु था, वही उस भूखण्डका स्वामी था। ऐसा अवश्य होता था कि एक बड़े राजके अधीन कई छोटे राज होते थे। इसका तात्पर्य्य केवल इतना ही था कि इन छोटे राजोंने अपने प्रभुत्वका कुछ अंश बड़े राजको सौंप दिया था। पर राज्यपर वह स्वयं प्रभु थे और स्वयं स्वामी थे, बड़ा राज अपनेको स्वामी नहीं समझता था। आजकल स्वाम्य और प्रभुत्वमें अन्योन्याश्रय नहीं रहा। कहीं तो एक राज किसी भूखण्डका स्वामी और प्रभु दोनों है, कहीं प्रभु है पर स्वामी नहीं है, कहीं स्वामी है पर प्रभु नहीं है। यह विचित्र अवस्था चार पांच प्रकारके उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगी।

सबसे पहिले संरक्षणको लीजिये। आजकल संरक्षण तीन प्रकारका होता है। पहिला संरक्षण तो वह है जो एक सभ्य और प्रभु राज दूसरे सभ्य और प्रभु राजके ऊपर करता है। इस व्यापारके दोनों पक्ष अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र होते हैं पर इनमें से एक किसी कारण अपने प्रभुत्वका कुछ अंश दूसरेको सौंप देता है, इसीलिये यह दूसरा संरक्षक कहलाता है। १९७१ से चारसाल तक ब्रिटेन और मिश्रका इसी प्रकारका सम्बन्ध था।

संरक्षण और संरक्षित प्रदेश

दूसरा संरक्षण; वहां होता है जहां संरक्षक तो पूर्ण प्रभु होता पर संरक्षित राज; सभ्य होते हुए भी अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होता। १९४७ में ब्रिटेनने इसी प्रकारका संरक्षण ज़ंजबारपर स्थापित किया।

उपर्युक्त दोनों प्रकारोंमें यह स्पष्ट है कि भूमिपर स्वाम्य संरक्षित राजका ही रहता है। यदि वह बलवान् हो गया तो धीरे धीरे स्वतंत्र भी हो जाता है। मिश्र अब स्वतंत्रप्राय हो रहा है। १९५३ में हब्शका अर्ध-सभ्य राज इटलीके संरक्षणसे निकल गया; पर यदि संरक्षित राज बहुत दुर्बल हुआ तो वह धीरे धीरे संरक्षकमें ही मिल जाता है और संरक्षकको आंशिक प्रभुत्वके साथ पूर्ण प्रभुत्व और पूर्ण स्वाम्य भी प्राप्त हो जाता है।

भारतके देशी राज भी ब्रिटिश संरक्षणमें हैं। एक समय था जब कि इनमेंसे कई अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र थे। उस समय यदि इनपर ब्रिटिश संरक्षण था भी तो मिश्र आदिके ढङ्गका, पर पीछेसे इनका पात्रत्व जाता रहा। यह नितान्त दुर्बल हो गये। ब्रिटिश सर्कारने कह दिया कि यह अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र नहीं हैं और इन्होंने एक बार उफ़ भी न किया। अतः अब यह मानना चाहिये कि इनका संरक्षण उसी प्रकार हो रहा है जिस प्रकार कि ज़ंजबार आदि अर्धसभ्य राजोंका होता है। यह इस पतित अवस्थासे सन्तुष्ट प्रतीत होते हैं। यदि १९१४ के सिपाही-विद्रोहके बाद ब्रिटिश सर्कारने अपनी नीति न बदल दी होती तो आज इनका पता भी न होता। सभी 'ब्रिटिश भारत' में मिल गये होते।

तीसरे प्रकारका संरक्षण वह है जिसे औपनिवेशिक संरक्षण कहते हैं। जैसा कि हम पहिले खण्डमें ही दिखला चुके हैं कई राजोंने अफ्रीकामें इस प्रकारके संरक्षण स्थापित किये हैं। एक बड़ा प्रदेश अपना लिया जाता है। यह कह दिया जाता है कि यह हमारे संरक्षणमें है। वहां कोई सभ्य या अर्द्ध-सभ्य राज तो होता नहीं जिसका संरक्षण किया जाय। प्रदेशके प्रदेश-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का ही संरक्षण किया जाता है। इच्छा तो वहाँ उपनिवेश स्थापित करनेकी होती है पर सुविधा या सामग्री न होनेसे आरम्भमें ऐसा नहीं किया जाता। बस इस संरक्षणका इतना ही अर्थ है कि अब इस प्रदेशमें कोई और पांव न रक्खे।

ऐसे प्रदेशोंके सम्बन्धमें कई प्रश्न उठते हैं। नाम है संरक्षण अतः कोई संरक्षित भी होना चाहिये। यदि वहां रहने वाले आदिम निवासियोंको संरक्षित मानें तो फिर प्रदेशका स्वामी कौन हुआ। और जगहोंमें तो संरक्षित ही स्वामी होता है। यदि संरक्षकसे किसी अन्य राजसे युद्ध हो तो वह राज इस प्रदेशपर आक्रमण करेगा या नहीं? यदि यह संरक्षककी सम्पत्ति नहीं है, तो आक्रमण न होना चाहिये? यहांके निवासी किसकी प्रजा हैं, संरक्षककी या अपने सर्दारोंकी? इन प्रश्नों-का उत्तर किसी सिद्धान्तपर नहीं दिया जा सकता पर यूरोपियन राजोंके व्यवहारको देखकर यह कह सकते हैं कि ऐसी अवस्थामें संरक्षक सभी बातोंमें स्वामी सा ही आचरण करता है और अन्य राज भी उसके साथ उस प्रदेशके स्वामी सा ही व्यवहार करते हैं। औपनिवेशिक संरक्षण एक निरर्थक नाम मात्र है। वह उपनिवेशका पूर्वरूप है और अपनेको पूर्ण स्वामी कहनेका रूपान्तरमात्र है। जैसा कि हालने कहा है, औपनिवेशिक संरक्षण और पूर्णप्रभुत्वमें वही सम्बन्ध है जो तिलक (या मँगनी) और विवाहमें है।

प्राचीन कालमें प्रभाव-क्षेत्रोंका भी पता न था। इनकी उत्पत्ति भी अफ्रीकामें ही हुई है। आपसमें समझौता करके बड़े बड़े यूरो-पियन राजोंने इस महाद्वीपको अपने अपने प्रभाव-क्षेत्रोंमें बाँट लिया है। यह बात बिना समझौते-के हो भी नहीं सकती थी। अब भी जिन राजोंने समझौतेमें भाग नहीं लिया है वह उसे माननेके लिये बाध्य नहीं

प्रभावक्षेत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। प्रभाव-क्षेत्रका अर्थ यह है कि इतनी दूर तक कोई हमारे कामोंमें बाधा न डाले। हमारे जीमें आयेगा यहां औपनिवेशिक संरक्षण स्थापित करेंगे, जीमें आयेगा उपनिवेश स्थापित करेंगे, जीमें आयेगा कुछ न करेंगे।

प्रभाव-क्षेत्र सम्पत्ति नहीं है। यदि उसपर स्वाम्य स्थापित करना हो तो शीघ्र ही कमसे कम औपनिवेशिक संरक्षण स्थापित करना चाहिये। केवल प्रभावक्षेत्रका अर्थ हुआ—न आप उपभोग करना न दूसरोंको उपभोग करने देना। कुछ दिनों तक प्रतीक्षा कर अन्य सभ्य राज कोरे प्रभावक्षेत्रमें प्रवेश करनेसे कभी न चूकेंगे।

निजी सम्पत्तिकी भांति राज्यको बाँटने और दान देनेकी प्रथा तो बहुत दिनोंसे चली आती है पर राज्य या उसके कुछ अंश-

दायमी पट्टा

को दूसरे राजके यहाँ भोगबंधक रख देना या उसका दायमी पट्टा लिख देना अबही प्रचलित हुआ है। जब सबल राज दुर्बल राजोंके राज्यका कुछ अंश दबाना चाहते हैं तो संसारको दिखलानेके लिये यह चाल चली जाती है। उसका दीर्घकालीन पट्टा लिखवा लिया जाता है। कहा यह जाता है कि यह भूमि अब भी अपने पुराने स्वामीकी है और वही इसका प्रभु है पर जितने दिनों तककी शर्त है उतने दिनों तक पट्टा लिखानेवाला इससे काम लेगा। सबसे अधिक चीनपर हाथ साफ किया गया है। १९५५ में जर्मनीने किआउचाउका ९९ वर्षका पट्टा लिखाया, फिर तो फ्रांस, रूस, ब्रिटेन सभी पट्टे ले लेकर दौड़ पड़े। पूर्वीय समुद्र-तटके कई अच्छे अच्छे बन्दर इन पट्टोंमें निकल गये। २५ वर्षसे कमका कोई पट्टा न था।

कहनेके लिये तो केवल कुछ नियत वर्षोंके लिये पट्टा लिखा गया था, वस्तुतः चीन ही स्वामी और प्रभु था पर यह केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहनेकी बात थी। जब रूस और जापानमें युद्ध आरम्भ हुआ तो जापानने रूसके पट्टे वाली भूमिके साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि शुद्ध रूसी राज्यके साथ हो सकता था। यह किसीने चीनसे पूछना आवश्यक न समझा कि यह भूमि आपकी है, इसपर आपका पूर्ण प्रभुत्व है अतः यदि आप अनुज्ञा दें तो हम इसपर अपनी सेना रक्खें और युद्ध करें। युद्धके पीछे रूसने अपना पट्टा जापानके हाथ हस्तान्तरित कर दिया, चीनसे यह न पूछा गया कि वह जापानको पट्टा देना चाहता है या नहीं। महायुद्धके समय जापानने क्किआउचाउपर, जिसका पट्टा जर्मनीके नाम था, कब्जा कर लिया। सच्ची बात यह थी कि पट्टा तो एक बहाना था, चीन बेचारेसे उन भूखण्डोंका स्वाम्य और प्रभुत्व छीन लिया गया था। बहुत दिनोंकी लिखा-पढ़ीके बाद अब कहीं जापानने चीनको क्किआउचाउ पुनः लौटा दिया है।

ऊपर जिस प्रकारके पट्टेका उल्लेख किया गया है वह ऐसा है जो समझमें आता है पर कभी कभी अन्ताराष्ट्रिय जगत्में ऐसी विलक्षण बातें हो जाती हैं जिनका कुछ ठीक अर्थ ही नहीं होता। १९५१ में ब्रिटेनने अपने पूर्वी अफ्रीकाके प्रभावक्षेत्रके कुछ भागका पट्टा बेल्जियमके नाम लिख दिया। फ्रांसको यह बात न भायी। उसने बेल्जियम नरेशको किसी प्रकार राजी करके उन्हें इस बातपर सम्मत किया कि वह इस पट्टेवाली भूमिके अधिक भागपर अपना कब्जा न करें। इसके कुछ काल बाद उस प्रान्तमें मेहदीने विद्रोह किया। विद्रोहके शान्त होने पर बेल्जियमने फिर उस पुराने पट्टेके अनुसार उस भूमिपर अधिकार जमाना चाहा परन्तु ब्रिटेनने कहा कि तुमने फ्रांससे जो समझौता किया था उससे पट्टा रद हो गया। इसपर दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओरसे सात वर्ष तक गरमागरम विवाद होता रहा, अन्तमें ब्रिटेनकी ही बात रही।

विवादका तो अन्त हो गया। सम्भवतः इसका एक कारण यह भी था कि ब्रिटेन बड़ा राज है, बेल्जियमने चुप रहना ही उचित समझा। पर यहांपर कई महत्त्वके प्रश्न उठ सकते हैं। प्रभाव-क्षेत्रपर स्वाम्य नहीं होता, फिर ब्रिटेनने उसका पट्टा बेल्जियमको कैसे दे दिया? क्या ऐसी वस्तुका भी पट्टा लिखा जा सकता है जो अपनी है ही नहीं? इस प्रदेशमें जो विद्रोह हुआ था उसका दमन करना किसका कर्त्तव्य था, ब्रिटेनका या बेल्जियमका? इन प्रश्नोंका कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया गया है। पर इस घटनासे एक लाभ यह हुआ कि अब स्यात् कोई राज ऐसी भूल न करेगा जैसी ब्रिटेन और बेल्जियमने की।

शासनादेश

गत महायुद्धके बाद शासनादेशोंकी उत्पत्ति हुई। कई विस्तृत भूखण्डोंको राष्ट्रसंघने अपने अधिकारमें लेकर उनके शासनके निरीक्षणका भार कई भिन्न भिन्न राजोंको दिया। इन राजोंको यह आदेश दिया गया कि इन देशोंके निवासियोंको स्वायत्त-शासनके योग्य बनाओ जिससे कि शीघ्र ही यह स्वतन्त्र कर दिये जायं।

शासनादिष्ट देश दो प्रकारके हैं। प्रथम कोटिमें इराक ऐसे देश हैं जिनकी जनता सभ्य है। वहांके लोग विदेशी निरीक्षण स्वतः नापसन्द करते हैं अतः वहां किसी न किसी प्रकारका स्वराज स्थापित हो ही जाता है और निरीक्षकका अधिकार क्षीण होता ही जाता है। ऐसे देश बहुत शीघ्र स्वाधीन हो सकते हैं। इराकको ही लीजिये, नाम तो यह था कि ब्रिटेनको राष्ट्रसंघने उसका शासनादेश दिया था पर ब्रिटिश नीतिसे यह प्रकट होता था

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि ब्रिटेन उसे अपना ही करना चाहता है। पर अरबोंने उसे ऐसा करने न दिया। सम्भवतः थोड़े ही दिनोंमें ब्रिटेन अपना पिण्ड छुड़ा कर निकल भागेगा।

हम पहिले देख चुके हैं कि यूरोपियन राज बहुधा व्यापारियोंको इस बातका अधिकार दे देते हैं कि वह जाकर नये देशोंमें व्यापार करें और अपनी रक्षाके लिये स्वतः समुचित प्रबन्ध कर लें। धीरे धीरे इस प्रकारकी कई व्यापारिक मण्डलियोंके हाथमें बड़े बड़े राज्य आ जाते हैं। भारत ईस्ट इण्डिया कम्पनी नामक व्यापारि-मण्डलीके द्वारा ही ब्रिटिश सर्कारके हाथमें गया। जब तक व्यापारि-मण्डल शासन करता है तब तक उस भूमिका स्वामी वही है पर यह प्रबन्ध बहुत दिनों तक नहीं चलता। किसी न किसी कारण उस राजको स्वयं शासनकी डोर अपने हाथमें लेनी पड़ती है। १९१४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी मूर्खतासे ही भारतमें सिपाही-विद्रोह हुआ और ब्रिटिश सर्कारने कम्पनीको हटाकर स्वयं शासन संभाला। ब्रिटिश साउथ अफ्रीकन कम्पनीने ही ट्रांसवालसे छेड़छाड़ करके बोअर युद्धकी नींव डाली जिसमें ब्रिटिश सर्कारको भाग लेना पड़ा। अतः जिस जिम्मेदारीसे बचनेके लिये कम्पनियोंको इस प्रकारके अधिकार दिये जाते हैं वह जिम्मेदारी घूम फिर कर आ ही जाती है। कोई व्यापारिमण्डल अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र नहीं हो सकता इसलिये परराज उस राजको ही दायी ठहराते हैं जिसकी ओरसे कम्पनीको अधिकार मिला होता है।

व्यापारियोंके अधीन देशोंपर अधिकार

कभी कभी एक ही भूखण्डके दो दो (सम्भवतः और अधिक) स्वामी हो जाते हैं। जब कभी एक ही भूमिके दो या अधिक हकदार होते हैं जो न तो आपसमें यह निश्चय कर पाते हैं कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सचमुच किसका हक है, न बटवारा करना चाहते हैं और न लड़ना ही चाहते हैं तो वह उस राजके सम्मिलित स्वामी (और प्रभु) के रूपसे काम करते हैं। मिश्रके दक्षिणमें जो सूदान प्रदेश है उसको किसी समय मिश्रके नरेशोंने विजय किया था, पीछेसे वहां मेहदी आदिने उपद्रव उठाया और वह अराजकतामें जा पड़ा। फिर ब्रिटिश और मिश्री सेनाने मिलकर उसे विजय किया। अब ब्रिटेन कहता है कि सूदान मेरा है, मिश्र कहता है मेरा है। जब तक इसका कुछ निर्णय नहीं होता तब तक वह इन दोनोंके सम्मिलित स्वाम्यमें है।

सम्मिलित स्वाम्य*

भूमिपर स्वाम्यका एक और प्रकार है जो पट्टेवाली रीतिसे मिलता जुलता है। १९३५ में तुर्कीने साइप्रसका द्वीप ब्रिटेनको ९९ वर्षके लिये दे दिया। सन्धिमें स्पष्ट शब्दोंमें लिख दिया गया कि ब्रिटेनको इस द्वीपपर शासन करनेका पूर्ण अधिकार होगा परन्तु यह माना जायगा तुर्की राज्यका टुकड़ा। यह भी निश्चय हुआ कि उस समय शासनका सारा व्यय चुका कर जितनी बचत होगी उतना रुपया ब्रिटेन तुर्कीको प्रतिवर्ष देता जायगा। इस प्रकारके शर्तनामोंका वास्तविक अर्थ क्या है यह इसी बातसे प्रकट है कि उसी साल तुर्कीने बोस्निआ और हर्जेगोवीना नामक दो प्रान्त इन्हीं शर्तोंपर आस्ट्रियाको दिये थे पर १९५५ में आस्ट्रिया उन्हें अपना बैठा। तुर्की देखता ही रह गया।

भोगबन्धक

अन्तमें एक और प्रकारके अधिकारका उल्लेख करना है। इसे प्रतीक्षात्मक अधिकार कह सकते हैं। संवत् १९४१ में

*Condominium

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फ्रांसने कांगो राजसे यह शर्तनामा लिखाया कि यदि आप कभी अपने राज्यका कुछ भाग निकालें तो पहिले हमसे कहें, हम उसे मोल लेंगे। १९५५ में चीनने प्रतिज्ञा की कि यांग्त्सीकियांग नदीके पासकी भूमि किसी शर्तपर ब्रिटेनके सिवाय अन्य किसीको न दी जायगी। जिन राजोंके हितमें यह शर्तनामे लिखे गये उनको तत्काल तो कुछ नहीं मिला पर उन्हें यह प्रतीक्षा करनेका हक मिल गया कि एक न एक दिन इस भूमिपर हमारा ही अधिकार होगा।

प्रतीक्षात्मक अधिकार†

जलपर अधिकार।

इस प्रश्नपर विचार कर लेनेपर कि भूमिपर किस किस प्रकारका स्वत्व होता है और वह किस किस प्रकार प्राप्त होता है हमें यह देखना है कि जलपर कहांतक अधिकार होता है।

खुला समुद्र आजकल स्वतन्त्र समझा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि खुला समुद्र किसी राजकी सम्पत्ति नहीं हो सकता। जो राज चाहे अपने सैनिक और व्यापारी जहाज खुले समुद्रके चाहे जिस भागमें ले जाय। पर पहिले यह बात नहीं मानी जाती थी। वह राज जिनकी नौ-सेना प्रबल थी सैकड़ों कोस लम्बे चौड़े जलखण्डोंको अपनी सम्पत्ति मानते थे। परराजोंके जो जहाज उनमें से होकर जाते थे उनसे कुछ कर लेनेका प्रयत्न किया जाता था और उन्हें उस राजके झण्डेको सलाम करना पड़ता था। ऐसा न करनेसे लड़ाइयां हो जाती थीं। वेनिस सारे भूमध्यसागरका स्वामी बनता था, हालैण्ड आइसलैण्डके पासतक ऋक्षसागर तथा उत्त-

खुला समुद्र

†Expectant Power

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रीय सागरका, पुर्तगाल भारतीय महासागरका, और स्पेन प्रशान्त महासागरका। ब्रिटेन सबसे बढ़ा चढ़ा था। जैसा कि द्वितीय चार्ल्सके समयके एक उच्च अधिकारी (सर लीओलीन जेङ्किस) ने कहा था "ईश्वरने अपने विधानके अनुसार अपने प्रतिनिधि श्रीमान् नरेशको इतनी विशाल भुजा दी है" * कि "सारी पृथ्वीमें जहाजोंकी रक्षाकी व्यवस्थाको कायम रखना और सार्वजनिक शान्तिकी रक्षा करना" † उनका स्वत्व और कर्तव्य था। ब्रिटिश अधिकारी यह तो मान लेते थे कि दूर दूरके समुद्रोंके तटपर जो राज थे उनको भी अपने निकटके समुद्रोंपर कुछ अधिकार था पर वह यह नहीं मानते थे कि ब्रिटेनके पासके समुद्रमें किसी अन्यका कुछ अधिकार था।

यह सब बातें आजकल नहीं मानी जातीं। समुद्रपर सबका अधिकार समान है, हां युद्धकालमें योद्धा राजोंको अब भी कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं जिनका उल्लेख उचित स्थलमें होगा। प्राचीनकालमें इनसे एक लाभ भी होता था। उन दिनों समुद्रमें डकैती बहुत होती थी। जो राज जिस जलखण्डके स्वामी बनते थे उसमें पुलिसका काम करना उनका कर्तव्य था। जो कर वह परराजोंके जहाजोंसे लिया करते थे वह इसी काममें व्यय होता था। इससे यह होता था कि समुद्रके एक एक भागकी रक्षाका भार एक एक राजने ले लिया था। समुद्रमात्रमें तो कोई क्या प्रबन्ध करता पर जिन मार्गोंसे व्यापारी पोत प्रायः आया जाया करते थे उनकी रक्षा बहुत कुछ हो जाती थी।

---

*"So long an arm hath God by the Laws given to His vice-regent the King" †"To preserve the public peace and to maintain the freedom and security of navigation all the world over"—Sir Leoline Jenkins.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊपर हम बराबर लिखते आये हैं कि खुला समुद्र किसीकी सम्पत्ति नहीं है पर समुद्रका जो भाग तटसे मिला होता है वह उसी राजकी सम्पत्ति माना जाता है जिसके राज्यमें वह तट होता है। समुद्रके इस भागको तटलग्न समुद्र या तटलग्न जल* कहते हैं। इसमें शान्तिकालमें अन्य राजोंके जहाज़ आजा सकते हैं परन्तु युद्धके समय तटवर्त्ती राजको यथेच्छ नियम बनानेका अधिकार रहता है।

तटलग्न समुद्र या जल

इस प्रश्नपर पहिले बहुत मतभेद था कि तटलग्न जलका क्षेत्र कितना हो। कोई कोई ५० कोस तक इसकी सीमा रखना चाहते थे। बादको यह सिद्धान्त निकला कि तटवर्त्ती क़िलेसे जितनी दूर तककी रक्षा हो सके उतनेको तटलग्न जल मानना चाहिये। उन दिनों तोपका गोला डेढ़ कोसके आगे नहीं जाता था अतः तटवर्त्ती किला डेढ़ कोसके आगे रक्षा नहीं कर सकता था। इस लिये यह निश्चय हुआ कि तटसे डेढ़ कोस तकका जल तटलग्न अर्थात् तटवर्त्ती राजकी सम्पत्ति माना जायगा। पहिले पहिले बिङ्करशोएक नामक विधानशास्त्रीने यह सम्मति दी थी। धीरे धीरे सभी राजोंने इसे मान लिया। आजकल फिर इसके विषयमें कभी कभी विवाद होता है क्योंकि अब तोपके गोले बहुत दूर तक जा सकते हैं। किसी किसीकी सम्मति है कि अब तटलग्न समुद्रकी सीमा ढाई या तीन कोस कर दी जाय। सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो यह ठीक है पर अभी तक अन्तारा़ष्ट्रिय व्यवहारमें डेढ़ कोस वाला नियम ही चलता है। सम्भव है आगे चलकर कुछ परिवर्तन हो। १९५१ में अन्तारा़ष्ट्रिय विधान समिति† ने

* Territorial, marginal, jurisdictional or littoral waters. † Institute of International Law.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह परामर्श दिया था कि अब सीमा दूनी अर्थात् ३ कोस कर दी जाय।

इस नियमके होते हुए भी स्वास्थ्य आदिकी दृष्टिसे तथा कर वसूल करनेके लिए कई राजोंने ऐसे नियम बनाये हैं जिनके अनुसार डेढ़ कोसके बाहर भी उन्होंने अपना अधिकारक्षेत्र दिखलाया है।

खाड़ियों और उपसागरोंके लिये नियम तो यह है कि इनका तटलग्न या मुक्त होना इनकी चौड़ाईपर निर्भर है परन्तु कुछ खाड़ियां ऐसी हैं जो बहुत चौड़ी होने पर भी तटलग्न ही मानी जाती हैं। इसका कारण केवल यही है कि इनके तटपर बलवान् राजोंके राज्य हैं। इस समय चाहे जो दशा हो पर फ़ारसकी खाड़ीको फ़ारसके लिये तटलग्न ही मानना चाहिये। बंगालकी खाड़ी इतनी चौड़ी है कि उसे भारत तटलग्न नहीं कह सकता।

खाड़ी और उपसागर

खाड़ी किसे कहना चाहिये इस विषयमें भी मतभेद है। भूगोलकी पुस्तकोंमें तो यह परिभाषा दी रहती है कि खाड़ी जलके उस भागको कहते हैं जिसके तीन ओर भूमि हो। यह परिभाषा ठीक है पर इससे अन्ताराष्ट्रिय विधानमें कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती। बंगालकी खाड़ी इस परिभाषाके अनुसार तो खाड़ी है पर वह इतनी चौड़ी है कि उसके लिये वही नियम लगते हैं जो खुले समुद्रके लिये लगते हैं। किसीने यह कहा है, खाड़ीका लक्षण यह है कि उसके एक तटसे दूसरे तट तक गोला जा सकता हो अर्थात् वह डेढ़ कोस चौड़ी हो। कोई उसका ३ कोस चौड़ा होना मानता है। तात्पर्य यह है कि इस विषयमें मतभेद है।

झीलों और चारों ओर स्थलसे घिरे हुए समुद्रोंके लिये जो नियम है वह बहुत ही सरल है। यदि वह झील या समुद्र एक

१२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजके राज्यमें है तो वह उस राजकी सम्पत्ति है पर यदि उसके किनारेपर कई राज हों तो प्रत्येक राजका अपने

झील और स्थल-से घिरा समुद्र

तटलग्न जलपर अधिकार होगा। कभी कभी विशेष अवस्थामें इसके विपरीत भी होता है। कश्यपायन सागरके किनारे फ़ारस और रूसका राज्य है पर गुलिस्ताँ और तुर्कमनशाई (१८७० और १८८५) की सन्धियोंद्वारा फ़ारसने अपने अधिकार रूसको दे दिये। अब उसमें अकेले रूसके सैनिक जहाज़ रह सकते हैं।

यदि समुद्रका कोई भाग तीन ओर स्थलसे घिरा हो और एक ओर जलडमरूमध्य द्वारा खुले समुद्रसे मिला हो तो अवस्थानुसार उसकी व्यवस्था कई प्रकारकी होगी। यदि उसके तीनों तटों और डमरूमध्यके दोनों ओर किसी एक ही राजका राज्य है तो उसे बन्द समुद्र अर्थात् उस राजकी सम्पत्ति मान सकते हैं। यदि तटपर कई राज हैं तो उसपर सबका बराबर अधिकार है और जो राज डमरूमध्यके मुहानेपर हो उसे चाहिये कि किसीके साथ अनावश्यक रोक टोक न करे। जहां डमरूमध्य वहुत चौड़ा हो वहां तो उस समुद्रको खुला समुद्र मानना चाहिये पर 'वहुत चौड़ा' के ठीक अर्थके विषयमें मत-भेद है। कोई कहता है कि चौड़ाई तीन कोसकी होनी चाहिये। कोई कहता है कि वह इतनी होनी चाहिये कि उसके एक सिरेसे, दूसरे सिरे तक क़िले गोले न फेंक सकें।

साधारणतः डमरूमध्योंके लिये निम्नलिखित नियम व्यवहारमें आते हैं—

जलडमरूमध्य

(क) यदि वह डमरूमध्य किसी बन्द समुद्रमें निकलता है और उसके दोनों किनारे तथा वह समुद्र किसी एक राजकी सम्पत्ति है तो वह डमरूमध्य भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस राजकी ही सम्पत्ति है परन्तु शान्तिकालमें परराजोंके व्यापारी जहाजोंको उसमें जाने देना चाहिये।

(ख) यदि वह डमरूमध्य खुले समुद्रमें निकलता है और उसके दोनों किनारे किसी एक राजकी सम्पत्ति हैं तो उस राजको यह अधिकार है कि अपनी रक्षाकी दृष्टिसे युद्धकालमें उसमें से परराजोंके सैनिक जहाजोंका आना जाना बन्द कर दे।

(ग) यदि ऐसा डमरूमध्य जो तीन कोस या इससे अधिक चौड़ा है दो भिन्न राजोंके बीचमें पड़ता हो तो प्रत्येक राज अपने अपने तटलग्न जलका स्वामी होगा। यदि चौड़ाई तीन कोससे कम हो तो मध्य धाराकी रेखाके दोनों ओर दोनोंका तटलग्न जल माना जायगा।

(घ) जहां शान्तिकालमें परराजोंके जहाजोंको आने जानेका अधिकार हो वहां उनसे किसी प्रकारका कर न लेना चाहिये। बहुधा तटवर्त्ती राजोंको ऐसे डमरूमध्योंमें प्रकाशालय स्थापित करना पड़ता है और प्रवेश करने वाले जहाजोंकी सुविधाके लिये अन्य कई उपयोगी प्रबन्ध करने पड़ते हैं। इन आवश्यक कामोंका व्यय पूरा करनेके लिये कर लेना नहीं मना है।

यह तो सामान्य शर्तें हैं पर कुछ डमरूमध्योंके लिये विशेष शर्तें हैं। इनमें कई दृष्टियोंसे दरेदानियाल और बास्फरस विशेष

दरेदानियाल और बास्फ़रस

महत्व रखते हैं। इन्हींके द्वारा कृष्णसागर भूमध्यसागरसे मिलता है। तुर्क साम्राज्यकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया इन्हींके पास है। कुस्तुन्तुनियाके हाथमें कृष्णसागरकी कुन्जी तो है ही, यूरोपसे एशिया आनेके द्वारपर भी उसका पहरा है। इस लिये यूरोपके राजोंका बहुत दिनोंसे इसपर दांत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। पहिले तो कृष्णसागरके चारोंओर तुर्कोंका साम्राज्य था, इस लिये तुर्क उसे बन्द रखते थे, पीछेसे जब वहां रूसका भी कुछ राज्य आया तो उसमें रूसी सैनिक जहाज भी रहने लगे। तुर्कोंने अन्य राजोंके व्यापारी जहाज़ोंको तो दरेदानियालसे आने जानेकी अनुज्ञा दे दी पर लड़ाईके जहाज़ोंको नहीं। इस नियमको यूरोपियन राजोंने स्वीकार कर लिया। उधर रूसकी निरन्तर यही इच्छा रही है कि किसी तरह कुस्तुन्तुनियापर कब्ज़ा किया जाय, पर दूसरे यूरोपियन राज ऐसा नहीं होने देते थे क्योंकि वह जानते थे कि इससे रूसका बल बहुत बढ़ जायगा। गत महायुद्धमें तुर्कोंने गीवेन और ब्रेस्लाउ नामक दो जर्मन जहाज़ोंको दरेदानियालके मार्गसे जाने और तुर्की तटलग्न जलमें मित्रराष्ट्रोंके जहाज़ोंपर आक्रमण करने दिया। उस समय तक वह प्रत्यक्ष रूपसे युद्धमें सम्मिलित नहीं हुआ था। इन बातोंसे मित्रराष्ट्र कुढ़े। कुछ गुप्त कागज़ोंसे, जो अब धीरे धीरे प्रकट हो रहे हैं, यह भी पता चलता है कि ब्रिटेन और फ्रांसने रूसको यह प्रलोभन दिया था कि यदि तुम हमारी सहायता करो तो हम तुम्हें कुस्तुन्तुनियापर क़ब्ज़ा करनेसे न रोकेंगे। अस्तु, युद्धके समाप्त होनेपर तुर्कोंकी शक्ति तो नष्ट ही प्रतीत होती थी, विजेताओंने यह निश्चय किया कि कुस्तुन्तुनियापर कब्ज़ा कर लिया जाय—यद्यपि वह नामको तुर्कोंकी राजधानी कहलाता पर तुर्क सर्कारके अधिकार नहींके बराबर थे—और दरेदानियालपर अन्ताराष्ट्रिय शासन रहे। इसका अर्थ यह होता कि यूरोपके दो चार प्रबल राज जो चाहते सो करते। पर कमाल पाशाकी जीतोंने इन आशाओंपर पानी फेर दिया। अब कुस्तुन्तुनिया तो ख़ाली करना ही पड़ा, दरेदानियालपर से भी मित्रों (अर्थात् तुर्कोंके अमित्रों) का शासन उठ गया। इस डमरूमध्यके सम्बन्धमें जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नया समझौता हुआ है उसे 'दरेदानियालका समझौता' * कहते हैं।

जलडमरूमध्य तो सागरोंको मिलाते हैं, कुछ ऐसे जलमार्ग भी हैं जो महासागरोंको मिलाते हैं। इनमें दो विशेष महत्व रखते हैं, स्वेज़ नहर और पनामा नहर। दोनों कृत्रिम हैं। स्वेज़ पहिले एक संकीर्ण स्थलडमरूमध्य था जो एशिया और अफ्रीकाके महाद्वीपोंको जोड़ता था और भूमध्यसागर (और तद्द्वारेण अटलाण्टिक महासागर) तथा भारत महासागरको पृथक् करता था। इसी प्रकार पनामा भी स्थलडमरूमध्य था जो उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाको मिलाता तथा अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागरोंको पृथक् करता था। अब यह दोनों डमरूमध्य काट दिये गये हैं। परिणाम यह हुआ है कि एशिया और अफ्रीका तो पृथक् हो गये पर भूमध्यसागर और भारत महासागर मिल गये एवं उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका पृथक् हो गये पर अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागर मिल गये। इससे समुद्र-यात्राको बड़ा लाभ पहुंचा है। भारतसे यूरोप जानेका समय आधेसे भी कम हो गया।

महोदधियोजक नहर

स्वेज़ नहरके लिये यह शर्तें सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुई हैं— (क) यह नहर सभी राजोंके सब प्रकारके जहाज़ोंके लिये खुली रहेगी, (ख) कोई राज इसके भीतर या इसके दोनों सिरोंके डेढ़ डेढ़ कोसके भीतर कोई युद्धात्मक काम न करेगा, (ग) नहरके दोनों सिरे सदा खुले रहेंगे अर्थात् कोई राज उन्हें किसी प्रकार बन्द करनेका प्रयत्न न करेगा, (घ) नहरके पास कोई किलाबन्दी न की जायगी, (ङ) बिना अत्यन्त आवश्यकताके किसी युद्धकारी

* Dardanelles Convention

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजके जहाज न तो नहरमें २४ घण्टेसे अधिक ठहरेंगे न अपने खाद्यभण्डारकी पूर्ति करेंगे न सैनिकोंको चढ़ायेंगे या उतारेंगे, (विशेष आवश्यकताके अवसरोंके लिये विशेष नियम बने हुए हैं।) (च) यदि नहरमें या उसके किसी बन्दरमें एकही समय दो युद्ध-कारी राजोंके जहाज़ हों तो दोनों एक साथ न चलेंगे। एकको दूसरेके जानेके २४ घण्टे बाद जाना होगा, (छ) नहरमें लड़ाईके जहाज़ स्थायी रूपसे नहीं रक्खे जा सकते पर जो राज युद्ध न कर रहे हों वह स्वेज़ या पोर्ट सईदमें दो जहाज़ रख सकते हैं।

नहर मिश्र, तुर्की, व अरबसे घिरी हुई है अतः अपने अपने राजोंकी रक्षाके लिये इन देशोंको अत्यन्त आवश्यकताके समय इन नियमोंका उल्लङ्घन करनेका भी अधिकार है। उसका प्रबन्ध एक व्यापारी कम्पनी करती है जिसने मिश्र सर्कारकी विशेष अनुज्ञासे इसे खुदवाया था। इस कम्पनीके मूलधनमें सबसे बड़ा हिस्सा ब्रिटिश सर्कारका है।

पनामा नहरकी शर्तें भी प्रायः वही हैं जो स्वेज नहरकी हैं। पर उनमें दो विशेषताएं हैं। एक तो यह नहर पूर्णतया संयुक्त राजके शासनमें है। इसके आस-पासकी भूमि पनामा राजकी है। पनामाने संयुक्त राजको एक पांच कोस चौड़ा भूखण्ड दे दिया और निकटस्थ टापू भी दे दिये। इसके लिये संयुक्त राजने उसे एक करोड़ डालर (लगभग साढ़े तीन करोड़ रुपये) तत्काल दिये और नव वर्ष बादसे अढ़ाई लाख डालर (लगभग पौने नव लाख रुपये) प्रति वर्ष देनेका वचन दिया। दूसरी विशेषता यह है कि संयुक्तराजको नहरके पास क़िलाबन्दी करने और सेना रखनेका अधिकार प्राप्त है।

प्रत्येक राजके तटलग्न जलके भीतर केवल उसीकी प्रजाको मछली मारनेका अधिकार होता है परन्तु इसके बाहर सभी राज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले मछली मार सकते हैं। कभी कभी कोई राज किसी दूसरे राज वालोंको अपने राज्यके किसी विशेष भागके तटलग्न जलमें मछली मारनेका अधिकार दे देता है। आरम्भमें तो यह बात मैत्रीके कारण की जाती है पर पीछेसे बड़े झगड़े होते हैं।

मछली मारनेके अधिकार

१८४० में संयुक्त राज और ब्रिटेनमें एक सन्धि हुई जिसमें एक शर्त यह भी थी कि न्यूफाउण्डलैण्डके जिस तटपर अंग्रेज मछुआहे मछली मारें वहीं संयुक्त राजके मछुआहे भी मछली मार सकेंगे। १८६९ में दोनों राजोंमें युद्ध हुआ। उस समय इस अधिकारसे काम न लिया जा सका। १८७१ में पुनः सन्धि हुई पर उसमें इस अधिकारका उल्लेख न था, तबसे ८७ वर्ष तक इस विषयमें विवाद होता चला आया। अन्तमें इसका निर्णय हेग न्यायालयपर छोड़ा गया। विवादका कारण यह था कि ब्रिटेनका यह कहना था कि संयुक्त राजके मछुआहोंको हमारे तटलग्न जलमें मछली मारनेका जो कुछ अधिकार था वह १८४० की सन्धिके कारण था। युद्ध होनेसे वह सन्धि नष्ट हो गयी और १८७१ की सन्धिमें इस अधिकारके उल्लेख न होने-का कारण यह था कि हमने पुनः यह अधिकार नहीं दिया। संयुक्त राजका कहना यह था कि हमारे मछुआहे इस जलमें उस समयसे मछली मारते आते हैं जब हम ब्रिटेनके अधीन थे। अतः १८४० की सन्धिने हमको कोई नया अधिकार नहीं दिया। केवल हमारे पुराने अधिकारका उल्लेख कर दिया। युद्धके दिनोंमें हम अपने उस अधिकारसे काम न ले सके पर वह ज्यों-का त्यों बना रहा। उसके बार बार जतानेकी आवश्यकता न थी इस लिये १८७१ की सन्धिमें उसका पुनः उल्लेख नहीं किया गया। इसी प्रकारके झगड़े अन्य राजोंके बीचमें भी उठ चुके हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो नदियाँ एक ही राजके भीतर बहती हैं उनके विषयमें कोई मतभेद हो ही नहीं सकता, वह तो उस राजकी सम्पत्ति हैं ही, पर जो नदियां ऐसी हैं कि उनके दोनों किनारोंपर भिन्न भिन्न राज हैं उनके लिये यह नियम है कि उनकी मध्य धारा, या कभी कभी सबसे वेगवती धाराके मध्यसे, दोनों राजोंकी सीमा मानी जाती है। यह बातें आपसके समझौतेसे तय होती हैं। कभी कभी दोनों तटोंपर दो राज होते हुए भी सारी नदी एक ही राजको दे दी जाती है।

नदियां

जो नदियां कई राजोंमें से होकर बहती हैं उनके विषयमें बहुत कुछ मतभेद रहा है। जो लोग नदीके उद्गमस्थानके निकट होते थे अर्थात् उसके ऊपरी तटोंपर बसते थे वह प्रकृत्या यही चाहते थे कि उनको बेरोक टोक नदीके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक आने जाने दिया जाय पर जो राज मुहानेके निकट होते थे अर्थात् उसके नीचेके तटोंपर बसे थे वे ऊपरसे आने वाली नावोंको प्रायः कर लिये बिना जाने नहीं देते थे। जिसको अड़चन पड़ती थी वह नदियोंको खुली रखनेके लिये जोर लगाता था पर ऐसा क्यों किया जाय इसका कोई कारण नहीं बताया जाता था। १८४० में संयुक्त राज और स्पेनमें मिसिसिपी नदीको खुली रखनेके विषयमें विवाद चल रहा था। उस समय संयुक्त राजकी ओरसे कहा गया था कि 'नदीकूल वासियोंके लिये' नदियोंको खुली रखना 'एक ऐसा भाव है जो गहरे अक्षरोंमें मनुष्यके हृदयपर लिखा हुआ है'। मनुष्यके हृदयपर चाहे जो लिखा हो पर अन्ताराष्ट्रिय व्यवहार नदियोंका खुला रहना मनुष्यका नैसर्गिक स्वत्व नहीं मानता था। जहां जहां नदियां खुली थीं वहां आपसके विशेष समझौतेके कारण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एशियामें ऐसी नदियां कम हैं जो कई राजोंमें होकर बहती हों, हां, यदि भारतके सब प्रान्त स्वतन्त्र राज होते तो गंगा, सिन्धु, सतलुज, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा इत्यादि ; कई नदियां इस प्रकारकी होतीं। यूरोपमें राइन, स्केल्ट, डैन्यूब, आदि कई नदियां इस प्रकारकी हैं। इसी प्रकार अमेरिकामें सेण्टलारेन्स और अफ्रीकामें कांगो तथा नाइजर हैं। अब यूरोपियन राजोंमें इन सबके सम्बन्धमें आपसमें समझौते हो गये हैं और यह नदियां मुक्त कर दी गयी हैं। सभी राष्ट्रोंकी नावें इनपर आ जा सकती हैं। पर यह मुक्ति केवल शान्तिके समय और व्यापारी नावोंके लिये है। सैनिक नावोंके लिये मुक्ति नहीं है। युद्धके दिनोंमें प्रत्येक राजको अधिकार है कि नदीके उस भागमें जो उसके राज्यमें पड़ता है यथेच्छ नियम प्रचलित करे पर यह नियम ऐसे होने चाहिये जिनसे तटस्थोंको अनावश्यक कष्ट न हो।

वायुपर अधिकार।

आज कल यह प्रश्न बड़े महत्वका हो गया है कि किसी राजका अपने राज्यके ऊपरकी वायुपर अधिकार है या नहीं और यदि है तो क्या। हवाई जहाज बनते जाते हैं, उनके द्वारा शत्रुको बहुत क्षति पहुंचायी जा सकती है। किसी किसीका मत यह है कि वायु मुक्त है। खुले समुद्रकी भांति उसपर सबका अधिकार है। जहां तक सांस लेनेका प्रश्न है वहां तक तो इस सिद्धान्तको सभी मान लेंगे पर आगे मतभेद है। दूसरोंका कहना यह है कि प्राचीन रोमन विधानके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको अपने घरके ऊपरकी सारी वायुपर स्वत्व था। पर यहां प्रश्न वायुका नहीं है क्योंकि उसे तो कोई छीनता नहीं, प्रश्न तो यह है कि परायोंको उस वायुमें से मार्ग निकाल कर आने जानेका स्वत्व है या नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीरे धीरे नियम बनते जा रहे हैं पर इस समय तकके व्यवहारको देखते हुए और निष्पक्ष विचार करनेसे यही समझमें आता है कि भूमिके ऊपरके वायुमण्डलपर देशके स्वामीका अधिकार है। कुछ लोग यह सम्मति देते हैं कि जिस प्रकार तटसे कुछ दूर तक तटलग्न जल* होता है उसी प्रकार भूमिसे कुछ ऊंचाई तक भूलग्न वायु मानी जाय। पर यह नियम व्यर्थ है। तटलग्न जलके बाहरसे शत्रु तटवासियोंको क्षति नहीं पहुंचा सकता पर भूलग्नवायुसे ऊपरका शत्रु क्षति पहुंचा सकता है क्योंकि ऊपरसे फेंका हुआ बम नीचेके सिवाय और कहीं जा ही नहीं सकता। अतः यह उचित है कि शान्ति कालमें तो चाहे सभी राजोंके वायुयान आते जाते रहें पर प्रत्येक राजको यह अधिकार रहे कि यह आज्ञा निकाल दे कि उसके राज्यके ऊपरसे कोई विदेशी यान न जाने पावे।

ऊपर जो वर्णन दिया गया है वह बहुत विस्तृत नहीं है पर उसमें प्रायः सभी महत्वपूर्ण सिद्धान्त और नियम आ गये हैं। उससे यह विदित हो जाता है कि राजोंका भूमिपर किस किस प्रकारका स्तत्व होता है और वह किन किन उपायोंसे प्राप्त होता है। यह भी दिखला दिया गया है कि जल और वायुपर कहां तक स्वाम्य होता है। इन बातोंको मिलानेसे यह समझमें आ जाता है कि राजोंके स्वाम्यकी सीमा क्या है।

---

* पृष्ठ १७४ में हमने लिखा है कि तटलग्न जल डेढ़ कोसतक होता है, वास्तविक विस्तार १ लीग (३ समुद्री मील) अर्थात् ६०८० फुट है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा अध्याय ।

शासनाधिकार सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ।

शासनाधिकारके सम्बन्धमें दो मुख्य सिद्धान्त हैं, इनमेंसे किसी एकके आधारपर वह नियम निकल सकते हैं जो आजकल प्रायः प्रचलित हैं। एक सिद्धान्त तो यह है कि प्रत्येक राजका अपनी प्रजाओंपर अधिकार बना रहता है चाहे वह कहीं हों। दूसरा यह है कि प्रत्येक राजका अपने राज्यके भीतरके सभी व्यक्तिओं और वस्तुओंपर अधिकार है। इनमें द्वितीय अधिक व्यापक है अतः हम उसे ही प्रधान मानते हैं पर पहिला गौण होते हुए भी त्याज्य नहीं है।

शासनाधिकारके दो सिद्धान्त

किसी राजके राज्यके निवासियोंमें से जो लोग उसकी असन्दिग्ध रूपसे प्रजा हैं उनमें प्रथम स्थान अनन्य प्रजा† का है। अनन्यका अर्थ है जो दूसरेका न हो। अनन्य प्रजा वह है जो पहिले भी कभी किसी दूसरेकी प्रजा न थी अर्थात् जो जन्मसे ही प्रजा है। पर जन्मसे किसे प्रजा कहना चाहिये इस विषयमें मतभेद है। किसी देशमें तो यह नियम है कि बच्चा जहां जन्म लेता है वहींकी प्रजा होता है चाहे उसके मातापिता किसी राष्ट्रके हों। अन्य देशोंमें यह नियम है कि बच्चेके माता पिताकी राष्ट्रीयतापर बच्चेका प्रजा होना निर्भर है। किसी किसी देशमें केवल

अनन्य प्रजा

† Natural-born Subjects

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यही देखा जाता है कि अकेले पिता या अकेली माता किस राष्ट्रकी है। जो लोग राजकी ही प्रजा हैं उनके उन बच्चोंके लिये जो राजके भीतर ही पैदा होते हैं कोई कठिनाई न होगी। वह तो अनन्य प्रजा होंगे ही, चाहे कोई नियम बरता जाय, पर दूसरे लोगोंके लिये इन भिन्न भिन्न नियमोंसे भिन्न भिन्न परिणाम होंगे। जो मनुष्य एक नियमके अनुसार एक राजकी प्रजा होगा वही दूसरे नियमके अनुसार दूसरे राजकी प्रजा हो जायगा।

ब्रिटेनमें यह नियम है कि ब्रिटिश प्रजाकी संतति ब्रिटिश ही रहती है चाहे उसका जन्म कहीं हो। संयुक्त राजमें भी ऐसा ही नियम है पर वहां एक शर्त यह है कि यदि उसका जन्म विदेशमें हुआ हो तो १८ वर्षका होनेपर उसे किसी अमेरिकन वकीलके सामने जाकर यह इच्छा प्रकट करनी चाहिये कि मैं अमेरिकन प्रजा रहना चाहता हूं और २१ वर्षका हो जानेपर राजके प्रति भक्तिकी शपथ खानी पड़ेगी। इन दोनों देशोंमें यह भी नियम है कि विदेशियोंके बच्चे भी इनके राज्यमें जन्म लेनेसे इनकी ही प्रजा हो जाते हैं। फ्रेंच विधानके अनुसार फ्रेञ्च प्रजाकी सन्तति फ्रेञ्च ही रहती है चाहे उसका जन्म कहीं हो। विदेशियोंके लिये यह नियम है कि यदि माता पितामें से एकका भी जन्म फ्रांस-में हुआ हो तो बच्चा फ्रेञ्च माना जायगा पर यदि वह माताके फ्रांसमें जन्म होनेके कारण फ्रेञ्च माना गया है तो उसे अधिकार है कि अपनी इक्कीसवीं वर्षगांठके एक सालके भीतर यह कह दे कि मैं फ्रेञ्च प्रजा नहीं बनूंगा। ऐसी दशामें वह अपने माता-पिताके राष्ट्रका माना जायगा। स्वीडनमें यह नियम है कि यदि विदेशी माता-पिताकी सन्तति २२ वर्षके वयतक स्वीडनमें रह जाय तो वह स्वीड मानी जाती है। जर्मनी, स्वीज़रलैण्ड, यूनान इत्यादि पिताकी राष्ट्रीयतापर सन्ततिकी राष्ट्रीयता निर्भर करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इटलीमें नियम है कि जो पिता दस वर्ष तक इटलीमें बस चुका हो उसकी सन्तति इटालियन प्रजा मानी जायगी। आज कल प्रायः सभी देशोंमें दो नियम प्रचलित हैं। विदेशियोंकी सन्तति-को यह अधिकार रहता है कि पूर्णवयस्क (२१ वर्षकी) होनेपर यह निश्चित करे कि वह किस राजकी अर्थात् अपने जन्मस्थानकी या पिता-माताके देशकी प्रजा होकर रहेगी। दूसरे यह कि जो सन्तति विवाहेतर सम्बन्धसे पैदा होती है उसकी राष्ट्रीयता माता-की राष्ट्रीयतापर निर्भर मानी जाती है। विवाहिता स्त्रियोंकी राष्ट्रीयता प्रायशः पतिकी राष्ट्रीयताके अनुकूल मानी जाती है।

इन भिन्न भिन्न नियमोंसे कभी कभी अड़चनें पड़ सकती हैं। यदि कोई फ्रेञ्च दम्पति ब्रिटेनमें बसे हों या दस पांच दिनके लिये ही गये हों और वहां उन्हें बच्चा हो जाय तो वह ब्रिटिश-विधानके अनुसार तो ब्रिटिश और फ्रेञ्च विधानके अनुसार फ्रेञ्च प्रजा हुआ। यदि किसी बच्चेका, जिसके मां-बाप दोनों ब्रिटिश हों, फ्रांसमें जन्म हो तो वह दोनों देशोंके विधानके अनुसार ब्रिटिश ही होगा पर यदि बड़े होनेपर उसे भी दैवात् फ्रांसमें ही बच्चा हो तो वह ब्रिटिश विधानके अनुसार ब्रिटिश और फ्रेञ्च विधानके अनुसार फ्रेञ्च प्रजा हुआ। ऐसी बातोंसे बड़े झगड़े खड़े हो सकते हैं पर प्रायः राजोंकी बुद्धिमत्ता उन्हें उभड़ने नहीं देती। जो लोग सन्दिग्ध राष्ट्रीयताके हैं उनपर कोई राज अपने राज्यके बाहर अधिकार चलानेका प्रयत्न नहीं करता।

भारत परतंत्र देश है, यहां विदेशी होना ही महागुण है पर स्वतन्त्र देशोंमें अनन्य प्रजाके बड़े स्वत्व और कर्तव्य होते हैं। एक ओर देशकी प्रतिष्ठा और रक्षाका सबसे बड़ा भार उनपर ही होता है, दूसरी ओर राजसभाओंकी सदस्यता और सर्कारी पदोंके सर्वाग्र अधिकारी वही होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्य प्रजाके बाद दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग अङ्गीकृत प्रजा*का है। अनन्य प्रजा तो वह है जो जन्मसे ही प्रजा है पर अङ्गीकृत प्रजा वह है जो जन्मतः अपनी प्रजा न थी परन्तु पीछेसे मान ली गयी। जिस प्रक्रिया द्वारा ऐसा होता है उसे प्रजाङ्गीकरण† कहते हैं। पर कुछ अवस्थाएं ऐसी हैं जिनमें बिना इस प्रक्रियाके ही कुछ व्यक्तियों-को अङ्गीकृत प्रजाकी स्थिति प्राप्त हो जाती है। जो भूभाग जीत कर या हस्तान्तरित होकर अपनाया जाता है उसके निवासी स्वतः अपनी प्रजा हो जाते हैं पर उनको कुछ समय दिया जाता है जिसमें वह निश्चय कर लें और यदि पुराने राजकी ही प्रजा हो कर रहना चाहते हों तो विजित या हस्तान्तरित भूखण्डको छोड़ कर चले जायं। स्त्रियां चाहे कहींकी निवासी हों, उनको विवाह होनेके उपरान्त बहुधा अपने पतिके राजका प्रजात्व मिल जाता है। कुछ राजोंने इसके लिये कुछ विशेष शर्तें लगा रक्खी हैं पर अधिकांश राजोंमें या तो शर्तें हैं ही नहीं या बहुत ही नरम हैं।

अङ्गीकृत प्रजा

भिन्न भिन्न देशोंमें प्रजाङ्गीकरणकी प्रकिया भिन्न भिन्न प्रकार-की होती है पर सबका प्रधान अङ्ग होता है नये राजके प्रति भक्ति-की शपथ लेना और पुराने राजके प्रति भक्तिकी शपथको तोड़ना। किसी किसी देशमें तत्काल ही प्रजाङ्गीकरण हो जाता है, किसीमें कई वर्ष निवास करने पर। प्राय: सबमें एक शर्त यह होती है कि प्रार्थीको उस देशकी भाषा आती हो। अङ्गीकृत प्रजाके कर्तव्य वही होते हैं जो अनन्य प्रजाके होते हैं और न्यायकी बात यह प्रतीत होती है कि उसके अधिकार भी वही हों पर कुछ देशों-में उसके अधिकारोंमें कुछ न्यूनता होती है। अङ्गीकृत प्रजाकी सन्तति सभी देशोंमें पूर्णतया अनन्य प्रजा मानी जाती है।

*Naturalized subjects †Naturalization.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी कभी प्रजाङ्गीकरणके सम्बन्धमें अन्ताराष्ट्रिय झगड़े खड़े हो जाते हैं। यह तो प्रत्येक स्वतंत्र राजको अधिकार है कि अपनी बनायी शर्तोंपर विदेशियोंको अपनी प्रजा बनाये पर यह भी प्रत्येक स्वतंत्र राजको अधिकार है कि अपनी प्रजाको अपने अधिकारके बाहर न जाने दे। कुछ लोगोंका यह मत है कि मनुष्य अपनी मातृभूमिसे ऐसा बँधा हुआ है कि वह किसी अन्य राजका प्रजात्व स्वीकार कर ही नहीं सकता। दूसरोंका यह मत है कि प्रत्येक व्यक्तिको यह अधिकार है कि चाहे जिस राजका प्रजात्व स्वीकार करे।

अड़चन उस समय पड़ती है जब कोई ऐसा मनुष्य जो एक देशकी अङ्गीकृत प्रजा हो गया है अपने पुराने देशमें फिर किसी कारण लौटता है। सम्भव है कि पुराना राज कुछ न बोले और उसे उस विदेशी राजकी प्रजा मान ले पर यह भी सम्भव है कि वह उसे अब भी अपनी प्रजा माने। आजसे लगभग १०० वर्ष पहिले ब्रिटेनमें यह प्रथा थी कि हट्टे कट्टे मनुष्य बलात् नौसेनामें भरती कर लिये जाते थे। इससे बचनेके लिये बहुत से युवक अमेरिका भाग जाते थे और संयुक्त राजकी प्रजा बन जाते थे। पर अंग्रेजी जहाज उन्हें जहां पाते थे वहीं पकड़ते थे। ब्रिटेन कहता था यह हमारी प्रजा हैं, संयुक्त राज कहता था हमारी प्रजा हैं। १८६९ में दोनोंमें लड़ाई हो गयी। अन्तमें ब्रिटेनने अपना आग्रह छोड़ दिया। फ्रांस इत्यादिमें नियम है कि अमुक वयके मनुष्यको सेनामें कुछ नियत काल तक काम करना ही होगा। यह देश ऐसा करते हैं कि यदि इससे बचनेके लिये कोई मनुष्य भाग कर अन्यत्रकी प्रजा हो जाय तो अवसर पाने पर उससे फिर काम लेते हैं। इसी प्रकार यदि वह स्वदेश छोड़नेके पहिले कोई अपराध कर गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो तो अवसर मिलने पर उसे दण्ड दिया जाता है। यदि वह पुराने स्वदेशके विरुद्ध नये स्वदेशकी ओरसे शस्त्र उठाये तो पकड़े जाने पर प्राणदण्ड पाता है।

अब भी नियमोंमें कोई समता नहीं है न कोई एक ऐसा सिद्धान्त है जो सर्वमान्य हो पर स्वतंत्र राजोंका व्यवहार ऐसा हो रहा है कि उनकी जो प्रजा बाहरकी अङ्गीकृत प्रजा हो जाती है उसपर से अपना स्वत्व शीघ्र नहीं हटाते और यदि उनके पास कोई ऐसा प्रमाण होता है कि उसने उनके प्रति किसी वैध कर्तव्यके पालन करनेसे जी चुराकर विदेशी प्रजात्व ग्रहण किया है तो अवसर मिलने पर उसे दण्ड भी देते हैं। पर विदेशियोंको अपनी प्रजा बनानेके नियम प्रायः सर्वत्र सुकर हैं। प्रत्येक राज अपनी अङ्गीकृत प्रजाकी रक्षा अन्य प्रजाके ही समान करता है पर यदि उसका पुराना राज अपने नियमोंके अनुसार अवसर पाकर उसपर शासन करता है तो उसका नया राज चुप रह जाता है जब तक कि कोई प्रत्यक्ष अन्याय न होता हो। यदि कोई मनुष्य कहीं अन्यत्र अङ्गीकृत होकर फिर स्वदेश आजाय और वहां कुछ दिन बस जाय तो उसका नया प्रजात्व जाता रहता है और वह फिर पुराने राजकी प्रजा हो जाता है। कितने दिन बस जाने पर ऐसा मानना चाहिये इसके लिये भी सब जगह पृथक् पृथक् नियम हैं। जर्मनीमें दो वर्षका नियम है। यदि कोई जर्मन जो अन्यत्र अङ्गीकृत हो गया हो पुनः जर्मनी लौट आये और दो वर्ष तक रह कर भी जर्मन प्रजा न बनना चाहे तो वह निकाल दिया जाता है।

विदेशी यात्रियोंके लिये प्रायः वही नियम हैं जो उन विदेशियोंके लिये हैं जो विदेशमें बसते हैं पर वहांकी अङ्गीकृत प्रजा नहीं हुए हैं। इन लोगोंको सब प्रकारके स्थानीय और सर्कारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर देने होते हैं और प्रचलित दीवानी तथा फौजदारी विधान इनके लिये भी लागू होते हैं। इनको उस देशकी रक्षाके लिये सैनिक कार्य नहीं करना पड़ता पर यदि उसपर यकायक असभ्य जातियां आक्रम कर बैठें और उसके अस्तित्वको आघात पहुंचनेकी आशंका हो तो इन्हें सैनिक कार्य्य भी करना पड़ेगा। साधारण शान्तिरक्षाके लिये यह भी दायी हैं। यदि देशमें कुछ दङ्गा या अन्य प्रकारका उपद्रव हो जाय तो विशेष पुलिसका काम इन्हें भी करना होगा। यदि कोई बसा हुआ विदेशी अङ्गीकृत होनेकी इच्छा प्रकट कर दे तो इतनेसे ही उसकी रक्षा अङ्गीकृत या अनन्य प्रजाकी भांति नहीं हो सकती। उसके पुराने राजको अधिकार है कि यदि वह उसे पकड़ पावे तो उसके साथ अपनी प्रजाका सा बर्ताव करे। पर संयुक्त राजका यह मत है कि यदि वह इच्छा प्रकट करनेके पीछे दीर्घकाल तक बसा रहे तो यह समझना चाहिये कि उसकी वास्तविक इच्छा यह थी कि अङ्गीकृत हो जाय और यद्यपि उसकी इच्छा पूरी न हुई अर्थात् अङ्गीकरणकी प्रक्रिया न हुई तो भी वह जिस देशमें जा बसा है उसकी प्रजाके ही तुल्य है और यदि अवसर पाकर उसका पुराना राज उसके साथ अपनी प्रजा जैसा बर्ताव करना चाहे तो उसकी रक्षा करनी चाहिये।

बसे विदेशी और विदेशी यात्री

हम ऊपर कह आये हैं कि बसे हुए विदेशियों और विदेशी यात्रियोंको सब प्रकारके कर देने होते हैं और आवश्यकता पड़नेपर पुलिसका काम भी करना पड़ता है तथा दीवानी और फौजदारी विधान उनपर भी लागू होते हैं। पर इस साधारण नियमके कुछ अपवाद हैं। कुछ अवस्थाओंमें बसे हुए विदेशियों

अपवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा विदेशी यात्रियोंके लिये यह सब नियम ढीले कर दिये जाते हैं।

विदेशी नरेशोंको न तो कोई कर देना पड़ता है न उनपर कोई विधान लागू होता है। उनपर किसी प्रकारका अभियोग चल ही नहीं सकता। यदि कोई विदेशी नरेश किसी प्रकारकी अनुचित कार्यवाही करे तो उसे अपने यहांसे बलात् विदा कर देनेके सिवाय और कोई युक्ति नहीं है। पर यदि कोई विदेशी नरेश विदेशमें कुछ सम्पत्ति या जमीनदारीका स्वामी है तो उसे उस उतने भूखण्डके लिये प्रजाकी भांति ही रहना पड़ेगा। यदि कोई विदेशी नरेश स्वयं न्यायालयमें किसीपर किसी प्रकारका आरोप करे तो फिर वह न्यायालयके क्षेत्रमें आगया। ब्रिटिश-साम्राज्यमें तथा उसके बाहर भी हमारे भारतीय नरेशोंके साथ भी यही नियम बरते जाते हैं अर्थात् इनपर किसी प्रकारका अभियोग नहीं चल सकता। दस ग्यारह वर्ष हुए एक व्यक्तिने गायकवाड़-पर इंग्लैण्डमें फौजदारीका अभियोग चलाना चाहा। उसका कहना था कि भारतीय नरेश ब्रिटिश-सर्कारके अधीन हैं अतः इनको स्वतन्त्र विदेशी नरेशोंके विशेषाधिकार नहीं मिल सकते, पर न्यायालयने स्वयं कहा कि यह विदेशी नरेश हैं और ब्रिटिश सर्कारके अधिपतित्वमें होनेपर भी अपने राजमें प्रभु हैं, अतः हमारे अधिकार-क्षेत्रके बाहर हैं। विदेशमें यात्रा करते समय नरेशोंको अपने भृत्योंपर भी अधिकार रहता है या नहीं इस विषयमें मतभेद है।

विदेशी नरेश

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि विदेशी राजदूतोंपर जिस देशमें वह भेजे जाते हैं, किसी प्रकारका अभियोग नहीं चल सकता।

राजदूत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

इस बातका अवसर बहुत ही कम आता है कि एक राजकी सेना दूसरे राजमेंसे होकर निकले पर यदि कभी ऐसा हो तो उसपर भी वह राज जिसके राज्यमेंसे होकर वह निकलती है किसी प्रकारका शासन नहीं करता।

विदेशी सेना

इसी प्रकार विदेशी सैनिक जहाजोंपर जो किसी कारणसे कुछ कालके लिये अपने नौस्थानमें आ गये हों कोई शासन नहीं किया जाता। उनपर सर्वतः उनके अफसरोंका ही शासन रहता है पर यदि जहाजके अफसर या सिपाही जमीनपर उतरें तो उनके साथ विदेशी यात्रियोंकी तरह व्यवहार होता है अर्थात् उनपर पूर्णतया शासन हो सकता है। यदि कोई राजनीतिक अपराधी भागकर या तैर कर किसी विदेशी सैनिक जहाजपर चला जाय तो फिर वह रक्षाका अधिकारी हो गया। कुछ लोगोंका मत है कि सैनिक जहाज अपने राजके राज्यका एक टुकड़ा है।

विदेशी सैनिक जहाज

राज्यके बाहर

अब हमको यह देखना है कि अपने राज्यके बाहर किस व्यक्तिपर और किस किस अवस्थामें शासनाधिकार शासन किया जाता है।

सबसे पहिले अपनी विदेश-प्रवासी प्रजापर शासनाधिकार होता है। यह तो निश्चय है कि यदि अपनी प्रजामें से कोई व्यक्ति विदेशमें कोई अपराध करे तो उसे वह विदेशी सर्कार दण्ड देगी पर किसी किसी राजका ऐसा विधान है कि यदि वह स्वदेश लौटे तो वहां भी उसे दण्ड दिया जाता है। पर यह सब नहीं वरन् कुछ ऐसे अपराधोंके लिये होता

विदेशप्रवासी स्वप्रजा

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है जो बहुत ही दूषित समझे जाते हैं। यूरोपियन राज्योंने दुर्बल एशियाई और अफ्रीकन राज्योंमें अपने लिये विशेष शासनाधिकार ले रक्खे हैं। यदि कोई यूरोपियन इन देशोंमें कोई फौजदारी अपराध करता है तो उसको वहांकी सर्कार दण्ड नहीं देती वरन् वह यूरोपियन जिस राजका होता है या तो उसका कोई प्रतिनिधि, जिसे न्यायाधीशके अधिकार होते हैं, निर्णय करता है या उसे निर्णय और दण्डके लिये स्वदेश भेज देता है या कई यूरोपियन जजोंका एक पंचायती न्यायालय होता है वह निर्णय करता है। कभी कभी इस पञ्चायती न्यायालयमें उस देशका भी एक जज रख दिया जाता है पर उस बेचारेकी सुनता कौन है। मिश्रमें पञ्चायती न्यायालय ही था। यदि किसी भारतीय राजमें कोई अंग्रेज़ किसी प्रकारका अपराध करता है तो उसका फैसला स्थानीय न्यायालय नहीं करते वरन् अंग्रेज़ी न्यायालय करते हैं।

यह प्रथा इन प्राच्य राज्योंकी दुर्बलता और पाश्चात्य राज्योंकी हठधर्म्मीकी सूचक तो है ही, इसमें अन्यायकी भी बहुत जगह है। जिस अपराधके लिए उस देशका निवासी कड़ा दण्ड पाता है उसी अपराधके लिये यूरोपियन बेदाग़ छूट सकता है। यह जानकर कि स्थानीय सर्कार हमारा कुछ नहीं कर सकती यूरोपियनोंका सिर भी चढ़ा रहता है।

अपराधिप्रत्यर्पण

चोरों, खूनियों, व्यभिचारियोंका सभ्य समाजमें कहीं भी आदर नहीं होता। इसी लिये आजकलके सभ्य राज्योंमें यह प्रथा है कि एक देशका अपराधी यदि दूसरे देशमें भाग जाय तो उसे पकड़ कर उसके देशकी सर्कारके हवाले कर देते हैं। इसके लिये आपसमें विशेष सन्धियां होती हैं। उनमें यह निश्चित हो जाता है कि किस किस प्रकारके अपराधी लौटाये जायँगे। सब सन्धियां एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सी नहीं होतीं। ब्रिटेनमें इस सम्बन्धमें जो नियम हैं प्रायः वैसे ही नियम अन्य सभ्य देशोंमें भी हैं, इस लिये हम उनका सारांश देते हैं।

जब कोई अपराधी भाग कर ब्रिटेनमें आ जाता है तो उसके देशका राजदूत ब्रिटेनके स्वराष्ट्र-सचिवको लिखता है कि अमुक व्यक्ति अमुक अपराध करके भाग आया है, उसे हमें दे दीजिये। तब इस बातकी जांच की जाती है कि यह अपराध उन अपराधोंमेंसे है या नहीं जिनके विषयमें आपसमें सन्धि हुई है ! राजनीतिक अपराधी नहीं दिये जाते। इसीलिये श्याम जी कृष्ण वर्मा, अरविन्द घोष, इत्यादि फ्रांसके राज्यमें शरण पा गये। यदि अपराधी यह सिद्ध कर सके कि मुझे राजनीतिक कामोंके लिये दण्ड देनेके उद्देश्यसे मांगा जा रहा है तो वह नहीं दिया जाता। सम्मान्य ब्रिटिश जजोंकी सम्मति है कि जो अपराध राजनीतिक आन्दोलन और विद्रोहके आवश्यक अंग हों उनके लिये अपराधियोंका प्रत्यर्पण* नहीं हो सकता परन्तु राजनीतिक आन्दोलनके समयके सभी अपराध क्षम्य नहीं हो सकते। राजक्रान्तिके समय सर्कारी कोषको हस्तगत करलेना, जहांसे और जैसे हो शस्त्र संग्रह करना, शत्रु, अर्थात् सर्कार, के सहायकोंको प्राणदंड तक देना, सर्कारी सेनाको उभाड़ना, यह सब आवश्यक हो सकता है। यदि कोई मनुष्य ऐसे काम करके किसी सभ्य देशकी शरण ले तो वह उसे कदापि न सौंपेगा। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि राजक्रांतिके समय प्रत्येक प्रकारकी लूट और हत्या क्षम्य है। फ्रांस ही नहीं ब्रिटेनने बहुतसे राजनीतिक शरणागतोंकी रक्षा की है। इटलीके मत्सिनी और गैरिबाल्डी, चीनके सुनयतसन इत्यादि

*Extradition

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक देश-भक्तोंने ब्रिटेनमें शरण पायी है। अस्तु, जब यह निश्चित हो जाता है कि वस्तुतः अपराध ऐसा है जिसके लिये ब्रिटिश विधानके अनुसार भी मनुष्य दंड्य होता है तो अपराधीको ब्रिटिश पुलिस पकड़ कर हवालातमें डाल देती है। यहां वह पन्द्रह दिन तक रक्खा जाता है। यदि इस बीचमें कोई नयी वात न खुली तो वह अपने राजकी पुलिसको सौंप दिया जाता है पर यदि किसी कारणसे वह दो महीने तक न सौंपा गया तो हाईकोर्टका कोई भी जज अपनी आज्ञासे उसे मुक्त करा सकता है। प्रत्यर्पण करते समय एक शर्त यह भी रहती है कि जिस विशेष अपराधका नाम लेकर उसका प्रत्यर्पण कराया गया है उसके सिवाय किसी और अपराधके लिये उसे दण्ड न दिया जाय। यदि उसके देशकी सर्कारको ऐसा करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो उसे चाहिये कि या तो उस अपराधीको एक बार आपही ब्रिटिश राजके भीतर पहुंचा दे या उसे इतना अवकाश दे कि यदि वह चाहे तो ब्रिटिश राजके किसी अंशमें प्रवेश कर जाय। यह सब इस बातका सूचक है कि राजोंमें अभी इतना सौहार्द नहीं है कि अपराधियोंका प्रत्यर्पण अनिवार्य कर्तव्य समझा जाय। अभी तो केवल आपसके समझौतेके कारण ऐसा किया जाता है।

प्रत्यर्पण बराबरीके ढङ्गपर होना चाहिये। स्वतन्त्र राजोंमें ऐसा होता भी है। यह नहीं हो सकता कि एक राज तो अपराधियोंको सौंपना स्वीकार करे पर दूसरा ऐसा न करे। परन्तु भारतवर्षमें सभी बातें निराली हैं। यहां प्रत्यर्पण विषयक सन्धियां भी कई ढङ्गकी हैं। कुछ तो बराबरीकी हैं। यह वह सन्धियां हैं जो देशी राजोंमें आपसमें हुई हैं। पर इनमें भी कहीं कहीं एक विषमता देख पड़ती है। कुछ ऐसी बातें हैं जिनको एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज भीषण अपराध मानता है दूसरा नहीं। हिन्दू राजोंमें गोहत्या दण्ड्य है अतः आपसमें हिन्दू राज गोहिंसकका प्रत्यर्पण करते हैं पर मुसल्मान राज ऐसा नहीं करते। पर ब्रिटिश राजके सामने सब ही भारतीय राज एकसे हैं। उसकी सन्धियां बराबरी नहीं वरन् ऊंचे नीचेकी दृष्टिसे लिखी गयी हैं। उदाहरणके लिये, यदि ब्रिटिश सर्कारका कोई सैनिक बिना नियमित रूपसे छुट्टी पाये किसी भारतीय राजमें भाग जाय तो उस राजका कर्तव्य होगा कि उसे पकड़ कर प्रत्यर्पित करे पर यदि किसी राजका सैनिक भाग कर ब्रिटिश राज्यमें आजाय तो ब्रिटिश सर्कार उसे पकड़ कर सौंपनेका भार अपने ऊपर नहीं लेती।

अब धीरे धीरे सभी सभ्य देशोंके विधान एकसे होते जाते हैं। यदि राष्ट्रसंघ सचमुच सजीव हुआ और किसी विश्वास-योग्य अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयकी स्थापना भी हो गयी तो अपराधियोंके प्रत्यर्पणमें इतनी अड़चनें न होंगी पर अभी उस दिनके आनेमें देर प्रतीत होती है।

यह हम पहिले कह चुके हैं कि प्रत्येक राजको अपने सैनिक जहाज़ोंपर पूर्ण अधिकार रहता है। यह एक प्रकारसे अपने अपने राज्यके तैरते हुए टुकड़े माने जाते हैं और इनके सैनिक जहाज प्रबन्धमें किसी प्रकारसे और किसी कारणसे हस्तक्षेप करना उस राजके साथ हस्तक्षेप करना और युद्धके लिये निमंत्रण देना है। यदि शान्ति-कालमें एक राजका सैनिक जहाज दूसरेके नौस्थानमें जाकर किसी प्रकारका उपद्रव करे तो वह राज उसे आप दण्ड न देगा प्रत्युत उसे यह आज्ञा देगा कि हमारे तटके पाससे चले जाओ और फिर उसके उपद्रवके कारण जो कुछ क्षति हुई होगी उसके लिये उसके राजसे पत्र-व्यवहार करेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यापारी जहाजोंके लिये यह नियम नहीं है। जब तक यह खुले समुद्रमें हैं तब तक तो कोई दूसरा राज नहीं है जो उनपए शासन कर सके इस लिये उनके कप्तानको वह

व्यापारी जहाज सब अधिकार प्राप्त रहते हैं जो स्थलपर एक मजिस्ट्रेटको रहते हैं और वह अपने राजके ही विधानोंको बरतता है। पर ज्योंही कि जहाज किसी सभ्य राजके भूलग्न जलके भीतर आजाता है त्योंही उसपर उस राजका शासनाधिकार हो जाता है। फिर तो इस राजको यह अधिकार होता है कि यदि भूलग्न जलके भीतर आनेके पहिले भी जहाज-पर किसी प्रकारका उपद्रव इत्यादि हुआ हो तो उसकी जांच पड़ताल करके यथोचित कार्य्यवाही करे। यदि भूलग्न जलके भीतर कुछ उपद्रव हो और फिर जहाज भाग जाय तो खुले समुद्रमें भी उसका पीछा करके पकड़ सकते हैं।

प्रत्येक राजको अपने जहाजों द्वारा पकड़े गये जलदस्युओंपर पूर्ण अधिकार होता है। केनीने जल-दस्युता (जलमें डकैती) की परिभाषा इस प्रकार की है—प्रत्येक ऐसा

जल—दस्यु सशस्त्र हिंसात्मक काम जो युद्धका वैध अंग न हो दस्युता है। दस्युता सभ्य समाज मात्रकी दृष्टिमें अपराध है क्योंकि दस्युके कामोंसे सभी सभ्य राजोंके व्यापारको आघात पहुंच सकता है और सभी देशोंके यात्रियोंके चित्तमें आशंका उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अशान्ति-जनक वस्तुको दूर करना सबका ही कर्तव्य है, इस लिये प्रत्येक सभ्य राजको यह अधिकार है कि वह दस्युओंको पकड़े और दण्ड दे। अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारके अनुसार दस्युको प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये। कभी कभी कोई राज किसी विशेष कामको अपने विधानमें दस्युता मान लेता है। ब्रिटेनने कुछ दिनों तक अफ्रीकासे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुलाम ले जाकर बेचनेको दस्युता घोषित कर दिया था। अंग्रेज सैनिक जहाज उन सब जहाजोंको पकड़ लेते थे जिनपर गुलाम होते थे, चाहे वह किसी देशके हों। पर अन्य राजोंने इसका विरोध किया और अन्तमें ब्रिटेनको विवश होकर इस कामसे हाथ खींचना पड़ा।

अन्ताराष्ट्रिय विधान जिसे जलदस्युता कहता है उसके मुख्य लक्षण यह हैं—

(१) वह सशस्त्र और हिंसात्मक होनी चाहिये पर यह आवश्यक नहीं है कि सचमुच डकैती की जाय। यदि किसी जहाजके नाविक अपने अफसरोंके विरुद्ध सिर उठायें तो जब तक वह असफल रहेंगे तबतक तो वह विद्रोहके अपराधी माने जायंगे पर यदि उनका प्रयत्न सफल हो जाय तो वह दस्यु माने जायंगे, चाहे अपने अफसरोंको दबानेके सिवाय वह फिर कोई भी अनाचार न करें।

(२) दस्युता उसी कामको कह सकते हैं जो ऐसे स्थानमें किया जाय जो किसी राजके भी शासनमें न हो। इसका तात्पर्य्य यह है कि दस्युता खुले समुद्रमें ही होती है। यदि किसी ऐसे द्वीप या अन्य भूखण्डपर जो किसी सभ्य राजकी सम्पत्ति न हो कुछ लोग बसते हों और उन्हें लोग समुद्र-मार्गसे आकर लूट लें तो ऐसा करनेवाले जलदस्यु माने जायंगे पर यदि किसी सभ्य राजके भूलग्न जलके भीतर जहाजोंपर डाका पड़े या तटपर उतरकर लूटपाट मचायी जाय तो इसे दस्युता नहीं कहते। ऐसा करनेवाले लुटेरे साधारण विधानके अनुसार दण्ड्य हैं। जिस राजके भूलग्न जलमें या तटपर वह उपद्रव करें उसे चाहिये कि उन्हें दण्ड दे, अन्ताराष्ट्रिय विधानसे इससे कुछ सम्बन्ध नहीं।

(३) तीसरा और अन्तिम लक्षण यह है कि दस्युता बिना किसी सभ्य राज या समाजकी आज्ञाके होती है। यदि दो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजोंमें लड़ाई हो तो एकको दूसरेके सैनिक जहाजोंसे जो कुछ क्षति होगी उसे दस्युता नहीं कह सकते। कभी कभी सभ्य राज सैनिक जहाजोंके अतिरिक्त अन्य जहाजोंको भी यह अनुज्ञा दे देते हैं कि वह शत्रुसे लड़ें या उसे तंग करनेका प्रयत्न करें। ऐसे जहाजोंके कामोंको भी दस्युता नहीं कह सकते।

हम प्रथम खण्डमें कह चुके हैं कि यदि कोई सभ्य समुदाय अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका पालन करता हुआ किसी सभ्य राजके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करता है तो कुछ अंशोंमें उसे भी अन्ताराष्ट्रिय विधानकी पात्रता मिल जाती है। स्वराजके लिये प्रयत्न करने वाले राष्ट्रोंकी आरम्भमें यही स्थिति होती है। ऐसे समुदायोंकी आज्ञासे जो जहाज विरोधी सर्कारसे लड़ते हैं वह दस्यु नहीं माने जाते पर एक बात ध्यान रखनेकी है। यदि इस प्रकारका समुदाय हारकर हथियार रख दे तो फिर उसकी आज्ञा भी रद्द हो जाती है और जो जहाज उसकी आज्ञासे लड़ते रहे हों उन्हें चाहिये कि हथियार डाल दें नहीं तो उनकी गणना दस्युओंमें होने लगेगी।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे सिद्धान्तों और मुख्य मुख्य नियमोंका ज्ञान तो हो जाता है पर कई अवस्थाएं ऐसी हैं जो बड़ी ही सन्दिग्ध होती हैं। कभी कभी सन्दिग्ध अवस्थाएं यह समझमें नहीं आता कि क्या किया जाय।

हम ऊपर लिख आये हैं कि राजनीतिक अपराधियोंका प्रत्यर्पण नहीं होता पर कभी कभी यह निश्चय करना बड़ा कठिन होता है कि कौन सा अपराध राजनीतिक है, कौन सा नहीं। प्रमुख ब्रिटिश जजोंकी यह सम्मति है कि राजनीतिक अपराध तब ही माना जा सकता है जब राजमें दो दल अपनी अपनी इच्छाके अनुकूल सर्कार स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हों। परन्तु 'दल' शब्द भी सन्तोषजनक नहीं है। यह सम्भव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि कोई सच्चा देशभक्त यह समझता हो कि वर्तमान सर्कार अच्छी नहीं है और उसे दूर करना चाहता हो; इस प्रयत्नमें उससे कोई अपराध हो जाय। अब इस एक मनुष्यको दल नहीं कह सकते अतः वह राजनीतिक अपराधी न माना जायगा पर उसका उद्धदेश्य परम शुद्ध था। मनुष्योंके वास्तविक उद्दे-श्योंका पता लगाना कठिन है। यदि कोई मनुष्य अपने देशके भलेके उद्दुदेश्यसे नरेश या किसी प्रधान कर्मचारीको विष या शस्त्र या बम द्वारा मार डालता है तो उसे राजनीतिक अपराधी समझें या सामान्य हत्यारा। ऐसी दशामें बहुतसे राज प्रत्यर्पण करनेमें संकोच नहीं करते।

यदि कोई मनुष्य विदेशमें अपराध करके अपने देश लौट आये और विदेशी सर्कार उसका प्रत्यर्पण चाहे तो ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये? इस विषयमें एक मत नहीं है। कोई कोई राज तो ऐसी दशामें कुछ नहीं करते, कोई कोई प्रत्यर्पण तो नहीं करते पर उस आरोपकी अपने यहां जाँच करते हैं और यदि वह सच निकलता है तो अपराधीको दण्ड देते हैं। कोई कोई प्रत्यर्पण कर देते हैं। यदि एक दूसरेकी न्यायपरतापर विश्वास हो और आपसमें सौहार्द हो तो प्रत्यर्पण अवश्य कर देना चाहिये। कुछ न करना तो बुरा है ही, अपने यहां जाच करना भी सन्तोष-जनक नहीं हो सकता क्योंकि दूसरे देशमें प्रमाणादिका पहुंचना कठिन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँचवाँ अध्याय।

सन्धियां।

हम पहिले ही खण्डमें देख आये हैं कि सन्धियां कितने प्रकारकी होती हैं और उनका अन्ताराष्ट्रिय विधानमें क्या महत्त्व है। यदि स्थूल परिभाषा की जाय तो हम यह कह सकते हैं कि सन्धियोंका अन्ताराष्ट्रिय विधानमें वही स्थान है जो इकरारनामोंका सामान्य विधानमें है। जिस प्रकार दो या अधिक व्यक्ति इकरारनामा लिखकर किसी विशेष कामको करने या न करनेके लिये बाध्य कर देते हैं उसी प्रकार सन्धिपत्रके द्वारा दो या अधिक राज अपनेको बाध्य करते हैं।

सन्धि और इकरारनामेमें भेद

परन्तु इकरारनामों और सन्धियोंमें दो एक बड़े महत्त्वके भेद हैं। पहिली बात यह है कि इकरारनामा सदैव अपनी इच्छासे लिखा जाता है। यदि यह बात प्रमाणित की जा सके कि उसके लिखते समय एक पक्षने दूसरेपर किसी प्रकारका दबाव डाला था तो वह रद कर दिया जायगा। सन्धियोंमें यह बात नहीं है। बहुत सी सन्धियां दबाव डालकर ही लिखवायी जाती हैं और सारा जगत् इस बातको जानता है। युद्धके पीछेकी सन्धियां तो सर्वथा इसी प्रकारकी होती हैं पर इस कारणसे वह रद नहीं की जा सकतीं, हां यदि हस्ताक्षर करते समय एक राज दूसरेके प्रतिनिधिको बन्द करके या मारपीटकी धमकी देकर उससे कुछ लिखवा ले तो वह रद समझा जायगा। राजपर दबाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डालना अवैध नहीं है पर उसके प्रतिनिधिपर शारीरिक या अन्य प्रकारका निजी दबाव डालना अवैध है।

दूसरा भेद यह है कि इकरारनामा तब ही टूट सकता है जब या तो एक पक्ष उसकी शर्तोंको न पूरा करे या दोनों पक्ष पृथक् होनेपर स्वतः सहमत हो जायं या एक पक्ष किसी न्यायालयको यह सिद्ध कर दे कि अब वह परिस्थिति नहीं है जो तब थी जब यह इकरारनामा लिखा गया था अतः मैं इसके पालनसे मुक्त कर दिया जाऊं और न्यायालय इस प्रकारकी आज्ञा दे दे। पर सन्धियोंके लिये यह बात नहीं है। यदि एक पक्षकी समझमें परिस्थितिमें परिवर्तन हो गया हो तो वह पृथक् हो सकता है। सौजन्यकी बात यह है कि वह दूसरे पक्षको पर्य्याप्त सूचना दे दे। पर बलवान् राज ऐसा नहीं भी करते और उन्हें दबाने या दण्ड देनेवाला कोई है नहीं। आत्मरक्षाके नामपर सब कुछ किया जा सकता है। कूटनीतिके आचार्य्य मैकिआवेलीने यह उपदेश दिया है कि समझदार शासकको चाहिये कि जहां अपनी हानि होते देखे वहाँ प्रतिज्ञा तोड़ दे। इसी नीतिके अनुसार जर्मनीने उस सन्धिको जिसके द्वारा बेल्जियम तटस्थीकृत राज बनाया गया था और जिसपर स्वयं उसके प्रतिनिधिके हस्ताक्षर थे 'कागजका एक टुकड़ा' बतलाकर तोड़ दिया।

सन्धियोंके लिखे जानेके पहिले उनके विषयमें बहुत कुछ बातचीत और पत्र-व्यवहार होता है। जहां साधारण सन्धियोंका प्रश्न होता है वहां तो एक राजका राजदूत दूसरेके परराज-सचिवसे मिलकर 'सब बातें ठीक कर लेता है। बीच बीचमें वह अपनी सर्कारसे भी परामर्श लेता जाता है। सब कुछ निश्चित हो जानेपर दोनों ओरसे हस्ताक्षर हो जाते हैं। यदि किसी

सन्धि लिखे जानेका क्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारणसे राजदूतको अपनी सर्कारका उत्तर ठीक समयसे न मिल सके और काम आवश्यक हो तो वह अपने दायित्वपर हस्ताक्षर कर देगा पर यह समझ लिया जायगा कि यह हस्ताक्षर तभी पक्का माना जायगा जब उसके पास उसकी सर्कारकी अनुकूल आज्ञा आ जाय।

विशेष अवसरोंपर साधारण राजदूतोंसे काम नहीं लिया जाता वरन् उस अवसर विशेषके लिये ही विशेष अधिकार देकर प्रतिनिधि नियुक्त होते हैं। युद्धके पीछे जो सन्धियां होती हैं इनमें प्रायः ऐसा ही होता है। ऐसे प्रतिनिधियोंको अपने अपने राजसे सन्धि करनेके पूर्ण अधिकार दिये जाते हैं क्योंकि यदि उन्हें कोई अधिकार ही न हो तो उनके साथ वादविवाद करना व्यर्थ है। १९७७ में रूस और पौलैण्डसे सन्धि होनेकी बातचीत चली परन्तु पोलैण्डवालोंने ऐसे प्रतिनिधि भेजे जिन्हें सन्धि करनेका पूर्णाधिकार ही न था। रूसी प्रतिनिधियोंने उनसे बात-चीत करना अस्वीकार कर दिया। जब पोलिश सर्कारकी ओरसे उन्हें अधिकार मिल गये तब बातचीत आरम्भ हुई।

जब आपसकी बातचीतमें सन्धिकी मूल शर्तें निश्चित हो जाती हैं तो फिर वह लेखबद्ध की जाती हैं। यह बड़ा ही कठिन काम होता है क्योंकि अस्पष्ट भाषा आगे चलकर झगड़े उत्पन्न कर सकती है। यदि दोनों पक्ष भिन्न भिन्न भाषाओंका प्रयोग करते हैं तो काम और बढ़ जाता है क्योंकि सभी भाषाओंमें सन्धियां लिखनी पड़ती हैं और प्रत्येक राजके पास उसीकी भाषावाली प्रति रहती है। वह राज उसीको प्रामाणिक मानता है। अन्तमें जब यह सब झगड़े समाप्त हो जाते हैं और भाषाके विषयमें कोई मतभेद नहीं रह जाता तो सब प्रतिनिधि अपने अपने हस्ताक्षर कर देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर इतनेसे ही संधि पक्की नहीं समझी जाती न उस अनुसार काम होने लगता है। प्रत्येक राजमें किसी न किसीको युद्धकी घोषणा करने और युद्ध बन्द करनेका अधिकार देना ही पड़ता है। यह अधिकार किसी व्यवस्थापक सभा या पार्लमेण्टको नहीं दिया जा सकता। ऐसी संस्थाओंमें सैकड़ों सदस्य होते हैं, यदि उनके सामने यह प्रश्न रक्खे जायं तो समय बहुत लगे और रहस्य खुल जाय। जिसको अधिकार रहता है वह सर्कारका मुख्याधिष्ठाता होता है। राजतन्त्रोंमें नरेश, व प्रजातन्त्रोंमें राष्ट्रपति-को ऐसा अधिकार रहता है। ब्रिटेनको ही लीजिये, नरेशको अधिकार है जब जिससे चाहें युद्ध छेड़ सकते हैं। पर स्वेच्छाचारिताके लिये रोक भी है। बिना पार्लमेण्टकी अनुज्ञाके एक पैसा व्यय नहीं हो सकता, अतः नरेश ऐसा युद्ध कदापि नहीं छेड़ते जो पार्लमेण्टको अनुमत न हो। इसी प्रकार वह जब चाहें युद्ध बन्द कर सकते हैं पर सन्धि पार्लमेण्टके सामने पेश होती है और जब वह उसे स्वीकार कर लेती है तब पक्की होती है। अमेरिकामें सेनेटकी स्वीकृति आवश्यक है। स्वीजरलैण्डमें यह नियम है कि जिस सन्धिकी मीयाद पन्द्रह वर्ष या अधिक हो वह, यदि वोटरोंकी एक नियत संख्या प्रार्थना करे, तो सारे देशके वोटरोंके सामने पेश की जाती है। अस्तु, कहनेका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक देशकी शासन-पद्धतिने किसी न किसी संस्थाको यह अधिकार दे रक्खा है कि वह सन्धिपर विचार करे ताकि सर्कार और उसके प्रतिनिधि मनमानी शर्तें न मान बैठें। इस रोकका फल यह होता है कि प्रत्येक सर्कार पहिले तो ऐसे प्रतिनिधियोंको सन्धि-परिषद्में भेजती है जिनके ऊपर जनताका विश्वास होता है और फिर उनको आदेश देती है कि खूब सोच विचार कर तब हस्ताक्षर करें। कभी कभी बड़ी अड़चन पड़ जाती है। महासम-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एके बाद जर्मनीसे वर्सैल्ज़की जो सन्धि हुई उसपर अमेरिकाके राष्ट्रपति विल्सनने हस्ताक्षर कर दिया। यह स्वयं अमेरिकन प्रतिनिधि बनकर गये थे। जब यह सन्धि अमेरिकन सेनेटके सामने आयी तो उसने उसे अस्वीकार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि जर्मनी और अमेरिकामें युद्ध तो राष्ट्रपतिकी घोषणासे बन्द हो गया पर सन्धि न हुई। अन्तमें लगभग डेढ़ वर्षके बाद दोनोंके बीचमें एक पृथक् सन्धि हुई।

जब इस प्रकार सन्धिका समर्थन* हो जाता है तो उसकी एक एक समर्थित प्रतिका आपसमें विनिमय होता है। यह इस बातका प्रमाण है कि अब सन्धि दोनों राजोंको पूर्णतया स्वीकृत है। फिर प्रत्येक राज अपने यहां घोषणा कर देता है कि हमसे अमुक राजसे अमुक अमुक शर्तोंपर सन्धि हुई है और वह अमुक तिथिसे व्यवहारमें आयेगी। यहींपर सारी प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।

यह विचार करने योग्य प्रश्न है कि जो राज सन्धिके सम्बन्धमें उदासीन रहते हैं उनके लिये सन्धियोंका क्या परिणाम

उदासीन राजोंके लिये परिणाम

होता है। जो राज स्वतन्त्र हैं वह किसी ऐसी सन्धिसे नहीं बांधे जा सकते जिसपर उनके हस्ताक्षर न हों पर व्यवहारमें यह होता है कि यदि नयी सन्धिमें कोई ऐसी बात नहीं है जिससे सन्धि करनेवालोंके अतिरिक्त और किसीका अपरक्ष हिताहित होता है या जो अन्ताराष्ट्रिय विधानके किसी सर्वसम्मत सिद्धान्तके विरुद्ध है तो अन्य राज भी उसे मान लेते हैं। उनका मान लेना यही है कि उसके विरुद्ध किसी प्रकारका आचरण न करें।

अब हमें यह देखना है कि सन्धियां किस प्रकार समाप्त होती हैं। कुछ सन्धियां तो ऐसी हैं जिनकी उत्पत्ति और समाप्ति

---

* Ratification.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ ही साथ होती है। यदि एक राज दूसरे राजको अपने राज्यका कुछ भाग दे देता है या बेच देता है तो यह ऐसे काम हैं जो सन्धि लिखी जानेके बाद अति शीघ्र सम्पादित हो जाते हैं अतः सन्धिपत्रकी फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। कुछ संधियोंमें स्वतः मीयाद दी रहती है कि यह संधि इतने दिनोंके लिये है। उतनी अवधि बीत जानेपर वह सन्धि आप ही समाप्त हो जाती है। यह दूसरी बात है कि दोनों पक्ष सहमत होकर अवधिको फिर बढ़ा लें।

सन्धियोंकी समाप्ति

कुछ सन्धियां दोषारोप करके समाप्त कर दी जाती हैं। यदि सन्धि लिखे जानेके कुछ दिन बाद एक पक्षको यह देख पड़े कि उसमें कोई ऐसी शर्त है जो अन्ताराष्ट्रिय विधानके विरुद्ध है, या लिखते समय प्रतिनिधियोंपर अनुचित दबाव डाला गया था या दूसरा पक्ष उसका पालन नहीं कर रहा है तो उसे अधिकार है कि सन्धिको दूषित ठहरा कर उसका पालन करना अस्वीकार कर दे। यदि वह यह दिखला सके कि जिस परिस्थितिमें सन्धि लिखी गयी थी वह अब नहीं रही या अब यह सन्धि उसकी सत्ताके लिये हानिकर प्रतीत हो रही है या जिस लाभकी आशासे लिखी गयी थी वह नहीं हो रहा है तब भी संधि रद हो जायगी परन्तु ऐसी दशामें यदि दूसरा पक्ष यह दिखला सके कि सधिके यकायक तोड़ दिये जानेसे उसकी क्षति होगी तो पहिले पक्षको इस क्षतिकी पूर्ति करनी होगी।

सबल राज जब चाहते हैं किसी न किसी बहाने सन्धियोंको रद कर डालते हैं। १९३५ में तुर्कीके बोस्निआ और हर्ज़ेगोविना प्रान्त आस्ट्रियाको इसलिये दिये गये कि वह उनपर शासन करे पर यह स्पष्ट लिख दिया गया कि इनपर प्रभुत्व तुर्कीका रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९६५ में आस्ट्रियाने इन्हें अपने राज्यमें मिला लिया। कहनेको उसने कई बहाने बतलाये और यह दिखलानेका प्रयत्न किया कि सन्धिका उल्लंघन और लोग बहुत पहिलेसे करते आ रहे हैं और स्वयं तुर्की कई बातोंमें उसके विरुद्ध आचरण कर चुका है। जो कुछ हो, आस्ट्रियाकी कार्य्यवाही किसी दृष्टिसे न्याय्य न थी, यूरोपके अन्य राजोंने भी उसकी निन्दा की। इसपर उसने तुर्कीको क्षतिपूर्ति स्वरूप कुछ धन देना तो स्वीकार किया पर दोनों प्रान्तोंको न छोड़ा। हम जर्मनी और वेल्जियमका उदाहरण दे चुके हैं। ऐसे उदाहरण बहुतसे होते रहते हैं। यदि आपसकी सन्धिके होते हुए भी एक राज दूसरेपर सहसा आक्रमण कर बैठे तो उसके बलात्कारसे सन्धि आप ही टूट जाती है।

पहिले तो यही विचार होता है कि युद्ध छिड़ते ही सन्धियोंका अन्त हो जाता होगा पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। कुछ सन्धियां ऐसी हैं जिनका निःसन्देह लोप हो जाता है पर सबका नहीं। कुछ संधियाँ युद्धकालके लिये ही लिखी जाती हैं। उनमें यह शर्तें होती हैं कि यदि हममें युद्ध छिड़ गया तो आपसमें कैसा वर्ताव होगा। यह सन्धियां स्वतः चालू रहती हैं। ऐसी संधियां भी चालू रहती हैं जिनमें दोनों योद्धा दलोंके अतिरिक्त कोई और भी सम्मिलित हो। १८७२ में रूस, ब्रिटेन और हालैण्डमें एक सन्धि हुई। उस समय रूसका हालैण्डपर ऋण था। संधिद्वारा ब्रिटेनने इसका आधा चुकाना स्वीकार किया और इसके बदले उसे डच उपनिवेशोंका एक अंश मिला। १९११ में क्रीमियन युद्ध हुआ जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस और तुर्की एक ओर थे, रूस दूसरी ओर था। ब्रिटिश पार्लमेण्टमें यह प्रश्न उठा कि ऐसी दशामें रूसको रुपया देना बन्द कर दिया जाय

सन्धियोंपर युद्धका प्रभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर अन्तमें यही निश्चय हुआ कि १८७२ की सन्धिको तोड़ना राष्ट्रीय मानके विरुद्ध होगा अतः युद्धके समय भी रूस सर्कारको ब्रिटेनसे बराबर रुपया मिलता रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छठवाँ अध्याय।

अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायतें और न्यायालय।

यदि राजोंमें झगड़े न हों या आपसके समझौतेसे उनका निपटारा हो जाय तो बहुत ही अच्छा हो पर सदैव ऐसा नहीं होता। कभी कभी बात इतनी बढ़ जाती है कि साधारण बातचीत या लिखा पढ़ीसे काम नहीं चलता। उस समय सिवाय युद्धके और कोई उपाय नहीं सूझता। पर यह सम्भव है कि यदि कोई तीसरा राज बीचमें पड़ जाय तो आपसमें फिर मेल हो जाय। यदि युद्ध छिड़ भी गया हो तो किसी तीसरेके बीचबिचाव करनेसे उसका शीघ्र समाप्त होना सम्भव है नहीं तो उभय पक्षमेंसे कोई भी लज्जाके मारे बन्द करनेका नाम न लेगा, जबतक कि दोनों या कमसे कम एक पूर्णतया निकम्मा न हो जाय।

कभी कभी एक और युक्तिसे वैमनस्य दूर हो जाता है। जिन दो राजोंमें विवाद होता है वह एक अनुसन्धान मण्डल* नियुक्त करते हैं जिसमें दोनों ओरके तुल्य-संख्यक प्रतिनिधि होते हैं। इसका सभापति या तो किसी तीसरे राजका निवासी होता है या मण्डलके सदस्योंको अधिकार दिया जाता है कि अपनेमेंसे किसीको सभापति चुन लें या बारी बारी दोनों देशोंके प्रतिनिधियोंमें से सभापति चुने जाते हैं। यह मण्डल विवादग्रस्त विषयोंकी पूरी पूरी जाँच करता है। चूंकि इसमें दोनों ओरके

अनुसन्धान मण्डल

*Commission of Enquiry.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिनिधि होते हैं इसलिये इसपर पक्षपातका आरोप नहीं लगाया जा सकता। इसकी रिपोर्ट देखकर आपसमें समझौता हो जाता है।

परन्तु यदि इन सब युक्तियोंसे काम न चला और युद्ध छिड़ ही गया या छिड़नेके लगभग हुआ तो अन्य राजों (एक या अनेक) को बीचमें पड़ना पड़ता है। इसके दो प्रकार हैं, एकको सत्सेवा § और दूसरेको मध्यस्थता† कहते हैं। इन दोनोंमें बहुत भेद है। यदि तीसरा राज दोनों पक्षोंसे इतना ही कहता है कि आप लोग लड़िये मत, मैं अमुक स्थानपर प्रबन्ध कर देता हूं, वहां अपने अपने प्रतिनिधियोंको भेज दीजिये, वह लोग मिलकर समझौतेकी शर्तें तय कर लें तो उसका ऐसा करना सत्सेवा कहलाता है। युद्धके समय दोनों पक्षोंमें आपसका पत्र-व्यवहार बन्द हो जाता है इसलिये सत्सेवा करनेवालेको ही यह कहना पड़ता है कि आप लोग जिन शर्तोंपर मेल करनेको राज़ी हों मुझे बतलाइये, मैं एककी बातें दूसरे तक पहुंचा दूं। बस इसके आगे उसका दायित्व नहीं होता। वह मेलका बाह्य अवसर उत्पन्न कर देता है, उसके आगे विवादी जो चाहें करें।

सत्सेवा और मध्यस्थता

मध्यस्थका काम इससे गम्भीर है। वह केवल मार्ग बताकर नहीं रह जाता प्रत्युत मेल करानेका पूरा प्रयत्न करता है। वह दोनोंको समझा बुझाकर शर्तें तय कराता है, थोड़ा बहुत दबाव भी डालता है। इसलिये मध्यस्थ वही हो सकता है जिसकी निष्पक्षतापर उभय पक्षको विश्वास हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका कुछ भी स्वार्थ नहीं होता। एक तो शान्तिस्थापनमें सबका ही हित है, दूसरे यदि उसके पड़ोसमें लड़ाई हो रही है

§ Good offices. † Mediation.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूपसे उसकी भी क्षति होती होगी या वह समझता होगा कि यदि युद्ध बहुत दिनोंतक चला गया तो एक या दोनों पक्ष इतने जर्जर हो जायँगे कि वह व्यापार इत्यादिमें भाग न ले सकेगा जिससे अन्य देशोंकी भी हानि होगी। अस्तु, इस प्रकारका उदार स्वार्थ रखते हुए भी मध्यस्थका निष्पक्ष होना सम्भव है। उसका दायित्व बहुत बड़ा होता है। १९२८ में स्पेनसे पेरू, चिली और ईक्वेडरसे युद्ध हुआ। उसमें संयुक्त राज मध्यस्थ बना और उसने सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर तक किया। १९६२ में रूस-जापानमें जो युद्ध हुआ था उसमें भी अमेरिका ही मध्यस्थ था।

सत्सेवा बहुधा मध्यस्थतामें परिणत हो जाती है। रूस-जापान युद्धमें भी पहिले अमेरिकाने सत्सेवाका ही प्रयत्न किया था। मध्यस्थताका सबसे विलक्षण उदाहरण गत महासमरमें मिलता है। एक ओर जर्मनी, आस्ट्रिया, तुर्की और बल्गेरिया लड़ रहे थे, दूसरी ओर ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, बेल्जियम और अमेरिका थे। युद्ध आरम्भ होनेके चार वर्ष पीछे १९७५ में जर्मनीने स्वीज़रलैण्डकी सत्सेवाके द्वारा अमेरिकासे, जो उस समय स्वयं विरोधी था, यह प्रार्थना करायी कि वह मध्यस्थ बनकर सन्धि करा दे। शत्रुको मध्यस्थ बनाना अन्तारराष्ट्रिय व्यवहारमें एक सरासर नयी बात थी।

सत्सेवा या मध्यस्थता दो तीन अवस्थाओंमें हो सकती है। सबसे सरल तो वह है जिसमें दोनों पक्ष किसी तीसरेसे बीचमें पड़नेकी प्रार्थना करें। उसे अधिकार है कि इस प्रार्थनाको अस्वीकार कर दे पर बहुधा ऐसा नहीं होता। कभी कभी एक ही पक्षकी ओरसे प्रार्थना की जाती है। इस दशामें सफलता तभी हो सकती है जब कि दूसरा पक्ष भी सत्सेवा या मध्यस्थता स्वीकार करे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी कभी कोई भी प्रार्थना नहीं करता वरन् तीसरा राज स्वतः बीचमें पड़ता है। इस दशामें उसकी सफलता दोनोंकी स्वीकृति-पर निर्भर है।

हमारे भारतीय राजोंके सब झगड़े ब्रिटिश सर्कारकी सत्सेवा और मध्यस्थतासे तय होते हैं। विशेषता यह है कि वह इन सबकी अधिपति है, इसलिये उसकी बात कोई टाल नहीं सकता।

पञ्चायत

परन्तु कभी कभी कोरी मध्यस्थतासे काम नहीं चलता। दोनों पक्ष अपने अपने स्वार्थपर अड़े रहते हैं, मध्यस्थ उनका ध्यान अन्ताराष्ट्रिय व्यवहार या नीति और न्यायकी ओर भले ही आकर्षित करे पर उसकी सुनता कौन है। विशेष करके, यदि एक पक्ष बलवान् है तो वह अपनी इच्छाके अनुसार ही सब कुछ चाहता है। इसलिये कई बार समझदार राज मध्यस्थ बनना अस्वीकार कर देते हैं। वह कहते हैं कि हमें पञ्च मान लो तो हम हाथ डालें। यदि उभय पक्ष सहमत हुए तो पहिले एक पंचनामा* लिखा जाता है। पञ्च कौन होगा, कहां और कब निर्णय होगा, किस प्रकार दोनों ओरसे प्रमाण उपस्थित किये जायंगे, किन किन भाषाओंका प्रयोग किया जायगा, इत्यादि निर्णेय प्रश्नोंका पूरा विवरण इस पंचनामे में दिया रहता है। कोई राज पंचायतके सामने ऐसा प्रश्न नहीं रखता जिसका सम्बन्ध उसकी प्रतिष्ठा और स्वाधीनतासे हो। अस्तु, जब सब बात तय हो जाती हैं तो जो पञ्च चुने जाते हैं वह न्यायालयोंके समान पूरी कार्य्यवाही करके अपना निर्णय सुनाते हैं। चूंकि दोनों पक्ष पहिले ही वचन दे चुके होते हैं कि हम पञ्चोंकी बात मान लेंगे इसलिये

* Compromis d' arbitrage.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर कोई झगड़ा नहीं होता, कमसे कम इस समयतक इसका कोई स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलता।

अब पंचायतकी प्रथा इतनी अच्छी प्रतीत होने लगी है कि बहुत सी पञ्चायत-विषयक सन्धियां हो गयी हैं। यह सन्धियां कई प्रकारकी हैं। किसी किसीमें तो दोनों पक्ष यह प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि भविष्यत्में हम दोनोंमें अमुक अमुक विषयोंपर (या अमुक अमुक विषयोंको छोड़कर अन्य किसी भी विषयपर) विवाद हुआ तो हम उसका पञ्चायतसे निर्णय करायेंगे। किसी किसी सन्धिपर कई राजोंके इस विषयके हस्ताक्षर होते हैं कि हम अब अमुक अमुक प्रकारके सभी विवादोंका निर्णय पञ्चायतसे करायंगे। इसे अनिवार्य्य पंचायत † कहते हैं।

मध्यस्थता और पंचायतमें यह बड़ा अन्तर है कि मध्यस्थतामें कोई परम्परा नहीं होती। उसमें जो कुछ होता है वह दोनों पक्षोंके बलाबलको देखकर होता है परन्तु पञ्चायत न्यायालयके ढंगकी होती है। उसमें सिद्धान्त और विधान तथा परम्पराका ही विचार प्रधान होता है अतः उसका महत्त्व स्थायी होता है।

हेगका स्थायी न्यायालय

पञ्चायतोंसे लाभ देखकर लोगोंके चित्तमें बार बार यह विचार उठता था कि कोई ऐसा प्रबन्ध होता जिससे युद्धकी सम्भावना ही मिट जाय और सब झगड़े पञ्चायतसे ही तय हुआ करें। १९५६ में हेगमें जो सन्धि-परिषद् बैठी थी उसने इसपर विचार किया और एक स्थायी न्यायालय § की योजना की। पर न्यायालय नाममात्रको ही स्थायी था। प्रत्येक देशके कुछ प्रमुख नीतिज्ञों और विधानशास्त्रियोंकी एक सूची प्रकाशित की

† Obligatory arbitration. § Permanent Court of Justice.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयी और यह निश्चय हुआ कि भविष्यत्में वादी प्रतिवादी इसी सूचीमेंसे पञ्च चुना करें। पंचायतकी कार्य्यवाहीका क्रम भी ठीक कर दिया गया। इस प्रकार कई अच्छे झगड़े निपटाये भी गये। १९६४ में फिर सभा हुई। नियमोंका कुछ संशोधन हुआ। सरपंच चुननेका नियम बनाया गया। यह भी निश्चय कर दिया गया कि किन किन विषयोंपर न्यायालय विचार किया करेगा।

यह सब हुआ पर कुछ कारणोंसे न्यायालयको उतनी सफलता न प्राप्त हुई जितनी कि होनी चाहिये थी। एक तो वह स्थायी था नहीं। जब कोई विवाद हो तो दोनों पक्ष पञ्च चुनें, फिर पञ्च लोग एकत्र किये जायं। इसमें देर लगती थी। न्यायालयके सामने मुकदमा लड़नेमें व्यय भी बहुत होता था। इससे मुकदमे कम जाते थे। दूसरी बड़ी त्रुटि यह थी कि इसको अनिवार्य्य अधिकार प्राप्त न था। यदि ऐसा नियम हो जाता कि सभी राजोंके सभी विवाद इसके सामने अवश्य लाये जायं तो इसे बड़ी सफलता होती। १९६४ में यह प्रश्न छेड़ा गया पर विरोध बहुत हुआ। एक ओर तो छोटे राजोंने विरोध किया। यद्यपि युद्धकी अपेक्षा पंचायतमें उनका अधिक लाभ था पर उन्हें व्यय घबराता था, दूसरे यह भी डर था कि न्यायालयपर बड़े राजोंका प्रभाव होगा, हमारी कोई सुनेगा नहीं। जर्मनी, जापान, इटली, आस्ट्रिया ऐसे बड़े राज भी विरोध कर रहे थे। इनकी महत्त्वाकांक्षा बढ़ी हुई थी, अपने अपने राज्यके विस्तारकी प्रबल भूख थी। यह सोचते थे कि यदि सब विवाद न्यायालयोंमें ही तय होंगे तो युद्धका द्वार ही बन्द हो जायगा और हमारी राज्यवृद्धि असम्भव हो जायगी। १९७१ में युद्ध छिड़ा, उसके समाप्त होनेपर राष्ट्रसंघ स्थापित हुआ। इसके साथ ही यह विचार हुआ कि एक स्थायी न्यायालय स्थापित हो। इस बारका न्यायालय सचमुच

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थायी होनेको था। इसके न्यायाधीश बराबर एक निश्चित स्थानपर रहते और उनके चुननेके ढंग और उनकी संख्याका ऐसा प्रबन्ध किया गया कि छोटे राजोंका यह आक्षेप जाता रहा कि बड़े राजोंका अनुचित दबाव पड़ेगा। इसलिये अब उन्हें ऐसे न्यायालयके अधिकारको स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति न थी। अनिवार्य्य पञ्चायतका प्रश्न फिर छिड़ा। संघकी कौंसिलने दस विद्वानोंकी उपसमिति बनायी और उसे यह काम सौंपा कि वह न्यायालयके लिये नियम बनाये। उपसमितिने एक नियम यह बनाया कि यदि एक पक्ष न्यायालयके सामने विवादको रख दे, अर्थात् मुकदमा दायर कर दे, तो दूसरे पक्षको न्यायालय इस बातकी सूचना दे दे पर यदि वह स्वीकार न भी करे तो भी निर्णय कर दिया जाय। इसका अर्थ यह होता कि सभी विवाद न्यायालयके सामने हठात् आते और युद्धका स्यात् नाम ही मिट जाता। इस बार ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापानने घोर विरोध किया। कारण स्पष्ट ही है। यह चारों युद्धमें विजयी हुए थे और शत्रुको दबाकर बहुत कुछ लाभ उठा चुके थे, बहुत कुछ उठानेकी आशा रखते थे। यदि सब काम न्यायालयसे ही होने लगे तो इनको अन्धेर करनेका अवसर कैसे मिलता। इन महाशक्तियोंके विरोधके कारण बात जहांकी तहां रह गयी। फिर वही हेगवाली शर्त रह गयी कि यदि दोनों पक्ष चाहें तो पञ्चायत या न्याया-लयसे निर्णय हो।

वस्तुतः यह बड़े महत्त्वका विषय है। यदि सब राजोंको यह बात सम्मत हो जाय कि अपने झगड़े न्यायालय द्वारा निपटाया करें तो संसारसे खून खराबा उठ जाय और राष्ट्रोंमें सौहार्द और भ्रातृभावका उदय हो। पर अभी इसमें देर प्रतीत होती है। एक तो अन्ताराष्ट्रिय विधानके सिद्धान्त ही अभी अनिश्चित रूपमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, दूसरे परस्परकी ईर्ष्या और अविश्वास आगे बढ़ने नहीं देता। परन्तु इससे हमें हताश न होना चाहिये। इन सब अड़चनोंके होते हुए भी मनुष्य उन्नति कर रहा है। यह असम्भव नहीं है कि एक दिन राजसमाजमें द्वेष और अविश्वासके स्थानमें स्नेह और विश्वास देख पड़ने लगे।

—:०:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय भाग—युद्ध-कालीन विधान

२८-३-१९४४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहिला अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय जीवनमें युद्धका स्थान ।

मानव समाजके आरम्भसे ही युद्ध होता आया है इसमें तो कोई सन्देह नहीं पर युद्ध करना अच्छा है या बुरा इसपर बहुत कम विचार किया गया है। एक ओर वेदादि धर्म-ग्रन्थ और बुद्धादि धर्म्मप्रवर्तक अहिंसाकी महिमा गाते चले आते हैं, दूसरी ओर युद्धकरनेवालोंकी प्रशंसा भी होती चली आयी है। लड़नेवालेसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा जाता है कि जीत जानेपर तुम्हें पृथ्वीपर नाना प्रकारके सुख मिलेंगे और यदि लड़ाईमें मारे गये तो सीधे स्वर्ग जाओगे। युद्ध एक आवश्यक या अनिवार्य्य विपत्ति नहीं समझा जाता था प्रत्युत धर्म्मका एक प्रधान अङ्ग था। केवल इतना ही नहीं था कि जब कोई दुष्ट हमारे ऊपर आक्रमण कर ही दे तो उससे लड़ा जाय वरन् यह भी भाव था कि यदि अपने-में बल हो तो अकारण भी दूसरोंको जीतना चाहिये। स्वयं वेदमें 'योऽस्मान् द्वेष्टि, यञ्च वयं द्विष्मः' (जो हम लोगोंसे द्वेष करता है, जिससे हम लोग द्वेष करते हैं) के ऊपर विजयकी प्रार्थना की जाती है। बलवान् नरेश राजसूय यज्ञ करते थे और उसके लिये घूम घूम कर दूसरे नरेशोंसे लड़ाई करते थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि युद्ध करना, युद्धमें कुशल होना, पराक्रम दिखलाना, बड़ी प्रशंसाकी बात समझी जाती थी। क्षात्रधर्म्म केवल स्वरक्षात्मक न था, परायेपर आक्रमण करना उसका मुख्य अंग था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाश्चात्य जगत्में भी बहुत कुछ ऐसे ही विचार थे। ऐसे भी लेखक और दार्शनिक हुए हैं जो युद्धको बुरा कह गये हैं पर उसकी प्रशंसा करनेवालोंकी संख्या भी कम नहीं है। आधुनिक जर्मनीके कई प्रसिद्ध दार्शनिकोंने युद्धका समर्थन किया है। उभय पक्षकी सम्मतियाँ पढ़ने योग्य हैं। हम कुछ अवतरण दोनों ओरके देते हैं।

इरैज़्मसने कहा है "यदि मनुष्योंके जीवनमें कोई ऐसी वस्तु है जिसका प्रतिवाद करना, जिससे हर प्रकार बचना, जिसे रोकना और बन्द करना हमारे लिये पूर्णतया उचित है तो वह युद्ध ही है। इससे अधिक बुरी, हानिकारक, विनाशकारक और घृणित और कोई वस्तु नहीं है। इसको दूर करना अत्यन्त कठिन है। ईसाइयोंका तो कहना ही क्या है, मनुष्यमात्रके लिये यह अत्यन्त निंद्य वस्तु है।" हाब्ज़ कहते हैं "युद्धके समय व्यवसायके लिये कोई स्थान नहीं रहता क्योंकि उसका फल अनिश्चित होता है; कृषि बन्द हो जाती है; समुद्रयात्रा बन्द हो जाती है और समुद्रमार्गसे आनेवाली वस्तुका आयात बन्द हो जाता है; बड़े बड़े घर नहीं बनते; पृथ्वीतलका ज्ञान नहीं होता; समाजका अभाव हो जाता है; सबसे बुरी बात यह है कि आकस्मिक मृत्युका बराबर भय बना रहता है; और मनुष्यका जीवन अकेला, अल्प, दुःखमय और पशुवत् हो जाता है।"

दूसरे पक्षवालोंके विचार इनसे नितान्त भिन्न प्रकारके हैं। जनरल बर्नहार्डि कहते हैं "यदि युद्ध न हो तो निम्न और पतित जातियां स्वस्थ और उन्नत जातियोंको दबा लें और सबकी ही अवनति हो जाय। युद्ध नीति-धर्मका एक आवश्यक अंग है।" ट्राइट्श्केका कहना है "युद्ध ही वास्तविक राजनीतिशास्त्र है। युद्धमें ही राष्ट्रोंमें सचमुच राष्ट्रीयता आती है। युद्धसे ही नये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजोंका जन्म होता है और स्वतन्त्र राजोंके विवादोंका निपटारा होता है। युद्ध राष्ट्रीय अनैक्यकी रामबाण औषध और वीरोचित गुणोंका प्रधान शिक्षक है। शस्त्रप्रयोग द्वारा अपने नागरिकोंकी रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्रका पहिला कर्तव्य है। इसलिये इतिहास (अर्थात् मानवसमाज) के अन्त तक युद्ध होते रहेंगे। सभ्य राजोंमें भी यही ऐसा न्यायालय है जिसमें उनके पृथक् और परस्पर विरोधी स्वत्वोंका निर्णय हो सकता है। क्या मनुष्य-जातिमे वीरभावको निर्मूल करनेका प्रयत्न उलटी नीति नहीं है? यदि भविष्यत्में युद्ध कम भी हो जायं तो भी चरित्रशिक्षाके लिये नागरिकोंकी सेना रखनी चाहिये।" एक स्थलपर वह कहते हैं "पृथक् राजोंका निरन्तर संघर्ष ही इतिहासकी शोभा है......शक्ति ही सबसे बड़ा धर्म्म है और धर्म्म या न्याय क्या है इसका निर्णय युद्धसे होता है।"

यह तो विद्वानोंकी सम्मतियां हुईं। यदि व्यवहारकी ओर दृष्टि डाली जाय तो वह बहुत कुछ द्वितीय पक्षकी ओर ही रहा है। इसका कारण यह था कि आपसमें इतना अविश्वास और द्वेष था कि किसी अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। आत्मरक्षा तथा सम्मानरक्षाके लिये, स्वराज-स्थापनके लिये, दुर्बलकी सहायताके लिये, सिवाय युद्धके और कोई साधन ही न था।

अब धीरे धीरे समय बदल चला है। राष्ट्रसंघ और अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयकी स्थापना हो रही है। अभी यह संस्थाएं सन्तोषप्रद अवस्थामें नहीं हैं परन्तु बीज अच्छा पड़ा है। युद्धके पूर्णतः बन्द हो जाने की नहीं तो कम हो जानेकी तो अवश्य सम्भावना है। अच्छा है, लोगोंमें यह भाव तो फैले कि आपसके झगड़े बिना युद्धके निपट सकते हैं। इधर महात्मा गांधी अहिंसात्मक असहयोगको

१५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्धका स्थान दे रहे हैं। देखा चाहिये यह नया शस्त्र कहां तक हिंसात्मक शस्त्रोंका स्थान लेता है। यदि भारतवासी इसका प्रयोग करके स्वराज प्राप्त कर सके तो संसारके सामने एक नया आदर्श आ जायगा।

इतना अब पाश्चात्य देशोंके समझदार मनुष्य मानने लगे हैं कि युद्ध मनुष्यकी चरित्रोन्नतिका साधन नहीं है और न वह राजोंका अपरिहेय कर्त्तव्य है। अब यह धारणा होने लगी है कि युद्ध करना मनुष्योचित प्रवृत्ति नहीं किन्तु हीन प्रवृत्ति है। जैसा कि 'दि स्टेट इन पीस ऐण्ड वार'में अध्यापक वाट्सन कहते हैं "राज वह संस्था है जिसका उद्देश्य उस परिस्थितिको स्थापित करना है जिसमें उसके नागरिक सर्वश्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर सकें। लोग ऐसा समझते हैं कि यह उद्देश्य दूसरे राजोंको क्षति पहुं-चाये बिना पूरा नहीं हो सकता पर यह धारणा सत्यके विपरीत है। यह सच है कि राजका पहिला कर्त्तव्य अपने नागरिकोंके प्रति है पर ऐसा मानना भ्रम है कि यदि और राजोंके साथ उदार व्यव-हार किया जाय तो इस कर्त्तव्यका पालन नहीं हो सकता। प्रत्येक राष्ट्रके सामने पृथक् पृथक् प्रश्न हैं पर उनको सुलझानेके लिये यह माननेकी आवश्यकता नहीं है कि उसकी और राष्ट्रोंके साथ अनिवार्य्य शत्रुता है। एक राजका हित दूसरे राजके हितसे पृथक् नहीं किया जा सकता। राजोंका अन्योन्याश्रित होना ही सत्य है"।

ज्यों ज्यों सभ्य राज इस बातको समझते जायंगे कि वह एक दूसरेके आश्रित हैं त्यों त्यों लड़ाई कम होती जायगी। जब एक-के बिना दूसरेका काम ही नहीं चल सकता तो आपसमें मिलकर रहनेमें ही लाभ है। पर अभी इन विचारोंके अनुसार काम नहीं हो रहा है। युद्ध बुरी चीज सही पर उसे अभी मिटा नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते। ऐसी दशामें यही सम्भव और उचित है कि उसकी भीषणता कम की जाय, उसे ऐसे नियमोंसे बांधा जाय कि लोग एक दूसरेको अनावश्यक कष्ट न दें और जो नागरिक शान्तिमय कामोंमें लगे हों उनके साथ व्यर्थकी छेड़छाड़ न हो तथा जो तटस्थ हों उनके स्वत्वोंकी रक्षा होती रहे।

प्राचीन कालमें भी इस प्रकारके नियम बर्ते जाते थे। मनुस्मृतिके सातव अध्यायमें बहुतसे नियम दिये हुए हैं; उनमें से कुछको हम उदाहरणार्थ यहां उद्धृत करते हैं:—

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापिदिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः॥
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीतिवादिनम्॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्॥
नायुधव्यसनप्राप्तं नार्त्तं नातिपरीक्षितम्।
न भीतं न परावृत्तं सतान्धर्म्ममनुस्मरन्॥
(मनु ७-९०,९१,९२,९३)

अर्थात् विषसे बुझे हुए, अग्निसे तप्त, शरीरको फाड़ देनेवाले शस्त्रों द्वारा शत्रुसे युद्ध न करे। जो भूमिपर खड़ा हो, नपुंसक हो, हाथ बांधे हुए हो, जिसके सिरके बाल बिखरे हों, बैठा हो, 'मैं आपका ही हूं' कहकर अभयदान मांगता हो, सोया हो, निःशस्त्र हो, केवल तमाशा देख रहा हो, दूसरेके साथ युद्धस्थलमें यों ही आ गया हो, जिसके शस्त्र छिन गये हों, घायल हो, दुःखी हो, डर गया हो या भाग गया हो, इन सभोंको सद्धर्म्मका जाननेवाला न मारे।

यह नियम बहुत ही उदार हैं और जिन दिनों युद्ध करना केवल क्षत्रियोंका काम था उन दिनोंके लिये पर्याप्त थे। आश्चर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरेशोंकी केवल आपसमें लड़ाइयां होती थीं। कोई ऐसा प्रबल राज न था जो आर्य्य सभ्यतासे टक्कर लेता। जब मुसल्मानोंका सामना हुआ तो एक नयी ही परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। उनके लिये सभी आर्य एकसे थे, गोब्राह्मणकी उन्हें कोई प्रतिष्ठा न थी, मन्दिरोंपर उनका हाथ पहिले उठता था, उस समय यह नियम भी अधूरे ठहरे।

पर आर्य्यकालमें भी कई ऐसी बातें होती थीं जो बहुत अच्छी नहीं प्रतीत होतीं। युद्धमें जीते हुए मनुष्य बराबर 'दास' बनाये जाते थे, लूट भी होती थी, स्त्रियां तक पकड़ ली जाती थीं। स्वयं मनुजी कहते हैं:—

रथाश्वं हस्तिनं क्षत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रिय:।

सर्वं द्रव्याणि कुप्यञ्च यो यज्जयति तस्य तत्॥

(मनु ७-९६)

अर्थात् रथ, घोड़ा, हाथी, खेत, धन, धान्य, पशु, स्त्री, सब प्रकारके धात्वादि द्रव्य—इन सबको जो जीते वही इनका स्वामी होता है।

आजकल ऐसे नियम नहीं हैं। बुराइयां अब भी बहुत हैं, जब मनुष्यकी पाशव प्रवृत्तियोंको खुल खेलनेका अवसर मिलता है तो सब नियम रक्खे रह जाते हैं पर यह मानना पड़ता है कि फिर भी पहिलेसे बहुत कुछ आशाजनक सुधार हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा अध्याय ।

असामरिक बलप्रयोग, और रण-घोषणा ।

समर एक ऐसा शब्द है जो सुननेमें बड़ा साधारण प्रतीत होता है पर इसकी परिभाषा बहुत सरल नहीं है। समरका पर्य्याय लड़ाई समझा जाता है परन्तु प्रत्येक लड़ाई समर नहीं है। अन्ताराष्ट्रिय विधानने इस शब्दके अर्थ-समरकी परिभाषा को संकुचित कर दिया है। समरके दो मुख्य लक्षण हैं:—

(क) वह एक ऐसी लड़ाई है जिसके दोनों पक्ष या तो राज हैं या एक पक्ष राज है और दूसरा पक्ष एक ऐसा समुदाय है जो इस लड़ाईको अन्ताराष्ट्रिय विधानके नियमोंके अनुसार लड़ रहा है और जिसे इस लड़ाईके लिये वह सब अधिकार दे दिये गये हैं जो राजोंको प्राप्त होते हैं।

(ख) वह एक ऐसी लड़ाई है जिसके दोनों पक्ष आपसके शान्तिमय सम्बन्धको तोड़कर अपने विवादका निर्णय शस्त्रप्रयोग द्वारा करना चाहते हैं।

इनमें दूसरा लक्षण कुछ अनावश्यक सा प्रतीत होता है क्योंकि साधारण धारणा यह है कि जहां लड़ाई अर्थात् शस्त्र-प्रयोग होगा वहां शान्तिमय सम्बन्धको तोड़नेकी इच्छा भी अवश्य ही होगी। पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। कई ऐसी दशाएं हैं जिनमें शस्त्रप्रयोग होता है पर दोनों पक्ष एक दूसरेके प्रति अरिता* की अवस्थामें नहीं माने जाते अर्थात् उनका सम्बन्ध अरिभों

* Belligerency

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(शत्रुओं) जैसा नहीं माना जाता। लड़ाई होती है पर उसे समर नहीं कहते। इसका विस्तृत वर्णन आगे होगा। पहिला लक्षण भी महत्वका है। पहिले समयमें प्राच्य और पाश्चात्य सभी देशोंमें ऐसी लड़ाइयां होती थीं जिनसे किसी राजका कोई सम्बन्ध न था। यदि दो बड़े ठाकुरों या धनिकोंका आपसमें मनमुटाव होता था तो दोनों सैनिक भर्ती करके आपसमें लड़ पड़ते थे। आजकल यदि ऐसी लड़ाइयाँ हों तो उन्हें समर नहीं कहेंगे और जो लोग ऐसी लड़ाइयोंकी आयोजना करेंगे उनपर फौजदारीका अभियोग चलाया जायगा। अधीन सर्कारोंके काम उनके अधिपतियोंके काम माने जाते हैं। भारत कोई स्वतन्त्र राज नहीं है पर भारतसर्कार जो लड़ाइयां लड़ती है वह ब्रिटिश राजके नामपर, अतः इन लड़ाइयोंको समर कह सकते हैं। यही नियम व्यापारिक कम्पनियोंके लिये भी लागू है।

असामरिक बलप्रयोग कई प्रकारसे किया जाता है। बलवान् राज दुर्बल राजोंके विरुद्ध बहुधा इस साधनसे काम लेते हैं। नामको लड़ाई नहीं होती परन्तु देखनेमें लड़ाईके सभी लक्षण विद्यमान रहते हैं। धन-जनकी हानि होती है, साधारण काम-धन्धे रुक जाते हैं, पर कहा यही जाता है कि आपसमें समर नहीं हो रहा है। अमित्रावस्था भले ही हो परन्तु शत्रुभाव नहीं है।

यों तो असामरिक बलप्रयोगके, जैसा कि ऊपर कहा गया है कई प्रकार हैं पर यहांपर हम उनमेंसे दो तीन मुख्य मुख्यका दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

(क) प्रतिघात।*

प्रतिघातका अर्थ है बदला। प्रतिघात भी कई प्रकारका होता

* Reprisals.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यदि एक राजने किसी दूसरे राजसे आनेवाले मालपर आयात कर बढ़ा दिया तो यह दूसरा भी ऐसा ही कर सकता है। यह भी प्रतिघात है पर इसमें बल-प्रयोग नहीं है। बलप्रयोगात्मक प्रतिघातके भी कई उदाहरण हैं।

प्रतिघात

१९४१, १९४२ में फ्रांसवाले तांक्किन प्रदेशपर अपना अधिकार स्थापित कर रहे थे। यह प्रदेश चीनके दक्षिणमें है और यद्यपि चीन साम्राज्यका अंग नहीं था परन्तु चीन सर्कार बहुत दिनोंसे इसे अपने अधिकार और प्रभावक्षेत्रमें मानती आयी थी। तांक्किनके स्वदेशरक्षक सिपाहियोंमें बहुत से चीनी भी देख पड़े। फ्रांसने चीनसे कहा कि आप इस बातको रोकिये। चीनने टालमटोल करना चाहा क्योंकि उसे यह पसन्द भी न था कि तांक्किनपर फ्रांसका आधिपत्य हो। इसपर फ्रांसके एक बेड़ेने फ़ू-चाउके किलेपर गोलाबारी की और फार्मोसा द्वीपके कुछ स्थानोंपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार चीनपर दबाव डाला गया पर नामको फ्रांस और चीनमें शत्रुभाव नहीं माना गया। अन्तमें फ्रांसकी विजय रही और चीनने उसकी बात मान ली।

अभी हालकी ही बात है कि छः इटालियन अफसरोंको किसीने यूनानी सीमाके भीतर मार डाला। इटलीने यूनानके सामने कई कड़ी शर्तें रक्खीं जिनको अपमानजनक समझकर यूनानने अस्वीकार किया। तत्काल ही इटालियन सेनाने यूनानके कार्फू नगरपर कब्जा कर लिया और इटालियन सर्कारने यह घोषणा कर दी कि जबतक यूनान सर्कार उसकी शर्तोंको न पूरा करेगी तबतक वह कार्फू न खाली करेगी।

रूर प्रान्तका उदाहरण भी इसी प्रकारका है। महायुद्धके पीछे यह निश्चय हुआ कि जर्मनी अपने विजेताओंको हर्जाना देगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर उससे जो मांगा गया वह इतना अधिक था कि उसका चुकाना जर्मनीकी सामर्थ्यके बाहर था। उसने कई बार यह बात पेश की परन्तु फ्रांस और बेल्जियमको विश्वास न होता था। उनका बराबर यही कहना था कि जर्मनी बहाना करता है। जर्मनी नियत समयपर माँगकी किस्तें पूरी न कर सका। इसपर फ्रांस और बेल्जियमने उसके रूर और राइनलैण्ड प्रदेशोंपर कब्जा कर लिया। बहुत से जर्मन जेलमें ठूंसे गये, कितने हताहत हुए, कितनोंकी सम्पत्तियां जब्त कर ली गयीं। उन प्रदेशोंमें ठीक वही परिस्थिति देख पड़ती है जो विजित प्रदेशोंमें युद्धके पीछे देख पड़ती है। वहांकी जनता फ्रेञ्च सर्कारकी भद्र अवज्ञा करने लगी। फ्रांसका कहना था कि जब भद्र अवज्ञा बन्द कर दी जायगी और जर्मनी हमारे कथन और निर्देशके अनुसार हर्जाना देने लग जायगा और हमारे हाथमें ऐसी जमानतें रख देगा जिनसे हमें यह विश्वास हो जाय कि वह भविष्यत्में हमें धोखा न देगा तब हम इस प्रान्तको खाली कर देंगे। यह सब कुछ है पर जर्मनी और फ्रांसमें अरितावस्था नहीं मानी जाती। मैत्री नहीं है पर शत्रुता भी नहीं है। फ्रांस और बेल्जियम जर्मनीके साथ समर नहीं वरन् केवल असामरिक बलप्रयोग कर रहे हैं।

१९६५ में हालैण्ड और वेनेज्वीलामें कुछ मतभेद हो गया। हालैण्डकी कई शिकायतें थीं जो पत्रव्यवहारसे दूर न हो सकीं। अन्तमें उसने वेनेज्वीलाके दो तटरक्षक जहाजोंको पकड़ लिया और उनको तबतक न छोड़ा जबतक शिकायतें दूर न हो गयीं।

इन उदाहरणोंसे प्रतिघातके स्वरूपका कुछ कुछ अनुमान हो सकता है। प्रतिघात और समरमें प्रधान भेद यही है कि प्रतिघातकी अवस्थामें पहिलेकी सन्धियोंका पूरा पूरा पालन होता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपसमें पत्रव्यवहार जारी रहता है और जो कुछ झगड़ा होता है उसका क्षेत्र परिमित और संकुचित होता है।

(ख) नाववरोध। §

नाववरोधका अर्थ है जहाजोंको रोकना। यह दो प्रकारका होता है—शान्तिमय * और युद्धात्मक †। जब कोई राज किसी कारण विशेषसे कुछ कालके लिये अपने देशके जहाजोंको बन्दरमें रोक देता है तो उसे शान्तिमय नाववरोध कहते हैं। इससे बलप्रयोगसे कोई सम्बन्ध नहीं है। युद्धात्मक नाववरोध वह है जिसमें कोई राज किसी परराजके व्यापारिक जहाजोंको अपने बन्दरमें रोक लेता है।

नाववरोध

१८६० में फ्रांस और ब्रिटेनमें लड़ाई हो रही थी। ब्रिटेनको यह आशंका हुई कि हालैण्ड शीघ्र ही फ्रांससे मिल जायगा। उन दिनों हालैण्डके बहुतसे व्यापारिक जहाज ब्रिटेनके बन्दरोंमें पड़े हुए थे। ब्रिटेनने उन सबका बाहर जाना बन्द कर दिया। बस यहांतक नाववरोध है। यदि आपसमें समझौता हो जाय तो जहाज छोड़ दिये जाते हैं, यदि समझौता न हुआ वरन् समर छिड़ गया तो उन जहाजोंके साथ वैसा ही वर्ताव किया जाता है जैसा समरकालमें शत्रु-सम्पत्तिके साथ किया जाता है। इसका वर्णन आगे होगा।

१९ वीं शताब्दीके आरम्भमें यह प्रथा सी चल पड़ी थी कि जब कोई राज किसी अन्य राजसे समर ठानना चाहता था तो वह उसके जितने जहाज मिलते थे उन्हें पहिलेसे ही रोककर जब्त कर लेता था। पर आजकल ऐसा करना अनुचित और अन्याय्य समझा जाता है। इतना ही नहीं, युद्ध छिड़ जानेपर

§Embargo. *Pacific. †Hostile.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी शत्रु-राजके जहाजोंको दो चार दिनका अवकाश दिया जाता है कि वह चाहें तो चले जायं। १९६४ की हेग कान्फरेंसमें यह निश्चय कर दिया गया कि व्यापारिक जहाज जब्त न किये जायं। परन्तु जिन जहाजोंकी बनावट ऐसी हो कि उनको सुगमतासे युद्धके जहाजोंमें परिणत कर सकते हैं उन्हें अब भी जब्त कर सकते हैं।

नाववरोधकी विशेषता यह है कि इसमें राजपर सीधे दबाव न डालकर उसकी प्रजाके एक अंशपर दबाव डाला जाता है ताकि उसके द्वारा राजपर दबाव पड़े।

(ग) तटावरोध। *

तटावरोधका अर्थ है रोकना या रास्ता बन्द करना। इसके भी दो प्रकार हैं, शांतिमय और युद्धात्मक। युद्धात्मक तटावरोधका वर्णन आगे चलकर होगा, यहां शांतिमय तटावरोधसे तात्पर्य है। जब एक राज दूसरे राजके बन्दरोंके सामने अपने सैनिक जहाजोंको खड़ा करके उनमेंसे आना जाना बन्द कर देता है तो उसे तटावरोध कहते हैं।

तटावरोध

पहिले पहिले १८८४ में ब्रिटेन, फ्रांस और रूसने यूनानके बन्दरोंका अवरोध किया। उन दिनों यूनान तुर्कोंके अधीन था पर स्वाधीन होना चाहता था। उपर्युक्त तीनों राज उसकी सहायता करना चाहते थे पर तुर्कोंसे लड़ना भी नहीं चाहते थे। अवरोध करनेका उद्देश्य यह था कि तुर्की सैनिकोंको किसी प्रकारकी रसद न पहुंच सके और तुर्क सर्कार विवश होकर इन लोगोंकी बात मानकर यूनानको स्वाधीन कर दे।

इसके बाद अवरोधकी युक्तिसे कई बार काम लिया गया है। आरम्भमें इसका स्वरूप अनिश्चित था। ब्रिटेनका कहना था

*Blockade

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि केवल उसी राजके जहाजोंको रोकना चाहिये जिसके विरुद्ध अवरोध किया गया है, फ्रांसका कहना था कि सभी राजोंके जहाजोंको भीतर आने जानेसे रोकना चाहिये। अधिकांश राज ब्रिटेनसे सहमत थे। १९४४ में अन्तारराष्ट्रिय विधानसमिति*ने निम्नलिखित तीन नियम प्रकाशित किये—

(१) अवरोधकी अवस्थामें भी अन्य राजोंके जहाज भीतर आ सकते हैं।

(२) अवरोधकी पर्य्याप्त घोषणा करनी चाहिये और घोषणाके पीछे उसको समुचित बल द्वारा स्थापित रखना चाहिये। (केवल घोषणासे काम नहीं चल सकता। अवरोध करनेकी सामर्थ्य भी होनी चाहिये और उस सामर्थ्यसे काम भी लेना चाहिये।)

(३) अवरुद्ध राजके जो जहाज भीतर घुसना चाहें उन्हें रोक लेना चाहिये पर अवरोधकी समाप्तिपर उन्हें ज्योंका त्यों उनके स्वामियोंको लौटा देना होगा।

इस तीसरी शर्तपर कुछ विशेष ध्यान देना होगा क्योंकि यह उतनी स्पष्ट नहीं है जितनी कि प्रतीत होती है। १९६४ में

तीसरी शर्तका अर्थ

हेगमें यह निश्चय हुआ कि यदि किसी राजकी प्रजाका रुपया किसी दूसरे राजके ऊपर बाकी हो तो ऋण वसूल करनेके लिये बलप्रयोग न किया जायगा पर यदि ऋणी राजसे समझौतेके लिये या किसीको मध्यस्थ बनानेके लिये कहा जाय और वह इस बातपर ध्यान न दे या मध्यस्थकी बात न माने तो महाजन राजको अधिकार है कि जो चाहे करे। इस नियममें बलवान् राजोंके लिये बहुत अवकाश है। यदि वह समझौता करने या किसीको मध्यस्थ बनानेका नाम ही न लें प्रत्युत किसी दुर्बल

*Institute of International Law.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजपर यह कहकर कि तुम्हारे यहां हमारा रुपया चाहिये आक्रमण कर दें तो इसके लिये कोई रोक नहीं है। वह चाहे बल-प्रयोग करें चाहे अवरोध करके जहाजोंको जब्त कर लें। लारेंसका मत है कि यदि रुपयेके लिये विवाद हो तो अवरोधकको अधिकार है कि उतने मूल्यके जहाजोंको पकड़ कर जब्त कर ले जितना रुपया कि उसको मिलना चाहिये।

असामरिक बल-प्रयोगका औचित्य और उपयोग

हम यह देख चुके हैं कि असामरिक बलप्रयोगमें वास्तविक समरके कई अंश वर्तमान हैं। प्रधान भेद यही है कि इसका क्षेत्र छोटा होता है और भीषणता भी कम होती है। इसके दुरुपयोगकी सम्भावना कम नहीं है। बड़े राज इसके द्वारा छोटे राजोंको तंग कर सकते हैं और उनको अपनी अनुचित मांगोंको पूरा करनेपर विवश कर सकते हैं। पर इसका एक महान् उपयोग है। चाहे औचित्य हो या न हो परन्तु नर-पीड़ा अवश्य कम होती है। उद्दण्ड राज समर करके भी छोटोंको सता सकते हैं परन्तु समरमें जितनी भीषणता होती है उतनी इसमें नहीं है।

यह तो स्पष्ट ही है कि अल्प-बल वाले राजोंके विरुद्ध ही इसका सफल प्रयोग हो सकता है। बलवान् राज तत्काल ही इसके उत्तरमें रण-घोषणा कर देंगे क्योंकि इस प्रकारके दबावको मान लेना उनके स्वाभिमानके विरुद्ध समझा जायगा।

यह प्रश्न बहुत दिनोंसे विवादग्रस्त चला आता है कि समर आरम्भ करनेके पहिले रण-घोषणा करनी चाहिये या नहीं।

रण-घोषणा

पुराने आचार्योंकी सम्मतिमें तो ऐसा करना आवश्यक था परन्तु जैसा कि एक लेखकने दिखलाया है १७५७ से १९२९ अर्थात् १७२ वर्षमें लगभग १२० समर हुए जिनमें स्यात् १० में उचित रण-घोषणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुई। घोषणाका अर्थ तो यह है कि लड़ाई छिड़नेके पहिले स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया जाय कि अब हमसे तुमसे लड़ाई होगी। ऐसा न करके यह निःसन्देह किया जाता था कि लड़ाई छिड़ जानेके पीछे इस आशयकी विज्ञप्ति निकाल दी जाती थी। फ्रांस और ब्रिटेनमें १८११ में समर आरम्भ हुआ पर उसकी विज्ञप्ति १८१३ में निकाली गयी। १९ वीं शताब्दीके अन्तमें कुछ प्रसिद्ध समरोंमें विज्ञप्तियां दी गयीं परन्तु कोई निश्चित नियम न बना। रूस और जापानमें १९६० के आषाढ़से लिखा-पढ़ी हो रही थी। २४ माघको जापानी राजदूतने रूसी परराज सचिवको एक पत्र दिया जिसमें स्पष्ट लिखा था कि "अब हमारा आपका मैत्री-सम्बन्ध विच्छिन्न होता है और जापानकी सर्कारको यह अधिकार रहेगा कि अपनी शंकामय स्थितिको सुरक्षित और सुदृढ़ बनानेके लिये चाहे जिस उपायका अवलम्बन करे"। इसका यही अर्थ हो सकता था कि लड़ाई शीघ्र ही छिड़ेगी पर कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की गयी। जब जापानी बेड़ेने रूसी बेड़ेपर धावा किया तो रूसने शिकायत की कि बिना सूचना दिये ही जापानने धोखेसे आक्रमण किया है। रण-घोषणा की गयी परन्तु इस आक्रमणके दो दिन बाद। जापानका उत्तर यह था कि पर्य्याप्त सूचना दी जा चुकी थी, पहिलेसे घोषणा करनेका कोई नियम नहीं है।

१९६४ की अन्ताराष्ट्रिय हेग कांफरेंसने इस प्रश्नपर सविस्तर विचार किया। वस्तुतः लड़ाई छिड़ जानेपर रण-घोषणा निकालना एक व्यर्थ सी बात थी। अन्तमें कांफरेंसने दो उपयोगी नियम निर्धारित किये। पहिला नियम यह है, "सहैतुक रण-घोषणा, अथवा पराश्रयी रणघोषणायुक्त अन्तिम पत्र, के द्वारा पहिलेसे और स्पष्ट रूपसे सावधान किये बिना" लड़ाई आरम्भ न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जाय। 'सहेतुक रणघोषणा' उसे कहते हैं जिसमें यह लिखा हो कि अमुक अमुक कारणोंसे हम लड़ाई छेड़ते हैं। 'पराश्रयी रणघोषणा युक्त अन्तिम पत्र' वह पत्र है जिसमें यह लिखा होता है कि तुमको हमारी अमुक अमुक शर्तें पूरी करनी होंगी, यदि ऐसा न होगा तो हम इतने घण्टोंके भीतर लड़ाई छेड़ देंगे। हालैंड चाहता था कि इतना और बढ़ा दिया जाय कि घोषणाके कमसे कम २४ घण्टे पीछे युद्ध आरम्भ हो पर यह प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। घोषणा करनेके (अर्थात् जिससे लड़ना है उसे सूचित करनेके) एक क्षण पीछे भी लड़ाई छिड़ सकती है।

दूसरा नियम यह है कि "तटस्थ राजोंको समरावस्थाकी सूचना तत्काल देनी चाहिये। सूचना तारके द्वारा भी दी जा सकती है पर जबतक सूचना न दी जा ले तबतक उनके साथ वैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता जैसा कि समरावस्थामें तटस्थोंके साथ किया जाता है।" इसके साथ एक उपनियम भी लगा हुआ है कि यदि यह प्रमाणित हो जाय कि अमुक तटस्थ राजको समरावस्थाका पता था तो उसके साथ सब नियम बत जायगे, चाहे उसके पास सूचना न भी पहुंची हो।

इन नियमोंके प्रकाशित होनेके पीछे यूरोपमें दो समर हुए। १९६८ में इटलीने तुर्कीसे युद्ध ठाना और १९७१ में महासमर आरम्भ हुआ। दोनोंमें यह नियम पालन किये गये।

जो राज बलवान् है और युद्धके लिये सन्नद्ध है उसे रणघोषणा करनेमें कोई अड़चन नहीं होती फिर भी यह नियम उपयोगी हैं। सभ्य जगत् लड़ाईके कारण जान जाता है और तटस्थ राज सँभल जाते हैं। यदि असामरिक बलप्रयोगके लिये भी कुछ ऐसे ही नियम बन जायं तो अच्छा हो। आजकल यह प्रथा तो चल पड़ी है कि कुछ घण्टों (प्रायः २४ या ४८) का अवकाश दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है और यह कह दिया जाता है कि यदि इतने घण्टोंमें हमारी बातें न मानोगे तो हम जो चाहेंगे करेंगे। लोगोंको राष्ट्रसंघसे बड़ी बड़ी आशाएँ थीं पर वह खपुष्पवत् मिथ्या निकलीं। अभी उसने इटलीको यूनानके विरुद्ध प्रतिघात करनेसे रोकना चाहा पर इटलीने उसकी बात मानना स्वीकार न किया। राष्ट्रसंघको इटलीसे दबना ही पड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरा अध्याय ।

समरारम्भके तात्कालिक परिणाम ।

प्रत्येक प्रभु राजको यह अधिकार है कि वह अन्य राजोंसे युद्ध करे या शान्ति-सम्बन्ध बनाये रक्खे। आजकल राष्ट्रसंघ इस अधिकारको कुछ कम करना चाहता है पर उसे सफलता नहीं हुई है। सम्भव है भविष्यत्‌में अरिताकी स्वीकृति कोई वास्तविक राष्ट्रसंघ बने जो इस काममें समर्थ हो पर अभीतक स्वतंत्र राजोंपर कोई सच्ची रोक थाम नहीं है। ज्योंही कोई राज किसी अन्य राजसे लड़ाई आरम्भ करता है त्योंही उसे योद्धा या समरकारी राजोंके सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं और सब कर्तव्य लागू हो जाते हैं। अन्य राज इस विषयमें कुछ नहीं बोल सकते। उनको उस परिस्थितिको स्वीकार कर ही लेना पड़ता है।

परन्तु राजातिरिक्त समरकारी समुदायोंके लिये यह बात नहीं है। जिस समय किसी सभ्य राजका कोई टुकड़ा स्वाधीन होनेका प्रयत्न करता है उस समय उसे तत्कालीन सर्कारसे लड़ना ही पड़ता है। बिना लड़ाईके स्वराज नहीं मिलता। प्रार्थना करने, तीव्र भाषामें लेख लिखने, लम्बे चौड़े व्याख्यान देनेसे स्वतंत्रताकी देवी प्रसन्न नहीं होती, वह नरबलिको भूखी है। आजकल महात्मा गांधीने अहिंसात्मक असहयोगरूपी एक नया साधन बताया है। अभी यह अपरीक्षित है। सम्भव है इससे भारतको सफलता हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो समस्त पृथिवीके सामने एक नया आदर्श आ जायगा और समर विधानका रूप ही कुछ और हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जायगा। परन्तु अभी इस समय तकका अनुभव उसी लड़ाई-को स्वराजका साधन बताता है जिसमें बल-प्रयोग होता है। इस-के साथ ही यह स्मरण रखना चाहिये कि अहिंसात्मक लड़ाईसे भी वही परिस्थिति उत्पन्न हो जायगी जो हिंसा द्वारा होगी अतः जिन नियमोंका यहां उल्लेख होगा वह सभी अवस्थाओंमें लागू होंगे।

अस्तु, जब कोई सभ्य समुदाय स्वतंत्र होनेका प्रयत्न करता है तो उसे अपने देशकी सर्कारसे लड़ना पड़ता है। सर्कार उस समुदायको विद्रोही दल कहती है। उसमें से जो पकड़ा जाता है उसपर राजद्रोहका आरोप होता है और फांसी आदिका दण्ड दिया जाता है। यदि सर्कारके भाग्य अच्छे हुए तो उसकी दमन-नीति सफल हो जाती है और विद्रोह शान्त हो जाता है परन्तु यदि प्रजा दृढ़सङ्कल्प हुई तो सहस्र सहस्र आपत्तियोंको झेलकर भी अपने स्वातंत्र्य-प्रेमको मुरझाने नहीं देती। ऐसी दशामें सर्कारके पूर्ण प्रयत्न करने पर भी विद्रोह बल पकड़ता जाता है और धीरे धीरे देशका एक अंश विद्रोहियोंके अधिकारमें आ जाता है। परराज यह सब चुपचाप देखते रहते हैं। विद्रोहियोंकी ओरसे बोलना पारस्परिक सौजन्यके विरुद्ध है। पर जब विद्रोहियोंका अधि-कार देशके किसी भागपर हो जाता है और वह वहांके निवा-सियोंसे कर लेने लगते हैं, पुलिस और न्यायकी व्यवस्था करते हैं तथा अन्य बातोंमें भी एक सुस्थापित सर्कारकी भांति आचरण करने लगते हैं तो उनको साधारण विद्रोही नहीं कह सकते। पर-राजोंको यह निश्चय करना पड़ता है कि उन्हें क्या मानें। यदि उनका प्रांत किसी परराजकी सीमापर हुआ या समुद्रतटपर हुआ तो इस प्रश्नके निर्णयकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। अभी पुरानी सर्कार लड़ रही है, सम्भव है, वह जीत जाय, इस लिये उन्हें स्वतंत्र राज नहीं कह सकते पर एक प्रान्तमें वह निःसन्देह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वतंत्र हैं और उस प्रान्तके लिये परराजोंको उन्हींसे बर्तना है। ऐसी अवस्थामें परराज विद्रोहियोंकी अरिताको स्वीकार कर लेते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि वह विद्रोहियोंको स्वतंत्र राष्ट्र न मानते हुए भी उन्हें वह सब अधिकार देते हैं जो युद्धकालमें सभ्य राष्ट्रों-को प्राप्त होते हैं।

पुरानी सर्कार भी, जिसके विरुद्ध विद्रोह हुआ है, प्रायः इस बातको स्वीकार कर लेती है। इसमें उसका लाभ ही है। यदि वह विद्रोही सैनिकोंको फांसीपर लटकाती जायगी तो वह उसके सैनिकोंके साथ भी वैसा ही करेंगे। दूसरा बड़ा लाभ यह है कि यदि वह इस परिस्थितिको स्वीकार न करे तो उसे यह मानना पड़ेगा कि विद्रोही उसकी प्रजा हैं। ऐसी दशामें वह जो कुछ लूटमार करें अथवा अन्य प्रकारसे विदेशियोंको हानि पहुंचायें उसके लिये वही जिम्मेदार होगी। परन्तु जब उनकी अरिता स्वीकार कर ली गयी तो फिर अपने कामोंके लिये वह आप ही दायी हो जाते हैं। जो परराज उनकी अरिताको स्वीकार करते हैं वह उन्हींसे पूछताछ कर सकते हैं। यदि विद्रोह ठण्ढा हो गया तो पुरानी सर्कार अपना पूर्व प्रभुत्व फिर पा जाती है, यदि विद्रोही सफल हो गये तो वह एक नया स्वतंत्र राज स्थापित कर लेते हैं। अरिताकी स्वीकृति* तो एक बहुत बड़ी बात है। इसका अवसर उस समय आता है जब विद्रोहियोंका आधिपत्य एक निश्चित भूभागपर हो जाता है और वह उस भूभागपर एक स्थापित सर्कारकी भांति बर्तने लगते हैं। इसके पहिले भी कभी कभी एक ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है जिसमें परराजोंको बोलना पड़ता है। कोई राज किसी अन्य

विद्रोहित्वकी स्वीकृति

* Recognition of Belligerency.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजके घरेलू झगड़ोंमें नहीं बोलता पर यदि इस झगड़ेका प्रभाव बाहरवालोंपर पड़े या उसका किसी स्वतंत्र सिद्धान्तसे सम्बन्ध हो तो बोलना ही पड़ता है। यदि किसी राजमें विद्रोह हो जाय परन्तु विद्रोहियोंकी शक्ति इतनी न बढ़ गयी हो कि वह किसी भूभागपर अपना शासन स्थापित कर सकें तो उन्हें अरिताकी स्वीकृति तो दी नहीं जा सकती। पर यदि वह सभ्य नियमोंकी बर्तते हैं और यह भी निश्चय है कि उनका उद्देश्य शुद्ध राजनीतिक है तो उन्हें डाकू या लुटेरा भी नहीं कह सकते। यदि वह किसी परराजके शरणागत हों या उसके हाथमें पड़ जायं तो उन्हें चोर डाकुओंकी भाँति उनकी पुरानी सर्कारको, जिसके विरुद्ध उन्होंने विद्रोह किया है, सौंप देना मनुष्यताके विरुद्ध होगा। १९४८ में चिली राजमें विद्रोह हुआ। पहिले पहिले जहाजी बेड़ेने विद्रोह किया। न उसके पास कोई स्थलसेना थी, न कोई राज्य था। पर उसने विदेशी जहाजोंसे किसी प्रकारकी छेड़छाड़ न की, केवल चिली सर्कारके विरुद्ध सामरिक कार्य्यवाही की। ऐसी दशामें परराजोंने भी उसे समुद्री डाकुओंका बेड़ा नहीं कहा, उसे सर्कारसे लड़ने दिया, अन्तमें उसकी जीत भी हुई।

आजकल यही प्रथा सर्वप्रिय होती जाती है यद्यपि कोई निश्चित नियम नहीं हैं। इस प्रकारके विद्रोहियोंको आरम्भमें अरिताकी स्वीकृति नहीं दी जा सकती पर जब तक वह विदेशियोंके साथ छेड़छाड़ नहीं करते तबतक उनके काममें कोई विघ्न नहीं डालता। उनके राजनीतिक उद्देश्यकी उच्चता स्वीकार की जाती है। अभी कोई ठीक नियम नहीं है पर कई आचार्य्योंकी सम्मति है कि उनको नियमानुसार सभ्य राजनीतिक विद्रोही मानकर विद्रोहित्वकी स्वीकृति ‡ नियतरूपसे मिलनी चाहिये।

‡ Recognition of Insurgency.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर आरम्भ होते ही दोनों शत्रु राज्योंकी प्रजाओंके पारस्परिक सम्बन्धोंमें तात्कालिक अन्तर पड़ जाता है। व्यापारिक प्रतिनिधियोंका काम बन्द हो जाता है। दोनों ओरकी सेनाओंको अन्योन्य राज्योंमें युद्ध करनेका अधिकार बन्द हो जाता है। एक देशकी प्रजा दूसरे देशकी प्रजासे किसी प्रकारका व्यवहार नहीं कर सकती। शत्रुपक्षके किसी व्यक्तिको किसी प्रकारकी सहायता नहीं दी जा सकती। शत्रुराजकी सर्कारको न तो ऋण दिया जा सकता है न उसको किसी अन्य प्रकारकी सहायता दी जा सकती है। कोई ऐसा पत्र नहीं लिखा जा सकता जिससे शत्रुको किसी प्रकारका सैनिक समाचार मिल सके।

समरारम्भका प्रजाके लिये तात्कालिक परिणाम

व्यापारिक सम्बन्धपर भी तात्कालिक प्रभाव पड़ता है। पुराना नियम तो यही था कि व्यापार बन्द हो जाना चाहिये। एक शत्रुराजकी प्रजा दूसरे शत्रुराजके न्यायालयमें किसी प्रकारका अभियोग नहीं चला सकती। ऐसी दशामें जबकि दीवानीके मुकदमे चल ही नहीं सकते आपसमें इकरारनामे कैसे हों और व्यापार कैसे जारी रहे। पर आजकल यह नियम कुछ ढीले हो गये हैं। समरकालमें तो शत्रुराजकी प्रजापर मुकदमे नहीं चलते पर समाप्ति पर चलाये जा सकते हैं। यदि कोई साझेका व्यापार हो तो साझा तत्काल तोड़ना होगा। यदि कोई कम्पनी एक राजमें स्थापित है और उसके व्यवस्थापक भी उसी राजमें हैं तो वह अपना काम करने पायेगी चाहे उसके वास्तविक स्वामी शत्रुराजके ही निवासी हों पर यदि प्रबन्धक भी शत्रुराजमें रहते हों या यह सिद्ध हो जाय कि वह शत्रुओंके अधीन काम करते हैं तो उसका कारखाना बलात् बन्द कर दिया जायगा। विशेष अवस्थाओंमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों राज व्यापार करनेका परिमित अधिकार दे भी देते हैं। युद्ध आरम्भ होते ही प्रत्येक राज यह घोषित कर देता है कि वह किन किन अवस्थाओंमें शत्रुराजकी प्रजाके साथ कैसा व्यवहार करेगा। यों तो नियमतः युद्ध छिड़ते ही अपने राज्यमें बसी हुई सभी शत्रुप्रजाओंकी सम्पत्ति ज़ब्त कर लेनी चाहिये और उन्हें बन्दी कर लेना चाहिये पर ऐसा किया नहीं जाता। जबतक यह प्रमाणित नहीं हो जाता कि वह चुपके चुपके अपनी सर्कारसे मिलकर कोई षड्यंत्र रच रहे हैं तब तक उनके कारबारमें विघ्न नहीं डाला जाता। पर युद्ध आरम्भ होते ही ऐसे सब लोगोंके नाम, पेशे और पते लिख लिये जाते हैं और पुलिसकी उनपर कड़ी देखरेख रहती है।

यद्यपि प्रजाका आपसमें ऋण-दान-आदान बन्द हो जाता है पर यदि एक राजने शत्रुराजके प्रजावर्गसे ऋण लिया है तो उसे यह नहीं कहना चाहिये कि हम ऋण न चुकायेंगे। सम्भव है समरकालमें ऋण न चुकाया जा सके और न उसपर ब्याज ही दिया जा सके पर उसका अस्तित्व बना रहता है।

युद्ध छिड़नेका सन्धियोंपर क्या प्रभाव पड़ता है यह हम द्वितीय भागमें दिखला चुके हैं। कुछ सन्धियां तो स्वतः टूट जाती हैं। यदि दो राजोंमें आपसमें मैत्रीकी सन्धि है और उनमें लड़ाई छिड़ गयी तो यह सन्धि आप ही टूट गयी। जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस इत्यादिने बेल्जियमको तटस्थीकृत राज बना कर उसकी स्वातंत्र्य-रक्षाका भार अपने ऊपर लिया था पर जब जर्मनीने महासमरके आरम्भमें बेल्जियमपर आक्रमण किया तो वह सन्धि नष्ट हो गयी। ऋण चुकाने या व्यापार या अपराधि-प्रत्यर्पण सम्बन्धी सन्धियोंके विषयमें कुछ मतभेद है पर बहुसम्मति यही

सन्धियोंपर प्रभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि यह सन्धियां नष्ट नहीं होतीं वरन् समरकालमें स्थगित रहती हैं, उसके बन्द होते ही पुनः चालू हो जाती हैं।

इन सब विषयोंके सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम हैं ही नहीं। न तो बड़ी विधायक सन्धियोंने ही इनका ठीक ठीक निर्णय किया है, न हेगमें ही स्पष्ट नियम बने हैं और न महाशक्तियोंके व्यवहारमें ही किसी प्रकारकी समता है। समर छिड़ते ही प्रत्येक योद्धा राज अपने यहां कुछ घोषणाएं कर देता है। दोनों ओरके शत्रुराज इसी बातको ध्यानमें रखते हैं कि बराबरी बनी रहे, जैसा बर्ताव उधर वाले हमारी प्रजाके साथ करें, वैसा ही बर्ताव हम उनकी प्रजाके साथ करें। लड़ाईमें ऐसा होना अनिवार्य है परन्तु यदि कुछ मूल सिद्धान्त स्थिर हो जायं तो उभयपक्षको नियमोपनियम बनानेमें सुविधा हो। आजकल जो नियम प्रायशः व्यवहारमें आते हैं वह पहिलेकी अपेक्षा कहीं मृदु हैं। उनका तत्व यह है कि शत्रुराजकी प्रजाको शत्रु मानते हुए भी साधारण व्यापार और सम्बन्धमें यथासम्भव तबतक बाधा न डाली जाय जबतक कि अपने अनिष्टकी आशंका न हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा अध्याय।

शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव–असैनिकोंके प्रति।

समरके आरम्भ होते ही उभयपक्षके कुल व्यक्तियोंको एक दूसरेके प्रति शत्रुरूप प्राप्त हो जाता है। यह रूप सबके लिये एकसा नहीं होता। लारेंस कहते हैं कि इसे एक धब्बेसे तुलना दे सकते हैं जो लगता सबको है पर किसीको गहरा, किसी-को हलका। इस अध्यायमें हम यह दिखलायेंगे कि किस वर्गके व्यक्तियोंको कितना शत्रुरूप प्राप्त होता है।

सबसे पहिला स्थान शत्रुराजके सैनिकोंका है। इनका शत्रु-रूप सम्पूर्ण होता है। यह लड़ाईमें मारे जा सकते हैं और पकड़े जाने पर समरबन्दी बनाकर रक्खे जा सकते हैं।

शत्रुराजके जल और स्थल तथा वायु सेनाओंके सैनिक

चाहे किसी देश या राष्ट्रका मनुष्य हो यदि वह किसी शत्रुराजकी सेनामें नौकर है तो वह पूर्ण शत्रु है। जो लोग किसी कारणसे वेतन नहीं लेते परन्तु दूसरी बातोंमें अन्य सैनिकोंकी भांति रहते हैं उनके साथ वेतनभोगी सैनिकोंका-सा ही बर्ताव होता है।

इसका एक अपवाद है। यदि एक राजका कोई नागरिक शत्रु-राजकी सेनामें भर्ती होकर अपने पितृराजके विरुद्ध लड़े तो पकड़े जाने पर वह उस सभ्य व्यवहारका अधिकारी नहीं माना जाता जो समर-बन्दियोंके साथ किया जाता है; वह सिपाही नहीं वरन् देशद्रोही माना जाता है और उसे तत्काल फांसी दी जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम यह कह चुके हैं कि किसी राष्ट्र के व्यक्ति हों, शत्रुसेनामें पाये जानेसे शत्रु माने जाते हैं। तटस्थ राजोंके नागरिक भी कभी कभी लड़ाईके समय किसी एक सेनामें सम्मिलित हो जाते हैं पर यदि किसी एक तटस्थ राजके बहुत से नागरिक एक ही सेनामें भर्ती होते रहें तो दूसरा शत्रुराज उस तटस्थ राजसे शिकायत कर सकता है कि आप अपने आदमियोंको ऐसा करनेसे रोकते क्यों नहीं। आज नैपालके सहस्रों गुरखे अंग्रेजी सेनामें हैं और जिस किसीसे अंग्रेज सर्कार लड़ पड़ती है उसीसे लड़नेको तय्यार रहते हैं, यद्यपि नैपाल स्वतंत्र राज कहा जाता है। यदि नैपाल वस्तुतः स्वतंत्र होता और उसका अन्य स्वतंत्र राजोंसे सम्बन्ध होता तो ऐसा कदापि न हो सकता। सभी उससे बिगड़ जाते।

एक प्रश्न यह उठता है कि यदि किसी राजमें पर-राजोंके निवासी बसे हों तो वह लड़ाई छिड़नेपर उन्हें बलात् अपनी सेनामें भर्ती कर सकता है या नहीं। आजकल सभ्य राजोंका यही मत है कि ऐसा नहीं हो सकता। विशेष आवश्यकता पड़नेपर उन्हें पुलिस या चोर डकैत इत्यादिसे रक्षा करनेके लिये स्वयंसेवक दलमें भर्ती किया जा सकता है पर सेनामें नहीं।

शत्रुराजके व्यापारिक जहाज़ोंके मल्लाह भी शत्रुओंमें ही गिने जाते हैं। पहिले तो यह नियम था कि पकड़ जानेपर उनके साथ समरबन्दियोंका सा बर्ताव होता था पर अब ऐसा नहीं होता। यदि कोई व्यापारिक जहाज़ स्वयं किसी सैनिक जहाज़पर आक्रमण कर दे तो वह दण्डका भागी होगा ही पर यदि उसपर आक्रमण हो तो अपनी रक्षामें हथियार उठा सकता है। आजकल ऐसा करनेका साहस भी स्यात् ही किसी वणिक जहाज़को हो सकता है। यदि जहाज़ सीधेसे

शत्रुराजके व्यापारिक जहाज़ोंके मल्लाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मसमर्पण कर दे तो उसके नाविकोंसे यह कहा जाता है कि तुम समरकालमें युद्ध सम्बन्धी कोई काम न करो। यदि वह ऐसा लिख दें तो छोड़ दिये जाते हैं। यदि नाविक किसी तटस्थ राजके नागरिक हों तो उन्हें बिना कुछ लिखाये ही छोड़ दिया जाता है पर यदि जहाज़के अफ़सर किसी तटस्थ राजके हों तो उनसे यह लिखाया जाता है कि हम समरकालमें शत्रु जहाज़पर काम न करेंगे। उपर्युक्त नियमोंमें से कइयोंको जापानियोंने पहिले पहिले १९६१-६२ के रूस-जापान समरमें बर्ता था। १९६४ में हेगमें इन्हें अन्तारार्ष्ट्रिय रूप मिल गया।

सेनाओंके साथ ऐसे बहुत से लोग रहते हैं जो उनके अंग नहीं कहे जा सकते। यह लोग लड़ते नहीं अतः इनके बिना सेनाकी पूर्णतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता पर ऐसी कोई सेनाओंके सहवर्ती सेना नहीं होती जिसके साथ यह न रहते हों। ठेकेदार, संवाद-दाता, बिसाती, मेवाफरोश इत्यादि इसी वर्गमें आते हैं। यदि यह पकड़ जायं तो शत्रुसेना-को अधिकार है कि इन्हें रक्खे या छोड़े। परन्तु हेगमें १९६४ में जो नियम बने थे उनमें से एक नियम यह है कि यदि इन्हें रोका जाय तो इनके साथ समर-सैनिकोंका सा बर्ताव करना होगा बशर्ते कि इनके पास उस सेनाके अधिकारियोंकी सर्टिफिकेट हो जिसके साथ यह पाये गये हों। बड़े ठेकेदार, समाचारपत्रोंके संवाददाता सभी सर्टिफिकेट ले रखते हैं। सर्टिफिकेट इस बातका प्रमाण है कि यह सेनाके साथ वैध रूपसे हैं, योंहीं नहीं घूमते हैं।

परन्तु कभी कभी इसके बिना भी काम चलता है। छोटे छोटे बिसातियों और फल या शाक भाजी बेचनेवालोंको न कोई सर्टिफिकेट देता है न कोई उनसे सर्टिफिकेट माँगता है। इसी प्रकार कभी कभी राजवंशके व्यक्ति या बड़े बड़े मंत्री आदि निरीक्षण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने या सिपाहियोंको प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे सेनामें आ जाते हैं। इस कोटिके व्यक्ति सैनिक अफसरोंसे सर्टिफिकेट नहीं लिखाया करते। यदि ऐसे लोग पकड़ जायं तो शत्रुराजको अपने विवेकसे काम लेना होगा। यह असम्भव है कि कोई सभ्य राज इनके साथ अनुचित व्यवहार करे।

शत्रुराजके सभी नागरिक शत्रु गिने जाते हैं परन्तु जब तक वह स्वतः समरमें कोई भाग नहीं लेते तब तक उनके साथ शत्रुता-का व्यवहार नहीं किया जाता। न वह मारे शत्रुराजके नागरिक जाते हैं न बन्दी बनाये जाते हैं।

प्रत्येक राजमें उसके नागरिकोंके अतिरिक्त कुछ विदेशी भी रहते हैं। यह लोग भी सर्कारी कर देते हैं और इनके व्यापारादिसे भी राजकी श्रीवृद्धि होती है। इस लिये एक प्रकारसे यह लोग उस राजके सहायक हैं। यदि उस राजसे किसी परराजसे युद्ध छिड़ जाय और शत्रु-राजकी सेना किसी ऐसे प्रान्तपर क़ब्जा करले जिसमें इस प्रकारके विदेशी, जो तटस्थ राजोंके नागरिक होंगे, बसे हों तो वह उनके साथ कैसा बर्ताव करे? जो लोग उस राजके निवासी होंगे उनसे तो वह रुपया वसूल करता है, भांति भांतिकी सामग्री ले सकता है, कुछ न कुछ काम भी करा सकता है पर इन परदेशियोंके साथ भी ऐसा व्यवहार किया जाय या नहीं। अब तक व्यवहारमें कोई भेद नहीं था। १९६४ में जर्मनी और अमे-रिकाने हेगमें इस बातपर आग्रह किया कि यह देखना चाहिये कि मनुष्य किस राजका नागरिक है, न कि उसका निवासस्थान कहां है। अतः इनका कहना था कि तटस्थ राजोंके नागरिकोंपर इस प्रकारका कोई दबाव न डालना चाहिये। परन्तु ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और रूसने इस मतका विरोध किया। यद्यपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुमतसे बात गिर गियी पर आजकल कई राज इसी विचारके होते जाते हैं।

यह तो स्थलकी बात हुई। जलके लिये यह नियम है कि जहाज़की राष्ट्रीयता उसके झण्डेके अनुकूल होती है। जिस राष्ट्रका झण्डा होता है उस राष्ट्रका जहाज़ होता है। शत्रुराजके नागरिक यदि समुद्रपर पकड़े जायंगे तो वह शत्रु ही माने जायंगे और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायगी। पर विदेशी व्यापारियोंके सम्बन्धमें यहां भी टेढ़े प्रश्न उठते हैं यदि विदेशी व्यापारी शत्रुराजमें बसते हैं तो उनके जहाज़ोंपर शत्रुराजका ही झण्डा लग सकता है। ब्रिटिश और अमेरिकन मत यह है कि उनका व्यापार शत्रुको सहायता पहुंचाता है अतः उनका माल जब्त करना ही चाहिये परन्तु जर्मनी इत्यादिका कहना है कि मालकी राष्ट्रीयता उसके स्वामीकी नागरिकतापर निर्भर है। यदि स्वामी परराजका नागरिक है तो उसका माल न छीनना चाहिये, चाहे वह कहीं बसता और व्यापार करता हो।

शत्रुसेनाके अस्थायी कब्जेमें जो स्थान आ जाते हैं उनके निवासी भी एक दृष्टिसे शत्रु समझे जाते हैं। कभी कभी एक राज दूसरे राजके राज्यके किसी भागको बलात् दबा लेता है। ऐसी दशामें पहिला राज इस बलात् अधिकृत प्रदेशके निवासियोंके साथ कैसा बर्ताव करे, यदि उनकी सम्पत्ति उसके हाथ लगे तो उसे ज़ब्त करे या न करे? अंग्रेज़ नीतिज्ञोंकी सम्मति है कि जब तक ऐसा प्रदेश पूर्णतया शत्रुराज्यका अङ्ग न हो जाय तब तक उसके निवासियोंको अपनी ही प्रजा मानना चाहिये परन्तु कई अन्य देशोंके नीतिज्ञ इसके विरुद्ध हैं। उनका कहना है कि जब तक वह प्रदेश शत्रुके अधिकारमें है तब तक उसके निवा-

शत्रुके अस्थायी कब्जेके भूभागके निवासी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सियोंकी विभूतियोंसे शत्रुके बलकी वृद्धि होती है अतः उनके साथ शत्रुवत् आचरण करना शत्रुके बलको घटानेका एक साधन है। ज्योंही यह प्रदेश फिर अपने अधिकारमें आ जायेगा त्योंही यह लोग फिर नागरिक मान लिये जायंगे।

'निवास'का अर्थ

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे देख पड़ता है कि शत्रु-रूप निवास * पर ही प्रायः निर्भर है। निवास नागरिकता† से भी प्रबल है परन्तु 'निवास'का क्या अर्थ है? समर न्यायालयोंने निवासकी दो परीक्षाएं स्थिर की हैं, इच्छा और दीर्घकाल। यदि कोई मनुष्य किसी शत्रुराजमें अपनी इच्छाके विरुद्ध दीर्घ काल तक रख लिया गया है तो वह वहांका निवासी नहीं कहला सकता। यदि वह उसमें रहता है पर उसका वहां बस जानेका विचार नहीं है तो भी वह वहांका निवासी नहीं कहला सकता। इच्छाका पूर्ण निश्चय हो जानेपर कुछ घण्टोंका रहना भी पर्य्याप्त समझा जाता है। जहां इच्छाके विषयमें पर्य्याप्त प्रमाण नहीं मिलता वहां यह देखा जाता है कि मनुष्य बहुत दिनोंसे बसा है कि थोड़े दिनोंसे। यदि उसका बहुत दिनोंसे बसना सिद्ध हो जाय तो वह निवासके तुल्य समझा जाता है।

जो लोग शत्रुराजके नागरिक नहीं हैं वरन् उसमें केवल बस गये हैं वह निवास-दोषसे सुगमतासे मुक्त हो सकते हैं। इसके लिये इतना ही पर्याप्त है कि युद्ध आरम्भ होनेके पहिले या उसके आरम्भ होते ही वह शत्रु राज्यको छोड़ कर स्वदेशमें रहनेके लिये चल पड़ें। यात्रा समाप्त हो या न हो पर यदि यह निश्चय हो जाय कि वह व्यक्ति स्वदेशमें स्थायी रूपसे बसनेके लिये जा रहा है तो उसके साथ विरुद्धाचरण नहीं करते।

* Domicile. †Citizenship.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस बातका विचार तो हो चुका कि किन लोगोंको न्यूनाधिक शत्रुरूप दिया जाता है। अब यह देखना है कि भिन्न भिन्न प्रकारके शत्रुरूपप्राप्त व्यक्तियोंके साथ कैसा व्यवहार होता है।

सबसे पहिले हम उन लोगोंको लेते हैं जो एक शत्रुराजके निवासी हैं और समरारम्भके समय दूसरे शत्रुराजमें पाये जाते हैं। पुरानी प्रथा तो यह थी कि यह लोग बन्दी कर लिये जाते थे और इनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। पर धीरे धीरे यह प्रथा उठ गयी और ऐसे लोगोंको स्वदेश लौट जानेका समुचित अवकाश दिया जाने लगा। पीछेसे यह भी अनावश्यक समझा गया। अब आज कल यह प्रथा है कि जब तक ऐसे लोग किसी प्रकारका उपद्रव न करें अथवा अपने स्वदेशके राजको किसी प्रकारकी गुप्त सहायता न दें तब तक इन्हें बसने दिया जाय और इनके साधारण कामोंमें किसी प्रकारकी बाधा न डाली जाय।

एक शत्रुराजके निवासी समरारम्भके समय दूसरे शत्रुराजमें

कभी कभी विवश होकर ऐसे लोगोंको अपने देशसे निकाल देना पड़ता है। १९२७ में जब फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध हुआ उस समय फ्रांसमें बहुत जर्मन थे। फ्रेञ्च प्रजा जर्मनोंके नामसे चिढ़ी हुई थी। फ्रेञ्च सर्कारने देखा कि यदि यह जर्मन रह गये तो लोग क्रोधके आवेगमें इनपर हाथ छोड़ देंगे, उस समय इनकी रक्षा न हो सकेगी। इस लिये उसने सबको निकल जानेकी आज्ञा दी। इसके पीछेके भी इस प्रकारके उदाहरण पाये जाते हैं। बोअर युद्धमें ट्रांसवाल और आरेञ्ज रिवर प्रदेश प्रवासी सब अंग्रेज निकाल दिये गये थे।

आज कल एक बड़ी अड़चन पड़ती है। बहुत से देशोंमें अनिवार्य्य सैनिक शिक्षाकी प्रथा है जिससे प्रत्येक युवक शस्त्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्याका जानकार बना दिया जाता है। युद्ध छिड़ने पर प्रत्येक सर्कारको यह सोचना पड़ता है कि यदि शत्रु राजके नागरिक रहने दिये जायं तो गुप्त रूपसे अपने राजको समाचारादि भेजते रहेंगे या अन्य षड्‌यंत्र करेंगे और यदि निकाल दिये जायंगे तो सैनिक शिक्षा तो पाही चुके हैं शत्रु सेनाका बल बढ़ावेंगे। इस सम्बन्धमें किसी किसी ग्रंथकारकी सम्मति है कि पुराने समयकी भांति उनको वंदी बना लेना चाहिये। ऐसा करना अवैध न होगा, क्योंकि बन्दी बनानेका अधिकार अभी अन्ताराष्ट्रिय विधानने छीना नहीं है। किसी न किसी रूपमें गत महायुद्धके समयमें यही बात की भी गयी। दो चार नगरोंमें विशेष छावनियां बनायी गयीं और प्रायः सभी शत्रुनागरिकोंको—'प्रायः' इसलिये कि किसी किसीको विश्वस्त और निरपराध समझ कर इस आज्ञासे मुक्त भी कर दिया गया था—उन्हींमें रक्खा गया। वहां उनपर विशेष रूपसे पहरा बैठाया गया था। उनके काम धन्धे तो बन्द ही थे इसलिये जीवन-निर्वाहके लिये सबको अपनी अपनी स्थितिके अनुसार कुछ रुपया दिया जाता था।

लगभग इसी प्रकारका नियम जहाजोंके साथ भी बर्ता जाता है। सैनिक जहाज तो प्रकृत्या रोक लिये जाते हैं और उनके मल्लाह बन्दी बना लिये जाते हैं। अब रहे व्यापारिक जहाज। इनमें दो भेद किये जाते हैं। जो जहाज शुद्ध व्यापारके लिये ही बने प्रतीत होते हैं उनको प्रायः जब्त नहीं करते प्रत्युत एक नियत अवधिके भीतर चले जानेकी अनुज्ञा भी दे दी जाती है। परन्तु कुछ जहाजोंकी बनावट ऐसी होती है कि वह थोड़ेसे ही उलट-फेरमें लड़ाईके कामके बनाये जा सकते हैं। इनके सम्बन्धमें ऐसी आशंका होती

एक शत्रुराजके जहाज दूसरेके नौस्थानोंमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि वर लौटकर यह शत्रुकी नौसेनाके अंग बन जायंगे। ऐसे जहाज न केवल रोक लिये जाते हैं वरन् जब्त कर लिये जाते हैं। १९६४ की हेग कांफरेंसने इस बातकी स्पष्ट अनुज्ञा दी है।

ऊपरके नियम तो उन लोगोंके लिये हैं जो युद्धकालमें स्वतः शत्रुके वशमें होते या पड़ जाते हैं। जो लोग लड़ाईके परिणाम-स्वरूप शत्रुके हाथमें पड़ जाते हैं उनके लिये भी कुछ विशेष नियम हैं। पहिले ऐसे नियम न थे। शत्रु सेना चाहे जिस नगर या गांवमें गोले बरसावे या आग लगा दे, घेरकर सिपाहियोंके साथ साथ अन्य नागरिकोंको भी भूखों मार डाले, जीते हुए प्रदेशोंको यथेच्छ लूटे, स्त्रियोंके साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, कोई विशेष रोकटोक न थी। सभ्य और दयालु सेनापति पहिले भी यथासम्भव साधारण नागरिकोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते थे। उनसे रुपया लेकर नगरकी लूट-पाट रोक दी जाती थी। सभ्य राष्ट्रोंके सिपाही प्रायः स्त्रियोंको न छेड़ते थे, देवस्थानोंका भी निरादर नहीं किया जाता था पर यह बातें अपवाद स्वरूप थीं। सामान्य रूपसे युद्धका स्वरूप बड़ा भयङ्कर होता था। प्राचीन आर्योंके यहां अच्छे नियम थे पर इस्लामके झोंकेमें वह बहुत कुछ बह गये। आजकल फिर सभ्यतामय नियम बने हैं। इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि उनका उल्लङ्घन नहीं होता, गत महा-समरमें जर्मनीकी इस सम्बन्धमें बड़ी शिकायत सुनी गयी। इराक़में अहम्मन्य अंग्रेजोंने भी उसी प्रकारके बहुत से अत्याचार किये। ऐसा स्यात् कोई भी राष्ट्र नहीं है जो निर्दोष हो। पर हां नियमोंका अस्तित्व यह बतलाता है कि लोगोंकी बुद्धि कुछ सुधर रही है और भाव कुछ संस्कृत हो रहे हैं। इससे भविष्यत्के लिये अच्छी आशा की जाती है। अब जो राज इन नियमोंके विरुद्ध चलते हैं उन्हें लज्जित होना पड़ता है। अपने अपने अवसरपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहे सभी स्वार्थवश अन्धे हो जायं पर दूसरोंको अवश्यं रोकते हैं। इस लोकमतका यह प्रभाव पड़ता है कि कदाचारकी मात्रा पहिलेसे कम हो गयी है। जो बातें की भी जाती हैं उन्हें छिपानेकी फिक्र होती है, पर रेल तारके युगमें घटनाओंको छिपा देना सुकर नहीं है अतः अपने हाथोंको पवित्र रखनेमें ही कल्याण देख पड़ता है।

जब एक राजकी सेना दूसरेके राज्यमें प्रवेश करती है तो अधिकृत प्रदेशके निवासियोंके साथ बर्तनेमें तीन बातोंका विशेष रूपसे ध्यान रक्खा जाता है।

पहिले यह होता था कि जब किसी नगरमें शत्रुसेनाका प्रवेश होता था तो उसके निवासी लूटे जाते थे और जो किञ्चिन्मात्र मुँह खोलता था वह मार डाला जाता था।

सयोजित स्थानोंके साथ व्यवहार

किसीके जानमाल तथा मर्य्यादाको सुरक्षित नहीं कह सकते थे। इस प्रकारकी लूटपाट विजेताओंका स्वत्व समझी जाती थी। दिल्लीकी नादिरशाही लूट और उसके सहस्रों निवासियोंका मारा जाना आज तक प्रसिद्ध है। यूरोपमें भी ऐसा बराबर होता ही आया है। पर अब यह बात रुक गयी है। कहते हैं कि गत महायुद्धमें जर्मन सिपाहियोंने ऐसी उच्छृङ्खलता दिखलायी पर यह आरोप अभी तक प्रमाणित नहीं हुआ है। किसी सभ्य राष्ट्रके सिपाहियोंका अपने नायकोंकी आज्ञाका उल्लंघन करके सामान्य डकैतों और बदमाशोंकासा आचरण करना अपमानजनक है। १९३१ में ब्रुसेल्जमें जो अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन हुआ उसमें यह नियम बना कि सयोजित नगरोंमें लूटपाट न हो। १९६४ में हेगमें जो युद्धसम्बन्धी नियम बने उनके भी तृतीय खण्डकी ४७ वीं धारामें स्पष्ट शब्दोंमें यही बात लिखी है। २८वीं धारामें लिखा है कि जहां कोई नगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धावा मारकर जीता जाय वहां भी लूटमार न की जाय। लूटमार बन्द होनेसे सिपाहियों और नागरिकोंसे मुठभेड़के अवसर बहुत ही कम आते हैं और प्राण तथा मानपर आक्रमणके कम ही स्थल खड़े होते हैं।

नगरोंपर आक्रमण करते समय भी सेनाओंके लिये यह निर्देश है कि जान बूझकर अस्पतालों, देवालयों या उन मुहल्लों-पर गोलियां न बरसायें जिनमें साधारण नागरिक रहते हैं। यदि नागरिकोंके घरोंमें शत्रुके सिपाही भरे हों और अपने ऊपर शस्त्र चला रहे हों तो दूसरी बात है। जिन नगरों या ग्रामोंके पास पक्का कच्चा किसी प्रकारका दुर्ग न हो और शत्रु-सेनाका पड़ाव न हो उन-पर शस्त्र चलाना वर्जित है। बहुधा किलों और दुर्गरक्षित नगरोंमें सैनिकों तथा अन्य पुरुषोंके अतिरिक्त कुछ स्त्री वच्चे भी रहते हैं। अभी कोई निश्चित नियम नहीं बना है पर बहुधा घेरा डालने या गोलाबारी करनेके पहिले अ-शस्त्रधारियों, विशेषतः स्त्रियों और बच्चों, को निकल जानेका अवकाश दे दिया जाता है। हेगमें १९६४ में जो युद्ध-सम्बन्धी नियमावली बनी थी उसकी २४ वीं से २८ वीं धाराएँ इन बातोंके सम्बन्धमें हैं। २६ वां नियम तो यह कहता है कि, सिवाय उस दशाके जबकि यकायक धावा या आक्र-मण करना है, शत्रु-सेनाके सेनापतिको चाहिये कि दुर्ग या नगरके अधिकारियोंको अवश्य सूचना दे दे कि हम इस स्थानपर आक्र-मण करनेवाले हैं ताकि वह लोग अ-शस्त्रधारियोंको निकल जाने दें और अस्पताल इत्यादिपर ऐसे झण्डे या अन्य चिन्ह लगा सकें जिसमें भूलसे उनपर शस्त्रपात न हो। इन चिन्होंकी सूचना आक्रमणकारी सेनाको दे देनी होती है ताकि वह उन्हें पहिचान रक्खे।

जब एक बार आक्रमणकारी सेनाका क़ब्ज़ा शत्रु राज्यके किसी प्रदेशपर हो जाता है तो युद्धकी समाप्ति तक वह उसके शास-

१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नका निरीक्षण करती है पर नियम यह है कि अन्तःशासनमें यथासम्भव विघ्न बाधा न डाली जाय। जो कर्म्मचारी, अर्थात् न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट, पुलिस आफ़िसर इत्यादि, पहिले काम करते थे उन्हींसे काम लेना चाहिये। हां, यदि वह काम करना अस्वीकार कर दें तो नये कर्मचारी, वह भी यथासम्भव स्थानीय, रखने ही होंगे। दीवानी फ़ौजदारीके क़ानूनोंमें कोई परिवर्तन न किया जाय न विद्यालयों या देवालयोंके साथ छेड़छाड़ की जाय। यदि विजयी सेना सर्कारी टिकस वसूल करना चाहती है तो वह ऐसा कर सकती है पर टिकस वही होना चाहिये जो उस देशकी सर्कार पहिले लेती थी। सर्कारी इमारतों और सम्पत्तियोंपर शत्रुसेना क़ब्ज़ा कर लेती है परन्तु हेग सम्मेलनकी नियमावलीकी ५६वीं धाराके अनुसार स्थानीय शासन-संस्थाओं (अर्थात् म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों), देवालयों, धर्म्मालयों (जैसे अनाथालयों, सेवा-समितियों, धर्म्मशालाओं इत्यादि), शिक्षालयों तथा विज्ञान और कला सम्बन्धी संस्थाओं (जैसे प्रयोगशालाओं, वेधालयों, चित्रशालाओं इत्यादि) की सम्पत्तिपर हाथ नहीं डाला जा सकता। ऐतिहासिक स्मारकों या वैज्ञानिक यंत्रों तथा इस प्रकारकी अन्य वस्तुओंको हस्तगत करना, जानबूझकर बिगाड़ना या नष्ट करना वर्जित है। यदि विजयी सेनाको खाने पीनेकी या अन्य चीज़ोंकी आवश्यकता है तो वह स्थानीय अधिकारियोंसे यह कह सकती है कि हमको अमुक अमुक चीज़ें चाहिये, उन्हें एकत्र कर दो, पर उन सब चीज़ोंके लिये नक्द दाम देना होगा। यदि बहुत ही बड़ी आवश्यकता हो और नक्द रुपया उपस्थित न हो तो रसीदें देनी चाहिये और यह प्रयत्न करना चाहिये कि जल्दीसे जल्दी उन रसीदोंका रुपया चुका दिया जाय। शत्रु सेनाके सेना-

अधिकृत प्रदेशके साथ व्यवहार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पतिको यह अधिकार है कि अपने सिपाहियोंको नागरिकोंके घरोंमें यथास्थान ठहरा दे। जब तक अधिकृत नगर या प्रदेशके निवासी विजयी सेनाके विरुद्ध कोई ऐसा काम न करें जिससे यह प्रतीत होता हो कि इसे अधिकांश निवासियोंने मिल कर किया है या कमसे कम अधिकांश निवासी इस कामके करने वालोंके साथ सहानुभूति रखते हैं या उनकी गुप्त सहायता करते या करना चाहते हैं तबतक उनको कोई सामुदायिक दण्ड नहीं दिया जा सकता, केवल अपराधी ही दण्डित होगा। पर यदि विजयी सेनापति या अन्य अधिकारीको, जिसे शत्रु राजकी सर्कार अधिकृत प्रदेशका प्रधान शासक नियुक्त कर दे, यह विश्वास हो जाय कि उसकी सेनाके विरुद्ध जो काम किये गये हैं उनमें सामान्यतः सभी निवासियोंका अनुमोदन है तो वह सामुदायिक दण्ड दे सकता है। यह दण्ड कई प्रकारका होता है। मुख्य मुख्य नागरिक कैद कर लिये जाते हैं, यदि भीषण अपराध हो तो उनसे कहा जा सकता है कि इतने घण्टोंके भीतर असली अपराधियोंको पेश करो नहीं तो प्राणदण्ड दिया जायगा, इत्यादि। बहुधा जुर्माना किया जाता है। अमुक स्थानसे इतने दिनोंके भीतर इतना रुपया मिलना चाहिये, चाहे सब निवासी चन्दा करके दें चाहे एक ही व्यक्ति दे दे। रुपया वसूल न होनेपर शत्रुसेनाको अधिकार है कि लूट छोड़कर उसे चाहे जैसे वसूल कर ले। इस विशेष अवस्थाको छोड़कर नागरिकोंकी निजी सम्पत्तिपर हाथ नहीं डाला जा सकता।

अधिकृत प्रदेशोंके निवासियोंके साथ जो बर्ताव किया जाता है वह उनके व्यवहारपर निर्भर है। उनमें जो देशभक्त अपनी मातृभूमिका पराभव न देख सकते हों उन्हें चाहिये कि राष्ट्रीय सेनामें भर्ती हो जायं पर जो लोग ऐसा नहीं कर सकते या नहीं करना चाहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्हें किसी प्रकारका उपद्रव न करना चाहिये। यह नहीं हो सकता कि वह अपना निजी कारबार भी करते रहें और अवकाशके समय देशभक्तिके आवेशमें शत्रु सेनाके सिपाहियोंपर शस्त्र भी चलावें। ऐसा करना सर्वथा वर्जित है। इसके साथ ही हेगमें स्वीकृत नियमावलीकी २३ वीं, ४४ वीं और ४५ वीं धाराओंने विजयी सेनाके अधिकारोंको भी परिमित कर दिया है। इन धाराओंके अनुसार कोई राज अपने शत्रुके प्रजाजनोंको इस बातके लिये विवश नहीं कर सकता कि वह स्वदेशके विरुद्ध किसी सामरिक कार्य्यवाहीमें सम्मिलित हों, चाहे वह युद्धके पहिले उसके यहां नौकर भी रहे हों। प्रजाजनोंको इस बातके लिये भी नहीं विवश किया जा सकता कि वह अपने राष्ट्रकी सेनाके सम्बन्धकी कोई बात बतावें या गुप्त मार्गों, छिपे शस्त्रागारों, इत्यादिका पता बतावें। उनसे शत्रु राजके प्रति राजभक्तिकी शपथ भी नहीं ली जा सकती। सेनाको रसद पहुंचाने या उसकी अन्य आवश्यकताओंको पूरा करनेमें उनसे सहायता ली जा सकती है।

इन नियमोंमें एक बात ध्यान देने योग्य है। यदि एक राजके कुछ नागरिक दूसरे राजकी सेनामें नौकर हों और इन दोनों राजोंमें युद्ध छिड़ गया तो उस समय यह सैनिक इस बातके लिये नहीं विवश किये जा सकते कि अपने देशके विरुद्ध लड़ें। उनका लड़नेसे मुकर जाना अन्तारराष्ट्रिय विधानके सर्वथा अनुकूल है। अब एक विशेष अवस्थाको सोचिये। किसी देशपर विदेशियोंका शासन है। चूंकि अपनी कोई राष्ट्रीय सर्कार नहीं है इसलिये उस देशके निवासी विदेशी सर्कारकी सेनामें भर्ती होते हैं। पर यदि उस देशमें स्वराज्य आन्दोलन जोर पकड़े और क्रान्तिकारी अर्थात् स्वातंत्र्यवादी दल कुछ प्रदेशपर अधिकार कर लेनेमें सफल हो कर एक अस्थायी राष्ट्रीय सर्कार स्थापित कर ले तो इन देशी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिपाहियोंका क्या कर्तव्य होगा? यदि विदेशी सर्कार इन्हें स्वराज्य-सेनासे लड़नेकी आज्ञा दे तो इन्हें क्या करना चाहिये? क्या वह इन्हें स्वदेशके विरुद्ध लड़नेकी भी आज्ञा दे सकती है, विशेषतः उस दशामें जब कि इनके देशमें उसकी प्रतियोगी एक स्वदेशी सर्कार भी खड़ी हो गयी है? यदि यह देशी सिपाही किंचिन्मात्र भी देशभक्त होंगे तो ऐसी अवस्थामें क्या करेंगे इसका तो अनुमान किया जा सकता है पर यह निश्चय है कि विदेशी सर्कार उन्हें वागी और दण्डनीय ही समझेगी। अन्ताराष्ट्रिय विधान इस सम्बन्धमें अगत्या चुप है।

ऊपर जो नियम दिये गये हैं वह आदर्शस्वरूप हैं। उनका पूरा पूरा पालन किसी भी युद्धमें नहीं होता। यदि जुर्माना लेने या अन्य प्रकारसे दण्ड देनेकी इच्छा हो तो एक चतुर सेनापति सैकड़ों बहाने ढूंढ़ सकता है। एकके अपराधके लिये एक नगरको फूंक सकता है। विद्यालय, देवालय, प्रयोगशाला, चित्रशाला, स्मारक किसीकी भी रक्षाका जिम्मा नहीं लिया जा सकता। गत महासमरमें यूरोपियन राज्योंने, जो इन नियमोंके विधायक हैं, एक एक नियमको पाँव तले रौंदा है। पर यह रोग ऐसा है जिसकी औषध कोई नहीं कर सकता। सभ्य देशोंमें शान्तिकालमें पशुबल नीचे दबा रहता है, युद्धकालमें हो उसे सिर उठानेका अवसर मिलता है। ऐसे समयमें वह जी खोलकर मनमानी करता है। जब तक मनुष्यमात्र इतने सभ्य और सुसंस्कृत न हो जायं कि जगतीतलसे युद्धका नाम ही मिट जाय तब तक हमको पाशविकताका ताण्डव देखनेके लिये प्रस्तुत रहना ही चाहिये। हम इतना ही कर सकते हैं कि कड़े कड़े नियम बनाकर उसको कुछ नियंत्रित कर दें। इस कार्यमें अन्ताराष्ट्रिय विधानको सफलता हुई है। अधिकृत प्रदेशोंके निवासियोंके साथ अत्याचार होते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीषण अत्याचार होते हैं, पर अत्याचारियोंको लज्जित होना पड़ता है, सभ्य जगत्का लोकमत उनके विरुद्ध हो जाता है, इससे उनकी क्षति होती है। इसलिये अत्याचारोंकी मात्रा पहिलेसे कम होती जाती है।

अधिकृत प्रदेशोंके जो निवासी रोगियों और घायलोंकी सेवा सुश्रूषाका भार अपने ऊपर लेते हैं उनके साथ विशेष रियायत की जाती है। १९६३ में जेनीवामें जो नियम बने उनके अनुसार सैनिक अधिकारियोंकी इच्छापर यह बात छोड़ दी गयी है कि वह निवासियोंसे अपने घरोंमें आहत और रोगी सिपाहियोंको रखने और उनकी सेवा करनेके लिये अपील करें और जो लोग ऐसा करनेपर राजी हों उनके साथ यथोचित रियायतें करें। रियायतका रूप प्रायः यह होता है कि ऐसे लोगोंके घर सिपाही नहीं ठहराये जाते और यदि अन्य नागरिकोंसे दण्डस्वरूप कुछ जुर्माना लिया जाता है तो यह लोग उसके देनेसे मुक्त कर दिये जाते हैं। जेनीवामें स्वीकृत नियमावलीकी ५ वीं धारा इस प्रकार है:—

सुश्रूषकोंके साथ विशिष्ट रियायत

"सैनिक अधिकारी निवासियोंकी दानशीलतासे इस बातकी अपील कर सकते हैं कि वह लोग, उनके निरीक्षणमें, सेनाओंके रोगियों और आहतोंको एकत्र करें और उनकी सेवा करें और जो लोग इस अपीलको स्वीकार करें उन्हें विशेष रक्षा और कुछ रियायतें प्रदान कर सकते हैं।"

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँचवाँ अध्याय।

शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव—सैनिकोंके प्रति।

प्राचीन आर्य्योंमें शत्रुओंके साथ किस प्रकार बर्ताव करनेकी प्रथा थी इसका कुछ दिग्दर्शन हमने इस खण्डके आरम्भमें ही किया है। भीत, पलायमान, शस्त्रहीन अथवा 'त्रायस्व' (रक्षा करो) कहनेवालेपर आघात करना वर्जित था पर हम यह ठीक ठीक नहीं कह सकते कि रणबन्दियोंको किस प्रकार रक्खा जाता था। मृतकोंकी अन्त्येष्टि धर्म्मानुसार की जाती थी। रावणकी मृत्युके उपरान्त विभीषणने कहा कि मैं ऐसे दुष्कर्म्मीका मृतक-संस्कार नहीं करूँगा। रामचन्द्रजीने उसे डांटा और कहा 'मरणान्तानि वैराणि'।

यूरोपमें आजसे तीन सौ वर्ष पहिले तक जो प्रथा प्रचलित थी वह सर्वथा क्रूरतामय थी। स्त्री बच्चों तकको मार डालना क्षम्य ही नहीं उचित समझा जाता था, सैनिकोंका तो कहना ही क्या है। धीरे धीरे अवस्था सुधरी। आचार्य्यों ने यह सम्मति दी कि असैनिकोंके साथ तो छेड़छाड़ करनी ही न चाहिये। यह सिद्धान्त मान लिया गया है। फिर धीरे धीरे इस ओर ध्यान गया कि सैनिकोंके साथ भी अनावश्यक क्रूरता करना अनुचित है। यह सिद्धान्त भी मान लिया गया है पर आवश्यक तथा अनावश्यक क्रूरताकी सीमा निर्धारित करना उतना सरल नहीं है। इस विषयमें आपसमें मतभेद है अतः जो नियम बने हैं वह अधूरे हैं। पहिले पहिल रूसके ज़ार द्वितीय सिकन्दरकी उत्तेजनासे कुछ नियम १९३१ में बने थे। इसके पीछे १९५६ और १९६४ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हेग सम्मेलनोंमें इन्हींके आधारपर और विस्तृत नियमावलियाँ बनीं। इनमें जो बातें छूट गयी हैं उनका तात्कालिक निर्णय तो उभय पक्षके सेनापति ही करते हैं पर उनके निर्णयके लिये दायित्व उनकी सर्कारोंका होता है। १९६४ की हेग नियमावलीकी भूमिका-में लिखा है कि जो प्रश्न छूट गये हैं उनका निर्णय सेनापतियोंकी मनमानी सम्मतिपर नहीं छोड़ा गया है प्रत्युत 'सैनिकों और निवासियोंकी रक्षा अन्ताराष्ट्रिय विधानके सिद्धान्तों द्वारा होती है जिनकी उत्पत्ति सभ्य राष्ट्रोंकी रीति नीति, मनुष्यताके सदुपचारों और सार्वभौम विवेक बुद्धिसे हुई है'। कहनेका सारांश यह है कि जहाँ कोई स्पष्ट लिखित नियम नहीं मिलता वहाँ यह देखना चाहिये कि न्यायसंगत तथा सभ्यतानुकूल कैसा आचरण होगा। अधिक सम्भावना यह है कि ऐसा आचरण प्रमुख सभ्य राष्ट्रोंके व्यवहारके अनुकूल ही होगा।

सैनिक कौन है ?

इस स्थलपर यह जान लेना भी उचित होगा कि ऊपर 'सैनिक' शब्द किस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। हेगनियमावलीकी प्रथम तीन धाराओंमें सैनिकोंके लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

प्रथम धारा

युद्ध-सम्बन्धी नियम, स्वत्व और कर्तव्य न केवल सेनाके लिये हैं प्रत्युत उन मिलिशिया * और स्वयंसेवक * दलोंके लिये भी हैं जो निम्नलिखित शर्तोंके अनुकूल हों—

* बहुतसे देशोंमें साधारण सेनाके सिवाय ऐसे सैनिकदल होते हैं जो थोड़े थोड़े दिनोंके लिये वेतन लेकर सेनाके रूपमें काम करते हैं, फिर अपने अपने घर चले जाते हैं। इनकी भरती विशेष नियमोंके अनुसार होती है। युद्ध छिड़ने पर यह भी बुला लिये जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. उनका नेता कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो अपने अधीनोंके लिये दायी हो।

२. उनका कोई नियत परिचायक चिन्ह होना चाहिये जो दूरसे पहिचाना जा सके।

३. उन्हें खुलकर शस्त्र धारण करना चाहिये।

४. उनके सारे काम युद्ध-सम्बन्धी नियमों और प्रथाओंके अनुकूल होने चाहियें।

जिन देशोंमें मिलिशिया या स्वयंसेवकदल ही सेना या उसके अंश हों, वहां उनकी भी सेना संज्ञा होगी।

द्वितीय धारा

यदि किसी ऐसे प्रदेशके निवासी, जिसपर शत्रुका अभी क़ब्ज़ा नहीं हुआ है, आक्रमणकारी सेनाके विरुद्ध अपनी इच्छासे शस्त्र ग्रहण करलें† पर समयाभावके कारण प्रथम धाराके अनुसार अपनेको संगठित न कर सके हों तो वह भी योद्धा माने जायंगे, यदि वह खुलकर शस्त्र धारण करें और युद्धसम्बन्धी नियमोंका पालन करें।

तृतीय धारा

शत्रुसेनाओंमें शस्त्रधारी और निःशस्त्र दोनों प्रकारके मनुष्य हो सकते हैं। शत्रुद्वारा पकड़े जाने पर दोनों रणबन्दियों जैसे व्यवहारके अधिकारी होंगे।

जहां द्वितीय धाराके अनुसार किसी प्रदेश विशेषकी प्रजा शस्त्र लेकर उठ खड़ी होती है वहां तो किसी प्रकारकी वर्दी हो

इन्हें मिलिशिया कहते हैं। स्वयंसेवक वह हैं जो वेतन नहीं पाते, केवल स्वदेशरक्षाके निमित्त संगठित होते हैं।

† जनताके इस प्रकार सशस्त्र उठनेको लेवी आन मैसे (Levies en masse) कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं सकती पर यदि छोटी छोटी टुकड़ियां आक्रमणकारी सेनाका मार्गावरोध करती हैं तो उनसे ऐसी वर्दीकी प्रतीक्षा की जाती है जो स्पष्ट हो और दूरसे पहिचान पड़े। यदि ऐसी टुकड़ियोंको उनकी राष्ट्रीय सर्कारकी आज्ञा न मिली हो, यदि उनकी गणना राष्ट्रीय सेनामें न होती हो और उनके सैनिक निरन्तर सैनिक काम न करते हों (अर्थात् बीच बीचमें अपने घर और गृहस्थीके काम-में भी लग जाते हों) तो पकड़े जानेपर उनके साथ रणबन्दियों जैसा बर्ताव नहीं होता वरन् डकैतोंकी भांति उन्हें कारावास, फांसी, आदिका दण्ड दिया जाता है।

जलयुद्धके नियम भी सुबोध हैं। सर्कारी जहाज़ोंके सभी अफ़सर और नाविक सैनिक हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजको यह अधिकार है कि वह युद्धारम्भ होनेपर व्यापारियोंके जहाज़ोंको सैनिक काममें लगावे। यदि इन जहाज़ोंके नाविक युद्धके नियमोंका पालन करें और इनके अफ़सर सर्कारी नौसेनाके अफ़सर हों तो इनकी गणना भी सैनिक जहाज़ोंमें ही होगी, नहीं तो उनके साथ डकैतों जैसा बर्ताव होगा।

इस सम्बन्धमें एक प्रश्न यह उठता है कि किसी राजको यह अधिकार है या नहीं कि युद्धकालमें जब जहां चाहे अपने देशके जिस किसी व्यापारिक जहाज़को सैनिक जहाज़ बनाले। इस विषयपर घोर मतभेद है। एक पक्षका कहना है कि जब तक जहाज़ अपने राज्यकी सीमाके भीतर न हो तब तक उसका स्वरूप नहीं बदला जा सकता। दूसरा कहता है कि ऐसा सर्वत्र किया जा सकता है। अभी दूसरा ही पक्ष प्रबल है।

हेगनियमावलीकी तृतीय धारामें सेनाओंके निःशस्त्र अंगका कथन आया है। सेनाओंके साथ दो प्रकारके निःशस्त्र मनुष्य रहते हैं। एक तो रसद-विभागके कार्यकर्ता, डाक्टर इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह लोग नियत वेतन पाते हैं और शस्त्र भी रखते हैं पर सिवाय आत्मरक्षाके किसी अन्य दशामें इनका प्रयोग नहीं कर सकते। दूसरे, समाचारपत्रोंके संवाददाता, व्यापारी इत्यादि जो सेनाके वेतन-भोगी अंग नहीं हैं। इनके पास भी सेनापतिका अनुज्ञापत्र रहता है।

अब हम संक्षेपतः उन नियमोंका दिग्दर्शन करायेंगे जिनके अनुसार सैनिकोंके साथ बर्ताव किया जाता है।

जब कोई सैनिक लड़ना छोड़ कर दयाकी भिक्षा माँगता है उस समय वह अपने शत्रुके हाथमें है। विजयी शत्रु चाहे उसकी याचना स्वीकार करे या न करे। यदि याचना स्वीकार कर ली जाय तो उसके प्राण बच जाते हैं। हथियार रखवाकर उसे बन्दी बना लिया जाता है। इसे अभयदान* कहते हैं। पहिले चाहे जो होता रहा हो पर आजकल यह सम्भव नहीं है कि शत्रु सैनिकोंको हथियार रखवाकर छोड़ दिया जाय। उन्हें प्राणदान देकर भी बन्दी बनाना ही पड़ता है।

अभयदान

आर्य्योंमें तो यह प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है पर यूरोपमें थोड़े ही दिनोंसे चली है। असभ्य और अर्ध-सभ्य जातियोंकी भांति यूरोपियन राष्ट्र भी विजित शत्रु सैनिकोंका वध न्याय्य समझते थे। अब बात उलट गयी है। अभयदानसे वही शत्रु वञ्चित किये जा सकते हैं जो उसका दुरुपयोग करते हैं अर्थात् अभय देनेवालोंको धोखा देकर मारना चाहते हैं। कभी कभी ऐसा विश्वासघात होता है। कोई दुष्ट सिपाही आहत बन कर गिर जाता है या बन्दूक रखकर दया याचना करता है पर जब कोई प्रतिपक्षी सैनिक उसके पास निःशङ्क होकर जाता है तो किसी

* क्वार्टर = Quarter

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छिपे शस्त्रसे उसपर चोट करता है। ऐसे मनुष्य अभयदानके पात्र नहीं हो सकते। हेग नियमावलीकी २३ वीं धाराके अनुसार, पहिलेसे ही 'यह घोषणा कर देना कि हम किसीको अभयदान न देंगे' या 'ऐसे शत्रुको जिसने हथियार डालकर या आत्मरक्षाके साधनोंसे वञ्चित होकर आत्मसमर्पण कर दिया हो, मारना या आहत करना' विशेषरूपसे वर्जित है।

इस सम्बन्धमें बहुत दिनों तक मतभेद रहा कि यदि कोई दुर्ग लड़कर जीता जाय तो उसके रक्षकोंके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। बहुत दिनों तक तो यही प्रथा थी कि यदि दुर्ग वाले सीधेसे हथियार रख दें तो उन्हें छोड़ दिया जाय नहीं तो विजय होनेपर सब मार डाले जायं। वह अभयदानके पात्र नहीं समझे जाते थे। परन्तु अब दुर्गरक्षकों और अन्य सैनिकोंमें कोई भेद नहीं माना जाता। उनको भी अभयदान दिया जाता है। यदि कोई विजेता सेनापति दुर्गरक्षकोंका वध कर डाले तो वह दोषी ठहराया जायगा।

रणबन्दियोंके साथ जो बर्ताव होता है उसमें और पहिले समयके बर्तावमें भी आकाश पातालका अन्तर है। बन्दियोंको मार डालना असाधारण बात न थी। धनवान् बन्दियोंका तो मूल्य बाँध दिया जाता था। यदि वह अपने घरसे उतना रुपया मँगा सके तो छोड़ दिये जाते थे। साधारण सैनिक दास बना लिये जाते थे और विजेताओंमें बाँट दिये जाते थे। यदि दासोंकी संख्या अधिक हुई तो उन्हें भेड़ बकरीकी भाँति खुले बाज़ार बेच दिया करते थे। पीछेसे यह प्रथा चली कि जिस राजके सैनिक बन्दी होते थे वह स्वयं उनके लिये रुपया देकर छुड़ा लिया करता था। इसके पीछे यह हुआ कि बराबरका बदला होने लगा अर्थात् जितने बन्दी एक

रणबन्दियोंके साथ बर्ताव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पक्ष छोड़ देता था उतने दूसरा पक्ष छोड़ देता था। अब ऐसा प्रायः नहीं होता। जो लोग बन्दी बनाये जाते हैं वह युद्धके अन्त तक बन्दी ही रहते हैं। युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें घर पहुं-चानेका यथासम्भव शीघ्र प्रबन्ध कर दिया जाता है। तब तक, अर्थात् बन्दी अवस्थामें, सैनिकोंके साथ जो बर्ताव किया जाता है वह १९६४ में निर्धारित हेग नियमावलीके अनुसार होता है। यह नियमावली जैसा कि हम आगे देखेंगे बहुत ही उदार है। यदि इसका ठीक ठीक पालन किया जाय तो बन्दियोंको शिकायत करनेका कोई अवसर नहीं मिल सकता। नियमावलीके दूसरे अध्यायमें इस सम्बन्धमें १७ धाराएँ हैं। उन्हींके आधारपर युद्धकालमें प्रत्येक योद्धा राजको अपने यहां प्रबन्ध करना पड़ता है और अपने सेनानियोंको निर्देश करना पड़ता है।

प्रत्येक राजको युद्ध आरम्भ होते ही अपने यहां एक समाचार-विभाग खोलना पड़ता है। इस विभागका यह काम है कि अपने यहां जितने बन्दी हों उनकी पूरी सूची रक्खे और शत्रुराजको भी यह सूची भेज दे। प्रत्येक बन्दीका पृथक् खाता रखना होता है। इसमें उसका पूरा नाम, पता, सैनिक संख्या, पलटन, पद, कहां कहां और कितने घाव लगे, किस दिन और किस स्थानपर बन्दी हुआ, कहां रक्खा गया, उसे कब क्या और क्यों दण्ड देना पड़ा, कब कब और क्यों अस्पताल भेजा गया, कब कब भागनेका प्रयत्न किया, कब और कैसे छूटा, (यदि मर जाय तो) कब और कैसे मरा इत्यादि लिखना पड़ता है और युद्ध समाप्त होनेपर यह सब ब्योरा शत्रुराजके पास भेज देना होता है। इस विभागको प्रत्येक बन्दीकी निजी सम्पत्ति, चिट्ठी पत्री इत्यादिकी भी रखवाली करनी पड़ती है और उसके भाग जाने, छूट जाने या मर जानेपर यह सब सामग्री उसके घर भिजवानी होती है। समाचार-विभागसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्दियोंके विषयमें जो बातें चाहें पूछी जा सकती हैं। उनका उत्तर देना उस विभागका कर्तव्य होगा। इस प्रकार समरबन्दियोंके घरवालोंको अपने सम्बन्धियोंका पूरा पूरा समाचार मिलता रहता है।

कैद होनेके बाद बन्दी लोग शत्रु राजके वशमें हो जाते हैं पर जब तक वह स्वयं उद्दण्डता न करें तब तक उन्हें यथासम्भव आराम ही दिया जाता है। बन्दी जेलखानोंमें नहीं रक्खे जाते। उन्हें या तो किलोंके भीतर या अन्य सुरक्षित स्थानोंमें नजरबन्द कर देते हैं अर्थात् उनके ऊपर पहरा बैठाया जाता है पर हथकड़ी बेड़ी आदि नहीं डालते। जो जगह दी जाती है वहांका जलवायु उत्तम होना चाहिये और पड़ावमें अच्छा चिकित्सालय होना चाहिये। उनकी निजी सम्पत्ति उनके पास ही रहती है पर शस्त्र, घोड़े और सैनिक काग़ज ले लिये जाते हैं। यदि कोई बन्दी यह बचन दे कि मैं इस युद्ध भर आपके विरुद्ध शस्त्र न उठाऊंगा तो उसे छोड़ भी सकते हैं पर छोड़ना न छोड़ना बन्दी करनेवाली सर्कारकी इच्छापर निर्भर है। इस प्रकारके वचनको पैरोल* कहते हैं। यदि कोई पैरोल देकर छूट जाय और शस्त्र धारण कर ले और फिर पकड़ा जाय तो उसे प्राणदण्ड तक दिया जा सकता है। यदि कोई बन्दी भागनेका प्रयत्न करे तो उसे दण्ड दिया जाता है, कुछ कालके लिये कैद तक कर दिया जाता है। भागते हुओंको कभी कभी पीछा करनेवालोंके हाथ प्राणोंसे भी वञ्चित होना पड़ता है पर यदि कोई बन्दी भागनेमें सफल हो हो जाय अर्थात् शत्रु सेनाकी अधिकृत भूमिसे निकल जाय तो कभी फिर पकड़े जानेपर उसे पहिली बारके अपराधके लिये दण्ड नहीं दिया जा सकता। यदि कोई रणबन्दी किसी तटस्थ देशकी सीमाके भीतर पहुंच

* Parole

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाय तो वह मुक्त हो जाता है। यदि किसी सेना या सेनांशको शत्रुके सामनेसे भागना पड़े और वह अपने बन्दियोंको लिये दिये किसी तटस्थ देशमें पहुंच जाय तो वहां जाते ही सब बन्दी छूट जाते हैं।

यह नियम है कि बन्दी रखनेवाला राज बन्दी अफसरों और सैनिकोंको ठीक वही वेतन तथा भोजन वस्त्र दे जो वह उसी दर्जेके अपने अफसरों तथा सैनिकोंको देता है। कुछ उदार बड़े राज, जैसे ब्रिटेन, इसका सारा बोझ स्वयं उठाते हैं। अन्य राज युद्धके अन्तमें शत्रुराजसे हिसाब करके सारा व्यय चुका लेते हैं। अफसरोंको तो नहीं पर सैनिकोंको काम भी दिया जा सकता है पर यह काम ऐसा न होना चाहिये जिससे तत्कालवर्ती युद्धसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो। बहुधा सैनिकोंको कृषि, रेल, इमारत आदि-में लगा देते हैं। चाहे सर्कार स्वयं काम ले या किसी संस्था या नागरिकका काम करा दे, दोनों अवस्थाओंमें वेतन या मजदूरी वही दी जाती है जो स्वयं उस देशके सैनिक वैसाही काम करनेकी दशामें पा सकते हैं। इस रुपयेमेंसे उनके भरणपोषणका व्यय काट कर जो बचता है वह छूटते समय उन्हें दे दिया जाता है। बन्दियोंके धार्म्मिक कृत्योंमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाली जाती। १९५९ में ब्रिटेनने अपने बोअर बन्दियोंके लिये, जो लंका और सेण्ट हेलेनामें बन्द थे, स्कूल खोले थे और विशेषरूपसे खेलकूदका प्रबन्ध किया था। रूस-जापान युद्धमें जापानियोंने रूसी बन्दियोंके लिये यूरोपियन ढङ्गका भोजन बनानेके लिये बाहरसे रसोईदार बुलवाये थे। अन्य सभ्य देश भी बन्दियोंको सुख देनेका इसी प्रकार प्रयत्न करते हैं।

बन्दियोंके घरसे रुपया नहीं आ सकता पर खाना कपड़ा, पुस्तकें या अन्य जो कुछ वस्तुएं आती हैं उनपर किसी प्रकारका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयात कर, चुंगी या अन्य टिक्स नहीं लिया जाता। सर्कारी रेलें उन्हें बे महसूल पहुंचाती हैं। उन्हें अपने पत्रोंपर स्टाम्प (टिकट) नहीं लगाने पड़ते। यदि वह अपना वसीयतनामा लिखना चाहें तो उन्हें पूरी कानूनी सुविधा दी जाती है। जिस प्रकार हमारे यहां सेवासमितियाँ खुली हुई हैं उसी प्रकार युद्धके समय ऐसी समितियां खुल जाती हैं जिनका उद्देश्य वन्दियोंको सहायता देना होता है। ऐसी समितियोंके प्रतिनिधियोंको बन्दियों तक पहुंचने और सहायता देनेमें पूरी सुविधा दी जाती है।

इन सब नियमोपनियमोंके पालन करनेमें यह अवश्य ध्यान रक्खा जाता है कि अपने सैनिक आयोजनको किसी प्रकारकी क्षति न पहुंचे। यदि सेनाके पास स्वयं पर्य्याप्त खाना कपड़ा नहीं है तो बन्दियोंको कहांसे देगी। यदि यह सन्देह हो कि सहायक समितियोंके सदस्य सहायता पहुंचानेके बहाने जासूसी करते फिरते हैं तो उनका आना जाना बन्द करना ही होगा। बन्दियोंको घूमने फिरनेकी इतनी स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती कि निरीक्षण करना कठिन हो जाय। १९५२ के युद्धमें बोअरोंने तो यहां तक किया कि जब वह अपने बन्दियोंका ठीक ठीक प्रबन्ध न कर सके तो उन्हें योंही छोड़ दिया।

जलसेनाके लिये भी यही नियम हैं। सैनिक जहाजोंके सभी अफसर और नाविक रणवन्दी हो जाते हैं। व्यापारिक जहाजोंके नाविकोंसे यह लिखा लिया जाता है कि हम इस युद्धभर कोई युद्ध-सम्बन्धी काम न करेंगे। यदि लिखना अस्वीकार हो तो वह वन्दी किये जाते हैं नहीं तो छोड़ दिये जाते हैं। यदि व्यापारिक जहाजके नाविक किसी तटस्थ देशके नागरिक हों तो वह विना कुछ लिखे लिखाये ही छोड़ दिये जाते हैं पर तटस्थ अफसरोंको लेखबद्ध प्रतिज्ञा देनी पड़ती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस संक्षिप्त वर्णनसे विदित हो जायगा कि आजकल कितनी उदारता बर्ती जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि नियमोंका उल्लंघन भी होता है। गत महायुद्धमें जर्मनोंपर बन्दियोंके साथ दुर्व्यवहार करनेके कठोर आरोप लगाये गये थे, सम्भवतः जर्मनीमें अंग्रेजोंके व्यवहारकी ऐसी ही आलोचना हुई होगी। फिर भी सभ्यता और सौजन्यकी वृद्धि ही हो रही है। जिन अंग्रेजोंने जर्मनोंकी शिकायत की उन्होंने ही तुर्कोंकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

रोगियों और आहतोंकी भी अब पहिलेसे कहीं अच्छी सेवा होती है। पहिलेकी लड़ाइयोंमें आहतोंको लूट लेना तो साधारण बात थी। सिपाहियोंसे जो कुछ बचता था उसे पास पड़ोसके भिखमंगे और लुटेरे उठा ले जाते थे। बड़े आदमियोंकी देखरेख तो वैद्य हकीम कर लेते थे, सामान्य सिपाही चीलों, गिद्धों, कुत्तों और स्यारोंके शिकार होते थे। यूरोपमें पादरी लोग धार्मिक दृष्टिसे रोगियों और आहतोंकी सेवा करते थे पर सर्कारी प्रबन्ध न होनेसे अकेले उनका प्रयत्न पर्य्याप्त न होता था। आजकल प्रत्येक सभ्य सर्कारके साथ बहुत से चिकित्सक रहते हैं और पर्य्याप्त सामग्री रहती है। १९२१ में स्विस सर्कारने जेनीवा नगरमें एक अन्ताराष्ट्रिय परिषद् एकत्र की। उसको यह काम सौंपा गया कि रोगियों और आहतोंके सम्बन्धमें नियम बनाये। जो नियमावली उस समय बनी उसको धीरे धीरे अधिकांश सभ्य देशोंने स्वीकार कर लिया। १९५६ में हेग सम्मेलनने उन नियमोंमें कुछ उलटफेर करके इन्हें जलयुद्धके अनुकूल बनाया। १९६३ में उनमें कुछ संशोधन किये गये। यह संशोधन भी जेनीवामें ही किये गये। समस्त नियमावलीको 'जेनीवा कंवेंशन' (जेनीवाका इक़रारनामा) कहते हैं। १९६४ में हेगमें

रोगियों और आहतोंकी सेवा शुश्रूषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जलयुद्ध सम्बन्धी नियमोंका भी संशोधन किया गया। इन्हें सभी सभ्य राजोंने मान लिया है।

यों तो जो रोगी या आहत सिपाही शत्रुसेनाके हाथमें पड़ जाते हैं वह रणबन्दी होते हैं पर सेनाओंको चाहिये कि रोगियों और आहतोंकी चिकित्सामें राष्ट्रका विचार न करें अर्थात् शत्रु-सैनिकोंके लिये भी अपने सैनिकोंकी भांति ही प्रबन्ध करें। प्रबन्ध पर्य्याप्त होना चाहिये। यदि किसी सेनाको शत्रुकी बढ़ती हुई सेनाके सामनेसे इस प्रकार हटना पड़े कि वह रोगियों और आहतोंको साथ न ले जा सके तो उसे चाहिये कि यथासम्भव कुछ चिकित्सक और चिकित्सा-सामग्री भी छोड़ जाय। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं रोगी और आहत भी रणबन्दी होते हैं पर आपसमें तय करके शत्रुराज यह भी करते हैं कि एक दूसरेके रोगियों और आहतोंको स्वस्थ हो जानेपर घर लौटा देते हैं या किसी तटस्थ राजको सौंप देते हैं कि युद्धकी समाप्ति तक वह उन्हें नजरबन्द रक्खे। प्रत्येक लड़ाईके पीछे विजयी सेनापतिका यह कर्त्तव्य है कि रणक्षेत्रकी पूरी पूरी जांच करावे ताकि कोई मनुष्य आहतों और हतोंको न लूटे या अन्य प्रकारसे उनके साथ दुर्व्यवहार न करे। शवोंको गाड़ने या जलानेके पहिले उनकी पूरी जांच कर लेनी चाहिये ताकि हतोंके साथ बेहोश आहत भी मृत न मान लिये जायँ। उभयपक्षको चाहिये कि विपक्षी सर्कारके पास हतोंके शरीरपर पाये गये परिचायक चिन्ह (जैसे नंबरका कागज, परतला इत्यादि) और रोगियों और आहतोंकी तालिका भेज दें। उभयपक्षको चाहिये कि एक दूसरेको समय समयपर इस बातकी सूचना देते रहें कि कितने रोगी या आहत अस्पतालमें रक्खे गये, कितने मर गये, कितने छूटे, कितने नजरबन्द हुए। हतों तथा अस्पतालमें मरे हुए रोगियों और आहतोंकी निजी सम्पत्तिको एकत्र करके शत्रु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकारियोंके पास भेज दें ताकि वह इनके घर भेज दी जाय। सैनिक अधिकारियोंकी यदि इच्छा हो और आवश्यकता प्रतीत हो तो वह उस प्रान्तके निवासियोंसे रोगियोंकी सेवासुश्रूषामें सहायता करनेकी प्रार्थना कर सकते हैं और जो लोग सहायता दें उनके साथ कुछ विशेष रियायतें कर सकते हैं। यह सेवा-सुश्रूषा भी सैनिक अधिकारियोंके निरीक्षणमें ही होगी।

अस्पतालोंकी इमारतों, सामग्रियों और कर्म्मचारियोंकी रक्षा करना उभय पक्षका कर्तव्य है पर यदि अस्पतालोंको धोखेकी टट्टी बना कर उनसे कोई ऐसा काम लिया जाय जिससे शत्रु सेनाको क्षति पहुंचती हो तो फिर वह रक्षाके अधिकारी नहीं रह जाते। डाक्टर, उनके सहायक, और अस्पतालोंके गार्ड (पहरेदार) उसी दशामें अपने शस्त्रोंसे काम ले सकते हैं जब उनपर या रोगियोंपर कोई सशस्त्र आक्रमण करे, अन्यथा शस्त्र चलानेसे वह विशेष रक्षाके पात्र नहीं रह जाते। जबतक अपना कर्तव्य पालन करते जाते हैं तबतक यह लोग और सेनाओंके धर्मोपदेशक शत्रुके हाथमें पड़नेपर भी रणबन्दी नहीं बनाये जा सकते। यदि सेवा समितियां सेनाओंके अस्पतालोंमें काम कर रही हों और उन्हें ऐसा करनेकी अनुज्ञा उनके देशकी सर्कारसे प्राप्त हो तो उनके उन कर्म्मचारियोंके साथ जो युद्ध-क्षेत्रमें होंगे वही बर्ताव किया जायगा जो सर्कारी डाक्टरोंके साथ किया जाता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज शत्रुराजके पास युद्ध आरम्भ होनेके पहिले ही या आरम्भ होते ही या आरम्भ होनेके पीछे (परन्तु काम लेनेके पहिले) उन सब समितियोंके नाम भेज दे जिनसे वह सहायता लेना चाहता है। यदि किसी तटस्थ देशकी सेवा-समिति किसी सेनाकी सहायता करना चाहती है तो उसे अपने देशकी सर्कार और उस राजकी सर्कारकी अनुज्ञा प्राप्त करनी होगी जिसकी सेनाकेसाथ वह रहना चाहती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इसकी सूचना शत्रु राजको भी मिलनी चाहिये। यदि डाक्टर और उनके सहायक (चाहे वह सर्कारी हों चाहे सेवा-समितियोंके) शत्रु के हाथमें पड़ जायं और वह उनको रखनेकी आवश्यकता न समझे तो वह उन्हें जब और जिस मार्गसे चाहें स्वदेश भेज सकता है। घर जाते समय वह अपनी निजी सम्पत्ति अपने साथ ले जायंगे। जब तक किसी सेनाके सर्कारी डाक्टर और धर्म्मोपदेशक शत्रुसेनाके हाथमें पड़कर उसके अधीन काम कर रहे होंगे तबतक वह उन्हें वही वेतन और भत्ता देगी जो उस दर्जेके अपने डाक्टरों और धर्म्मोपदेशकोंको देती है।

यदि किसी सेनाके रोगी और अस्पताल शत्रुसेनाके हाथमें पड़ जाते हैं, तो वह उनकी भीतरी सामग्री और ढुलाईके साधनों (गाड़ी घोड़े, मोटर इत्यादि) तथा हांकने वालोंको ज्योंका त्यों छोड़ देती है, परन्तु अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर शत्रु सेनापति इस सामग्री-का कुछ अंश अपने अस्पतालोंमें लगा सकता है। शर्त यह है कि यदि ऐसा किया जाय या किसी ऐसे अस्पतालसे डाक्टर हटा-कर शत्रुके अस्पतालमें रक्खे जायं तो जितनी जल्दी हो सके उन्हें (अर्थात् डाक्टरोंको और सामग्रीको) लौटा देना चाहिये। अस्प-तालोंकी इमारतों और सामग्रियोंसे सिवाय रोगियों और आहतोंकी सेवा सुश्रूषाके और कोई काम नहीं लिया जा सकता। यदि अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर कोई सेनापति उनसे अन्य काम लेने-पर विवश हो जाय तो उसे चाहिये कि रोगियों और आहतोंके लिये पहिले प्रबन्ध कर दे। सेवासमितियोंकी सामग्री निजी सम्पत्ति मानी जाती है (सर्कारी नहीं), अतः उसपर हाथ नहीं डाला जाता। परन्तु विशेष अवस्थाओंमें, जिनका उल्लेख अगले अध्यायमें होगा, निजी सम्पत्ति भी जब्त की जाती है। उन अव-स्थाओंमें सेवासमितियोंकी सम्पत्ति भी ज़ब्त हो सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि किसी सेनाके रोगी और आहत एक स्थानसे दूसरे स्थान (विशेषतः स्वदेश) भेजे जा रहे हों और बीचमें शत्रुसेनासे मुठभेड़ हो जाय तो उसे चाहिये कि किसी वस्तुपर हाथ न डाले। डाक्टर, सहायक, यंत्र, औषधें, सवारियां, हांकनेवाले, रसद, पहरेदार सभी रक्षाके अधिकारी हैं। परन्तु युद्धमें आवश्यकता बड़ी चीज है। यदि अत्यन्त आवश्यकता हो तो शत्रुसेनाका सेनापति इन सारी वस्तुओंपर कब्जा कर सकता है पर उसको आहतों और रोगियोंको भी अपने जिम्मे लेना होगा। ऐसी दशामें उसे चाहिये कि सब डाक्टरों, पहरेदारों, सहायकों, हांकनेवालों आदिको स्वदेश भेज दे। इसी प्रकार उसे चाहिये कि काम निकल जानेपर सब सामग्री लौटा दे और जिन लोगोंसे नाव, रेल, घोड़ा गाड़ी, मोटर इत्यादि मंगनी, किरायेपर या योंही ली गयी हों उनकी सम्पत्ति उन्हें लौटा दे।

सैनिक अस्पतालोंके लिये ईसाई देशोंमें जेनीवा क्रॉस या रेडक्रॉस (लालसलेब) का चिन्ह होता है। तुर्कीमें लाल अर्धचन्द्र होता है। सम्भवतः स्वतंत्र भारतमें लाल स्वस्तिक होगा। जमीन सुफेद होती है उसीपर यह चिन्ह बना होता है। अस्पतालोंके झण्डेपर, गाड़ियोंपर, सन्दूकोंपर यही बना रहता है। उनमें काम करने वालोंके बाएं हाथपर एक पट्टी होती है जिसपर यह चिन्ह छपा रहता है। अस्पतालोंपर इस चिन्हसे अंकित झण्डेके अतिरिक्त उस राजका भी झण्डा रहता है जिसकी सेनाका अस्पताल है। तटस्थ देशोंसे आये हुए स्वयंसेवकोंको भी अपने साथ उसी राजका झण्डा रखना पड़ता है परन्तु शत्रुके हाथमें पड़ जाने पर केवल सेवा पताका (श्वेत ज़मीनपर लाल चिन्ह) रह जाती है।*

* ऊपर बार बार सैनिक अस्पतालोंका उल्लेख हुआ है। यह अस्पताल दो प्रकारके होते हैं, एक तो, वह जो सेनाकी टुकड़ियोंके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तटस्थ राजोंको अधिकार है कि यदि वह चाहें तो अपने राज्य-में से रोगियों और आहतोंको जाने दें पर उनका यह कर्तव्य है कि युद्धसामग्री और सैनिकोंको इस बहाने न आने जाने दें। यदि किसी तटस्थ राजको कुछ रोगी या आहत सौंप दिये जायं तो उसे यह देखना होगा कि अच्छे होकर यह लोग फिर युद्धमें सम्मिलित न हो जायं।

यह तो स्थलयुद्धकी बातें हुईं। जलयुद्धमें भी प्रायः वही नियम काम देते हैं। अस्पताली जहाजोंके तीन भेद होते हैं। पहिली कोटिमें राजकीय जहाज होते हैं। इनका रंग श्वेत होता है और बीचमें लगभग सवागज़ चौड़ी एक आड़ी हरी पट्टी पड़ी होती है। दूसरी कोटिमें शत्रुराजके कतिपय दयालु व्यक्तियों या सेवासमितियोंके जहाज होते हैं। इनका रंग भी श्वेत होता है और बीचमें लगभग सवागज चौड़ी एक आड़ी लाल पट्टी होती है। ऐसे जहाजोंके पास उनकी राष्ट्रीय सर्कारके लिखित अनुज्ञापत्र होने चाहियें और इनके नामोंकी सूची पहिलेसे ही शत्रुराजके पास भेज देनी चाहिये। उक्त दोनों प्रकारके जहाजों-पर सेवाझण्डा और राष्ट्रीय झण्डा रहता है। तीसरी कोटिमें वह जहाज हैं जो तटस्थ देशोंके नागरिकों या सेवासमितियोंके भेजे हुए होते हैं। इनपर भी श्वेत रंगके बीचमें लाल पट्टी रहती है पर इनके पास एक तो उस राजका अनुज्ञापत्र होना चाहिये जिसके बेड़ेके साथ काम करते हों दूसरा अपने राजका। इनपर सेवा-

---

साथ इधर उधर फिरा करते हैं। इन्हें field hospitals या mobile hospitals अर्थात् चल चिकित्सालय कहते हैं। जो सेनासे कुछ हट कर एक जगह रहते हैं उन्हें fixed hospitals या अचल चिकित्सालय कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झण्डा, बेड़ेका राष्ट्रीय झण्डा और अपने यहाँका राष्ट्रीय झण्डा रहता है। इन तीनों प्रकारके जहाजोंके साथ वही बर्ताव किया जाता है जो स्थलयुद्धमें अस्पतालोंके साथ होता है। इन परके काम करनेवाले रणबन्दी नहीं बनाये जाते पर उनको उभय पक्षके रोगियों और आहतोंकी सेवा सुश्रूषा करनी चाहिये। एक बातका सदैव ध्यान रखना चाहिये। इन जहाजोंसे सिवाय सेवाके और कोई काम न लेना चाहिये। यदि किसी ऐसे जहाजपर सवार होकर एक भी सिपाही या अफसर कहीं आवे जाय या इनके द्वारा एक भी पत्र कहीं भेजा जाय तो इनका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है और फिर यह किसी भी रियायतके अधिकारी नहीं रह जाते। उभयपक्षको इनकी तलाशी लेने, सन्देह होनेपर इनपर अपना एक निरीक्षक बैठा देने, यदि इनके रहनेसे लड़ाईके काममें बाधा पड़ती हो तो हटा देने और विशेष अवस्थाओंमें रोक लेनेका भी अधिकार है। प्रत्येक जहाजमें कुछ जगह रोगियों और आहतोंके लिये पृथक् की रहती है। उभय पक्षको चाहिये कि लड़ाईके समय उस स्थानकी यथासम्भव रक्षा करें।

इनके अतिरिक्त और भी कई नियम हैं पर वह प्रायः अक्षरशः वैसे ही हैं जैसे स्थलयुद्धके नियम हैं। भेद यह है कि अस्पतालकी जगह अस्पताली जहाज़का प्रयोग हुआ है। डाक्टरों और सामग्रियोंसे दूसरा काम लेना, डाक्टरों और धर्म्मोपदेशकोंकी आवश्यकता न रहनेपर घर लौटा देना, एक दूसरेको सूचना देना, रोगियों और आहतोंको व्यापारियों या अन्य तटस्थ नागरिकोंको सौंपना या इनको किसी तटस्थ राजको सौंपना यह सब बातें उन्हीं शर्तोंपर होती हैं जो स्थलयुद्धके लिये होती हैं। एक बात उल्लेख्य है। यदि कोई नौ-सेनापति चाहे तो वह किसी तटस्थ देशके व्यापारिक या यात्री लेजानेवाले जहाजसे अपने कुछ रोगियों और आहतोंको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ले लेनेकी प्रार्थना कर सकता है। यदि वह जहाज चाहे तो इस प्रार्थनाको स्वीकार भी कर सकता है। पर यदि पीछेसे इस जहाज़से विरोधी पक्षके किसी सैनिक जहाज़से भेंट हो जाय तो इन रोगी आदमियोंकी क्या गति होगी ? कुछ लोगोंकी यह सम्मति है कि एक बार तटस्थ जहाज़पर जानेसे वह उस तटस्थ देशके शरणागत हो गये अतः कैद नहीं किये जा सकते पर हेगमें बहुमत से यही निश्चित हुआ कि यदि वह सैनिक जहाज़ चाहे तो उन्हें रणबन्दी बना सकता है पर उस जहाज़को नहीं गिरफ्तार कर सकता। हां, यदि किसी तटस्थ देशके सैनिक जहाज़के सुपुर्द आहत और रोगी हों तो वह सुरक्षित रह सकते हैं क्योंकि सैनिक जहाज़ोंकी तलाशी नहीं होती। उस तटस्थ राजका यह कर्तव्य है कि ऐसा प्रबन्ध करे कि स्वस्थ होकर यह लोग फिर युद्धमें सम्मिलित न हो जायं।

युद्ध ऐसी विकट वस्तुको इससे अधिक नरम बनाना बहुत कठिन है। मनुष्यकी स्वभावोत्थित पाशविकताको अंकुश देनेके लिये यह नियम भी पर्याप्त हैं परन्तु जड़ नियमोंमें कोई सामर्थ्य नहीं है। उनके पालन करनेवाले जैसे होंगे उनका वैसा ही उपयोग करेंगे। बहुतसे नियम बनाकर युद्धक्षेत्रपर सेनापतिको जकड़नेका प्रयत्न करना बुरा है। प्रभावशाली लोकमत, सभ्यताका विकाश, मनुष्यता और भ्रातृभावका प्रचार, सेनापतियोंकी दयाशीलता और सैनिकोंकी उदारता तथा सर्कारोंकी सहानुभूति सब नियमोपनियमोंसे बढ़कर उपयोगी हैं।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छठवाँ अध्याय।

शत्रुसम्पत्तिके साथ व्यवहार—भूस्थित सम्पत्ति (युद्धारम्भके समय)।

यों तो शत्रुवर्गीयोंके साथ साथ कहीं कहीं शत्रु—सम्पत्तिका भी उल्लेख हो चुका है पर वस्तुतः यह विषय उससे कहीं गहन है। इसपर पृथक् विचार करना ही ठीक है। पहिले हमको यह देखना है कि शत्रु-सम्पत्ति कितने प्रकारकी होती है।

सबसे पहिले तो शत्रु-राजकी सम्पत्ति शत्रु-सम्पत्ति है। उसके शस्त्र, उसके दुर्ग, उसके जहाज—यह सब शत्रु-सम्पत्ति हैं और

शत्रुराजकी सम्पत्ति

इनपर कब्जा करनेका पूरा अधिकार है। पर हम आगे चलकर देखेंगे कि शत्रुराजकी कुछ ऐसी भी सम्पत्ति होती है जिसको जब्त करना वर्जित है, अतः परिभाषया उसे शत्रुसम्पत्ति नहीं कह सकते।

शत्रुराजके नागरिकोंकी सम्पत्ति भी शत्रुसम्पत्ति है। यदि यह सम्पत्ति स्वदेशमें ही है तब तो कोई विवाद हो ही नहीं

शत्रुराजके नागरिकोंकी सम्पत्ति

सकता पर यदि किसी तटस्थ देशमें बसकर उपार्जित की गयी हो तो उसके रूपके सम्बन्धमें मतभेद है। कुछ देशोंमें तो यह सिद्धान्त प्रचलित है कि सम्पत्तिका रूप उसके स्वामीकी राष्ट्रीयताके अनुकूल होता है अतः शत्रुराजके नागरिककी सम्पत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शत्रुसम्पत्ति है। अन्य देशोंमें यह सिद्धान्त चलता है कि सम्पत्तिका रूप उसके स्वामीके निवासस्थानके अनुकूल होता है अतः जो सम्पत्ति तटस्थ देशमें बसकर उपार्जित की गयी है वह शत्रु-सम्पत्ति नहीं है। यह स्मरण रहे कि यह प्रश्न समुद्र-चारी वस्तुओंके विषयमें ही उठता है। स्थलपर, विशेष अवस्थाओंमें दण्ड देनेके उद्देश्यको छोड़कर, शत्रु नागरिकोंकी निजी सम्पत्ति जब्त की ही नहीं जाती अतः इस प्रकारके प्रश्न स्वतः नहीं उठते।

बहुधा ऐसा होता है कि युद्ध आरम्भ होते ही या उसके आरम्भ होनेकी सम्भावना देखकर शत्रुराजोंके व्यापारी अपने जहाजोंको तटस्थ देशोंके नागरिकोंके हाथ बेच देते हैं। ऐसे विक्रयोंमें प्रायः ऐसी शर्त भी रहती है कि हम जब चाहेंगे फिर लौटा लेंगे। यह विक्रय वस्तुतः कृत्रिम होता है। इसका उद्देश्य केवल जहाजोंको युद्धकालमें जब्त होनेसे बचाना होता है। अतः यह देखनेकी आवश्यकता पड़ती है कि सचमुच क्रय-विक्रय हुआ है या झूठी काग़ज़ी कार्य्यवाही कर दी गयी है। आजकल इस सम्बन्धमें यह नियम प्रचलित है। यदि युद्ध आरम्भ होनेके पीछे बिक्री हुई है तो वह नहीं मानी जाती पर यदि खरीदनेवाला यह प्रमाणित कर सके कि वस्तुतः जब्तीसे बचनेके लिये नहीं वरन् शुद्ध व्यापारिक दृष्टिसे ही क्रय-विक्रय हुआ था तो उसकी बात मानी जा सकती है। पर यदि जहाज समुद्रयात्रा करते समय या किसी घिरे बन्दरमें हस्तान्तरित किया गया हो या पुनः मोल लेनेकी शर्त लिखी हो तो फिर कोई प्रमाण नहीं सुना जाता।

यदि वह जहाज़ युद्ध आरम्भ होनेके एक मास या अधिक पहिले बेच दिया गया हो और उसपर विक्रय-पत्र* भी हो तो जब

*Bill of Sale—वह रजिस्टरी हुआ कागज जिसपर बिक्रीका पूरा ब्योरा दिया रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक गिरफ्तार करने वाले इस पत्रमें ही कोई दोष न निकाल सकें तब तक उसे जब्त नहीं कर सकते। यदि किसी पक्षका सैनिक जहाज़ उसे गिरफ्तार कर ले तो उस पक्षकी सर्कारको मुआविजा देना पड़ेगा। यदि बिक्रीको तीस दिनसे ऊपर तो हो गये हों पर साठ दिन न हुए हों और उसपर विक्रय-पत्र न हो तो उसे गिरफ्तार कर सकते हैं। यदि उसका नया स्वामी यह सिद्ध कर सके कि वस्तुतः जहाज उसका ही है और उसने उसे नियमानुसार ही मोल लिया है तो जहाज छोड़ दिया जायगा पर मुआविजा नहीं मिल सकता। यदि सिद्ध न कर सके तो जहाज जब्त हो जायगा। यदि युद्ध आरम्भ होनेके साठ दिन पहिले बिक्री हो चुकी थी तो फिर किसी प्रकारकी जांच-पड़तालकी आवश्यकता नहीं होती। जहाजोंपर जो व्यापारका माल लदा रहता है उसका शत्रु सम्पत्ति होना न होना उसके स्वामीके शत्रु होने न होनेपर निर्भर है। जहाज चाहे शत्रु देशका हो चाहे तटस्थ देशका, माल जिसके पास भेजे जानेके लिये लादा गया था उसीका माना जायगा।

तटस्थ नागरिकोंकी वह सम्पत्ति जो शत्रुको सौंप दी गयी हो

तटस्थ नागरिकोंकी वह सम्पत्ति जो शत्रुके हाथमें सौंप दी गयी हो शत्रुसम्पत्ति ही मानी जायगी। यदि किसी तटस्थ नागरिकके जहाज़के अफ़सर और नाविक शत्रुराजके निवासी हैं या वह जहाज शत्रुके राज्यमें उसकी विशेष अनुज्ञासे व्यापारादिके उद्देश्यसे चलता है तो वह शत्रुसम्पत्ति ही समझा जायगा। इसी प्रकार शत्रु जहाजपर तटस्थोंका जो माल होगा वह भी, बहुत ही प्रबल प्रमाणके मिले बिना, शत्रुसम्पत्ति ही समझा जायगा। यदि यह माल शत्रुके किसी लड़ाईके जहाज़पर पाया जाय तब तो कोई प्रमाण सुना ही नहीं जाता। इसी प्रकार यदि किसी तटस्थ नागरिककी किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शत्रुदेशमें जमीनदारी या अन्य जायदाद हो तो उसकी उपज शत्रु-सम्पत्ति मानी जाती है।

कभी कभी यह अड़चन पड़ती है कि एक ही स्थानके प्रभुत्वके दो हकदार होते हैं। एक शत्रु राज कहता है कि जगह मेरी है, एक तटस्थ राज कहता है कि मेरी है। यदि उस शत्रु राजको प्रभु मानें तो तत्रस्थ सम्पत्तिका एक रूप हो जायगा, यदि तटस्थ राजको प्रभु मानें तो उसका दूसरा ही रूप होगा। ऐसी दशामें हॉलने जो नियम बताया है वह सबसे अच्छा है। इस बातका निर्णय किये बिना कि प्रभु कौन है यह देखना चाहिये कि सम्प्रति जिस किसीका भी उसपर कब्जा है वह उससे कैसा काम लेता है। इसीके अनुसार उसे शत्रु या तटस्थ मानना चाहिये।

अब हमको यह देखना है कि उपर्युक्त विविध प्रकारकी शत्रु-सम्पत्तियोंके साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाता है। यह हो सकता है कि एक शत्रु राजकी सम्पत्ति दूसरे शत्रु राजके राज्यके भीतर पायी जाय। इसकी विशेष सम्भावना नहीं है क्योंकि स्वतन्त्र राज एक दूसरेके राज्यमें किसी प्रकारकी सम्पत्ति रखकर एक दूसरेके प्रजावर्गमें परिगणित होना अपमानजनक समझते हैं। कभी कभी राजदूतके रहनेका स्थान अलबत्ता राजका होता है। यदि युद्ध छिड़नेपर वह जब्त कर लिया जाय तो कोई विशेष क्षति नहीं हो सकती पर प्रायः ऐसा किया नहीं जाता। हां, यदि चल सम्पत्ति, जैसे जहाज, शस्त्र, कोष आदि, लड़ाई छिड़नेपर हाथ लग जाय तो वह निःसन्देह जब्त कर ली जायगी। चल सम्पत्तिमें भी धार्म्मिक कृत्य सम्बन्धी तथा चित्र, मूर्ति इत्यादि ललित कला सम्बन्धी वस्तुएं

एक शत्रुराजकी सम्पत्ति दूसरे शत्रु राजके राज्यमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और पुस्तकें जब्त नहीं की जातीं प्रत्युत उस शत्रुराजको जो उनका स्वामी होता है लौटा दी जाती हैं।

आजकल परस्पर सम्बन्धकी इतनी वृद्धि हो गयी है कि एक राजके निवासी बहुधा दूसरे राजमें व्यापारादिके लिये रहते हैं और स्वभावतः सम्पत्तिका भी संग्रह कर लेते हैं। युद्ध छिड़नेपर यह प्रश्न उठता है कि शत्रु प्रजाकी जो सम्पत्ति अपने राज्यमें है उसके साथ क्या व्यवहार किया जाय। यहाँ हम अचल (जैसे घर, बाग, इत्यादि) और चल (रुपया, कपड़ा, बर्तन इत्यादि) पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

शत्रु प्रजाकी अचल सम्पत्ति

पुराना नियम तो यह था कि युद्ध छिड़ते ही अचल सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। इसके बाद धीरे धीरे यह प्रथा चली कि जायदाद जब्त न की जाय पर युद्धकालमें उसकी आय जब्त कर ली जाय। आजकल यह प्रथा भी क्रूर समझी जाती है। प्रचलित नियम यह है कि शत्रु राजके प्रजावर्गीय शान्तिपूर्वक अपना अपना काम करते रहें। ऐसी दशामें उनकी सम्पत्ति या उसकी आयको जब्त करना अमानुषिक होगा। एक कठिनाई होती है। यदि कोई मनुष्य युद्धकालमें स्वदेशमें हो तो वह अपनी उस सम्पत्तिकी, जो शत्रु-राज्यमें है, आयका सुगमतासे उपभोग न कर सकेगा पर भविष्यत्में सम्भवतः यह कठिनाई भी न रह जायगी क्योंकि हेगमें यह नियम बना था कि शत्रु-प्रजाके कानूनी स्वत्वोंका अस्तित्व युद्धकालमें भी ज्योंका त्यों बना रहता है अतः मनुष्य चाहे कहीं रहे किसी कारिन्दा या एजेण्ट-के द्वारा अपनी शत्रुराज्यस्थ अचल सम्पत्तिका प्रबन्ध कर सकेगा। इस समय थोड़ी सी इस बातकी कठिनाई है कि कई राजोंने हेगके इस नियमको अपने अपने देशोंके विधानोंमें स्थान नहीं दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शत्रु प्रजाकी चल सम्पत्ति

पहिले चल सम्पत्तिके लिये भी वही नियम था जो अचल सम्पत्तिके लिये प्रचलित था अर्थात् वह भी जब्त कर ली जाती थी। पीछेसे सन्धियोंमें यह बात लिख दी जाने लगी कि यदि उभय पक्षमें कभी युद्ध छिड़ जाय तो एक दूसरेके प्रजावर्गीयोंको व्यापारिक चल सम्पत्ति हटा लेनेके लिये नियत अवकाश देंगे। इधर सौ वर्षसे अधिक हुए किसी सभ्य राजने इस अधिकारसे काम नहीं लिया है। आजकल तो जब्त करनेका प्रश्न ही प्रायः नहीं उठता क्योंकि शत्रु प्रजाको युद्धकालमें बसने और व्यापार करनेकी बराबर अनुज्ञा मिल जाती है। सभ्य राजोंने किसी सन्धि या घोषणा द्वारा जब्त करनेका अधिकार छोड़ नहीं दिया है पर उनका उससे काम न लेना यह सिद्ध करता है कि धीरे धीरे अन्ताराष्ट्रिय विधानसे इसका निर्वासन हो रहा है। किसी किसीकी यह सम्मति है कि जब्तीकी प्रथा तो बन्द हो जानी चाहिये पर यह नियम रहना चाहिये कि युद्धकालमें यदि ऐसा आवश्यक प्रतीत हो तो शत्रु प्रजाकी चल सम्पत्ति रोक ली जाय अर्थात् उसका स्वामी उसके उपभोगसे वञ्चित रक्खा जाय। ऐसी दशामें युद्ध समाप्त होनेपर उसका स्वत्व पुनरुज्जीवित हो जायगा।

शत्रुवर्गीय उत्तमर्णोंके पासका स्टाक और हुंडियां

ऐसे बहुत कम सभ्य देश हैं जिनका काम बिना ऋण लिये चलता हो। शान्तिकालमें जो ऋण लिया जाता है उसके लिये सर्कारकी ओरसे स्टाक (या प्रामिसरी नोट) निकाला जाता है। यह स्टाक ऋणकी हुण्डी या प्रमाणपत्र है। सर्कार प्रतिवर्ष इस ऋणपर नियत दरसे ब्याज देती है और नियत कालके पीछे सब रुपया चुका कर कागज लौटा लेती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। जब ऋण लिया जाता है तो स्वप्रजाके अतिरिक्त विदेशी भी ऐसे कागज मोल लेते हैं। फलतः वह भी सर्कारके उत्तमर्ण* हो जाते हैं। अब यदि युद्ध छिड़ जाय तो प्रश्न यह होता है कि ऋणके जो कागज़ अर्थात् (प्रामिसरी नोट) शत्रुप्रजा-के हाथमें हों उनको जब्त कर लिया जाय या नहीं। यदि जब्त किया जाय तो सम्भवतः सर्कार बहुत से ऋणसे अनायास ही मुक्त हो जाय। पर ऐसा कदापि नहीं किया जाता। शत्रुकी अन्य चलाचल सम्पत्तिके साथ चाहे जो व्यवहार किया जाय पर उसके पास जो अपने यहांकी हुण्डियां (या नोट) होती हैं वह कभी ज़ब्त नहीं की जातीं। एक तो आजकल व्यापार-जगत्का रूप ऐसा है कि एक देशकी आर्थिक दशाका दूसरे देशपर तत्काल प्रभाव पड़ता है। जो राज अपने शत्रु देशके महाजनोंको ठगेगा वह घूम फिर कर अपने देशके महाजनोंपर ही आक्रमण करेगा। दूसरे, ऐसा करनेसे साख बिगड़ती है। यदि यह आशंका हो कि स्यात् युद्ध छिड़ जाय और यह नोट रद्दी काग़ज़ हो जायं तो या तो कोई सर्कारोंको ऋण दे ही नहीं या व्याजका भाव बहुत बढ़ जाय। इसलिये नियम यह है कि ऐसे कागज़ोंपर हाथ नहीं डाला जाता और जो कागज़ शत्रुवर्गीयोंके हाथमें होते हैं उनपर भी बराबर व्याज दिया जाता है। एक बार १८०९ में ब्रिटेन और प्रशामें इस सम्बन्धमें विवाद उठा था। वह उपर्युक्त नीतिके अनुसार ब्रिटेनके पक्षमें निर्णीत हुआ, तबसे फिर कभी ऐसा प्रश्न नहीं उठा। महायुद्धके पीछे रूसकी बोल्शेवी सर्कारने ब्रिटेन आदिके व्यापारियोंका ऋण चुकाना अस्वीकार कर दिया था पर अब उसने भी इस सिद्धान्तको मान लिया है।

---

*उत्तमर्ण = ऋण देनेवाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवाँ अध्याय।

शत्रुसम्पत्तिके साथ व्यवहार—भूस्थित सम्पत्ति (युद्धकालमें)।

छठवें अध्यायमें हमने उस भूस्थित सम्पत्तिके सम्बन्धमें विचार किया है जो युद्धारम्भमें शत्रुके हाथ लग जाती है या लग सकती है। इस अध्यायमें हमें उस सम्पत्तिके सम्बन्धमें विचार करना है जो युद्धकालमें हाथ लगती है। यह सम्पत्ति दो ही अवस्थाओंमें हाथ आ सकती है। कुछ तो शत्रुके किसी गढ़ या पड़ावको जीत लेने या युद्धक्षेत्रसे उसे हटा देनेसे मिल सकती है। इसे हम लूटका माल कहेंगे। शेष उसके राज्यके भीतर घुस कर कब्ज़ा करनेसे मिल सकती है। इस द्वितीय प्रकारसे जो सम्पत्ति प्राप्त होती है उसका परिमाण अधिक होता है और वह कई प्रकारकी होती है। उसके सम्बन्धमें नियम भी बहुत से बने हैं। लूटके मालकी व्यवस्था सरल है।

लूटका माल

बहुत पुराने समयमें सभी देशोंमें यह प्रथा थी कि शत्रुके गढ़ या पड़ावमें जो कुछ मिल सके या युद्धक्षेत्रपर हताहत शत्रुओंके शरीरोंपर जो कुछ मिले वह सब लूटका माल समझा जाय और उसपर विजेताओं-का पूर्ण अधिकार हो। परन्तु १९५६ के हेग सम्मेलनने इस प्रथाको कुत्सित ठहरा कर कई नये नियम बनाये। इन नियमोंकी प्रथम परीक्षा रूस-जापान युद्धमें हुई। जापानने इनका पूर्णतया पालन किया। १९६४ में कुछ थोड़े से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामम लके संशोधनके साथ हेगमें फिर इनका समर्थन हुआ। आज सभ्य संसारमें यह सर्वमान्य हैं। इनके अनुसार युद्धक्षेत्र-में हत सैनिकोंकी जो कुछ निजी सम्पत्ति मिले उसे विजेता सँभाल कर रक्खे और उन सैनिकोंके उत्तराधिकारियोंको लौटा दे। बन्दियोंके घोड़ों, शस्त्रों और सैनिक कागज़ोंके सिवाय उनकी और किसी सम्पत्तिपर हाथ न डाला जाय।

यदि लूटके मालपर पूरे चौबीस घण्टे तक कब्जा न रहा हो तो वह कब्जा पक्का नहीं समझा जाता। यह प्रश्न उस समय उठता है जब एक पक्षसे लूटा हुआ माल फिर कुछ कालमें उसी पक्षके हाथ लग जाता है। यदि लूटे जानेके चौबीस घण्टेके भीतर ऐसा हो तो यह माना जाता है कि यह माल अपने पुराने स्वामियोंकी ही सम्पत्ति है और उन्हें लौटा दिया जाता है पर यदि चौबीस घण्टेसे ऊपर हो गये हों तो माल शत्रुका समझा जाता है और उसके साथ तथावत् व्यवहार होता है।

लूटका माल पहिले समयमें लूटने वाले सिपाहियोंमें ही बँट जाता था, हाँ राजकोष या इसी प्रकारकी अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ विजेता राजको मिलती थीं। आजकलका सिद्धान्त यह है कि लूटका सारा माल राजका होता है। सिपाही जो कुछ करते हैं उसकी ओरसे करते हैं और इसके लिये वेतन पाते हैं अतः उन्हें अपने पास कुछ भी रखनेका अधिकार नहीं है। परन्तु रोकना बड़ा कठिन होता है। बहुत कुछ रह ही जाता है। अतः अब यह प्रथा चल पड़ी है कि युद्धारम्भके समय ही प्रत्येक राज अपने यहां यह घोषित कर देता है कि शत्रुसे लूटे हुए मालका बँटवारा किस प्रकार किया जायगा। इससे यह लाभ होता है कि सभी अपने अपने स्वत्वको जानते रहते हैं और किसीको कुछ छिपानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब एक राजकी सेना दूसरेके राज्यके किसी अंशमें बलात् प्रवेश करके उसपर अधिकार कर लेती है तो इस अधिकारके दो ही परिणाम हो सकते हैं। या तो सन्धि होने-पर यह प्रदेश विजेताके ही पास रह जाय अर्थात् उसके राज्यका स्थायी अंश हो जाय या अपने पुराने स्वामीको पुनः मिल जाय पर प्रश्न यह है कि जबतक सन्धि नहीं होती तबतक आक्रमणकारी सेनाको जिसने उसपर अधिकार कर लिया है उसके प्रति कैसा व्यवहार करनेका हक़ है ?

शत्रुके राज्यांश-पर अधिकार

प्राचीन कालकी प्रथा तो यह थी कि विजेताको यह अधिकार था कि वह जो चाहे सो करे। प्राचीन भारतमें निःसन्देह यह नियम था कि जनसाधारणके दैनिक जीवनमें किसी प्रकार बाधा न पहुंचायी जाय—इसे देख कर यवन दङ्ग रह गये थे—परन्तु और किसी देश या समाजने इस सभ्य नियमको न अपनाया। भारतको भी अपने पड़ोसियोंकी असभ्यताका पूरा पूरा स्वाद चखना पड़ा। महमूद ग़ज़नवी, तैमूर लङ्ग, नादिर शाह करोड़ोंकी सम्पत्ति ले गये। प्रजासे जो कुछ चूसा जा सके उसे चूस लेना न्याय्य समझा जाता था। पर विजेता अपने ऊपर विजित प्रदेश-के शासनका भार नहीं लेता था। वह इतना ही चाहता था कि उसके साथ कोई छेड़छाड़ न करे। यदि कोई उसके किसी काममें बाधा डालता या उसके गौरवके विरुद्ध कोई आचरण करता तो वह दण्डका भागी होता था। इसी नीतिके अनुसार एक फ़ारसी सिपाहीकी हत्याके दण्ड स्वरूप नादिर शाहने दिल्लीमें कत्ले आमकी आज्ञा दी थी।

यही अवस्था यूरोपमें थी। स्वयं ग्राशिअसको लिखना पड़ा कि 'युद्धमें प्रत्येकको यह अधिकार है कि शत्रुकी सम्पत्तिको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहांतक उसकी इच्छा हो ले ले।' काल पाकर इस प्रथाकी भीषणता प्रतीत होने लगी पर इसको रोकना कठिन था क्योंकि सिपाहियों और छोटे अफसरोंकी लालच राजाज्ञाओंका पालन न होने देती थी। ड्यूक आव वेलिंगटनको अपने ही कई सिपाहियोंको लूटके अपराधमें फांसी देनी पड़ी। यह तो नहीं कह सकते कि लूट अब पूर्णतया बन्द हो गयी है या अधिकृत प्रदेशके निवासी तंग नहीं किये जाते, पर हां पहिलेकी अपेक्षा कहीं अधिक संयमसे काम लिया जाता है। सैनिक अधिकारीके स्वत्व और कर्त्तव्य दोनों ही परिमित कर दिये गये हैं। इस सीमाके बाहर जाना लोकमतकी दृष्टिमें हेय है।

जो सेनापति शत्रु राज्यमें प्रवेश करता है उसको १९६४ के हेग सम्मेलनके निर्देशानुसार, अरक्षित स्थानों (अर्थात् ऐसे स्थानों जहां सिपाहियोंका पड़ाव या गढ़ आदि न हो) पर गोलाबारी या वायुयानोंसे बमवर्षा न करनी चाहिये और न किसी स्थानको लूटना चाहिये. चाहे वह लड़कर ही जीता गया हो। सैनिक कब्जा उतनी ही दूरतक और उतनी ही देरतक रहता है जहांतक और जबतक कि अपनी सेनाका पूरा पूरा अधिकार हो। किसी प्रदेशमें थोड़े से सैनिकोंके घुस जानेसे उसपर कब्जा नहीं माना जा सकता। इस बातकी आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक नगर और गांवमें छावनी स्थापित की जाय पर यह निःसन्देह आवश्यक है कि पुराने प्रभुके अधिकारका कोई चिन्ह न रह गया हो और सर्वत्र ही विजयी सेनाकी आज्ञाएं समादृत हों। यदि पुराने प्रभुकी सेना शत्रुसेनाको पराजित कर दे या उस प्रदेशके निवासी ही सशस्त्र विद्रोह करके शत्रु को निकाल बाहर कर दें तो उसके अधिकारकी समाप्ति हो जायगी। किसी किसीकी सम्मति है कि सफल विद्रोहसे कब्जेका अन्त नहीं होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् जबतक पुराने प्रभुकी सेना ही शत्रुको न निकाले तबतक उसका कब्जा बना रहता है। यह व्यर्थका तर्क है। विजयी सेनाका कोई वैध स्वत्व नहीं होता। उसका एकमात्र सहारा बल है। यदि दूसरा कोई अधिक बलका प्रयोग करके उसे निकाल देता है तो स्वभावतः उसके बलार्जित अधिकारका अन्त हो गया। उसे यह पूछनेका अधिकार नहीं है कि यह बलप्रयोग करनेवाला कौन है।

जितने दिनोंतक सैनिक कब्जा रहता है उतने दिनोंतक अधिकृत प्रदेशकी रक्षाका भार विजेतापर रहता है। उसका कर्तव्य है कि लोगोंकी धन-सम्पत्तिकी रक्षा करे और न्यायादिका प्रबन्ध करे।

किसी स्थानपर अधिकार करनेके पीछे प्रायः विजयी सेनापति एक घोषणा निकाला करता है। नीचे हम एक घोषणाके मुख्य अंशोंका भावानुवाद देते हैं। इस घोषणाको बोअर युद्धमें एक बोअर सेनापतिने निकाला था।

विजयी सेनापतिकी घोषणा

"आरेञ्ज फ्री स्टेटकी नागरिक सेनाओंके प्रधान सेनापति मैं, सी. जे. वेसेल्स, ने श्रीमान् राष्ट्रपतिकी ब्लोमफोण्टेन नगरसे निकाली हुई १४ अक्तूबर १८९९ की उस घोषणाको देखकर जिसमें उन्होंने आरेञ्ज फ्री स्टेटकी नागरिक सेनाओंके सभी टुकड़ोंके सेनापतियोंको यह अधिकार दिया है कि वह लोग उन सब समुदायों, ग्रामों और व्यक्तियोंको समुचित दण्ड द जो इस युद्धमें, जिसे ग्रेटब्रिटेनकी श्रीमती महारानीकी सर्कार हमारे विरुद्ध निष्कारण लड़ रही है, सामरिक विधानोंकी अवहेलना करें;

"और इस बातको ध्यानमें रखकर कि हमारी सेनाकी सफलताने ब्रिटिश राज्यके उस भागपर हमारा कब्जा स्थापित करा दिया है, जिसे पश्चिमी ग्रीकालैण्ड कहते हैं और जिसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किम्बर्ली नगर और उसके चारों ओर दो कोसके घेरेकी भूमिको छोड़कर हर्बर्ट, हे, बार्क्ली और किम्बर्लीके ताल्लुके शामिल हैं;

"और चूंकि उन समुदायों, नगरों और व्यक्तियोंको दण्ड देना आवश्यक हो गया है जो हमारी सेना द्वारा अधिकृत प्रदेशमें सामरिक प्रथाओंके विरुद्ध आचरण कर रहे हैं; और चूंकि उक्त प्रदेशमें हमारी सेनाओंके भरण पोषणके लिये उपयुक्त सामग्री मिलनेका प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया है;

"निश्चय किया है और श्रीमान् राष्ट्रपतिकी घोषणामें मुझे जो अधिकार दिया गया है उसके द्वारा निम्नलिखित नियमोपनियमोंको सूचनार्थ घोषित करता हूं:—

१. जिस प्रदेशपर हमारी सेनाका इस समय कब्जा है या भविष्यत्में होगा उसमें प्रत्येक ऐसे कामके लिये जिससे हमारी सेनाको किसी प्रकारकी क्षति या शत्रुको सहायता पहुंचनेकी सम्भावना हो सैनिक विधान चालू माना जायगा।

२. ज्यों ही सैनिक विधानकी घोषणा किसी हल्के, जिले या अन्य शासनप्रदेशके किसी एक भागमें चिपका दी जायगी या सुना दी जायगी त्यों ही वह उस प्रदेशके समस्त भागोंमें लागू हो जायगा।

३. वह सब मनुष्य जो ब्रिटिश सेनाके सैनिक न होते हुए भी

(क) उसकी ओरसे जासूसी करेंगे;

(ख) हमारे सैनिकोंके पथप्रदर्शक बनकर धोखा देंगे;

(ग) हमारी सेनाके सिपाहियों या साथ रहनेवालोंमेंसे किसीको मार डालेंगे या लूटेंगे;

(घ) पुल नष्ट करेंगे, तारकी लाइन बिगाड़ेंगे, रेलकी लाइन उखाड़ेंगे या कोई ऐसा काम करेंगे जिससे हमारी सेनाकी गतिमें बाधा पड़े या हमारे सैनिकोंको किसी प्रकारकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षति पहुंचे या हमारे सैनिकोंके पड़ावों, शस्त्रों या अन्य सैनिक सामग्रियोंको जलायेंगे या अन्य प्रकारसे क्षति पहुंचायेंगे या हमारे सैनिकोंके द्वारा नष्ट अथवा भ्रष्ट की हुई सम्पत्तियों या संस्थाओंकी मरम्मत करेंगे;

(ङ) या हमारे सैनिकोंके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करेंगे

उन सबको हमारी सैनिक कौंसिल प्राणदण्ड या १५ वर्षका कारावास तकका दण्ड दे सकेगी।

५. प्राणदण्ड उस समय तक न दिया जायगा जबतक उसका समर्थन श्रीमान् राष्ट्रपति न कर दें।

६. सभी सेनापतियोंको यह अधिकार दिया जाता है कि वह जनतासे सिपाहियोंके भरण पोषणके लिये आवश्यक वस्तुएं मांगें। इनके अतिरिक्त जिन वस्तुओंकी अनिवार्य्य आवश्यकता समझी जायगी वह प्रधान सेनापतिकी आज्ञासे ही मांगी जा सकेंगी।

७. जो लोग हमारी सर्कार और उसके द्वारा नियुक्त किये हुए अफसरोंकी शरणमें आयेंगे उनके जानमालकी रक्षाका वचन दिया जाता है।

९. जिन लोगोंको यह शर्तें स्वीकार न हों वह १४ दिनके भीतर अधिकृत प्रदेशको छोड़कर चले जा सकते हैं।

१०. जो लोग अपने घरों या खेतोंको छोड़कर चले गये हैं या भगा दिये गये हैं पर अब उपर्युक्त नियमोंका पालन करना चाहते हैं वह लौट सकते हैं।"

यह इस प्रकारकी घोषणाओंका एक अच्छा उदाहरण है। प्रायः सभी घोषणाओंमें इसी प्रकारके नियम रहते हैं पर देश तथा पात्र-भेदके कारण कुछ शर्तें घटा बढ़ा दी जाती हैं। बहुधा एक नियत अवधिके भीतर सब शस्त्र जमाकर देनेकी शर्त लगा दी जाती है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकृत प्रदेशमें शत्रु राज तथा जनसाधारणकी सम्पत्तिके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये इसके लिये भी स्पष्ट नियम हैं। पहिले राज-सम्पत्तिको लीजिये। इसके लिये हेगमें निम्नलिखित नियम स्वीकृत हुए थे:—

अधिकृत प्रदेशमें राज-सम्पत्ति

"मुल्कगीरी सेना केवल नक्द रुपया, नोट, ऐसे विनिमय कागज* जो सचमुच राजसम्पत्ति हों, शस्त्रागार, गमनागमनके साधन, अन्नादि सञ्चय, और साधारणतया राजकी सभी ऐसी चल सम्पत्तिपर जो सैनिक काममें लगायी जा सकती है कब्जा कर सकती है। उन अवस्थाओंको छोड़कर जो नौ-सेना-विधानके अधीन हैं, समाचार भेजनेके सभी यंत्र मनुष्यों या वस्तुओंको जल, स्थल या वायु मार्गसे ले जानेके सभी साधन, शस्त्रागार और साधारणतः सब प्रकारकी सामरिक सामग्री छीनी जा सकती है चाहे वह साधारण लोगोंकी ही सम्पत्ति क्यों न हो परन्तु युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें लौटा देना होगा और उनके लिये क्षति-द्रव्य देना होगा‡।

"स्थानीय शासनों § की सम्पत्ति और सार्वजनिक उपासना, दान, शिक्षा, विज्ञान और कला सम्बन्धी संस्थाओंकी सम्पत्ति राज-सम्पत्ति होते हुए भी नागरिकोंकी निजी सम्पत्ति मानी जायगी। इस प्रकारकी संस्थाओं, या ऐतिहासिक स्मारकों या विज्ञान और

---

* इसके लिये अंग्रेजी शब्द Realizable Securities. है। यह उन कागजोंके लिये आता है जो दर्शनी हुंडीकी भांति तत्काल रुपयेमें बदले जा सकें पर आजतक भिन्न भिन्न देशोंकी सर्कारोंमें इस विषयमें ऐकमत्य न हुआ कि यह नाम किन कागजोंको दिया जाय।

‡ १९६४ का हेग समयपत्र, ५३ वीं धारा

§ म्युनिसिपल बोर्ड, जिला बोर्ड इत्यादि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलाकी कृतियोंको नष्ट करना या जान बूझकर किसी प्रकारकी क्षति पहुंचाना निषिद्ध है †"

यह नियम स्पष्ट है। विजेता चल सम्पत्तिको ले सकता है परन्तु इस अधिकारमें भी कुछ अपवाद हैं। नैपोलियनके समयमें फ्रांसकी सेना इटलीसे बहुतसे बहुमूल्य प्राचीन चित्र और मूर्तियां उठा लायी थी। जब १८७२ में अन्तिम सन्धि हुई तो फ्रांसको यह वस्तुएं इटलीको लौटानी पड़ीं। पर यूरोपियन राजनीति एशियावालोंके साथ बर्तनेमें सभी नियमोंको भूल जाती है। १९६९ के बौक्सर युद्धमें जर्मन-सेना चीनसे अत्यन्त प्राचीन कालके ज्योतियंत्र उठा ले गयी पर आजतक किसीने जर्मन-सर्कारको इस बातके लिये विवश न किया कि वह इन्हें पुनः चीन पहुंचा दे।

यूरोपियन महायुद्धमें भी जर्मनोंने बेल्जियममें कई अक्षम्य काम किये। कई प्राचीन गिर्जे (ईसाई उपासनालय), पुस्तकालय, चिचित्रालय, विद्यालय, टाउनहाल इत्यादि नष्ट कर दिये गये। पता नहीं अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंने भी ऐसे बर्बर काम किये या नहीं।

यह हम कह चुके हैं कि समाचार भेजनेके यंत्रोंपर मुल्कगीरी सेनाका कब्जा हो जाता है। इसमें तार-विभागकी सभी सामग्री आ गयी पर जो तार समुद्रके नीचे नीचे जाते हैं उनके नियम इतने सीधे नहीं हैं। यदि जलान्तस्तलचारी तार शत्रु राज्यके दो भागोंको मिलाता है तो उसपर कब्जा करना उचित ही है। यदि वह दो तटस्थ देशोंको मिलाता है तो उसपर कब्जा नहीं हो सकता। यदि वह शत्रु-राजको किसी तटस्थ राजसे मिलाता हो तो, हेगसम्मेलनके निर्देशानुसार, आवश्यकता पड़ने पर मुल्कगीरी सेना उसे काट सकती है परन्तु युद्ध समाप्त होने पर

† १९६४ का हेग समयपत्र, ५६ वीं धारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर उसे लगा देना होगा और उस तटस्थ राजकी क्षतिपूर्ति करनी होगी। यह स्मरण रहे कि ऐसे तार तटलग्न जलमें ही काटे जा सकते हैं; उनको खुले समुद्रमें काटना निषिद्ध है।

मुल्कगीरी सेनाका शत्रुकी अचल सम्पत्तिपर कब्जा अवश्य हो जाता है पर यह कब्जा केवल भोगमात्रके लिये होता है, सम्पत्तिको तोड़ने, फोड़ने, बेचने, नष्ट करनेका अधिकार नहीं मिलता। घर, मकान, बाग, जङ्गल, सब बर्ते जा सकते हैं पर यथासम्भव इनकी अवस्था न बिगड़ने देनी चाहिये। १९२७ में जर्मन सेनाने पूर्वीय फ्रांसके जंगलोंके कई सहस्र बलूतके वृक्ष बेच दिये। युद्ध-समाप्तिके पीछे फ्रेञ्च न्यायालयोंने निर्णय किया कि चूंकि यह पेड़ अभी काटने योग्य नहीं थे अतः जर्मनोंने केवल जङ्गल नष्ट करनेके उद्देश्यसे इन्हें काटा इसलिये उनका ऐसा करना अविहित था और पेड़ोंके क्रेताओंने एक अविहित काममें भाग लिया अतः उनका इन पेड़ोंपर कोई स्वत्व नहीं था।

हेगमें यह भी निश्चय हो गया है कि मुल्कगीरी सेना शिक्षा, दान, उपासना, कला और विज्ञान सम्बन्धी संस्थाओंके लिये पृथक् की हुई शत्रु सम्पत्तिकी आय अपने काममें नहीं लगा सकती।

किसी प्रदेशपर कब्जा करनेपर भी मुल्कगीरी सेना वहांके विधानोंमें प्रायः हस्तक्षेप नहीं करती। जहां तक हो सकता है पुराने कर्म्मचारियोंसे ही काम लिया जाता है। फिर भी उसे शान्ति बनाये रखनेके लिये कुछ नियम बनाने पड़ते हैं। युद्धका समय होता है। साधारण अनवधानता या शैथिल्यका परिणाम भीषण हो सकता है। इसलिये साधारण उपद्रवों या शान्तिभङ्गके प्रयत्नोंके लिये भी कठोर दण्ड देना पड़ता है। ऐसे नियमोंको सैनिकविधान * कहते हैं। यह सैनिकविधान उस सैनिकविधा-

* Martial Law. (मार्शल ला)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नसे भिन्न है जिसे कभी कभी सभी राज्योंको उपद्रवादिके समय स्वयं अपनी प्रजाके विरुद्ध बर्तना पड़ता है।

सैनिक विधान

यह सैनिकविधान तो वस्तुतः साधारण विधान-का ही एक अङ्ग होता है, इसे सैनिक केवल इस लिये कहते हैं कि दण्ड कठोर होते हैं और न्यायालयोंकी प्रक्रिया बहुत ही संक्षिप्त कर दी जाती है ताकि काम जल्दी हो, परन्तु युद्ध कालीन सैनिकविधान तो वस्तुतः विधान ही नहीं है। जैसा कि प्रसिद्ध ब्रिटिश सेनापति ड्यूक आव वेलिंगटनने एक बार कहा था वह मुल्कगीरी 'सेनाके सेनापतिकी इच्छा मात्र" का नाम है। वह अवस्था देख कर चाहे जैसे कड़े नियम बना सकता है पर इतना ध्यान रखना चाहिये कि उसके बनाये नियम अन्ताराष्ट्रिय विधानके सिद्धान्तों या सर्वसम्मत नियमोंके प्रतिकूल न हों।

मुल्कगीरी सेनाके हट जानेपर उसके शासनकालमें जितने निर्णय हुए होते हैं वह रद नहीं होते। उत्तरवर्त्ती सर्कार उन्हें मान लेती है पर उसे यह अधिकार होता है कि यदि मुल्कगीरी सेना राज-सम्पत्तिकी कोई अवैध व्यवस्था कर गयी हो (जैसा कि ऊपर दिये हुए उदाहरणमें जर्मनोंने फ्रेञ्च जंगलोंके साथ किया था) या कुछ नागरिकोंको अपने सैनिकविधानके अनुसार दण्ड दिया हो तो ऐसे निर्णयोंको रद कर दे।

अधिकृत प्रदेशके निवासियोंसे किसी प्रकारकी सैनिक सेवा नहीं ली जा सकती। न तो वह मुल्कगीरी सेनामें भर्ती होनेके लिये विवश किये जा सकते हैं न अपने राष्ट्रकी सेना या सैनिक सामग्री आदिके विषयमें कोई बात बतलानेके लिये विवश किये जा सकते हैं।

अधिकृत प्रदेशके निवासी और सैनिक सेवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकृत प्रदेशके निवासियोंसे मुल्कगीरी सेना अपने राजके प्रति राज-भक्तिकी शपथ नहीं ले सकती, हां जो पुराने राज-कर्म्मचारी अधिकार-कालमें भी काम करना स्वीकार करें उनसे यह शपथ ली जा सकती है कि हम अधिकार-कालमें आपके विरुद्ध कोई काम न करेंगे। परन्तु उसे यह अधिकार है कि जनतासे तटस्थताकी शपथ ले अर्थात् उससे यह वचन ले कि वह युद्धकालमें किसी पक्षकी ओरसे न लड़ेगी।

राज-भक्तिकी शपथ

प्रजा-सम्पत्तिके विषयमें साधारणतः यह कह सकते हैं कि वह मुल्कगीरी सेनाके लिये अग्राह्य है। शस्त्रास्त्र और गमनागमन तथा संवाद-प्रेषणके साधनोंको छोड़ कर अन्य चल सम्पत्तिमें हाथ नहीं लगाया जाता। नाव, तार, रेल, मोटर आदि सैनिक आवश्यकता पड़ने पर ली जा सकती हैं पर इनके लिये रसीद देनी होती है और युद्ध समाप्त होने पर या आवश्यकता बीत जानेपर इनके लिये हर्जाना देना पड़ता है। हेगमें यह निश्चय नहीं हुआ कि हर्जाना कौन पक्ष देगा, यह बात सन्धिके समय उभय पक्ष आपसमें निश्चित कर लेते हैं। अचल सम्पत्तिको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंचायी जाती पर मुल्कगीरी सेनाके सैनिक नागरिकोंके घरोंमें बांट दिये जाते हैं। नागरिकोंसे यह नहीं कहा जा सकता कि तुम लोग सिपाहियोंके लिये अपने घर खाली कर दो, जितने बड़े घर होते हैं उनमें उसी प्रमाणसे सिपाही रख दिये जाते हैं। इनके खाने पीनेका भार नियमतः उनकी सर्कारपर होता है, उन लोगोंपर नहीं जिनके घरोंमें वह टिकाये जाते हैं। पर यह असम्भव है कि किसी मुल्कगीरी सेनाके सिपाही नियमोंका पूरा पूरा पालन करें। नियम यही है कि नागरिकोंको यथासम्भव कोई कष्ट

प्रजा-सम्पत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न दिया जाय पर यह सभी जानते हैं कि ऐसी दशामें नागरिकोंकी खाद्य सामग्री, घरके बर्तन, कुर्सी, पलंग इत्यादि और सर्वोपरि स्त्रियोंके सतीत्वका ईश्वर ही रक्षक होता है। नागरिकोंको यह आदेश रहता है कि यदि कोई सिपाही किसीको तंग करे तो वह तत्काल ही सेनापतिसे जा कर शिकायत करे पर ऐसा साहस कम ही लोगोंको होता है। अधिकांश लोग सब कुछ चुपचाप सहकर अपने प्राण बचानेमें ही अपनेको धन्य मानते हैं।

यद्यपि नियमतः अचल सम्पत्तिको क्षति नहीं पहुंचायी जाती पर जो लोग घर छोड़कर भाग जाते हैं उन्हें लौटने पर अपनी सम्पत्ति ज्योंकी त्यों पानेकी आशा छोड़ देनी चाहिये। इसके साथ ही सेनापतिको सदैव यह अधिकार है कि सैनिक आवश्यकता पड़ जानेपर या यदि किसी घरके निवासी उसको सेनाके हितके विरुद्ध आचरण करें तो वह उस घरको गिरा सकता है और अन्य सम्पत्तिको भी नष्ट या जब्त कर सकता है।

अन्तारा़ष्ट्रिय विधानने मुल्कगीरी सेनाको राजकर (टिकस) उगाहनेका अधिकार न तो दिया है न छीन लिया है। कर वसूल करना न करना उसकी इच्छापर है पर यदि वह वसूल करना निश्चय करे तो उसे उसीमें से शासन (अर्थात् न्यायालय, पुलिस, शिक्षा, अस्पताल आदि) का व्यय चलाना होगा। यदि सब कामोंके लिये पूर्ववत् व्यय करने पर भी कुछ बच रहे तो उसे वह अपने काममें ला सकती है। राजकरका दर नहीं बढ़ाया जा सकता न वह समयके पहिले मांगा जा सकता है। स्थानीय शासन-संस्थाओं अर्थात् नगर तथा जिलाबोर्डों और अन्य एतत्सदृश संस्थाओंकी आयमें हाथ नहीं लगाया जा सकता पर सेनापति इस बातका

राजकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निःसन्देह निरीक्षण कर सकता है कि यह धन उसके विरुद्ध किसी काममें न लगाया जाय ।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि शत्रु-सेना अधिकृत प्रदेशके निवासियोंसे धन या सम्पत्ति बलात् नहीं ले सकती पर वस्तुतः ऐसा नहीं है । लूट पाट निषिद्ध है पर दो तीन ऐसे वैध मार्ग हैं जिनसे कि मुल्कगीरी सेना रुपया आदि वसूल कर सकती है । इनमें सबसे पहिलेको वस्तु-मांग † कहते हैं । सेना अपने साथ बहुत सी रसद रखती है फिर भी समय समय-पर खाद्य सामग्री तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं चूक जाया करती हैं । दूध, घी, मक्खन, फल, मांस, शाक भाजीका तो नित्य ही काम पड़ता है । नियम यह है कि यह वस्तुएं प्रचलित बाजार-भावसे मोल ली जायं और इनका नक्द दाम दिया जाय । बाजार-भाव क्या है इसका निर्णय कभी कभी तो म्युनिसिपल या अन्य स्थानीय कर्मचारियों द्वारा कराया जाता है पर कभी सैनिक अफसर स्वयं करते हैं । अस्तु, यदि नक्द रुपया हुआ तो दिया ही जाता है पर यदि न हुआ तो स्थानीय सेनापति लिख कर घोषित कर देता है कि सेनाके लिये अमुक अमुक वस्तुएं चाहिये । मांग ऐसी होनी चाहिये जिसे वह प्रदेश पूरा कर सके । फिर यदि स्थानीय म्युनिसिपल या अन्य कर्म्मचारियों द्वारा काम सुगमतासे हो सका तो ठीक है नहीं तो सैनिकों द्वारा सब चीजों का संग्रह किया जाता है । कोई व्यापारी यह नहीं कह सकता कि मैं अपना माल न दूंगा । प्रत्येक वस्तुके लिये रसीद दी जाती है । हेगमें (१९६४ में) यह भी निश्चित हुआ कि जितना शीघ्र हो सके रसीदोंके अनुसार रुपया चुका दिया जाय ।

वस्तु मांग

† Requisitions. (रेक्विजिशन्ज़)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि रुपया कौन चुकाये। न्याय्य तो यही है कि जो पक्ष सामग्री बलात् ले वही उसका मूल्य दे पर ऐसा भी होता है कि यदि यह पक्ष जीत गया तो विजित पक्षको ही सब वस्तुओंका मूल्य देनेके लिये बाध्य करता है। कभी कभी इसके विपरीत भी होता है। १९५९ के बोअर युद्धमें ब्रिटिश और बोअर दोनों सेनाओंने इस अधिकारसे दिल खोलकर काम लिया था। अन्तमें बोअर हार गये। नियमतः ब्रिटिश सर्कार केवल अपनी सेनाकी रसीदोंको सकारनेके लिये बाध्य थी पर उसने देखा कि प्रजा दरिद्र हो गयी है, अतः उसने बोअर सेनाकी दी हुई रसीदोंके रुपये भी भर दिये।

रूस-जापान युद्ध (१९६२) में जापानियोंने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। मञ्चूरिया जो वस्तुतः चीनका एक प्रदेश था युद्धक्षेत्र था। जापानियोंने चीनी व्यापारिमण्डलोंसे सम्मति ले कर सब वस्तुओंके मूल्य निश्चित कर लिये और निश्चित मूल्य-सूचियोंको सब नगरों और ग्रामोंमें चिपका दिया। जापानी सैनिक वस्तुओंको लेकर उनके स्थानमें रसीदें देते थे। यह भी पहिलेसे ही घोषित कर दिया गया था कि अमुक अमुक तिथियोंको अमुक अमुक स्थानोंमें रसीदोंको पेश करनेसे उनके लिये रुपया मिला करेगा। यह व्यवहार इतना साफ़ था कि शीघ्र ही यह रसीदें नोटोंकी भांति चलने लगीं क्योंकि लोग यह भली भाँति जानते थे कि नियत तिथियोंपर पेश करनेसे तत्काल ही इनका रुपया मिल जायगा।

अन्ताराष्ट्रय विधानने मुल्कगीरी सेनाको रुपया वसूल करनेका एक और साधन दे रक्खा है। इसे वेहरी * कहते हैं। वस्तु-मांग तो स्थानीय सेनापति कर सकते हैं। वेहरीकी

* Contributions (कॉण्ट्रिब्यूशस)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मांग प्रधान सेनाध्यक्षकी लिखित आज्ञासे ही होती है। इसको यह अधिकार है कि अधिकृत प्रदेशका शासन चलानेके लिये या अपनी सेनाकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये अधिकृत प्रदेशके निवासियोंसे बेहरी मांगे। यदि मुल्कगीरी सेना देखे कि राजकरसे शासनका काम नहीं चल सकता तो शासनके नामपर बेहरी वसूल की जायगी पर 'सेनाकी आवश्यकता' ऐसे गोल शब्द हैं जिनकी परिभाषा हो ही नहीं सकती। रुपया वसूल करके घर तो नहीं भेजा जा सकता पर सेनाका प्रायः सारा व्यय अधिकृत प्रदेशके माथे मढ़ दिया जा सकता है। नैपोलियन-का यही सिद्धान्त था कि युद्धको स्वावलम्बी बनाना चाहिये। जिन लोगोंसे बेहरी ली जाती है उनको रसीद दी जाती है और यथासम्भव उसी दरसे ली जाती है जिस दरसे लोग राज-कर देते हैं। पर यह कहीं नहीं स्पष्ट किया गया कि रसीदोंका रुपया कौन देगा। यदि मुल्कगीरी सेनाकी सर्कार हार गयी तो सन्धि होते समय उसे रुपया चुकानेपर विवश किया जा सकता है नहीं तो लोगोंको सन्तोष करके रह जाना पड़ता है। इस संबंधमें फ्रांससे एक अच्छा उदाहरण मिलता है। १९२८ में जर्मन सेनाने फ्रांसके पूर्वीय प्रान्तोंपर अधिकार करके निवासियों-से बहुत सा रुपया बेहरीके रूपमें वसूल किया था। जर्मन-सर्कार विजयी हुई इस लिये उससे तो एक पैसा भी न मिला पर युद्धके पीछे फ्रेञ्च सर्कारने यह न्याय्य निर्णय किया कि चूंकि इन प्रान्तोंको सारे देशके लिये आपत्ति झेलनी पड़ी है अतः सारे देशको इनका बोझ हलका करना चाहिये। अतः उनलोगोंको रसीदोंके लिये सर्कारी कोषसे रुपया दिया गया।

यदि अधिकृत प्रदेशका कोई व्यक्ति या व्यक्ति-समूह मुल्क-गीरी सेनाके विरुद्ध कोई काम करे तो उसे कठोर दण्ड दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है पर बहुधा ऐसा होता है कि अपराधीका पता नहीं लगता। ऐसी दशामें हेगनियमावलीकी ५० वीं धारा कहती है कि सेनापति-

अर्थदण्ड

को यह अधिकार नहीं हैं कि जनताको सामूहिक रूपसे किसी ऐसी बातके लिये दण्ड दे जिसके लिये वह सामूहिक रूपसे दोषी नहीं मानी जा सकती, पर दोषी ठहराना न ठहराना प्रायः सेनापतिपर निर्भर है। यह असम्भव है कि युद्धके समय साधारण न्यायालयोंका सा सूक्ष्म विचार किया जाय। यदि सेनाके किसी बड़े अंशको ऐसी क्षति पहुंचायी गयी है जो एक दो मनुष्योंका काम नहीं हो सकती तो यही माना जाता है कि अधिकांश नागरिकोंको इनका कुछ न कुछ पता रहा होगा अतः जब उन्होंने न तो उसे स्वयं रोका न सेनापतिको सूचना दी तो सभी दोषके भागी हैं और दण्डार्ह हैं। ऐसी दशामें उनको सामूहिक दण्ड दिया जाता है। बहुधा यह दण्ड अर्थदण्ड* (जुर्माना) का रूप धारण करता है। निवासियोंको एक नियत तिथिके भीतर रुपयोंकी एक नियत संख्या देनी पड़ती है नहीं तो उन्हें अन्य अन्य दण्ड दिये जाते हैं।

रक्षा-शुल्क

मुल्कगीरी सेनाओंको रक्षाशुल्क† मांगनेका भी अधिकार है। हेगनियमावलीमें इस संबंधमें कुछ भी विधान नहीं किया गया है पर प्रथा पुरानी है और उसका स्पष्ट निषेध नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी नगर या प्रान्तसे यह कहा जा सकता है कि यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे ऊपर अधिकार न किया जाय तो इतना रुपया दे दो। यदि वह स्थान वस्तु-मांग और भावी अर्थदण्डादिकोंसे बचना चाहेगा तो चुपकेसे रुपया देकर प्राण बचायेगा।

* Fines (फ़ाइन्ज़) † Ransom (रैंसम)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधारणतः मुल्कगीरी सेनाको यह अधिकार नहीं है कि वह शत्रुके देशको नष्ट भ्रष्ट कर दे। जङ्गलोंको जला देना, पुलोंको तोड़ देना, नदियोंके बांध तोड़ देना, नहरोंके फाटक खोल देना, नगरोंमें आग लगा देना यह सब निषिद्ध है। ऐसी बातोंसे युद्ध तो समाप्त नहीं होता, निरपराधोंको व्यर्थ कष्ट होता है और क्रोध तथा प्रतिहिंसाभावकी वृद्धि होती है। यह सब होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि विनष्टि § का एकमात्र निषेध हो गया है। जबतक युद्धका अस्तित्व है तबतक इसका भी अस्तित्व रहेगा, कमसे कम सम्भावना बनी रहेगी। अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर सब कुछ क्षम्य हो जाता है।

विनष्टि

अध्यापक वेस्टलेकने कार्य्य विशेषका औचित्य या अनौचित्य परखनेके लिये निम्नलिखित दो नियम बतलाये हैं—

(क) जो काम तत्कालवर्ती सैनिक कार्य्यवाहीमें विजय प्राप्त करनेके लिये सहायक नहीं हो सकता वह निषिद्ध है और (ख) जो काम किसी स्पष्ट नियम द्वारा वर्जित नहीं है उसे भी उसी अवस्थामें और उसी सीमा तक करना चाहिये जहां तक कि उससे विजयमें सहायता मिलनेकी आशा हो।

इससे भी यही निश्चय हुआ कि शत्रु-सम्पत्तिको नष्ट करना वर्जित है परन्तु अत्यन्त सामरिक आवश्यकता आ पड़नेपर ऐसा किया जा सकता है। 'अत्यन्त सामरिक आवश्यकता' की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह मुल्कगीरी सेनाके सेनापतिकी बुद्धि और इच्छा तथा उसकी सर्कारकी नीति और संस्कृतिपर निर्भर है। आचार्य्योंकी सम्मति यही है कि केवल उत्पीड़नके उद्देश्यसे विनष्ट करना सर्वथा अवैध है। आवश्यकताके सम्बन्धमें

§ Devastation (डिव्हास्टेशन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी सभी आचार्य व्हीटनके इस मतका समर्थन करते हैं कि 'आवश्यकता तात्कालिक होनी चाहिये। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि हमको आशंका है कि भविष्यत्‌में हमको क्षति पहुंचेगी और आवश्यकता पड़ेगी'। बहुधा सभ्य सर्कारोंने भी इस मतको स्वीकार कर लिया है और अपने यहांकी सैनिक-शिक्षाकी पुस्तकोंमें भी लिख दिया है पर गत महायुद्धमें जो कुछ हुआ उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि समयपर सारे पाठ भूल जाते हैं और पाशव वृत्तियां उद्बुद्ध हो आती हैं।

जब कोई शत्रु बारबार अन्ताराष्ट्रिय विधानकी अवहेलना करता है और सामरिक नियमोंको तोड़ता जाता है तो उसके साथ प्रतिघात* नीति वर्तनी पड़ती है। इसका अर्थ है 'शठे शाठ्यम्'। इससे यथासंभव काम न लेना चाहिये; उपायान्तरके अभावमें ही इसका प्रयोग करना चाहिये और वह भी दण्ड देने मात्रके लिये। एक पक्षकी उन्मार्गगामिता दूसरेको सदाचारसे मुक्त नहीं कर सकती। प्रतिघातका साधारण रूप यह होता है कि शत्रु जिन नियमोंको तोड़ता है उसके प्रति भी वही नियम तोड़े जायं।

प्रतिघात

एक और पुरानी प्रथा है जिसका हेग नियमावलीमें वर्णन नहीं है। वह भी निषिद्ध नहीं कही जा सकती। प्रथा यह है कि जब किसी नगरसे अर्थदण्ड या बेहरी स्वरूप रुपया मांगा जाता है तो वहांके कुछ प्रधान नागरिक प्रतिभू‡ (जमानत) में रोक लिये जाते हैं और अपने सह-नागरिकोंके सदाचारके लिये दायी ठहराये जाते हैं। बोअर युद्धमें जब अंग्रेजी सेनाएं रेलोंपर चढ़कर जाती थीं

प्रतिभू

---

* Reprisal (रेप्राइज़ल) ‡ Hostage (होस्टेज)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो साधारण बोअर नागरिक छिप छिप कर उनपर गोली चलाते थे। तब अंग्रेजोंने यह किया कि गाड़ियोंमें कुछ बोअरोंको भी बलात् बैठा लेने लगे ताकि बोअरोंकी गोलियां पहिले उनके देशवासियों-पर ही पड़ें। यह बोअर भी प्रतिभू ही थे।

सिद्धान्त यह है कि प्रतिभू अवश्य होता है पर उपर्युक्त उदाहरण इसके विरुद्ध जाता है। वस्तुतः प्रथा बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती क्योंकि दो चार मनुष्योंको एक बड़े समूहके अप-राधोंके लिये दायी ठहराना और दण्ड देना न्याय्य नहीं प्रतीत होता। अर्थदण्ड सारे नगरको दिया जाय और वसूल मुट्ठीभर मनुष्योंसे किया जाय, यह उचित नहीं है। पर युद्ध युद्ध है। बोअर युद्धमें जिस क्रूर नीतिसे ब्रिटिश सेनाने काम लिया था वह भी समयपर काम देती है और इसलिये क्षम्य मानी जा सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठवाँ अध्याय।

शत्रु-सम्पत्तिके साथ व्यवहार—जलस्थित सम्पत्ति।

यहां जलस्थित सम्पत्तिसे जहाजों और उनपर लदे हुए माल दोनोंसे तात्पर्य्य है। शत्रु-सम्पत्तिमें सर्कारी और अ-सर्कारी दोनों प्रकारके जहाज परिगणित हैं। सर्कारी जहाजोंमें सैनिक जहाज और साधारण जहाज दोनों ही परिगणित हैं। यदि कोई राज किसी जहाजको कुछ कालके लिये किरायेपर ले ले तो उसकी गणना भी राजकीय जहाजोंमें ही की जाती है।

राजकीय जहाजोंपर सर्कारी अफसर रहते हैं और उनपर राजका झण्डा रहता है। युद्धके दिनोंमें जहाजोंको यह अधिकार रहता है कि अपनेको जैसे चाहें छिपा लें और झूठा अर्थात् किसी अन्य राजका झण्डा लगा लें परन्तु यदि वह लड़ाईमें पड़ जायं तो गोली चलानेके पहिले उन्हें अपना असली झण्डा लगा लेना चाहिये। प्रजाके निजी जहाजोंपर भी राजका झण्डा रहता है पर उन्हें भी छिपानेका अधिकार है। परन्तु सैनिक जहाजोंको लड़ाईके दिनोंमें यह अधिकार रहता है कि खुले समुद्रपर जिस जहाजकी चाहें तलाशी लें, इसलिये भेद छिप नहीं सकता। तलाशीके समय जहाजके कागज-पत्र सब रहस्य खोल देंगे।

यदि एक पक्षको दूसरे पक्षका किसी प्रकारका जहाज किसी तटस्थ राजके नौस्थानों और तटलग्न जलोंको शत्रुके जहाजोंको छोड़ कर अन्य किसी जगह मिल जाय तो वह नब्वी उसे पकड़ कर जब्त कर सकता है।

इस सम्बन्धमें बहुत मतभेद है कि ऐसा करना उचित है या अनुचित। युद्धके लिये औचित्यानौचित्यकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कसौटी यही है कि विजयमें सहायता मिलती है या नहीं। यहांपर हम उन हेतुओंको लिखना अनावश्यक समझते हैं जिनके द्वारा दोनों पक्ष अपने अपने मतका समर्थन करते हैं। कई राजोंकी यह सम्मति है कि व्यापारिक जहाजोंका जब्त करना बन्द कर दिया जाय परन्तु ब्रिटेन इसका विरोध करता रहा है। उसकी नौसेना सबसे प्रबल थी अतः उसे यह विश्वास था कि वह स्वयं सबको क्षति पहुंचा सकेगा पर उसका कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा। गत महायुद्धमें जर्मन पनडुब्बियोंने उसके अभिमानको भारी धक्का पहुंचाया। अब संयुक्तराज तथा फ्रांस और जापानका नौबल भी बहुत बढ़ गया है अतः ब्रिटेन यह आशा नहीं कर सकता कि वह अछूता बच जायगा। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ है कि अब उसकी सम्मतिमें भी परिवर्तन हो रहा है।

इस समयकी प्रचलित प्रथामें भी कुछ अपवाद हैं अर्थात् कुछ शत्रुजहाज ऐसे होते हैं जो छोड़ दिये जाते हैं।

जिस प्रकार स्थलयुद्धमें अस्पताल संरक्ष्य माने जाते हैं उसी प्रकार वह जहाज भी जिनपर औषधादि सुश्रूषा-सामग्री रहती है संरक्ष्य होते हैं। वह जहाज भी जो

चिकित्सा पोत,§ वैज्ञानिक, धार्मिक या लोकहित सम्बन्धी
तथ धार्म्मिक, कामोंमें लगे हों संरक्ष्य होते हैं। पहिले यह
वैज्ञानिक और प्रथा थी कि अपने देशसे चलनेके पहिले ऐसे
लोकहित-रत पोत जहाज शत्रुसर्कारसे अनुज्ञा प्राप्त कर लें।

आजकल इस प्रथाका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं किया जाता इससे यह कहना कठिन है कि यह अब भी है या उठ गयी पर ऐसी अवस्थामें यदि मिल सके तो अनुज्ञा ले लेना ही अच्छा होता है नहीं तो अड़चन पड़ सकती है।

§ Hospital Ships.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो जहाज रणबन्दियोंको स्वदेश पहुंचानेके काममें लगे हों वह भी जब्त नहीं किये जाते परन्तु उनके पास शत्रुसर्कारका अनुज्ञापत्र होना चाहिये। साथ ही ऐसे जहाजपर किसी प्रकारकी युद्ध-सामग्री न होनी चाहिये।

परिचर्या पोत *

समुद्रलग्न देशोंमें ऐसे लाखों मनुष्य होते हैं जिनकी जीविकाका एक मात्र साधन मछली मारना है। ऐसे लोगोंकी नावें नहीं पकड़ी जातीं पर इस नियमके दो अपवाद हैं। एक तो नावें छोटी होनी चाहियें, दूसरे उनसे समुद्रके किनारे ही मछली मारनेका काम लिया जाता हो, गहरे जलमें नहीं। यह आवश्यक नहीं है कि मछुआहे अपने ही देशके तटलग्न जलमें मछली मारें। यदि युद्धके पहिले वह किसी अन्य देशके किनारे मछली मारते रहे हों तो युद्ध छिड़ने पर भी ऐसा कर सकते हैं। इसी प्रकार वह छोटी छोटी नावें भी जो अपने देशके एक नौस्थानसे दूसरे नौस्थान तक किनारेके पास पास चलकर माल ले जाती हैं नहीं पकड़ी जातीं।

मछुआहोंकी नावें और छोटी व्यापारिक नावें

कभी कभी एक शत्रु सर्कार दूसरी शत्रु सर्कारके कुछ प्रजावर्गीयोंको अपने देशमें व्यापार करनेका अधिकार दे देती है। इसी भांति यदि उसने युद्ध-कालमें व्यापार-सम्बन्धी कुछ नियम बनाये हों तो वह यह कर सकती है कि किसी शत्रुवर्गीय या तटस्थदेशीय व्यक्तिके लिये उन नियमोंको ढीला कर दे। ऐसे विशेषाधिकारप्राप्त जहाजोंको उसके सामरिक

अधिकारप्राप्त पोत†

* Cartel Ships. † Licensed Ships.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाज नहीं पकड़ सकते। ऐसा अधिकार सर्कार ही दे सकती है। सेनापति लोग अपने अधिकार-क्षत्रमें अलबत्ता अल्पकालीन विशेष अनुज्ञा दे सकते हैं।

अज्ञ जहाज भी जब्त नहीं किये जाते। अज्ञ जहाज उन जहाजोंको कहते हैं जिनको युद्ध छिड़नेका पता न हो। ऐसे जहाज शत्रुके हाथोंमें तीन अवस्थाओंमें पड़ सकते हैं।

अज्ञ पोत

(१) वह युद्ध छिड़नेके समय शत्रुराजके ही किसी नौस्थानमें हों।

(२) युद्ध छिड़नेपर शत्रुराजके किसी नौ-स्थानमें, युद्ध छिड़नेके वृत्तान्तसे अनभिज्ञ होनेके कारण, लंगर डाल दें।

(३) खुले समुद्रमें यात्रा कर रहे हों और शत्रका कोई रणपोत उन्हें पकड़ ले।

पहले तो ऐसे जहाज जब्त कर लिये जाते थे या नष्ट कर डाले जाते थे। अब प्रायः यह करते हैं कि युद्धके अन्त तक जहाजको रोक रखते हैं फिर उसे छोड़ देते हैं या यदि उसे अपने काममें लाते हैं तो उसके स्वामियोंको उसका मूल्य दे देते हैं। तीसरी दशामें अर्थात् खुले समुद्रमें मिले जहाजोंको कभी कभी नष्ट करना ही सुकर होता है क्योंकि उनको अपने साथ लिये लिये फिरना और अपने राजके किसी नौ-स्थानमें पहुंचाना बड़ा कठिन होता है। ऐसा उन्हीं राजोंके रणपोत कर सकते हैं जिनका साम्राज्य पृथ्वीके सभी भागोंमें हो। अन्यथा जहाजको नष्ट कर देते हैं पर उसके यात्रियों और काग़जोंको बचा लेते हैं और पीछे से उसके स्वामियोंको रुपया दे देते हैं।

जो जहाज युद्ध छिड़नेके समय शत्रुके किसी नौ-स्थानमें पाये जाते हैं उनके लिये एक और प्रथा है। उनको कुछ दिनोंका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवकाश* दिया जाता है। यदि वह उतने दिनके भीतर चले जायं तो उन्हें कोई नहीं छेड़ता, केवल इतना देख लिया जाता है कि उनपर कोई ऐसी वस्तु न हो जिससे शत्रुको सहायता मिल सके। पर यह प्रथा मात्र है। हेगमें यह प्रयत्न हुआ था कि यह अनिवार्य्य नियम बना दिया जाय परन्तु ब्रिटेन तथा कुछ अन्य राजोंके विरोधके कारण ऐसा न हो सका। इन राजोंका कहना यह था कि आजकल बड़े व्यापारिक जहाज बड़ी सुगमतासे रणपोतोंमें परिणत हो सकते हैं अतः ऐसे जहाजोंको छोड़ देनेसे शत्रुके नौबलको सहायता पहुंचनेकी सम्भावना है। इसके विपरीत अमेरिका इस प्रथाको अनिवार्य्य नियम मानता है। पर जो राज अवकाश देते हैं उनके यहां भी कोई एक नियम नहीं है। रूस-जापान युद्धमें रूस अड़तालीस घण्टे और जापान एक सप्ताहका अवकाश देता था।

यह सब नियम और अपवाद तो शत्रुके जहाजोंके सम्बन्धमें हुए। अब हमें उन नियमोंपर विचार करना है जो जहाजोंपर आने जानेवाली सम्पत्तिके लिये बनाये गये हैं। जहाजों और उनपर की सामग्रीके लिये सब नियम एक से नहीं हैं, उनमें कुछ भेद है।

शत्रु-सम्पत्तिके लिये सबसे पहिला नियम वह है जिसे संक्षेपमें 'स्वतंत्र पोतोंपर स्वतन्त्र सम्पत्ति' या "स्वतन्त्र पोतोंपर की सम्पत्ति स्वतन्त्र है" कह सकते हैं।

स्वतंत्र पोतोंपरकी सम्पत्ति स्वतंत्र है §

'स्वतन्त्र पोत' तटस्थ देशोंके पोतोंको कहते हैं। इस नियम या सिद्धान्तका तात्पर्य्य यह है कि यदि दो देशोंमें युद्ध हो और एकके प्रजावर्गीयोंकी असामरिक सम्पत्ति यदि किसी तटस्थ देशीय जहाजमें जा रही हो तो उसे दूसरे देशके रणपोत छोड़

* Days of Grace. § Free Ships, Free Goods.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देंगे। यही सम्पत्ति यदि शत्रुके अपने देशके जहाज़पर जाती हो तो जहाज़के साथ ही ज़ब्त कर ली जायगी।

शत्रु-जहाजमें जानेवाली और वस्तुएं तो जब्त कर ली जाती हैं पर शत्रुकी डाक नहीं रोकी जाती। न तो सर्कारी डाक रोकी जाती है न प्रजाकी। यद्यपि आजकल

डाक

बहुत सा सर्कारी काम तार और बे-तार द्वारा होता है फिर भी बहुत से राजोंको इस अपवादसे लाभ पहुंचता है। डाक ले जानेवाले जहाज विशेष आवश्यकता पड़नेपर रोके जा सकते हैं पर रोकनेवालेका कर्तव्य

ललितकला और पुस्तकें

है कि डाकको यथास्थान पहुंचा दे। पुस्तकें और ललितकला सम्बन्धी वस्तुएं (जैसे चित्र, मूर्ति, बाजे, इत्यादि) भी रोकी नहीं जातीं। इनके लिये कोई लिखित नियम नहीं है पर प्रायः सभ्य राजोंका व्यवहार ऐसा ही है।

अज्ञ पोतोंके साथ जो व्यवहार किया जाता है वही उनपरकी

अज्ञ पोतोंपर की सम्पत्ति

सम्पत्तिके साथ भी किया जाता है। या तो वह युद्धके बाद लौटा दी जाती है या अपने काममें लायी जाती है और उसके स्वामियोंको क्षतिपूर्तिके लिये रुपया दे दिया जाता है।

चिकित्सा पोतोंकी भांति उनपर की सामग्री भी संरक्ष्य है

चिकित्सा पोतोंपर की सामग्री

परन्तु अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर उसे अपने काममें ला सकते हैं। ऐसी दशामें चिकित्सा पोतपर जो रोगी हों उनके लिये समुचित प्रबन्ध कर देना होगा।

स्थलयुद्धकी भांति जलयुद्धमें भी रक्षाद्रव्य देनेकी प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है और अन्ताराष्ट्रिय विधानने इसे मना नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया है। यदि कोई व्यापारिक जहाज शत्रु के किसी रणपोतके हाथ पड़ जाय तो उसके स्वामी (या कप्तान) को यह अधिकार है कि रणपोतके अफसरोंसे इस प्रकारका समझौता कर ले कि हम आपको इतना रुपया देंगे, हमें छोड़ दीजिये। यदि समझौता हो गया तो व्यापारिक पोतका एक नाविक रणपोतपर प्रतिभू (जमानत) की भांति रख लिया जाता है और रक्षाद्रव्य-पत्र § (वह कागज जिसमें जहाजका स्वामी एक नियत अवधिके भीतर रुपया देनेकी प्रतिज्ञा करता है) पर हस्ताक्षर होकर वह भी रख लिया जाता है। उसकी एक प्रतिलिपि जिसपर रणपोतके कप्तानका हस्ताक्षर होता है उस व्यापारिक जहाजको दे दी जाती है और उसे एक नियतमार्गसे अपने राजके एक नियत नौस्थानको नियत अवधिके भीतर जानेकी अनुज्ञा दे दी जाती है। रक्षाद्रव्य-पत्रकी प्रतिलिपिके कारण उसे शत्रुका कोई रणपोत नहीं पकड़ता परन्तु यदि वह अवधि या मार्गकी प्रतिज्ञाके विरुद्ध आचरण करे और इसके लिये कोई सन्तोषजनक कारण न बतला सके तो पकड़ा जा सकता है। ऐसी दशामें उसे बेचनेसे जो कुछ मिलें उसमेंसे उसके पहिले पकड़नेवाले अपना रक्षाद्रव्य ले लेंगे, शेष रुपया दूसरी बार पकड़नेवाले ले लेंगे। यदि पकड़नेवाले स्वयं पकड़ लिये जायं और उस समय उनके पोतपर प्रतिभू और रक्षाद्रव्यपत्र हों तो फिर व्यापारिक जहाज अपनी प्रतिज्ञासे मुक्त हो जाता है।

रक्षाद्रव्य*

अधिकांश सर्कारोंने यह अनुज्ञा दे दी है कि यदि उनके राज्यका कोई व्यापारिक जहाज अपनी प्रतिज्ञासे मुकर जाय तो शत्रु रणपोतकी ओरसे उसपर न्यायालयमें अभियोग चल सकता है। युद्ध कालमें भी ऐसे अभियोग चलने पाते हैं। ब्रिटेनने

*Ransom § Ransom Bill

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने रणपोतोंके लिये रुपया लेकर शत्रु राज्यके व्यापारिक जहाजोंको छोड़ देना निषिद्ध कर दिया है।

यदि एक शत्रुने किसी जहाज और उसपर की सम्पत्तिको अपने कब्जेमें कर लिया हो और फिर वह दूसरे शत्रुके हाथ लग जाय

अपहृतोद्धार

तो उसके साथ क्या करना चाहिये इस विषयमें पहिले बहुत मतभेद था। पीछेसे रोमन विधानके जस पोस्ट लिमिनिआइ* का आश्रय लिया गया। इसका आशय यह है कि जो वस्तु या व्यक्ति शत्रुके हाथसे मुक्त किया जाय वह अपनी पूर्व स्थितिको प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि शत्रुके हाथसे पुनरपहृत जहाज उसके पुराने स्वामीको लौटा दिया जाय। ऐसा ही होता भी है पर यदि शत्रुने उस जहाजको रणपोतमें परिणत कर डाला हो तो इस नियमसे काम नहीं लिया जाता।

जहाजको लौटानेके पहिले उसके स्वामियोंसे पारिश्रमिकस्वरूप कुछ रुपया लिया जाता है। इसको उद्धरण शुल्क § कहते हैं। इसका निश्चय न्यायालयोंके द्वारा होता है। भिन्न भिन्न देशोंमें शुल्क लेनेके अतिरिक्त और भी भिन्न भिन्न शर्तें बर्ती जाती हैं।

ब्रिटेनमें यह नियम है कि यदि जहाज किसी तटस्थ देशवासीका हो तो ब्रिटिश न्यायालय सब बातोंको देखकर यह अनुमान करनेका प्रयत्न करता है कि यदि यह जहाज शत्रुके देशमें पहुंच जाता तो शत्रुका न्यायालय इसे छोड़ देता या जब्त करता। यदि छोड़ देनेकी सम्भावना प्रतीत होती है तो जहाज बिना उद्धरण शुल्क लिये लौटा दिया जाता है, यदि जब्त होनेकी सम्भावना प्रतीत होती है तो समुचित शुल्क लेनेकी व्यवस्था दी

* Jus Post liminii. § Salvage money

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है। यदि जहाज किसी ब्रिटिश प्रजाका हो तो उसके मूल्यका अष्टमांश शुल्कके रूपमें लेकर जहाज लौटा दिया जाता है पर यदि उसे छुड़ानेमें विशेष परिश्रम लगा हो तो चतुर्थांश तक शुल्क मिलता है।

यदि शत्रु द्वारा अपहृत जहाजके नाविक स्वयं अपने परिश्रमसे अपनेको मुक्त कर लें तो उन्हें कोई पुरस्कार नहीं मिलना क्योंकि यह उनके कर्तव्यका एक अंग है पर यदि इस काममें किसी तटस्थ देशका निवासी हाथ बंटाए तो उसे पुरस्कार देना अनिवार्य्य होता है। यदि किसी स्थलसेनाकी सहायता या प्रयत्नसे किसी जहाजका उद्धार हो तो उस स्थलसेनाको ही उद्धरण शुल्क मिलता है।

जहाजोंको पकड़ने और जब्त करनेके अधिकारसे तभी काम लिया जा सकता है जब रणपोतोंको यह अधिकार हो कि वह जिस जहाजको चाहें रोककर तलाशी लें।

तलाशीका अधिकार यह अधिकार अन्तारराष्ट्रिय विधानने दे रक्खा है। उभय पक्षके रणपोतोंको यह अधिकार है कि समुद्रमें आते जाते जिस असैनिक जहाजको चाहें रोकें। असैनिकका तात्पर्य यह है कि शत्रुके सैनिक जहाजको रोकनेका तो सदैव अधिकार है क्योंकि उससे तो लड़ाई ही है पर किसी तटस्थ देशके सैनिक जहाजको रोकना उसका घोर अपमान करना है जिसका परिणाम भयंकर हो सकता है। यदि कोई रणपोत भूलसे ऐसा कर बैठे तो क्षमायाचना करके शीघ्र ही पीछा छुड़ाया जाता है।

यदि रोका गया असैनिक जहाज शत्रु-देशीय है तो उसका जब्त होना निश्चय है। हां, यदि उसमें सामर्थ्य हो तो लड़कर भले ही बच जाय। यदि वह किसी तटस्थ देशका है तो उसके लिये लड़ना निषिद्ध है। यदि वह लड़ा और हार गया तो उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ शत्रुपोतका सा बर्ताव किया जायगा, यदि जीत गया तो उसके राजकी सर्कारसे शिकायत की जायगी और उसे स्वदेशमें ही दण्डित होना पड़ेगा।

रणपोतोंको अधिकार है कि भेष बदलकर (अर्थात् अपने राष्ट्रीय झण्डेको छिपाकर) संदिग्ध जहाजोंका पीछा करें पर तलाशी लेते समय उन्हें अपना झण्डा दिखला देना होगा। यदि सन्दिग्ध जहाज इतना निकट न हो कि उससे बात की जा सके तो सिग्नल * के द्वारा उसे ठहरनेकी आज्ञा दी जाती है। यदि वह न रुके तो खाली कारतूसका फायर किया जाता है। यदि वह फिर भी न रुके तो एक गोला इस प्रकार दागा जाता है कि उसके ऊपरसे निकल जाय। यदि वह इतनेपर भी न रुके तो उसपर गोली चलाना होगा। ऐसी दशामें जो कुछ होता है उसे तलाशी न कहकर युद्ध कहना चाहिये। यदि जहाज रुक गया तो रणपोतका एक अफसर कुछ नाविकोंको लेकर उसके पास जाता है। पहिले वह अकेले उसपर जाता है। यदि उसके कागजोंको देखकर और उसके कप्तानसे बात करके उसे कोई सन्देह न हुआ तो वह लौट आता है नहीं तो वह अपने नाविकोंको भी बुला लेता है और पूरी तलाशी ली जाती है। यदि सन्देहका समर्थन हुआ तो जहाजके कागज रोक लिये जाते हैं और उसके कप्तानको अपने जहाजपर ले आते हैं और उस जहाजको अपने देशके किसी ऐसे नौस्थानमें ले जाते हैं जहां न्यायालय हो। वहां जानेपर उसकी पूरी तलाशी होती है। यदि न्यायालयकी सम्मतिमें उसका पकड़ना न्याय्य हुआ तो उसे बेचकर उसका मूल्य पकड़नेवालोंको

* सिग्नल कई प्रकारसे किया जाता है। साधारणतः झण्डे या प्रकाशके सांकेतिक चिह्नोंसे काम लेते हैं। आजकल बे-तारसे भी यह काम लिया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दे दिया जायगा, यदि सन्देहके निराधार न होनेपर भी पूरा प्रमाण न मिला तो उसे छोड़ देते हैं पर यदि सन्देह निराधार ठहरा तो उसे क्षतिपूर्तिके लिये रुपया मिल सकता है।

तलाशीका अधिकार आवश्यक है पर आजकल इससे बड़ी अड़चन पड़ती है। एक एक जहाज़पर करोड़ों रुपयेका माल लदा रहता है। ऐसे जहाज़ोंको किसी उपयुक्त नौस्थानमें ले जाने, वहां सारा माल उतारने और फिर लादनेमें कई दिन लग जाते हैं, जहाजवालोंका सहस्रों रुपया बिगड़ जाता है और जिन लोगोंका माल होता है उनकी भारी क्षति होती है। ऐसी बातोंसे आपसका मनमुटाव बढ़ता है। कुछ लोगोंका यह प्रस्ताव था कि जिन तटस्थ असैनिक जहाजोंके साथ उनके राजके सैनिक जहाज हों उनकी तलाशी न ली जाय, अर्थात् सैनिक जहाजका साथ होना इस बातका प्रमाण मान लिया जाय कि उस जहाजकी कोई कार्य्यवाही नियमविरुद्ध नहीं है। पर इस परामर्शके अनुसार काम नहीं हो सकता क्योंकि यह असंभव है कि सब व्यापारिक जहाजोंके साथ रणपोत भेजे जा सकें। एक सम्मति यह है कि तटस्थ राज असन्दिग्ध जहाजोंको सर्टिफिकेट दे दिया करें और शत्रुओंके रणपोत इन राजकीय सर्टिफिकेटोंको प्रमाण मान कर तलाशी न लें। यह प्रस्ताव अधिक सम्भव है पर अभी इस विषयमें कुछ निश्चय नहीं हुआ है।

जिन जहाजोंके विषयमें यह सन्देह होता है कि यह डकैतों-के जहाज हैं उनकी तलाशी लेनेका सदैव सभी राष्ट्रोंके जहाजोंको अधिकार है। यदि तलाशी लेनेपर जहाज सचमुच डकैत ठहरे तब तो ठीक ही है, पर यदि सन्देह झूठा निकला तो बड़ी अड़चन पड़ती है। क्षमा मांगनी पड़ती है, क्षतिपूर्तिके लिये रुपया देना होता है, फिर भी कुछ मनमुटाव बना ही रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊपर जहाजके कागजोंका कई बार उल्लेख हुआ है। भिन्न भिन्न देशोंके विधान इस विषयमें एकसे नहीं हैं पर अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार प्रत्येक जहाजपर ऐसे कागज (वही खाता या रजिस्टर) होने चाहियें जिनसे यह स्पष्ट ज्ञात हो सके कि जहाज किस देशका है, उसका स्वामी कौन है, उसपर कितना, किस किस प्रकारका और किस किसका माल लदा है और वह कहांसे कहां जाने वाला है। इसके अतिरिक्त कप्तान और अन्य अफसरों-के नामों तथा नाविकोंके नामोंकी सूची होनी चाहिये और यदि जहाज किसीके हाथ किसी प्रकार हस्तान्तरित किया गया हो तो इसका भी पूरा पूरा प्रमाण होना चाहिये। यदि किसी जहाजके कागज पूरे न हों या ठीक तरहसे न लिखे हों या झूठे हों या बिगाड़े गये हों या छिपा दिये गये हों या जान बूझ कर फेंक दिये गये हों तो उसके ऊपर अगत्या सन्देह होता है।

जहाजके कागज

जहां तक हो सके सन्दिग्ध और पकड़े हुए जहाज़ोंको किसी ऐसे नौस्थानमें ले जाना चाहिये जहां उपयुक्त न्यायालय उनके-विषयमें निर्णय कर सके। पर कभी कभी ऐसा करना असम्भव हो जाता है। आत्म-रक्षा इस बातके लिये विवश करती है कि रोका हुआ जहाज़ डुबा दिया जाय। यदि वह जहाज़ शत्रुदेशीय है तो विशेष अड़चन नहीं पड़ती परन्तु यदि वह तटस्थ देशीय है तो कई बातोंपर ध्यान रखना पड़ता है। जहाज़के काग़ज़ोंको तथा अन्य ऐसी चीज़ोंको जिनको उसका कप्तान स्वपक्षपोषक समझे सुरक्षित करके रख लेना होता है और जितना शीघ्र हो सके किसी उपयुक्त न्यायालयके सामने उपस्थित करना होता है। वहां पहिले इस प्रश्नपर

अपहृत सम्पत्तिको डुबा देना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार होता है कि वस्तुतः डुबानेकी आवश्यकता थी या नहीं। यदि रणपोत इस बातका प्रमाण न दे सके तो उसे जहाज़के लिये पूरा हर्जाना देना पड़ता है। यदि यह बात सिद्ध हो गयी तब फिर काग़ज़ों और अन्य प्रमाणोंके आधारपर यह देखा जाता है कि उसका जब्त करना न्याय्य था या अन्याय्य। यदि न्याय्य सिद्ध हुआ तो ठीक ही है नहीं तो उस जहाज़के स्वामियोंको क्षतिपूर्तिस्वरूप रुपया मिलता है और जिन लोगोंका माल डूब गया रहता है उनको भी मालका मूल्य मिलता है।* इन नियमों-का प्रतिफल यह है कि रणपोतोंके अध्यक्ष संकट पड़नेपर सन्दिग्ध तटस्थ जहाज़ोंको डुबानेके स्थानमें छोड़ देना अधिक पसन्द करते हैं।

ऊपर हम कई स्थलोंमें उपयुक्त न्यायालयोंका उल्लेख कर आये हैं। ऐसे न्यायालयोंकी आवश्यकता स्पष्ट ही है। यदि

न्यायालय

केवल शत्रु-सम्पत्तिका प्रश्न हो तो वह तो चुपकेसे जब्त भी कर ली जाय पर तटस्थोंकी सम्पत्तिके सम्बन्धमें भी प्रश्न उठते हैं। इनका निर्णय रणपोतोंके कप्तानोंके ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता। इसके साथ ही साधारण न्यायालयोंमें भी ऐसे निर्णय सुगमता-से नहीं हो सकते। उन न्यायालयोंके पास एक तो यों ही बहुत काम रहता है, दूसरे उनकी प्रणाली ऐसी होती है कि साधारण नियमों-में महीनों लग जाते हैं। इसलिये प्रत्येक राज युद्ध आरम्भ होते ही कई विशेष न्यायालय स्थापित करता है। यह न्यायालय ऐसी जगह खोले जाते हैं जहां रणपोत आदि शत्रु सम्पत्ति-अपहर्ताओंको सुविधा हो। शत्रुसे छीनी हुई सम्पत्तिको 'प्राइज़' (अपहृत सम्पत्ति)†

---

* यह स्मरण रखना चाहिये कि हरजानेका रुपया रणपोतका स्वामी राज देता है, पोतके अफसर या नाविक नहीं। † Prize

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और ऐसे न्यायालयोंको 'प्राइज कोर्ट' (अपहृत सम्पत्ति सम्बन्धी न्यायालय)§ कहते हैं। इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश अन्तर्राष्ट्रिय विधानकेज्ञाता होते हैं और उसीके अनुसार अभियोगोंका निर्णय करते हैं। उनको अपनी सर्कारके बनाये हुए युद्धकालीन विशेष नियमोंपर भी ध्यान रखना पड़ता है पर उनका मूल आधार अन्ताराष्ट्रिय विधान ही होता है। इस सम्बन्धमें संयुक्तराज (अमेरिका) की नीति सबसे उत्तम है। उसने स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषित कर दिया है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान सर्वोपरि है और जो राष्ट्रीय विधान उसके प्रतिकूल होंगे वह मान्य न होंगे।

यह न्यायालय कितने ही निष्पक्ष क्यों न हों परन्तु इनसे सब पक्षोंको पूर्ण सन्तोष होना कठिन है। न्यायाधीश और रणपोतकी राष्ट्रीयता एकही होती है। इसलिये १९०७ में हेगमें एक अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयकी व्यवस्था हुई। उसके लिये नियम भी बनाये गये पर अभी वह कार्य्य रूपमें परिणत न हो सके। इस बीचमें उसके मुख्य समर्थकोंमें से दो अर्थात् जर्मनी और आस्ट्रिया अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं और रूस अभी राजसम्प्रदायसे पृथक् सा है। इधर राष्ट्रसंघका जन्म हो गया है। उसने स्वयं एक अन्ताराष्ट्रिय महान्यायालयकी सृष्टि की है। इसलिये इस सम्बन्धमें कुछ विशेष लिखना अनावश्यक है।

(अन्ताराष्ट्रिय प्राइज कोर्ट†)

---

§Prize Court. † International Prize Court.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवाँ अध्याय।

बलप्रयोगकी सीमा।

यों तो अभी तक युद्धमें विजय प्राप्त करनेका प्रधान साधन बलप्रयोग ही रहा है और सम्भवतः सैकड़ों वर्षों तक रहेगा पर सभ्य जगत् बराबर इस बातकी चेष्टा करता रहा है कि राजों और उनकी सेनाओंके स्वेच्छाचारमें कमी हो। सेनापति यही चाहता है कि वह जैसे बन पड़े शत्रुको निर्वीर्य कर दे और यदि वह ऐसा कर सका तो उसकी सर्कार उससे प्रसन्न होती है और स्वदेशमें उसे तात्कालिक ख्याति मिलती है। परन्तु अब राष्ट्रोंका पार्थक्य बहुत कुछ कम हो रहा है। मनुष्यताका स्थान राष्ट्रीयतासे ऊँचा माना जाने लगा है और उदार स्वार्थ भी यह बतलाता है कि अनियंत्रित बलप्रयोग विजितको ही क्षति नहीं पहुंचाता प्रत्युत परम्परया विजेता और सारे सभ्य जगत्के लिये हानिकारक होता है। नैतिक विचार क्रमशः शुद्ध पाशव बलप्रयोगको दबानेका प्रयत्न कर रहे हैं और उनको आंशिक सफलता भी हुई है।

बलप्रयोगका मूल सिद्धान्त यह है कि शत्रुकी विरोध-शक्ति नष्ट हो जाय, वह हतवीर्य्य हो जाय। इस लिये उतना ही बलप्रयोग करना चाहिये जिससे इस उद्देश्यकी सिद्धि हो। सेण्ट-पीटर्सबर्ग (वर्तमान पीट्रोग्राड) की घोषणा (१९४५) की प्रस्तावनामें लिखा है "राजोंको युद्धका एक ही लक्ष्य मानना चाहिये, अर्थात् शत्रुकी सैनिक शक्तिको दुर्बल करना, और इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिये यह पर्याप्त है कि अधिकसे अधिक मनुष्य युद्धके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिये बेकाम कर दिये जायं। यदि ऐसे शस्त्रोंसे काम लिया जाय जिनसे आहतोंकी पीड़ामें वृद्धि हो या उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी हो जाय तो उपर्युक्त लक्ष्यका अतिक्रमण हो जायगा।"

इसी सिद्धान्तके आधारपर १९६४ में हेगमें कुछ नियम बने थे। यह नियम चतुर्थ समयपत्रमें परिशिष्टके रूपमें जोड़ दिये गये हैं। पहिले इन्होंने यह स्पष्ट किया है कि शत्रुको क्षति पहुंचानेके साधन योद्धाओंकी स्वेच्छापर निर्भर नहीं करते और फिर निम्नलिखित कामोंको विशेषतया निषिद्ध ठहराया है—

निषिद्ध साधन

(क) विष और विषाक्त शस्त्रोंका प्रयोग।

(ख) शत्रु पक्षके मनुष्योंको धोखेसे मार डालना या आहत करना।

(ग) जिस शत्रुने शस्त्र डाल दिये हों या जो आत्मरक्षामें असमर्थ हो उसे मार डालना या आहत करना।

(घ) यह घोषित करना कि हथियार रख देनेपर भी दया न की जायगी।

(ङ) ऐसे शस्त्रों या वस्तुओंसे काम लेना जिनसे व्यर्थ पीड़ा हो।

(च) विराम पताकाओं, राष्ट्रीय झण्डों या शत्रुके सैनिक चिन्हों और वर्दियों तथा अस्पताली चिन्होंका दुष्प्रयोग (अर्थात् इनके द्वारा धोखा देना)।

(छ) बिना अत्यन्त सैनिक आवश्यकताके शत्रु-सम्पत्तिको छीनना या नष्ट करना।

(ज) यह घोषित करना कि शत्रु-राजके नागरिकोंके सब स्वत्व लुप्त हो गये और अब न्यायालयोंमें उनकी रक्षा न की जायगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(झ) शत्रु-देशके निवासियोंको स्वदेशके विरुद्ध युद्धमें भाग लेनेके लिये विवश करना, चाहे युद्धके पहिले यह लोग उसके (अर्थात् शत्रु के) यहां नौकर भी रहे हों।

(ञ) अधिकृत प्रदेशोंके निवासियोंको अपने देशकी सेना या रक्षाके उपायोंके सम्बन्धकी गुप्त बातें खोलनेके लिये विवश करना।

यह नियम बहुत ही उदार हैं पर इनके साथ एक ऐसी वस्तु लगी हुई है जो इनके पूर्ण प्रयोगको कभी कभी रोक देती है। 'सैनिक आवश्यकता' का ठीक ठीक अर्थ करना कठिन है। इसका निर्णय तात्कालिक ही होता है और बहुधा स्थानीय सेनापतियोंके हाथमें होता है। इसलिये ऐसा स्यात् ही कोई युद्ध होता होगा जिसमें इनमेंसे कुछकी अवहेलना न होती हो। यूरोपीय महासमरमें भी इसके कई उदाहरण मिले। कहा जाता है कि जर्मन सर्कारने अपने सेनापतियोंको यह निर्देश कर रक्खा था कि शत्रुकी न केवल सैनिक किन्तु नैतिक और मानसिक शक्ति भी नष्ट कर दी जाय ताकि उसकी सिर उठानेकी सामर्थ्य ही जाती रहे। इसी लिये अधिकृत प्रदेशोंमें प्रजापर भाँति भाँतिके अमानुषिक अत्याचार किये गये। हम नहीं कह सकते कि यह आक्षेप कहां तक न्याय्य है। हमें यह भी नहीं पता है कि जर्मनोंके विरोधियोंने क्या क्या किया।

जिन नगरों, गृहसमूहों और ग्रामोंमें किसी प्रकारकी किलाबन्दी न हो उनपर न तो आक्रमण हो सकता है, न अग्निवर्षा की जा सकती है, न उनका घेरा किया जा सकता

घेरा और बमबाजी है। (१९६४) की हेग नियमावलीमें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें लिख दी गयी है कि अग्निवर्षा करनेके किसी साधनसे काम नहीं लिया जा सकता। यदि यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियम न होता तो वायुयानोंद्वारा बम गिराये जा सकते। कहा जाता है कि महासमरमें जर्मनोंने इस नियमकी अवहेलना करके ब्रिटेनके कई नगरोंपर वायुयानोंसे बम गिराये। जो नगर सुरक्षित हों अर्थात् जिनमें किले हों उनपर आक्रमण हो सकता है और बम-वर्षा की जा सकती है परन्तु ऐसा करनेके पहिले नगरके स्थानीय अधिकारियोंको सूचना दे देनी चाहिये (परन्तु यदि धावा मारकर कब्जा करनेका विचार हो तो बिना सूचना दिये भी आक्रमण किया जा सकता है) और यथासम्भव उपासना, कलाकौशल, शिक्षा, चिकित्सा आदि धर्म्मसम्बन्धी इमारतोंको बचाना चाहिये। ऐतिहासिक स्मारक भी सुरक्ष्य इमारतोंमें परिगणित हैं। नागरिकोंको भी चाहिये कि ऐसे स्थानोंपर किसी विशेष प्रकारका झण्डा या अन्य दूरसे देख पड़ने वाले परिचायक चिन्ह लगा दें और आक्रामक सेनाको उस चिन्हकी सूचना दे दें। कभी कभी युद्धकारी सेनाएं एक दूसरेके साथ इससे भी अधिक उदारता दिखलाती हैं। १९५६ में बोअर सेना लेडीस्मिथको घेरे पड़ी थी। उसने अंग्रेज़ सेनापतिको कहला भेजा कि तुम अपने रोगियों और आहतोंको इण्टोम्बी (जो किलेके बाहर परन्तु नगरकी परिधिके भीतर था) भेज दो, उसपर गोलाबारी न की जायगी। ऐसा ही किया गया। न केवल रोगी और आहत किन्तु स्त्रियों और बच्चोंको भी वहीं भेजनेकी अनुज्ञा मिल गयी। १९२७ में जर्मन सेना स्ट्रास्बर्गपर आक्रमण कर रही थी। वह उसे धावा करके लेना चाहती थी। अतः फ्रेञ्च अधिकारियोंके पास कहला दिया गया कि जो स्त्री बच्चे और सेनासे सम्बन्ध न रखनेवाले पुरुष चाहें नगरके बाहर चले जायं, जर्मन सेना उन्हें बेरोकटोक जाने देगी। ऐसाही किया गया परन्तु उसी युद्धमें पैरिस वालोंको जर्मनोंने यह सुविधा न दी। वह जानते थे कि धावा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करके पैरिसको जीतना सुकर न होगा अतः वह उसे घेरकर बैठ गये और किसीको भी बाहर न जाने दिया ताकि भूखसे पीड़ित होकर लोग आत्मसमर्पण कर दें।

तटवर्ती नगरों, ग्रामों और इमारतोंके लिये भी यही नियम हैं। यदि उनमें किसी प्रकारकी किलाबन्दी न हो तो उनपर आक्रमण करना या बम गिराना निषिद्ध है। पर इस नियमके दो अपवाद हैं। यदि उनमें शस्त्रागार हों या रणपोत हों या ऐसे कलकारखाने हों जो सैनिक काममें लगाये जा सकते हों तो शत्रुका नौबलाध्यक्ष* कह सकता है कि इन्हें एक नियत अवधिके भीतर स्वयं नष्ट कर दो। यदि उसका निर्देश न माना जाय तो अवधि बीतनेपर वह उन्हें नष्ट करनेके लिये गोलाबारी कर सकता है। इसके लिये पहिलेसे सूचना देना न देना उसकी इच्छापर निर्भर है। यदि गोलाबारी हो तो यथासम्भव धार्मिक और ऐतिहासिक इमारतोंको बचाना चाहिये। नागरिकोंको भी चाहिये कि ऐसी इमारतोंपर परिचायक चिन्ह लगादें। चिन्हके लिये यह निश्चय हुआ है कि बड़े बड़े चौड़े चौखूंटे तख्ते खड़े कर दिये जायं जो बीचमें रेखा खींच कर दो त्रिभुजोंमें विभक्त हों। इनमें ऊपरका त्रिभुज काला और नीचेका श्वेतरंगका होना चाहिये। दूसरा अपवाद यह है कि यदि उन तटवर्ती स्थानोंसे सेना या रणपोतके कामके लिये खाने पीनेकी आवश्यक सामग्री मांगी जाय और वह मूल्य (या रसीद) पाने पर भी देनेसे इंकार करें तो उनपर गोलाबारी की जा सकती है।

तोपोंसे कैसे गोले बरसाये जायं इस विषयमें भी बहुत विचार हुआ है। यह स्मरण रखना चाहिये कि लक्ष्य केवल इतना ही है कि सिपाही उस युद्धमें फिर भाग न ले सकें।

* Naval Commander. (नेवल कमैंडर)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्योंका निरर्थक उत्पीड़न किसी सभ्य राजका अभीष्ट नहीं हो सकता। इसलिये पहिले ऐसे गोलोंका प्रयोग निषिद्ध हुआ जिनमें कीलें, बटन, कांचके टुकड़े, चाकुओंके फल आदि शरीरको फाड़ने वाली वस्तुएं भरी हों। ऐसे बड़े गोले जो गिरनेपर फूटते हैं काममें लाये जा सकते हैं पर फूटने वाले छोटे गोले जो तौलमें सात छटांकसे कम हों प्रयुक्त नहीं हो सकते। ऐसे छोटे गोले शरीरको सदैवके लिये बेकाम कर देते हैं। तेजाब भरी गोली नहीं छोड़ी जा सकती। ऐसी गोलियां भी जो शरीरसे टकरानेपर चिपटी हो जाती हैं या अवयवोंको छेद डालती हैं निषिद्ध हैं।

गोले गोलियां

इनमेंसे कुछ नियम ऐसे हैं जो स्पष्ट शब्दोंमें सर्वसम्मत नहीं हैं पर यह निश्चय है कि इनमेंसे सभी आदरणीय हैं और इनमेंसे किसी एककी अवहेलना करना न्यूनाधिक असभ्यता और बर्बरताका ही सूचक समझा जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि पाश्चात्य देश अपनेको सभ्यताका ठेकेदार समझते हैं परन्तु उनके समता सिद्धान्त सबके लिये नहीं होते। संयुक्त राज और ब्रिटेन फटने वाली गोलियोंके तो विरुद्ध हैं पर चिपटी हो जानेवाली गोलियोंको बुरा नहीं समझते। इनमें भी संयुक्त राजका यह मत है कि असभ्य राष्ट्रोंसे, जो स्वभावतः निर्भय होते हैं और प्राणोंकी परवाह न करके धावा मारते हैं, युद्ध करते समय तो ऐसी गोलियोंका चलाना सर्वथा क्षम्य है!

शत्रुके प्रदेशको उजाड़ डालना और नगरों, ग्रामों और मकानोंको नष्ट भ्रष्ट करना या जला डालना भी निषिद्ध है। यदि शत्रु इन स्थानोंसे आक्रमणकारी सेनापर गोली चलाये या बिना इन्हें नष्ट किये सेनाका आगे बढ़ना ही असम्भव हो तो ऐसी दशामें ऐसा करना क्षम्य हो सकता है।

विनष्टि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि कोई राष्ट्र आत्मरक्षाके लिये अपने देशको उजाड़ कर दे तो उसे कोई बुरा नहीं कह सकता प्रत्युत इस त्यागकी सर्वत्र प्रशंसा होगी। स्पेनसे स्वतन्त्र होनेके प्रयत्नमें डच लोगोंने बांध तोड़ कर अपने देशका बहुत बड़ा प्रदेश समुद्रके नीचे डुवा दिया। रूस वालोंने नैपोलियनको रोकनेके लिये सुविशाल मास्को नगर-को भस्मसात् कर डाला। महाराणा प्रतापने मेवाड़को उजाड़ कर मुगल सेनाओंका आगे बढ़ना रोका था।

विषका प्रयोग प्राचीन कालमें बहुत होता था। अब भी जङ्गली जातियां विषैले बाणोंसे काम लेती हैं परन्तु सभ्य राष्ट्रोंमें विषाक्त शस्त्रोंका प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है। शत्रुकी बढ़ती सेनाके मार्गमें पड़ने वाले तालाबों और कुओंमें विष डाल देना या कुओंके द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार शत्रुसेनामें प्लेग, विसूचिका, शीतला, कुष्ठ आदि किसी अन्य प्रकारके रोगको फैलाना भी निषिद्ध है।

विष

१९६४ में यह भी निश्चय हुआ था कि ऐसी गोलियोंसे काम न लिया जाय जिनमें ऐसे वाष्प (गैस) भरे हों जिनसे लोग बेहोश हो जायं या मर जायं। संयुक्तराजने इस शर्तको स्वीकार नहीं किया। यह सचमुच विचारणीय है कि यदि लोगोंको मारना उचित है तो वाष्पसे मारना क्यों बुरा समझा जाय। यदि यह सिद्ध हो जाय कि इससे अधिक पीड़ा होती है तो निषेध न्याय्य होगा पर अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो पाया है। जो कुछ हो, गत महासमरमें पहिले जर्मनी फिर अन्य राष्ट्रोंने भी विषैले वाष्पोंका खूब प्रयोग किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दसवाँ अध्याय ।

युद्धके उपकरण ।

वह सब साधन जिनके द्वारा युद्धमें विजय प्राप्त हो सकती है युद्धके उपकरण हैं। उपकरण दो प्रकारके होते हैं, सजीव और निर्जीव। वह मनुष्य (और पशु) जो सेनाओंके अङ्ग होते हैं सजीव और जहाज़, तोप, बन्दूक इत्यादि निर्जीव उपकरण हैं। कुछ उपकरणोंका प्रयोग वैध और कुछका अवैध माना जाता है, यहां हमको इसीपर विचार करना है। विचार करते समय हम पशुओं तथा रसद पहुंचाने वाले मनुष्यों, चिकित्सकों, दाइयों, धर्म्माचार्यों, रेलगाड़ियों, खच्चरों, इत्यादि सजीव या निर्जीव उपकरणोंकी ओर ध्यान न देंगे, यद्यपि यह सब परमोपयोगी उपकरण हैं। विचार न करनेका कारण यह है कि यह सभी सेनाओंमें पाये जाते हैं और इनकी वैधताके विषयमें कोई प्रश्न नहीं उठता।

सेना—नियमित, आपत्कालिक, और सहायक

सेना बिना युद्ध हो ही नहीं सकता इसलिये सेना तो सर्वत्र ही वैध है। इस परिभाषाके अन्तर्गत. तीन प्रकारके सैनिक-समूह आते हैं—नियमित, आपत्कालिक और सहायक। नियमित * सिपाही तो वह हैं जो वर्तमान समयमें पूर्ण वेतनपर सेनामें काम कर रहे हैं। बहुधा देशोंमें यह नियम होता है कि सिपाहियोंको कुछ वर्षों तक सेनामें काम करनेके पीछे छुट्टी मिल जाती है। वह अपने घर चले जाते हैं और उनकी जगह दूसरे भर्ती कर लिये जाते हैं। जो सिपाही

---

* Regular Troops (रेगुलर ट्रूप्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घर रहते हैं उन्हें प्रायः कोई वेतन नहीं मिलता पर उनसे यह शर्त रहती है कि युद्ध छिड़नेपर तुम्हें नियमित सेनाके साथ काम करना होगा। ऐसे सिपाहियोंको आपत्कालिक † कहते हैं। काम करते समय इन्हें भी पूर्ण वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी देशोंमें स्वयंसेवकों * की भांति काम करने वाले लोग होते हैं। यह अपनी इच्छासे कवायद करते हैं यद्यपि सर्कार इनकी पूरी सहायता करती है। देशपर कोई भारी विपत्ति पड़नेपर यह लोग भी सेनाके साथ काम करते हैं। इन्हें सहायक § कहते हैं।

यह सब सिपाही नियमानुसार वर्दी पहिनते हैं, इनकी नियमानुसार सूचियां होती हैं और यह सर्कारी अफसरोंके अधीन काम करते हैं। अतः यह सब वैध हैं। इसी प्रकार नौ-सेना और वायुसेनामें काम करने वाले भी नियमके भीतर हैं।

यदि दो देशोंमें लड़ाई हो रही हो और एकके कुछ निवासी दूसरेकी सेनामें काम कर रहे हों तो देशवालोंके हाथमें पड़नेपर उनके साथ रणबन्दियोंका सा बर्ताव नहीं होता वरन् उन्हें देशद्रोहियोंका समुचित पुरस्कार प्राणदण्ड मिलता है। तटस्थदेशीय सैनिकोंके साथ साधारण शत्रु-सैनिकों जैसा व्यवहार होता है।

स्वदेशकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिकका कर्त्तव्य है परन्तु जब यूरोपमें नियमित सेनाओंकी वृद्धि हुई तो बड़े राज जिनके पास बृहत् सेनाएँ थीं इस बातपर आग्रह करने लगे

अनियामित सैनिक

कि सिवाय नियमित और आपत्कालिक तथा सहायक सेनाओंके और कोई युद्धमें भाग न ले। छोटे राज, जिनकी रक्षा उनकी जनताके देश-प्रेमपर ही

---

† Reserves (रिज़र्व्स) * Volunteers (वालंटीयर्स)
§ Auxiliaries. (आक्ज़िलीअरीज़)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्भर थी, इसके विरोधी थे। अन्तमें १९६४ में हेगमें छोटे राजों-की बात मान ली गयी और यह निश्चय हुआ कि अनियमित सैनिकोंको भी सैनिकोंके सब स्वत्व प्राप्त होंगे। जब किसी देश-पर आक्रमण होता है तो कुछ देशभक्त लोग स्वभावतः इसकी रक्षाके लिये उत्सुक हो कर शत्रुका मार्ग रोकना चाहते हैं, चाहे उनकी सर्कार उनसे ऐसा करनेका अनुरोध करे या न करे और उन्हें किसी प्रकारका प्रोत्साहन और साहाय्य दे या न दे। यह लोग यथाशक्ति आपही अपने शस्त्रादि संग्रह करते हैं। देशका कोना कोना इनका देखा रहता है और इनकी छोटी छोटी टुकड़ियां होती हैं, नियमित सेनाओंकी भांति भारी साज सामान साथ होता नहीं इसलिये तार काटने, पुल तोड़ने, रसद लूटने, छापा मारने, समाचार पहुंचाने आदिके कामोंको यह लोग बड़ी उत्तम-तासे कर सकते हैं। ऐसे सैनिकोंको अनियमित सैनिक* कहते हैं। एक बड़ी शर्त यह है कि जब यह लोग शस्त्र ग्रहण करें तो फिर युद्धके अन्त तक यही काम करें। यह ठीक नहीं है कि कभी तो सिपाही बन कर शत्रुसे लड़ें और कभी शान्तिमय कृषक बनकर तदधिकृत प्रदेशमें निवास करें।

हेगमें ऐसे सैनिकोंके लिये चार शर्तें रक्खी गयी हैं। उनका पालन करनेसे इनके साथ सभ्य सैनिकवत् बर्ताव हो सकता है। शर्तें यह हैं–

(क) प्रत्येक टुकड़ी किसी दायी अध्यक्षके अधीन हो।

(ख) ऐसी वर्दी पहिनती हो जो दूरसे पहिचानी जा सके। ('दूरसे' का तात्पर्य उतनी ही दूरीसे है जितनी दूरीपर से सामान्य सैनिकोंकी वर्दियां पहिचानी जा सकती हैं।)

* Guerilla troops (गरिला ट्रूप्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ग) खुलकर शस्त्र धारण करें। (इसका तात्पर्य्य यह है कि यह लोग निरन्तर युद्ध-सम्बन्धी ही काम करें।)

(घ) युद्ध-सम्बन्धी सब अन्ताराष्ट्रिय नियमोपनियमोंका पालन करें।

यदि थोड़े से मनुष्योंको स्वदेश-रक्षाका अधिकार है तो बहुत से मनुष्योंको भी स्वभावतः यह अधिकार है। जिन देशोंमें स्वदेश-भक्त प्रजा रहती है उनपर यदि कोई शत्रु आक्रमण करे तो प्रजा अपनी रक्षाके लिये आप उठ खड़ी होती है। कभी कभी सर्कार ही ऐसी आज्ञा निकाल देती है कि अमुक अमुक वयके सब स्वस्थ पुरुष शत्रुका सामना करनेके लिये तय्यार हो जायं। ऐसी दशामें शत्रुको लाखों या करोड़ों देशभक्त सैनिकोंका यकायक सामना करना पड़ता है। इस प्रकारके समारोहको जानपद समारोह* कहते हैं। यह बहुसंख्यक सिपाही नियमित अनियमित दोनों प्रकारके सिपाहियोंसे भिन्न होते हैं। न तो यह ठिकानेसे कवायद जानते हैं, न इनके पास उपयुक्त शस्त्रादि सामग्री ही होती है, न इनका पर्याप्त संगठन होता है, न कोई वर्दी होती है, न ठिकानेके अफ़सर होते हैं। प्रायशः स्वदेशप्रेम ही इनका महास्त्र होता है। छोटे देश जो बड़ी स्थायी सेनाएं नहीं रख सकते, ऐसे समारोहोंके ही भरोसे जीवित रह सकते हैं। बहुत वाद-विवादके उपरान्त यह निश्चय हुआ कि यदि ऐसे सैनिक खुलकर शस्त्र धारण करें और युद्धके नियमोपनियमोंका पालन करें तो उन्हें वैध सैनिक माना जाय।

जानपद समारोह

कभी कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कुछ ठीक निर्णय नहीं हो सकता। रूस-जापान युद्ध (१९१२) में जापानी

* Levies en masse. (लेवी आन मैसे)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेनाने सखालिएन द्वीपपर आक्रमण किया। व्लाडिमिरौका नगरकी रक्षा बहुत से रूसी जेलमुक्त कैदियोंने की थी। यह लोग रूसकी नियमित सेनाके सिपाही नहीं थे। इनके दलको अनियमित टुकड़ी भी नहीं मान सकते थे क्योंकि न तो इनका कोई दायी अध्यक्ष था न कोई स्पष्ट वर्दी थी। इनकी गणना जान. पद समारोहमें भी नहीं हो सकती थी क्योंकि जेलसे सद्योमुक्त होनेके कारण इनको उस प्रदेशके निवासी नहीं कह सकते थे। जापानी अधिकारी अन्त तक यह निश्चय न कर पाये कि इन्हें क्या माना जाय पर उन्होंने इनमेंसे १२० को, जो उनके हाथ लग गये थे, गोली मार दी। इनका यह अपराध अवश्य था कि न तो इन्हें युद्धके नियमोंका ज्ञान था न इन्होंने उन्हें बर्तनेकी चेष्टा की परन्तु यह बात प्रशंसाके योग्य थी कि साधारण बन्दी होते हुए भी इन्होंने ऐसी देशभक्ति दिखलायी। यद्यपि अन्ताराष्ट्रिय विधान इनके मार दिये जानेको अवैध नहीं कहता पर उनके साथ सामान्य रणबन्दियोंका सा व्यवहार करना अधिक प्रशंसनीय होता।

यदि अधिकृत प्रदेशकी प्रजा विद्रोह करके शत्रुकी मुल्कगीरी सेनाको निकालनेका प्रयत्न करे तो उसके इस प्रकार सिर उठा-नेको जानपद समारोह नहीं कहते। मुल्कगीरी सेना ऐसे विद्रो-हियोंके साथ बड़ी कठोरतासे व्यवहार करती है। इसका कहीं निषेध नहीं है। इसके साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि इन लोगोंको चाहे विद्रोही या अन्य कोई बुरा नाम दिया जाय पर होते हैं यह देशभक्त। अतः जब जब यह प्रश्न उठा तब तब छोटे राजोंने यही आग्रह किया कि इनके साथ भी सैनिक आचरण किया जाय। बड़े राज इसपर सम्मत न थे। परिणाम यह हुआ कि हेगकी युद्ध-नियमावलीमें इस विषयकी चर्चा ही नहीं है। यह निश्चय है कि अवसर पड़ने पर कोई मुल्कगीरी सेना अधिकृत प्रदेश-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के निवासियोंके विद्रोहको सदय दृष्टिसे न देखेगी पर इस बातको स्वीकार कर लेना अपने देशके वीर देशभक्तोंको शत्रुके हाथोंमें आप ही सौंप देनेके बराबर प्रतीत होता है इसलिये इसे किसी नियमावली या संधि या समयपत्रपर लिखना कोई पसन्द नहीं करता। अन्ताराष्ट्रिय विधानमें बहुत सी बातें इसी प्रकार गोल रक्खी गयी हैं।

यूरोपवाले सिवाय गोरी जातियोंके और मनुष्यमात्रको असभ्य समझते हैं। अपने राज्योंकी वृद्धिके लिये ऐसी 'रंगीन' जातियोंके सिपाहियोंसे काम लेनेमें उन्हें तनिक भी रुकावट नहीं होती पर उन्हें छोटा कहते ही जाते हैं। आजकलकी प्रथा यह है कि यदि असभ्य* जातियोंके मनुष्य नियमित सेनाओंमें भर्ती किये जायं तो उनसे काम लेना बुरा नहीं है अन्यथा जंगली और असभ्य मनुष्योंको सभ्य सैनिकोंके सामने न खड़ा किया जाय। उनसे असभ्य मनुष्योंके ही विरुद्ध काम लिया जाय। बोअरयुद्धमें ब्रिटिश सर्कार भारतीय सैनिकोंको भी परमसभ्य (!) बोअरोंके विरुद्ध नहीं भेजना चाहती थी पर इसके बिना काम न चल सका। गत महायुद्धमें भी रंगीन सिपाही गोरोंसे लड़ाये गये।

जंगली और असभ्य सैनिक

जासूसोंसे § काम लेनेकी प्रथा बहुत पुरानी है। जो मनुष्य भेष बदलकर या धोखा देकर किसी सेनाके भेदोंको इस उद्देश्यसे जाननेका प्रयत्न करता है कि उन्हें शत्रुको बतला दे वह जासूस कहलाता है। यदि कोई सिपाही खुलकर शत्रुसेनाका भेद लेता हुआ पकड़ा जाय तो वह जासूस नहीं माना जाता। गुब्बारों और वायुयानोंमें

जासूस

*सभ्य असभ्यका कोई निश्चित परिमापक नहीं है। यदि स्वतंत्र बलवान् रंगीन राष्ट्र चाहें तो वह यूरोपियनोंके प्रति वैसा ही बर्ताव कर सकते हैं जैसा कि अब तक रंगीनोंके साथ होता रहा है। § Spies.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उड़कर शत्रु सेनाके रहस्योंका पता लगानेवाले भी जासूस नहीं कहलाते। पकड़ जानेपर जासूसको प्राणदण्ड दिया जाता है पर यदि वह एक बार अपनी सेनामें पहुंच जानेके पीछे फिर किसी अवसरपर पकड़ा जाय तो पुराने अपराधके लिये उसे कोई दण्ड नहीं दिया जाता।

यद्यपि, जैसा कि हमने ऊपर लिखा है, जासूसोंको प्राणदण्ड देनेकी ही प्रथा है पर सबके साथ ऐसा करना न चाहिये। जासूसोंको लोग बहुधा घृणित दृष्टिसे देखते हैं, यह भी सर्वत्र उचित नहीं है। सब जासूस एक से नहीं होते। ऐसे भी नरपिशाच होते हैं जो अपनी ही सेनाका वृत्तान्त शत्रुको जता आते हैं पर साधारण जासूस रुपयेके लिये ऐसा काम करते हैं। उनका काम अन्य सैनिकोंकी अपेक्षा निंद्य नहीं है। ऐसे भी जासूस होते हैं जो केवल देश-प्रेमके भावसे सब प्रकारका कष्ट सहकर शत्रु-सेनामें प्रवेश करके उसका भेद लेनेका प्रयत्न करते हैं।

अब हम अजीब उपकरणोंका कुछ वर्णन करते हैं। इनमेंसे रणपोतों, वायुयानों और गुब्बारोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका मतद्वैध नहीं है। इनका प्रयोग सर्वथा वैध है। हमें उन वस्तुओंका थोड़ा सा विचार करना है जिनका प्रयोग गर्ह्य या अवैध समझा जाता है।

आजसे सौ डेढ़ सौ वर्ष पहिले यह प्रथा थी कि युद्ध छिड़नेपर साधारण लोगोंको, चाहे वह स्वराष्ट्रके हों या किसी तटस्थ राष्ट्रके, यह अधिकार दे दिया जाता था कि वह शत्रुके व्यापारिक जहाजोंको जहां अवसर पड़े लूटें और गिरफ्तार करें और यदि बन पड़े तो उसके रणपोतोंको भी अपने वशमें लावें। ऐसे जहाजोंको कुमक-पोत*

कुमक-पोत

*Privateers (प्राइवेटीयस)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते थे और उन्हें राजसे एक विशेष परवाना§ दिया जाता था। कुछ कालके बाद तटस्थराष्ट्रीयोंको तो परवाना देना बन्द हो गया पर स्वराष्ट्रीयोंसे इस प्रकारका काम लिया जाता रहा। धीरे धीरे यह प्रथा भी बन्द हो गयी। १९११ में पैरिसमें जो अन्ताराष्ट्रिय समझौता हुआ उसमें इसका निषेध किया गया। यद्यपि उस समय कई राजोंने इस शर्तको स्वीकार नहीं किया पर तबसे आजतक किसीने इस अधिकारसे काम नहीं लिया है अतः यह मान लेना चाहिये कि अब यह प्रथा उठ गयी।

जिस प्रकार स्थलपर स्वेच्छासेवी सेना होती है उसी प्रकार जलपर भी हो सकती है। सबसे पहिले १९२७ में जर्मनीने इस प्रकारकी सेनाको जन्म देना चाहा पर उसे

स्वेच्छा-नौसेना † सफलता न हुई! इसके सात आठ वर्ष पीछे रूसने यह काम कर दिखाया। कुछ देश-भक्तोंने मिलकर जहाज मोल लिये। शान्तिकालमें तो यह जहाज साधारण व्यापारादिका काम करते हैं पर युद्धकालमें सर्कारको सौंप दिये जाते हैं। इनपर सर्कार अपने अफ़सर रख देती है। आवश्यकता पड़नेपर सर्कार अपने नाविक भी रख सकती है। शान्तिकालमें इन्हें बराबर भत्ता मिलता रहता है। ब्रिटेन आदिने यह प्रबंध किया है कि उनके यहांकी कई बड़ी व्यापारिक कम्पनियाँ सर्कारी नौविभागके बतलाये हुए ढंगके कई जहाज रखती हैं। शान्तिकालमें उनसे साधारण काम लिया जाता है। पर सर्कार उनके लिये कम्पनीको बराबर नियत रुपया देती है।

प्रत्येक राजको यह अधिकार है कि शत्रुसे छीने हुए वणिक्-पोतोंको जब जहां चाहे रणपोतोंमें परिवर्तित कर डाले। इसी प्रकार

---

§ Letters of Marque (लेटर्स आफ मार्क) † Volunteer Navy. (वालंटीयर नेवी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे यह भी अधिकार है कि अपने देशके वणिक्पोतोंको रण-पोतोंमें परिणत कर दे। यहांतक तो सब मानते हैं। पर इस बातका ठीक निर्णय नहीं हो सका कि यह परिवर्तन कहां किया जा सकता है। अपने नौस्थानोंमें तथा अधिकृत परिणत वणिक्पोत* नौस्थानोंमें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। यदि दो या अधिक राज एकही पक्षमें हों तो एक दूसरेके नौस्थानोंमें भी परिवर्तन कर सकते हैं। यह भी निर्विवाद है कि किसी तटस्थ देशके नौस्थानोंमें यह काम नहीं किया जा सकता। झगड़ा खुले समुद्रके विषयमें है। ग्रेट ब्रिटेन तथा कुछ अन्य राज यह कहते हैं कि खुले समुद्रमें यह काम नहीं होना चाहिये। यदि हो भी तो उस राजको पहिलेसे ही इस बातकी सूचना निकाल देना चाहिये कि हम सम्भवतः असुक असुक वणिक्पोतोंको रणपोतोंमें परिवर्तित करेंगे। यदि ऐसा न किया गया तो धोखेबाज़ीका अवसर मिलेगा। ऐसा हुआ भी है। रूस-जापान युद्धके समय पीटरबर्ग और स्मोलेंस्क नामक दो रूसी जहाज़ दरेदानियालके द्वारा कृष्णसागरसे बाहर निकले। यदि वह रणपोतोंके रूपमें होते तो सन्धिके अनुसार तुर्की उन्हें रोक देता। खुले समुद्रमें आकर दोनों रणपोत बन गये। इसपर बहुत विवाद उठा, अन्तमें रूस सर्कारने इन्हें वापस ले लिया। अस्तु, यह प्रश्न हेगमें भी कई बार उठा पर कुछ निश्चय न हो सका। यह बड़े महत्त्वका विषय है और शीघ्र ही इसका निपटारा होना चाहिये।

पानीके नीचे विस्फोटक द्रव्योंसे काम लेनेकी प्रथा लगभग सौ सवासौ वर्षसे चल पड़ी है। यह विस्फोटक या गोला पानी-के नीचे डूबा रहता है। यदि उसे किसी भारी वस्तुसे टक्कर लग जाय तो वह फूट जाता है और उस वस्तुको छिन्न भिन्न

* Converted Merchantmen. (कन्वर्टेड मर्चेंटमेन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर डालता है। शत्रुके जहाजोंको नष्ट करनेका यह बड़ा अच्छा साधन है पर इससे तटस्थोंके जहाजोंके नष्ट होनेकी भी भारी आशंका है। १९६४ में हेगमें यह प्रश्न छिड़ा।

जलमग्न विस्फोटक* कुछ शर्तें बनायी गयीं जिनके पालन किये जानेसे तटस्थ व्यापारियोंके जहाजोंको क्षति पहुंचनेकी सम्भावना कुछ कम हुई। वह शर्तें मुख्यतया यह हैं—

(क) खुले विस्फोटक (अर्थात् ऐसे विस्फोटक जो लंगर द्वारा एक ही जगह नहीं रक्खे जाते वरन् समुद्रमें इतस्ततः बहते फिरते हैं) काममें न लाये जायं और यदि उनसे काम लेना ही हो तो उनकी बनावट ऐसी हो कि अपने प्रयोजकके हाथसे निकल जानेके एक घण्टेके बाद वह बेकाम हो जायं।

इस नियमका तात्पर्य्य यह था कि ऐसे विस्फोटक खुले समुद्रमें सर्वत्र न फैल जायं पर नियमकी शब्दावली दूषित है। 'हाथसे निकल जाना' किसे कहते हैं? मान लीजिये कि कई सौ विस्फोटक एक डोरसे बंधे हुए हैं और डोरका सिरा एक मनुष्यके हाथमें है। यह निश्चय है कि खुले समुद्रमें वह आदमी इनपर विशेष अंकुश नहीं रख सकता पर कहनेको अब भी यह उसके हाथमें (अंग्रेजी मूल शब्दोंमें उसके 'कण्ट्रोल' या वशमें) हैं। इस प्रकार उनसे घण्टों तक काम लिया जा सकता है।

(ख) लंगरदार विस्फोटकोंकी बनावट ऐसी होनी चाहिये कि लंगरसे खुलते ही वह बेकाम हो जायं।

यह नियम भी अच्छा था पर इसके साथ एक शर्त यह जोड़ दी गयी कि जिन राज्योंके पास अच्छे ढंगके विस्फोटक न हों वह अपने पुराने ढंगके विस्फोटकोंसे ही काम लें। उनसे यह तो कहा गया कि जितनी जल्दी हो सके नये विस्फोटक बनवा लें पर

* Submarine Mines. (सबमेरीन माइन्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई अवधि नियत नहीं की गयी इसलिये नियमका उल्लंघन करना सरल हो गया।

(ग) वणिक्पोतोंको रोकने मात्रके उद्देश्यसे शत्रुके तटों और नौस्थानोंके पास विस्फोटक बिखेरना निषिद्ध है।

यह नियम पूर्णतया निरर्थक है। जिस राजको विस्फोटकोंसे काम लेना होगा वह यह कह देगा कि मेरा उद्देश्य वणिक्पोतों-को रोकना नहीं है। दूसरा उद्देश्य बतला देना कोई बड़ी बात नहीं है।

कहनेका तात्पर्य्य यह है कि यह नियम अधूरे हैं। एक और नियम कहता है कि समुद्रके जिस भागमें विस्फोटक बिखेरे जायँ उसकी सूचना तटस्थोंको दे दी जाय और यथासम्भव उसकी रक्षा-का प्रबन्ध किया जाय पर इसमें भी यह शर्त लगी है कि 'सैनिक आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए जितनी जल्दी सम्भव हो सके' ऐसा किया जाय। इसकी आड़में सूचना देनेका काम महीनों तक टाला जा सकता है।

जिस समय यह सब नियम बन रहे थे उस समय सभी राजों-के प्रतिनिधियोंने इस बातको कहा था कि हमारे नौसेनाध्यक्ष सदैव मनुष्यता और अन्ताराष्ट्रिय सौजन्यको ध्यानमें रक्खेंगे पर यूरोपियन महासमरने सबकी क़लई खोल दी। पहिले जर्मनीने उत्तर सागरके उत्तरी भागमें विस्फोटक बिखेरे, फिर ब्रिटेनने उसके दक्षिणी भागको इसी प्रकार बन्द किया। आस्ट्रिया और फ्रांसने एड्रियाटिक सागरमें विस्फोटक बिछा दिये। इन बातोंसे एक दूसरेकी जो कुछ क्षति की गयी वह तो की ही गयी, तटस्थोंकी बहुत ही हानि हुई।

इस बातकी आवश्यकता है कि इस प्रश्नपर भी शीघ्र ही व्यापक विचार हो और दृढ़ नियम बनाये जायँ। जैसा कि हेग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्मेलनके सामने ब्रिटिश प्रतिनिधि श्री सेटोने कहा था " खुला समुद्र महान् अन्ताराष्ट्रिय राजपथ है। यदि अन्ताराष्ट्रिय विधानकी वर्तमान अवस्थामें युद्धकारी राजोंको यह अधिकार प्राप्त है कि वह इस राजपथपर अपनी लड़ाइयां लड़ें तो उनका यह कर्तव्य है कि ऐसा कोई काम न करें जिससे उनके हट जानेके पीछे राजपथ तटस्थोंके लिये, जिन्हें उससे काम लेनेका पूरा अधिकार है, शंकास्पद हो जाय।.........तटस्थोंका सुरक्षित रीतिसे नौसंचालनका स्थायी अधिकार योद्धाओंके लड़नेके क्षणिक अधिकारसे श्रेष्ठतर है।"

अन्तमें हमें एक ऐसी बातकी ओर संकेत करना है जिसे सचमुच युद्धका उपकरण न कहना चाहिये पर जिसका प्रयोग पहिले बहुत होता था और अब भी स्यात् होता हो। हमारा तात्पर्य्य हत्यासे है। शत्रुकी सेनापर छापा मारना निन्द्य नहीं है। उसकी सेनामें घुस कर आवश्यक कागजोंको छीन लाना वीरताका परिचायक है। उसकी सेनामें प्रवेश करके सेनाध्यक्ष या अन्य तत्रस्थित प्रधान व्यक्ति (जैसे राष्ट्रपति, नरेश या मन्त्री) को पकड़नेका प्रयत्न करना प्रशंसाके योग्य है। यदि इस प्रयत्नमें दैवात् उस व्यक्तिकी मृत्यु भी हो जाय तो इसमें कोई निन्दाकी बात नहीं है। पर यह काम दगाबाजीके साथ न होना चाहिये। भेष बदल कर जाना और सोते मनुष्यको मार डालना या उसे बातोंमें बहका कर मार डालना या उसके खानेमें विष मिला देना नितांत गर्हित कर्म्म है। ऐसा करनेवालेको स्वयं उसकी सर्कार दण्ड देगी। यदि वह सर्कार ऐसा न करे तो वह स्वयं अन्ताराष्ट्रिय समाजसे बहिष्कृत कर दी जायगी। हेग नियमावलीने स्पष्ट शब्दोंमें 'शत्रु राष्ट्र या सेनाके व्यक्तियोंको धोखेसे मारना या घायल करना' निषिद्ध ठहराया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्यारहवाँ अध्याय।

युद्धकालीन अहिंसात्मक व्यापार।

दो युद्धकारी दलोंमें सदैव लड़ाई नहीं होती रहती। बीच बीचमें, कभी सारे युद्ध-स्थलमें, कभी उसके किसी अंश विशेषमें, लड़ाई बन्द करनी पड़ती है। इतना ही नहीं, दोनों दलोंको आपसमें बातचीत करनेकी भी आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकारके आपसके व्यापारको शान्तिमय नहीं कह सकते क्योंकि वह अशान्ति-कालमें होता है, और उसका रूप ही तत्रव्यापी अशान्तिका द्योतक होता है। इसी लिये हम उसे केवल अहिंसात्मक कहते हैं।

प्राचीन कालमें ऐसा बहुधा हुआ करता था। महाभारतके योद्धा एक दूसरेके सम्बन्धी, सगोत्री और सजातीय थे। दिनभर लड़ते थे, सायंकाल मिल जाते थे। छोटे बड़ोंकी सेवा सुश्रूषामें लग जाते थे। राजपूतोंके इतिहासमें भी ऐसी बहुत सी कथाएं हैं। यूरोपियन महासमरमें बड़े दिन (यीशूके जन्मदिवस) के उपलक्ष्यमें बहुत से युद्ध-स्थलोंमें सिपाहियोंने लड़ाई रोक दी। कई जगह तो दोनों ओरके सिपाही बीचमें आ मिले, साथमें खाना पीना हुआ, नृत्यगान किया गया, फिर अपने अपने पड़ाव या खाइयोंकी ओर चले गये। मनुष्य मनुष्य ही है। ऐसा भाई-चारा उसके लिये अत्यन्त स्वाभाविक है।

पर यहां हम इस प्रकारके मेल-मिलापकी चर्चा नहीं कर रहे हैं। हमारा संकेत उस अहिंसात्मक व्यापारकी ओर है जो युद्ध-की आवश्यकताओंके कारण सेनाध्यक्षोंकी आज्ञासे होता है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कई प्रकारका होता है। यहां हम कुछ मुख्य प्रकारोंका ही वर्णन कर सकते हैं। आपसमें कितना अहिंसात्मक सम्बन्ध रक्खा जाय यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह बात सैनिक आवश्यकता और सेनाध्यक्षोंकी इच्छापर निर्भर है।

विराम पताका

जब एक दल दूसरेसे किसी भी उद्देश्यसे कुछ बातचीत करना चाहता है तो पहिले वह इस बातका प्रयत्न करता है कि कुछ कालके लिये लड़ाई बन्द हो जाय। इस लिये वह उसके पास एक मनुष्यको श्वेत पताका देकर भेजता है। इस पताकाको विराम-पताका* कहते हैं। झण्डी वाला चाहे अकेले जाय चाहे अपने साथ एक बिगुल बजाने वाले या नगारा बजाने वाले, एक झण्डी-बरदार और एक दुभाषियेको ले जाय। पताका वाला अपने दलके सेनापतिका प्रतिनिधि होता है।

पताका-वाहक संरक्ष्य होते हैं अर्थात् न तो इन्हें किसी प्रकारका शारीरिक कष्ट दिया जा सकता है, न बन्दी किया जा सकता है। साधारण उपचार तो यह है कि विरोधी दलका सेनाध्यक्ष इनको बुलाकर इनकी बात सुनले पर वह ऐसा करनेके लिये बाध्य नहीं है। यदि वह चाहे तो बिना मिले ही इन्हें लौटा सकता है। यदि मना करने पर भी यह लोग आगे बढ़नेका प्रयत्न करें तो इनकी संरक्ष्यता जाती रहती है और इनके साथ साधारण शत्रुवत् बर्ताव किया जा सकता है। यदि वह इनसे मिलना स्वीकार करे तो उसे अधिकार है कि इनकी आंखोंपर पट्टी बांध कर भीतर बुलावे ताकि इन्हें सेनाका कुछ वृत्त ज्ञात न हो जाय। इनका भी यह कर्तव्य है कि इसका कोई प्रयत्न न करें। यदि उस समय सेनामें कोई ऐसी बात हो रही हो जिसका गुप्त रखना

* Flag of Truce. (फ्लैग आफ ट्रूस)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवश्यक हो परन्तु छिपाना कठिन हो तो पताकावाहकोंको थोड़ी देरके लिये रोक भी सकते हैं। इस बीचमें इनके साथ बन्दियोंका सा बर्ताव न करना चाहिये पर इनका गमनागमन बन्द रहेगा। यदि पताकावाहक किसी प्रकारकी धोखेबाजी करें या सिपाहियोंको बहकायें या नक्शा उतारना चाहें या कोई भेद लेना चाहें तो इनके साथ जासूसोंका सा व्यवहार किया जा सकता है।

जलयुद्धमें भी यही नियम बर्ते जाते हैं। वहां विराम-पताका छोटी नावमें भेजी जाती है।

यदि लड़ाईके बीचमें कोई सेना श्वेत झण्डी दिखलाये तो यह समझा जाता है कि उसका आत्मसमर्पण करनेका विचार है। यदि किसी आक्रान्त दुर्ग पर श्वेत झण्डी खड़ी की जाय तो भी यही समझा जायगा कि वह आत्मसमर्पण करना चाहता है या इस उद्देश्यसे कुछ बातचीत करना चाहता है। सेनाके मुख्य अध्यक्षकी आज्ञासे ही ऐसी झण्डी दिखलायी जा सकती है।

सामरिक समझौता

कभी कभी युद्ध छिड़नेके पहिले, कभी छिड़नेके पीछे, आपसमें लिखित समझौता हो जाता है। इस समझौतेमें यह निश्चय कर लिया जाता है कि आपसमें रणबन्दियोंका विनिमय किस प्रकार होगा, विराम-पताका-ओंके साथ कैसा बर्ताव किया जायगा, पत्र और तार कैसे आते जाते रहेंगे, इत्यादि। ऐसे समझौतोंको सामरिक समझौता* कहते हैं।

यों तो युद्धकालमें एक शत्रुराजका नागरिक दूसरे शत्रु-राजके अधिकारक्षेत्रमें घूम फिर नहीं सकता पर कभी कभी इस नियममें ढिलाई भी कर दी जाती है। शत्रुवर्गके किसी व्यक्ति

---

* Cartels. (कार्टेल्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषको यात्रा करनेकी अनुज्ञा दे दी जाती है। इस प्रकारकी यात्रानुज्ञा* सर्कार ही दे सकती है। यह राज्य भर या उसके किसी विशेष भागके लिये दी जा सकती है। सेनापति लोग भी अपने अपने अधिकार-क्षेत्रमात्रके शत्रुवर्गीयोंको घूमने फिरने या अपना सामान ले आने ले जानेकी अनुज्ञा दे सकते हैं। ऐसी अनुज्ञाको रक्षावचन† कहते हैं। यदि अनुज्ञाका दुरुपयोग किया जाय तो वह वापस ली जा सकती है। कभी कभी सेनापति लोग शत्रु-व्यक्तियों या शत्रु-सम्पत्तिको लिखकर अभयदान§ देते हैं। इसको देखकर उस सेनाका कोई सिपाही उस व्यक्ति या सम्पत्तिको नहीं छेड़ता। कभी कभी रक्षाके लिये कुछ सिपाही खड़े कर दिये जाते हैं। यदि यह सिपाही शत्रुके हाथमें पड़ जायं तो वह उन्हें बन्दी नहीं करता वरन् उनकी सेनामें लौटा देता है। ऐसे सिपाहियोंको रक्षागारद‡ कहते हैं। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि यात्रानुज्ञा और रक्षावचनसे वही मनुष्य लाभ उठा सकता है जिसका नाम उनपर लिखा हो।

यात्रानुज्ञा, रक्षावचन और अभयदान

युद्धकालमें युद्धकारी राज्योंकी प्रजामें किसी प्रकारका व्यापारिक सम्बन्ध नहीं हो सकता परन्तु राज्योंको अधिकार है कि नियममें कुछ अपवाद कर दें और व्यापाराधिकार§§ देकर व्यापारको पुनः स्थापित कर दें। यह अधिकार दो प्रकारका होता है—सामान्य और विशेष। यदि अपनी या शत्रुकी प्रजामात्रको कुछ नियत स्थानों और नियत वस्तुओंको क्रयविक्रय करनेका अधिकार दे

व्यापाराधिकार

*Pass-port. (पासपोर्ट) †Safe-conduct. (सेफ़ कण्डक्ट)
§Safe-guard. (सेफ गार्ड) ‡Safe-guard (सेफ गार्ड)
§§ License to trade. (लाइसेंस टु ट्रेड)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया जाय तो उसे सामान्य अधिकार और यदि कुछ विशेष व्यक्तियोंको ही ऐसी अनुज्ञा दी जाय तो उसे विशेष अधिकार कहते हैं।

यह अनुज्ञा सर्कार ही देती है परन्तु प्रधान स्थल और जल सेनापतियोंको भी अपने अपने अधिकारक्षेत्रमें ऐसी अनुज्ञा देनेका अधिकार है। उस क्षेत्रके बाहर ऐसी अनुज्ञाका कोई मूल्य नहीं होता।

आत्मसमर्पण

यदि कोई सेना या दुर्ग या नौ-समूह या नगर लड़नेकी सामर्थ्य न रखता हो तो वह आत्मसमर्पण * कर देता है। समर्पणकी शर्तें एक कागजपर लिखी जाती हैं जिसे समर्पणपत्र † कहते हैं। शर्तें कई प्रकारकी होती हैं। सबसे साधारण शर्त यह है कि सिपाहियोंको प्राणभिक्षा दी जायगी। आज कल यह शर्त निरर्थक है क्योंकि रणबन्दियोंको कोई योंही नहीं मारता। सबसे श्रेष्ठ शर्त यह होती है कि सब सिपाही 'ससामरिक सम्मान' ‡ चले जाने पायेंगे। इसका अर्थ यह है कि वह लोग शस्त्रसज्जित, झण्डा लिये और बाजा बजाते निकल जायंगे। ऐसी शर्त बहुत कम मिलती है। बहुधा समर्पणकी शर्तें प्राणभिक्षा और सामरिक सम्मानके बीचमें होती हैं। यदि आक्रमणकारियोंको जगहपर कब्जा करनेकी जल्दी होती है तो वह विजितोंको अच्छी शर्तें दे देते हैं ताकि जगह शीघ्र खाली हो। कभी कभी हारे हुए शत्रुकी वीरतासे प्रसन्न हो कर उसे अच्छी और सम्मानसूचक शर्तें दे दी जाती हैं।

प्रत्येक सेनापतिको यह अधिकार है कि आवश्यकता देख कर समर्पण कर दे पर वह केवल अपनी सेना, अपने दुर्ग और अपने

*Surrender. (सरेंडर) †Capitulation. (कैपिचुलेशन)
‡With honours of war.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकार-क्षेत्रके लिये ही शर्तें कर सकता है। यदि वह युद्धक्षेत्र-के अन्य भागोंके लिये कुछ शर्तें करे तो जब तक प्रधान सेनापति इन्हें स्वीकार न कर ले तब तक वह पक्की नहीं मानी जा सकतीं। कोई सेनापति ऐसी शर्तें नहीं कर सकता जिनका पूरा करना उस-की शक्तिके बाहर हो। इसी लिये समर्पणपत्रमें राजनीतिक शर्तें नहीं लिखी जातीं क्योंकि उनका पूरा करना न करना सर्कार-के हाथमें होता है। कोई सेनापति यह नहीं कह सकता कि यदि मेरा समर्पण स्वीकार किया जाय तो मैं युद्ध बन्द करा दूंगा या अमुक प्रदेश दिलवा दूंगा इत्यादि। अनधिकार समर्पणपत्रों§ के लिये सर्कार दायी नहीं हो सकती।

हारे हुए सेनापतिको अधिकार है कि जब तक समर्पणपत्रपर दोनों ओरके हस्ताक्षर न हो जायं तब तक अपने पासकी साम-ग्रीके साथ जैसा व्यवहार उचित समझे करे। प्रायशः तोपें कील दी जाती हैं, बारूद जला दी जाती है, पुल तोड़ दिये जाते हैं, जहाज नष्ट कर दिये जाते हैं। यह सब इस लिये किया जाता है कि शत्रुको इस सामग्रीसे लाभ न पहुंचे पर हस्ताक्षर होते ही उस स्थानपर विजेता का अधिकार हो जाता है। फिर किसी वस्तुको नष्ट भ्रष्ट करना अवैध होता है।

कभी कभी सारे युद्धस्थल या उसके किसी खण्ड विशेषमें कुछ समय या कुछ दिनोंके लिये लड़ाई रोक देनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसको रणविराम * कहते हैं। कभी कभी अल्पकालिक और दीर्घकालिक विरामके लिये दो शब्द प्रयुक्त होते हैं पर इसकी विशेष आवश्यकता नहीं है। एक ही शब्द पर्य्याप्त है। यदि आवश्यकता

रणविराम

---

§Sponsion (स्पोनशन)

* Truce या Armistice. (ट्रूस या आर्मिस्टिस)। कभी कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो तो शेष काम विशेषण जोड़कर निकाला जा सकता है। खण्डविराम तो स्थानीय सेनापति भी आपसमें निश्चय करके कर सकते हैं। आहतोंको हटानेके लिये अथवा मुर्दोंको जलाने या गाड़नेके लिये इसकी आवश्यकता पड़ सकती है। सम्पूर्ण क्षेत्रमें युद्धका स्थगित करना उभयपक्षके प्रधान सेनापतियों या उभयराजोंकी सर्कारोंकी इच्छासे ही हो सकता है। ऐसा विराम प्रायः उस समय होता है जब युद्ध समाप्त करनेका विचार होता है और सन्धिकी शर्तें निश्चित करनी होती हैं।

विराम-पत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा जाता है कि विराम किस तिथिको कितने बजे आरम्भ होगा और किस तिथिको कितने बजे तक रहेगा, किस किस क्षेत्रमें माना जायगा, दोनों सेनाओंके बीचमें तटस्थ भूमि कितनी रहेगी इत्यादि। यदि यह भी निश्चय कर लिया जाय कि अधिकृत प्रदेशोंके निवासियों और मुल्कगीरा सेना तथा अधिकृत और अनधिकृत प्रदेशोंके निवासियोंमें कैसा सम्बन्ध रहेगा, उभयपक्ष युद्धके लिये तैयारी करेंगे या नहीं और यदि करेंगे तो कैसी, तो बहुत अच्छा होता है। यदि बीचमें अवधि बढ़ा न ली गयी हो तो उसके बीतने पर युद्ध पुनः आरम्भ हो जायगा। जिन विरामपत्रोंमें कोई अवधि नहीं लिखी होती वह जब चाहें तब रद्द किये जा सकते हैं पर जो पक्ष पहिले लड़ाई आरम्भ करना चाहे उसे चाहिये कि दूसरेको अपने विचारकी सूचना दे दे। यदि एक पक्ष विरामपत्रकी शर्तोंका उल्लंघन करे तो दूसरेको युद्ध आरम्भ कर देनेका अधिकार है पर यदि किसी अनुत्तरदायी व्यक्तिके द्वारा कोई शर्त तोड़ी गयी हो तो युद्ध आरम्भ करनेके स्थानमें इसकी सूचना उसके पक्षको देनी चाहिये

पहिला शब्द दीर्घकालिक और दूसरा अल्पकालिक विरामके लिये आता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उससे क्षतिपूर्ति और अपराधीको दण्ड देनेके लिये आग्रह करना चाहिये। यदि वह इस न्याय्य आग्रहको स्वीकार न करे तो फिरसे युद्ध छेड़ देना सर्वथा युक्त होगा।

एक प्रश्न यह रह जाता है कि विरामकालमें दोनों पक्ष लड़ाई-की तैयारी करें या नहीं और यदि करें तो किस सीमा तक। यदि आपसमें कुछ विशेष समझौता हो गया हो तो दूसरी बात है, नहीं तो तैयारी करनेसे कोई रोक नहीं सकता। पर इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ मतभेद चला आता है और हेगमें भी कुछ निश्चय नहीं हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बारहवाँ अध्याय।

युद्धावसान।

एक न एक दिन प्रत्येक युद्धका अन्त होता है। अन्त तीन प्रकारसे हो सकता है। कभी कभी ऐसा हुआ है कि दोनों पक्ष लड़ते लड़ते थक गये हैं और लड़ाई यों ही बन्द हो गयी है। न कोई सन्धि हुई न युद्ध-समाप्तिकी एक दूसरेको सूचना दी गयी। १९२४ में फ्रांस और मेक्सिकोकी लड़ाई योंही बन्द हो गयी। लड़ाईके समाप्त होनेका दूसरा मार्ग यह है कि एक पक्षका अस्तित्व ही मिट जाय। तीसरी अवस्था यह है कि दोनों पक्षोंमें सन्धि हो जाय। अधिकांश युद्धोंका अन्त इसी प्रकार होता है। सन्धिपत्रमें आपसके भावी सम्बन्धकी सब शर्तें लिखी होती हैं। यदि शर्तोंके निश्चित करनेमें देर होती है तो पहिले एक उप-सन्धि* लिखी जाती है। इसमें सिद्धांतकी मोटी मोटी बातें लिख दी जाती हैं और युद्ध समाप्त कर दिया जाता है। फिर पूर्ण सन्धि† में इसी उप-सन्धिके आधारपर ब्योरेकी बातें लिखी जाती हैं।

कभी कभी ऐसा होता है कि दोनों पक्ष लड़ाईसे तो ऊब गये होते हैं पर आपसकी सन्धिकी शर्तोंको निश्चित नहीं कर सकते। इसलिये लड़ाई समाप्त होनेपर भी सन्धिपत्र नहीं लिखा जा सकता। गत महासमरमें जर्मनी और संयुक्तराजमें लड़ाईका अन्त तो कभीका हो गया पर सन्धि चार वर्ष पीछे हुई। इतने दिनोंतक युद्धावस्था तो नहीं थी परन्तु मैत्री भी न था।

---

* Preliminary treaty. (प्रिलिमिनरी ट्रीटी)

† Definitive treaty. (डेफिनिटिव ट्रीटी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्धावसानके कई तात्कालिक परिणाम होते हैं। लड़ाई बन्द हो जाती है। मुल्कगीरी सेना अधिकृत प्रदेशसे रुपया या कोई वस्तु नहीं माँग सकती। रणबन्दी मुक्त हो जाते हैं।* यदि युद्धस्थल बहुत बड़ा हो तो उसमें सर्वत्र लड़ाई बन्द करनेकी सूचना एक साथ नहीं पहुंच सकती, इसलिये संधिपत्रमें ही लिख दिया जाता है कि अमुक अमुक प्रदेशमें अमुक अमुक तिथितक लड़ाई बन्द हो जायगी। यदि अवधिके भीतर सूचना पहुंच जाय तो लड़ाई बन्द कर देना चाहिये पर वही सूचना पक्की माननेका नियम है जो अपनी सर्कारकी ओरसे मिले। अवसान-तिथिके पीछे यदि भूलसे किसी प्रकारका सामरिक कार्य्य हो जाय तो वह रद माना जाता है। अवसानकी तिथिमें जिस पक्षके अधिकारमें जो भूखण्ड या राजसम्पत्ति होती है वह उसकी मानी जाती है। मतलब यह कि अधिकृत प्रदेश मुल्कगीरी सेनाकी सर्कारका हो जाना चाहिये। इसीलिये सन्धिपत्रमें स्पष्ट लिख दिया जाता है कि अमुक प्रदेश अमुक राजके कब्जेमें रहेगा। यदि न लिखा जाय तो उपर्युक्त नियमका ही पालन हो।

युद्धावसानके तात्कालिक परिणाम

साधारण लोगोंके प्रसुप्त स्वत्व भी फिरसे जीवित हो जाते हैं। जो लोग अबतक शत्रुप्रजा होनेके कारण व्यापार करने या न्यायालयोंमें अभियोग चलानेसे वंचित थे उनकी रुकावटें दूर हो जाती हैं। जिन शर्तनामोंमें कोई अवधि दी रहती है उनकी अवधिमें युद्धकाल नहीं जोड़ा जाता। इस विषयकी और भी बहुत सी ब्योरेकी बातें हैं पर उनका सम्बन्ध प्रायः साधारण देशीय विधानोंसे है अतः यहां उनका उल्लेख करना अनावश्यक है।

---

*वस्तुतः बन्दी सुविधाके अनुसार कुछ काल बाद ही स्वदेश लौटाये जा सकते हैं, तबतक वह देखरेखमें ही रक्खे जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ खण्ड—तादस्थ्य-सम्बन्धी विधान ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहिला अध्याय।

तटस्थताकी परिभाषा और उसका इतिहास।

तटस्थताका अर्थ है उदासीनता, समकालीन हलचलमें भाग न लेना, उससे पृथक् रहना। अन्ताराष्ट्रिय विधानमें ताटस्थ्य* 'उन राजोंकी अवस्थाका नाम है जो युद्धके समय उसमें किसी प्रकारका भाग नहीं लेते प्रत्युत उभय पक्षसे शान्तिमय सम्बन्ध बनाये रहते हैं'।

परिभाषा

यह परिभाषा देखनेमें अनावश्यक सी प्रतीत होती है क्योंकि यह वस्तुतः ताटस्थ्य शब्दका विशद अर्थ मात्र है इसलिये 'ताटस्थ्य' के नामोद्देश मात्रसे इसका बोध हो जाता है। पर मनुष्योंके काम तर्कके आधारपर कम ही होते हैं। इसलिये परिभाषा करने अर्थात् इस शब्दके अर्थको प्रकट करनेकी आवश्यकता पड़ी।

यों तो ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी समरके छिड़ जानेपर सभी सभ्य राज उसमें सम्मिलित हो जायं। कुछ न कुछ राज अलग रहते ही थे, अतः ताटस्थ्य और तत्सम्बन्धी कुछ नियमोंको एक प्रकारसे सनातन कह सकते हैं। कुछ नियम ऐसे हैं जो धर्म्म-शास्त्र अथवा कर्तव्य-शास्त्रके आधारपर बनाये गये हैं। कुछ नियम ऐसे हैं जिनका जन्म प्रबल राजोंके स्वार्थ-संघर्षसे हुआ है। अतः सब नियम एक प्रकारके नहीं हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्राचीनकालमें लोगोंकी धारणा यह थी कि युद्ध करना

* Neutrality (न्युट्रैलिटी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वभवशाली तथा प्रशस्त राजोंका लक्षण और कर्तव्य है। उन दिनों समर छिड़ते ही बहुधा बड़े राज एक न एक पक्षमें सम्मिलित हो जाते थे। प्रायः छोटे या दुर्बल राज ही तटस्थ रह जाते थे। इसलिये तटस्थोंकी विशेष प्रतिष्ठा न थी और उनके स्वत्वोंकी कोई पूछ न थी। इसमें क्रमशः परिवर्तन हुआ है। अब यह माना जाने लगा है कि राजकी शोभा शान्ति और निर्वैरतामें है न कि अशान्ति और सतत वैरशीलतामें। फलतः अब कई बड़े राज भी तटस्थ रहते हैं जो अपने अधिकारोंकी पूर्ण रूपेण रक्षा कर सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि धीरे धीरे नियमोंमें परिवर्तन हो गया है। उदारताकी मात्रा बढ़ गयी है। जो स्वत्व पहिले समयोंमें तटस्थोंको दोनों शत्रुओंकी कृपा स्वरूप बड़ी कठिनाईसे मिल जाते थे वह अब उनके निजी अधिकार माने जाते हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं मनुष्य समाजका काम तर्कके अनुसार नहीं हुआ करता। अब भी ताटस्थ्य-सम्बन्धी विधान वैसे नहीं हैं जैसा कि इस शब्दके अर्थको देखते हुए होना चाहिये, पहिले तो बहुत ही कमी थी। तटस्थताका अर्थ केवल प्रत्यक्ष रूपसे न लड़ना था, पर इसका यह तात्पर्य नहीं माना जाता था कि तटस्थ राज उभयपक्षके साथ निष्पक्ष व्यवहार करे और उभयपक्ष उसके व्यापारादिमें छेड़छाड़ न करें। यह दोनों ही मूलभूत सिद्धान्त हैं पर दोनोंकी निरन्तर अवहेलना होती थी।

ताटस्थ्यका इतिहास

पहिले दूसरे सिद्धान्तको लीजिये। उन दिनों आज कलकी भांति वैश्ययुग न था। व्यापारका उतना महत्त्व नहीं माना जाता था। व्यापारियोंका शासनपर विशेष प्रभाव न था और आजकलकी भाँति व्यापारको अन्ताराष्ट्रियता प्राप्त नहीं हुई थी। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिये व्यापारके साथ छेड़छाड़ करनेमें शासकोंको कोई रुकावट नहीं होती थी। उभयपक्षके रणपोत समुद्रोंको छान डालते थे और छोटे छोटे से बहानोंपर व्यापारपोतोंको, जिनमें तटस्थोंके भी व्यापारपोत होते थे, पकड़ लिया करते थे। यदि बहुत कृपा करके तटस्थदेशीयोंको व्यापार करनेकी अनुज्ञा मिलती भी थी तो ऐसी शर्तें लगा दी जाती थीं जिनसे उसमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी। तटस्थ सर्कारें भी अपनी प्रजाकी ओरसे प्रायः कुछ नहीं बोलती थीं। पर आजकल एक देशका व्यापार अन्य देशोंसे सम्बद्ध है अतः एकको हानि पहुंचानेसे सबको हानि पहुंचती है। इसी लिये तटस्थ व्यापारको क्रमशः स्वतंत्रता मिलती गयी है।

दूसरे नियमकी अवहेलना भी कई प्रकारसे होती थी। ग्रोशिअसका कथन है कि तटस्थता कठिन और भयंकर है। वह तटस्थ राजको यह परामर्श देते हैं कि वह यह निर्णय करे कि युद्धमें धर्म्मपक्ष कौन सा है और फिर 'ऐसा कोई काम न करे जिससे अधर्म्मपक्षका बल बढ़े या धर्म्मपक्षके मार्गमें रुकावट पड़े।' ग्रोशिअसके मतमें पक्षोंके धर्म्माधर्म्मको देख कर उनके साथ असम व्यवहार करना न्याय्य है।

अठारहवीं शताब्दीके आरम्भ तक यह प्रथा थी कि अपने राज्यमें एक राजको सिपाही भर्ती करने देना तथा रणपोत सज्जित करने देना तटस्थताके विरुद्ध नहीं है। कभी कभी तो तटस्थ राज किसी एक पक्षको रणसामग्री भी दे देते थे। इस लिये वास्तविक तटस्थताकी रक्षाके लिये विशेष सन्धियां करनी पड़ती थीं। ग्रोशिअसका तो यहां तक कहना है कि दो राजोंमें मित्रता संस्थापक सन्धि होते हुए भी उनमेंसे प्रत्येकको अधिकार है कि यदि एक किसी तीसरेपर आक्रमण करे तो दूसरा उस तीसरेकी रक्षा करे। ऐसा करना मैत्री या तटस्थताके विरुद्ध नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीरे धीरे यह प्रथा तो बदली और यह माना जाने लगा कि तटस्थको सचमुच युद्धसे पृथक् रहना चाहिये पर एक अपवाद रह गया। यह मान लिया गया कि यदि युद्धके पहिले एक राज दूसरेकी सहायताका वचन दे चुका हो तो उसे युद्ध छिड़ने पर इस प्रतिज्ञाका पालन करना चाहिये। ऐसी दशामें भी वह तीसरा राज जिसके विरुद्ध सहायता दी जायगी उसे तटस्थ ही मानेगा। ऐसा कई बार हुआ भी। हम यहां केवल एक उदाहरण देते हैं।

१८५८ में डेन्मार्क और रूसमें एक सन्धि हुई जिसके द्वारा डेन्मार्कने भावी युद्धोंमें रूसको सैनिक सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की। इसके सात वर्ष पीछे रूस और स्वीडनमें लड़ाई हुई। डेन्मार्कने प्रतिज्ञानुसार रूसको सहायता दी और साथ ही स्वीडनको लिख भेजा "श्रीमान् डेन नरेशने यह ज्ञापित करनेकी आज्ञा दी है कि यद्यपि...सन्धियोंके अनुसार उन्होंने (रूसको) सन्धि-निश्चित सिपाहियों और जहाजोंकी कुमक दी है तथापि वह ऐसा समझते हैं कि श्रीमान् स्वीड नरेशके साथ उनका पूर्ण सौहार्द बना हुआ है। इस समय रूसियोंकी ओरसे जो डेन सैनिक स्वीडनमें लड़ रहे हैं उनके हरा दिये जाने या बन्दी कर लिये जानेसे भी इस मैत्रीमें कोई अन्तर न पड़ेगा। उनका यह भी विश्वास है कि जब तक (रूस) सहायक डेन सिपाहियों और जहाजोंकी संख्या सन्धि-निर्दिष्ट संख्यासे अधिक न हो तब तक श्रीमान् स्वीड नरेशको आक्षेपका कोई स्थल नहीं है। उनकी यह भी इच्छा है कि दोनों राष्ट्रोंमें जो मैत्री और व्यापारका सम्बन्ध है और दोनों दर्बारोंमें जो सौहार्द है उसमें कोई बाधा न पड़े।" स्वीडनने पुरानी सन्धिके अनुसार रूसको सहायता देकर भी डेन्मार्कके तटस्थ बने रहनेके सिद्धान्तको तो न्याय्य स्वीकार किया पर उसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह आक्षेप किया कि डेन सहायकोंको रूसमें ही रहना चाहिये था; रूसियोंके साथ स्वीडनपर आक्रमण करना अनुचित था।

जिन दिनोंमें तटस्थ लोग ताटस्थ्यकी इस प्रकार अवहेलना करते थे उन दिनोंमें योद्धा राजोंसे तटस्थोंके स्वत्वोंकी पूर्ण रक्षाकी आशा नहीं की जा सकती थी। तटस्थ राज्योंमें सिपाही भर्ती करना या रणपोत सज्जित करना तो साधारण सी बात थी। कभी कभी तटस्थ राज्योंमेंसे होकर सेनाएं भेज दी जाती थीं। यह तो कम होता था पर ऐसा तो कई बार हुआ है कि एक राजके रणपोतोंने दूसरेके रणपोतोंपर किसी तटस्थ राजके तटलग्न जल या नौस्थानमें आक्रमण किया है।

धीरे धीरे यह अवस्था भी बदली। पर जो काम तटस्थ राज स्वयं नहीं करते थे उसे अपनी प्रजा द्वारा कराते थे, कमसे कम करने देते थे। युद्धकारी राज भी ऐसा करते थे। तटस्थ नौस्थानोंमें अपने रणपोत तो नहीं सज्जित करते थे पर अपने प्रजावर्गीयोंको यह अनुज्ञा दे देते थे कि तटस्थ नौस्थानोंमें छोटी छोटी नावें सज्जित करके शत्रु-व्यापारको नष्ट करें। यह प्रथा १८५० से बन्द हो गयी। उस साल ब्रिटेन और फ्रांसमें युद्ध छिड़ा। अमेरिकास्थित फ्रेञ्च राजदूतने अमेरिकन नौस्थानोंसे उक्त प्रकारकी नावोंको सज्जित कराना आरम्भ किया। उन्होंने अमेरिकन नौस्थानोंमें ऐसे कई न्यायालय भी खोल दिये जिनमें फ्रेञ्च रणपोतों द्वारा पकड़े गये ब्रिटिश तथा सन्दिग्ध तटस्थ व्यापारपातोंका निर्णय होता था। फ्रेञ्च सेनाके लिये अमेरिकन भी भर्ती किये जाते थे। अमेरिकन परराज-सचिवने फ्रेञ्च राजदूतको लिखा "प्रत्येक राष्ट्रका यह अधिकार है कि अपने राज्यके भीतर किसी दूसरे राजको कोई प्रभुत्व-सूचक काम न करने दे और प्रत्येक तटस्थ राजका यह कर्तव्य है कि ऐसे कामोंको रोके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिनसे एक युद्धकारी पक्षको क्षति पहुंचे। फ्रेञ्च सेनाके लिये अमेरिकनोंका भर्ती किया जाना रोक दिया गया और नावोंका सज्जित किया जाना भी बन्द कर दिया गया। इसपर फ्रेञ्च राजदूतने लोगोंको अमेरिकन सर्कारके विरुद्ध उभारना चाहा। अमेरिकन सर्कारने विवश होकर फ्रेञ्च सर्कारको लिखा कि यह राजदूत लौटा लिया जाय। फ्रेञ्च सर्कारने यह बात मान ली।

अमेरिकाका यह व्यवहार पूर्ण तटस्थताका पहिला उदाहरण था और फ्रेञ्च राजदूतका बुला लिया जाना निष्पक्ष अर्थात् सच्ची तटस्थताकी पहली विजय थी। उस समयसे अमेरिका तटस्थताके नियमोंके विशदीकरणमें अग्रसर हुआ। जैसा कि हम आगे चलकर यथास्थान दिखलायेंगे ताटस्थ्य-सम्बन्धी नियमों और विधानोंमें सभ्य जगत्‌ने कई बातोंमें अमेरिकाका अनुकरण किया है।

विधानकी वर्तमान अवस्थाका वर्णन आगेके अध्यायोंमें होगा। यहां इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि तटस्थोंके अधिकारोंके विषयमें बहुत उदारता दिखलायी जाती है। तटस्थ व्यापारकी रक्षा योद्धाओंकी कृपाभिक्षापर निर्भर नहीं है प्रत्युत एक अपरिहार्य्य स्वत्व है। इसके साथ ही उनके कर्त्तव्य भी कठिन हो गये हैं। कभी कभी तो इन कर्तव्योंके पालनकी अपेक्षा युद्धमें भाग लेना सुकर हो जाता है। गत महासमरमें पुर्तगाल आदि कई छोटे राज ऐसी ही परिस्थितिमें पड़ गये थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा अध्याय।

तटस्थता और तटस्थीकरण।

हम तटस्थताकी जो परिभाषा दे आये हैं उससे यह ध्वनि निकलती है कि जो राज तटस्थ होता है वह अपनी इच्छासे। वास्तविक तटस्थता उसीकी है जो युद्धमें सम्मिलित होनेकी सामर्थ्य—सामर्थ्यमें न केवल शक्ति वरन् अधिकार भी परिगणित है—रखता हुआ भी उससे अलग रहे।

परन्तु कुछ ऐसे राज भी हैं जो बाहरी दबावके कारण तटस्थ रहते हैं। हमारा संकेत गुप्त दबावकी ओर नहीं है। गुप्त दबावका इतना ही परिणाम हो सकता है कि जिसपर दबाव डाला जाय वह किसी एक युद्ध-विशेषमें तटस्थ रहे, सदाके लिये ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु कई राज ऐसे हैं जिनके साथ ऐसी सन्धियाँ हैं (या जिनके सम्बन्धमें ऐसी सन्धियां हैं) कि वह किसी भी युद्धमें भाग ले ही नहीं सकते। इसका एकही अपवाद है और वह परमावश्यक है। यदि वह भी चला जाय तो इनका राजत्व ही मिट जाय। प्रत्येक राजका यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजाकी रक्षा करे। यह अधिकार अपरिहार्य्य है। कोई प्रबल राज किसी छोटे राजका सहायक या संरक्षक हो सकता है परन्तु इसका तात्पर्य्य यह नहीं हो सकता कि संरक्षित राज आत्म-रक्षाके कर्तव्यसे चिरमुक्त हो गया। अतः ऐसे राजोंको भी जो नित्य तटस्थताके लिये विवश हैं आत्मरक्षाके लिए लड़नेका अधिकार है। यदि उनपर कोई आक्रमण करे तो उनका लड़ना सर्वथा वैध माना जायगा।

तटस्थीकरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस क्रियाके द्वारा कोई राजविशेष नित्य तटस्थ बनाया जाता है उसे तटस्थीकरण* कहते हैं। कोई राज अपना तटस्थीकरण आप नहीं कर सकता। दो चार राज मिलकर भी किसी राजका तटस्थीकरण नहीं कर सकते। इनके लिये दो बातें आवश्यक हैं, एक तो वह राज स्वयं सहमत हो, क्योंकि यदि वह न लड़नेका वचन ही न दे तो उसे कोई तटस्थ कैसे कर सकता है, यह दूसरी बात है कि उसे सहमत करानेके लिये उसपर किसी प्रकारका गुप्त दबाव डाला जाय। दूसरी बात यह है कि उसके तटस्थीकरणमें सब नहीं तो प्रमुख राज तो भाग लें और उनकी बात अन्य राज मान लें। यदि ऐसा न हुआ तो तटस्थीकारक सन्धिपत्र रद्दी कागजका टुकड़ा होगा।

यह तो निर्विवाद है कि वर्तमान युगमें दुर्बल राज ही तटस्थीकरण स्वीकार कर सकते हैं क्योंकि यह अल्पप्रभुत्वका सूचक है। हम जो उदाहरण देंगे उनसे भी यह बात स्पष्ट हो जायगी।

भारतके देशी राज

सबसे पहिले भारतके देशी राजोंको लीजिये। इनकी परिस्थिति अन्य तटस्थीकृत राजोंकी सी नहीं है। जैसा कि हम पहिले दिखला चुके हैं अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें तो इनका अस्तित्व ही नहीं है। यह भी निश्चय है कि जिस युद्धमें ब्रिटिश सर्कार भाग लेगी उसमें यह भी उसका साथ देंगे, अतः इन्हें तटस्थ कहना ही अनुचित है। पर यह सबके सब ब्रिटिश सर्कारके अधीन हैं अतः यदि कभी इनमें आपसमें किसी प्रकारका झगड़ा उठ खड़ा हो तो कोई किसीका साथ नहीं दे सकता। बस यही इनकी तटस्थता है।

---

* Neutralization. (न्यूट्रैलिजेशन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तटस्थीकृत राज्योंमें स्वीज़रलैण्डका स्थान पहिला है। बहुत पहिले यह देश आस्ट्रियाके अधीन था, पीछेसे स्वतंत्र हो गया।

स्वीज़रलैण्ड

स्वतंत्र होने पर यह स्वयं सैकड़ों वर्ष तक तटस्थ बना रहा। न किसीने इसपर आक्रमण किया न यह किसी झगड़ेके बीचमें पड़ा। नैपोलियनके अभ्युदयके समय यह बात उलट गयी। स्वीज़रलैण्ड फ्रांससे इटली तथा आस्ट्रिया जाते समय मार्गमें पड़ता है अतः नैपोलियनने इसके स्वातंत्र्य और ताटस्थ्यको नष्ट करके इसे अपनी सेनाओंका राजपथ बनाया। फलतः फ्रांसके विपक्षियोंने भी इससे यह काम लिया। नैपोलियनके पतनके उपरान्त कार्तिक १८७२ में पैरिसमें एक सन्धि-पत्र लिखा गया जिसके द्वारा ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया, प्रशा (जर्मनी) और रूसने स्वीज़रलैण्डकी चिर-तटस्थता स्वीकार की और उसके राज्यकी अखण्डताके लिये अपने ऊपर दायित्व लिया। इन महाशक्तियोंके द्वारा सम्पादित तटस्थीकरणको अन्य राज्योंने भी मान लिया और तबसे आज तक किसीने स्वीज़रलैण्डपर आक्रमण नहीं किया है। एक तो स्वयं उसके पास आत्मरक्षाका पर्याप्त साधन है, दूसरे यह भी आशंका है कि उसके विरुद्ध किसी प्रकारका आचरण करनेसे तटस्थकारक राज्योंमेंसे कोई न कोई (यदि सब नहीं) उसकी रक्षाके लिये खड़ा हो जायगा।

बेल्जियमका उदाहरण भी बड़े महत्त्वका है। १८८७ के पहिले यह देश हॉलैण्डका एक प्रान्त था। १८८७ में बेल्जियन

बेल्जियम

जनताने स्वाधीनताके लिये विद्रोह किया। यूरोपकी महाशक्तियोंने उसके साथ सहानुभूति दिखलायी और १८८८ में उसे स्वतंत्र राज मान लिया। हालैण्ड और बेल्जियमका झगड़ा १८९६ तक चला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया। उस साल अन्तिम सन्धि लिखी गयी। इसके द्वारा यूरोपकी महाशक्तियोंने, जिनमें अब इटली भी सम्मिलित कर लिया गया, बेल्जियमका स्वीज़रलैण्डकी भांति तटस्थीकरण किया। १९७१ तक इस सन्धिका पालन हुआ। उस साल यूरोपमें महासमर आरम्भ हुआ। जर्मन सेनाने बेल्जियमसे फ्रांसपर आक्रमण करनेके लिये मार्ग मांगा। बेल्जियमने स्वभावतः यह प्रस्ताव अस्वीकृत किया। इसपर जर्मन सेना बेल्जियममें बलात् घुस गयी और प्रायः सारे देशपर उसका कब्जा हो गया। फिर भी बेल्जियम वाले लड़ते ही रहे। युद्ध समाप्त होने पर उसको अपनी स्वाधीनता तो मिल ही गयी, तटस्थतासे भी छुट्टी मिल गयी। अब वह एक पूर्णप्रभु और बलवान् तथा प्रभावशाली राज है।

तटस्थीकरणसे अड़चनें

ऐसी तटस्थताके कारण कभी कभी कठिनाइयां भी पड़ती हैं। १९२४ में लक्सेम्बर्गका तटस्थीकरण हुआ। यह छोटा सा राज बेल्जियमके निकट है अतः सन्धिके पहिले जो बातचीत हुई उसमें वह भी सम्मिलित था और सब काम उसकी सम्मतिसे किया गया पर स्वयं तटस्थीकृत राज होनेके कारण वह हस्ताक्षर नहीं करने पाया। कारण यह था कि हस्ताक्षर करनेसे उसे लक्सेम्बर्गकी स्वाधीनताके लिये दायी होना पड़ता और उसकी रक्षाका नैतिक भार भी अपने ऊपर लेना पड़ता पर तटस्थीकृत राज होनेके कारण उसे केवल आत्मरक्षाके लिये लड़नेका अधिकार था।

एक और अड़चन पड़ती है। यदि तटस्थीकृत राज तटस्थता या अन्य अन्ताराष्ट्रिय नियमोंके विरुद्ध आचरण करें तो उन्हें दण्ड देना कठिन होता है। उनसे युद्ध कर बैठना उनके संरक्षकों-से युद्ध ठाननेके बराबर होता है। वैध मार्ग यह होता है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहिले इन अभिभावकोंको लिखा जाय कि आप रोकिये नहीं तो हमें विवश होकर दण्ड देना पड़ेगा। सम्भव है इसमें सफलता हो पर समय बहुत लग जाता है। १९२४ के फ्रेञ्च-जर्मन युद्धमें जर्मनीकी ओरसे कहा गया कि लक्सेम्बर्ग फ्रांसकी गुप्त सहायता कर रहा है। अभिभावकोंके पास लिखनेके स्थानमें जर्मनीने उसे धमकी दी कि यदि यह आचरण तत्काल बन्द न किया गया तो सेना भेजी जायगी। इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी पर निश्चय है कि जर्मनी सेना भेजनेमें देर न करता। गत महा-समरमें भी जर्मनीका कहना था कि बेल्जियम गुप्त रूपसे फ्रांस और ब्रिटेनसे मिला था और फ्रेंच सेनाको मार्ग देनेवाला था। ऐसी दशामें प्रमाण एकत्र करके लिखापढ़ी करनेका समय नहीं होता।

यहां तक तो जो कुछ लिखा गया है वह समझमें आता है पर अन्ताराष्ट्रिय जगत् एक विचित्र वस्तु है। इसमें ऐसे ऐसे दुर्विषय देखनेमें आते हैं जिनका न तो कोई नैतिक आधार समझमें आता है न उपयोग, न उनको बुद्धि-पूर्वक बर्त सकते हैं। पूर्णप्रभु और तटस्थीकृत राजोंकी परिस्थिति समझमें आसकती है। उसमें अड़चनें पड़ती हैं पर सुलझायी जा सकती हैं पर कुछ ऐसे पूर्णप्रभु राज हैं जिनके कतिपय प्रदेश तटस्थीकृत हैं।

अतटस्थीकृत राजोंके तटस्थीकृत प्रदेश

१८७२ में सैवाय जो उस समय सार्डिनिया राजका अंग था तटस्थीकृत हुआ। यह निश्चय हुआ कि यह रहे तो सार्डिनियाके अधिकारमें पर यदि कोई युद्ध छिड़ जाय तो सार्डिनियन सेना इसे खाली करदे और स्वीजरलैण्डके, जो तटस्थीकृत राज है, सैनिक इसकी रक्षा करें और कोई इसपर आक्रमण न करे। युद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाप्त होनेपर फिर सार्डिनियाका इसपर कब्ज़ा हो जाय। जब इटलीने, जो पहिले आस्ट्रियाके अधीन था, स्वातन्त्र्यके लिये विद्रोह किया तो फ्रांसने उसे इस शर्तपर सहायता देना स्वीकार किया कि सैवाय फ्रांसको मिल जाय। तदनुसार १९१७ में सैवाय फ्रांसको मिल गया। अब यह प्रश्न उठा कि उसकी स्थिति क्या हो। फ्रांस और इटलीका यह कहना था कि पुरानी सन्धिका अन्त हो गया अतः अब सैवायको तटस्थ माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अन्य राज कहते थे कि सैवायका तटस्थीकरण सब पड़ोसी राजोंके हितकी दृष्टिसे किया गया था और अब भी पूर्ववत् रहना चाहिये। सिद्धान्त तो कोई स्थिर हुआ नहीं पर फ्रांसने सैवायको तटस्थीकृत प्रदेशकी भांति बर्तना स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार जब आयोनियन द्वीपसमूहके सब द्वीप यूनानको दिये गये तो इनमेंसे दो अर्थात् कार्फू और पैक्सो तटस्थ कर दिये गये।

इस प्रकारकी आंशिक तटस्थता स्थायी नहीं हो सकती। ऐसा प्रदेश शीघ्र ही किसी पूर्णप्रभु राजका अनन्य प्रान्त हो जाता है। ऊपरके ही दोनों उदाहरणोंको लीजिये। फ्रांस सैवाय-में नयी किलाबन्दी भले ही न करे (१९४० में उसने किलाबन्दी आरम्भ की थी पर स्वीजरलैण्डके कहने पर काम बन्द कर दिया), इससे अधिक रुकावट यूनानके लिये भी नहीं हो सकती। इन प्रदेशोंसे कर लिया जायगा, सिपाही भर्ती किये जायंगे, खनिज द्रव्य निकाले जायंगे। ऐसी दशामें यह भी आशा नहीं की जा सकती कि आवश्यकता पड़ने पर कोई प्रबल शत्रु इन्हें छोड़ देगा।

जलमार्गोंका तटस्थीकरण अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक है। यदि सब राष्ट्र चाहें तो सभी प्रधान जलमार्ग तटस्थ किये जा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते हैं, कमसे कम संकीर्ण मार्गोंको तो अवश्य ही तटस्थ कर देना चाहिये ताकि दो चार स्वार्थी युद्धकारी राज मिलकर सर्वदेशीय व्यापारको आघात न पहुंचावें। पर अभी तक सफलता केवल पनामा और स्वेज़की नहरोंके सम्बन्धमें हुई है। स्वेज़की तटस्थताकी रक्षा यूरोपकी महाशक्तियों तथा तुर्की मिश्र, स्पेन और हालैण्डके ऊपर है और पनामाका दायित्व संयुक्त राज (अमेरिका) ने लिया है। यदि राष्ट्रसंघ इस ओर ध्यान दे तो बड़ा काम हो सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरा अध्याय ।

तटस्थ राजोंके प्रति युद्धकारी राजोंके कर्तव्य ।

इस विपयकी अन्ताराष्ट्रिय विधानमें पर्य्याप्त व्यवस्था की गयी है यद्यपि कभी कभी व्यवहारमें किसी पक्षकी भूल या हठधर्म्मीसे अड़चनें पड़ जाया करती हैं ।

युद्धकारी राजाका यह पहिला कर्तव्य है । सिद्धान्त रूपसे लोग इसे बहुत प्राचीन कालसे मानते आये हैं । बात है भी इतनी सरल और न्यायसंगत कि इसके विरुद्ध हेतु देना कठिन ही नहीं असम्भव है । जो स्वयं नहीं लड़ता है उसके राज्यके किसी भागको युद्धस्थल बनाना परम दुष्टता है और तटस्थको ताटस्थ्य-जन्य शान्तिसे वंचित करनेका गर्ह्य प्रयत्न है । परन्तु इस सिद्धान्तकी अवहेलना भी कम नहीं होती थी । दुर्बल तटस्थ राजोंके राज्य बहुधा सबल राजोंकी सेनाओंके गमनागमनके राजपथ हो जाते थे । आज कल ऐसा नहीं होता । जो राज अपनी सेना या जहाजोंको ऐसा करने देगा (या यदि भूलसे कोई ऐसी बात हो जाय और उसके लिये क्षमायाचना करके क्षतिपूर्ति न करे) वह सभ्य जगत‌के सामने दोपी माना जायगा । तटस्थ जल और स्थल दोनों ही युद्धक्षेत्रके बाहर हैं । हेगमें १९६४ में जो नियमावली निश्चित हुई उसमें (५वाँ विधान) यह स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि 'तटस्थ शक्तियोंका राज्य अखण्ड्य है' और (१३वां विधान) 'किसी तटस्थ राजके तटलग्न जलमें किसी युद्धकारी राजके रण-पोतों द्वारा किया गया किसी भी प्रकारका सामरिक कार्य्य—जहा-

तटस्थ राज्यमें युद्धको न बढ़ाना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जोंको गिरफ्तार करना और तलाशी लेना भी इसके अन्तर्गत है—ताटस्थ्यको भग्न करने वाला है और पूर्णतया वर्जित है।'

इन व्यापक सिद्धान्तोंका यथासम्भव पूर्णतया पालन किया जाता है। यदि कोई रणपोत किसी शत्रुपोतका पीछा कर रहा हो और वह भाग कर किसी तटस्थ नौस्थान या समुद्रमें शरण ले तो पीछा करना बन्द करना होगा।' तटस्थ भूमिमें किसी प्रकारका सामरिक कार्य्य आरम्भ न होना चाहिये।' † इसका तात्पर्य्य यह है कि यदि कोई रणपोत किसी तटस्थ नौ-स्थानमें पड़ा हो और उसे पता लग जाय कि पासहीसे शत्रु राजका कोई जहाज जा रहा है तो उसे उस जहाजपर आक्रमण न करना चाहिये। यदि उसे सफलता हो जाय और शत्रुपोत पकड़ जाय तो सामरिक न्यायालयको चाहिये कि उसे छोड़ दे क्योंकि उसपर वह आक्रमण, जिसके द्वारा वह पकड़ा गया, एक ऐसा सामरिक कार्य्य था जो कि तटस्थ समुद्रमें आरम्भ हुआ था।

एक प्रश्न यह हो सकता है कि यदि किसी पक्षके पोतपर शत्रुपोत तटस्थ समुद्रके भीतर आक्रमण कर ही दे तो उसे क्या करना चाहिये। इस सम्बन्धमें अधिकांश विद्वानोंकी सम्मति यह है कि उसे पहिले तो उस तटस्थ राजसे रक्षाकी प्रार्थना करनी चाहिये पर यदि वह प्रार्थना स्वीकार न करे या करनेमें असमर्थ हो तो वह आत्मरक्षाका प्रयत्न कर सकता है। ऐसा करना निंद्य नहीं माना जा सकता।

हमको रूस–जापान युद्ध (१९६१) से एक ऐसी घटना मिलती है जो इस सम्बन्धकी कई उलझनोंका उदाहरण दिखलाती है। १९६१ के श्रावणमें पोर्ट आर्थरके नौ-स्थानसे, जिसे जापानी बेड़ा घेरे हुए था, रेशितेल्नी नामकी एक रूसी रणनौका भाग

†एक अंग्रेज जज, सर वाल्टर स्काट, की व्यवस्था (१८५७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकली। दो जापानी जहाजोंने उसका पीछा किया पर वह किसी प्रकार बच बचाकर चीनी नौ-स्थान चेफूमें पहुंच गयी। चीन उस युद्धमें तटस्थ था। वहां पहुंचनेपर चेफूके शासकने रूसियोंसे कहा कि यदि तुम यहां रहना चाहते हो तो अपने जहाजको निःशस्त्र कर दो और युद्ध भरके लिये उसे यहां नजरबन्द समझो। रूसियोंने यह बात मान ली। जो कुछ हो, दूसरे दिन जापानी जहाज चेफूमें घुस पड़े। उन्होंने रूसी कप्तानसे कहा कि या तो एक घण्टेके भीतर खुले समुद्रमें निकल चलो, वहां हम तुम निपट लेंगे, या यहीं आत्मसमर्पण कर दो। दोनों शर्तोंको अस्वीकार करके रूसियोंने अपनी रक्षा करनी चाही पर असफल हुए और पकड़े गये। इस घटनाके सम्बन्धमें चीनका यह कहना है कि हमारे नौ-स्थानमें बलात् प्रवेश करना और सामरिक कार्य्य करना अवैध था अतः जापान दोषी है। हमने रूसी जहाजको निःशस्त्र भी कर दिया था। रूस भी इसी वक्तव्यका समर्थन करता है। जापान कहता है कि निःशस्त्रीकरण केवल नाम मात्रको हुआ था, रूसी जहाजको कोयला लेनेकी अनुज्ञा दी गयी थी और उसने रूसी सर्कारके पास पोर्ट आर्थर सम्बन्धी आवश्यक समाचार भेजे थे। यह कहना कठिन है कि यह आक्षेप झूठ है या सच पर जापानने जो कुछ किया वह निन्द्य था। उसे चाहिये था कि चीनी अधिकारियोंसे ही आग्रह करता कि निःशस्त्रीकरण ठीक रीतिसे करें। यदि ऐसा न होता वरन् रूसी जहाजको कोयला या अन्य सामग्री दी जाती तो उसे अधिकार था कि जो चाहता वह करता। बात केवल यह थी कि चीन एक तो सैनिक दृष्ट्या दुर्बल राज था, दूसरे उसने अपनेको नैतिक दृष्टिसे भी दुर्बल बना रक्खा था। कई अवसरोंपर रूसी सेनाओंने उसकी तटस्थता भग्न की थी पर, चाहे जो कारण हो, वह चुप रह गया था। अतः जापानको भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा करनेका साहस हुआ। आत्मरक्षणमें रूसियोंने जो लड़नेका प्रयत्न किया वह सर्वथा निर्दोष था।

तटस्थ जलमग्न तारोंके साथ छेड़छाड़ न करना

जलमग्न तारोंका प्रश्न बड़े महत्त्वका है। यद्यपि आजकल बेतारके तारने एक देशसे दूसरे देशको समाचार भेजनेका काम बहुत कुछ अपने ऊपर ले लिया है और दिनों दिन इसकी उन्नति ही होती जाती है—सम्भवतः भविष्यत्में अन्ताराष्ट्रिय विधानकी पुस्तकोंमें जलमग्न तारोंकी अपेक्षा निःसूत्र तारोंपर अधिक विचार करना आवश्यक होगा — पर अभी जलमग्न तारोंके द्वारा ही व्यापारादि सम्बन्धी अधिकांश समाचार आते जाते हैं और सर्कारोंका काम भी बहुत कुछ इन्हींपर निर्भर है। ऐसे तार शान्तिकालमें अत्यन्त हितकर हैं पर युद्धकालमें अत्यन्त अहितकर हो सकते हैं।

जलमग्न तारोंकी तात्विक स्थितिपर बड़े सूक्ष्म विचार हुए हैं। १८२६ में संयुक्त राजने यह प्रयत्न किया कि सब राज इस बातको मान लें कि खुले समुद्रमें तारोंको काटना दस्युता है। १८९८ में स्पेन और अमेरिकामें जो युद्ध हुआ उसमें यह कहा गया कि तार ऐसे द्रव्यके बने होते हैं जिनका प्रयोग या उपभोग शत्रुके लिये लाभदायक हो सकता है अतः उन्हें काटना वैध है। १९०१ में जर्मनीसे एक यह सिद्धान्त निकला कि तार एक प्रकारका पुल या शासनका एक समुद्रतलस्पर्शी अङ्ग है अतः उसका काटना वैध है। इन सब विचारोंसे कोई लाभ नहीं होता। लारेंसका कहना ठीक जँचता है कि इतना मानना पर्य्याप्त है कि तार सम्बन्धका एक साधन है। यदि तारसे शत्रु काम लेता है तो उसका नियंत्रण करना या अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर काट देना सर्वथा वैध है पर यह काम ऐसी ही जगह होना चाहिये जहां अन्ताराष्ट्रिय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधानके अनुसार सामरिक कार्य हो सकते हों। यदि हम उन सब परिस्थितियोंपर पृथक् पृथक् विचार कर लें जो ऐसे तारोंके सम्बन्धमें उत्पन्न हो सकती हैं तो यह प्रश्न सुगमतासे सुलझ सकता है। ऐसी परिस्थितियां चार हो सकती हैं।

(क) 'जब कि तार एक शत्रु-राजके राज्यके दो भागोंके बीचमें हो'—ऐसी अवस्थामें उसको पूरा अधिकार है कि उस तारको काट दे और शत्रुका भी अधिकार है कि यदि उससे बन पड़े तो उसे काट दे पर यह काम तटस्थ समुद्रमें न होना चाहिये। जिस युद्धकारी राजके दो भूभागोंको वह तार मिलाता है उसे अधिकार है कि उसके द्वारा तटस्थ राजों या प्रजावर्गीयोंके तार न जाने दे या नियंत्रणके साथ जाने दे। बहुधा तार ऐसी सांकेतिक भाषामें भेजे जाते हैं जिसे केवल भेजने और पानेवाले समझते हैं। युद्धकालमें ऐसे तार अवश्यमेव रोक लिये जाते हैं।

(ख) 'जब कि तार दोनों शत्रु-राज्योंके बीचमें हो'—ऐसी दशामें दोनोंको ही उसे काट देनेका अधिकार है और ऐसा ही प्रायः होता भी है पर कभी कभी आपसमें समझौता करके ऐसा नहीं भी किया जाता। १९५१ में चीन-जापान युद्धके समय बीचका तार नहीं काटा गया क्योंकि जिस कम्पनीका तार था उसने प्रतिज्ञा की कि किसी प्रकारका सैनिक समाचार न जाने पावेगा और उभय पक्षने यह बात मान ली।

(ग) 'जब कि तार एक युद्धकारी और एक तटस्थ राजके बीचमें हो'—यह सबसे टेढ़ी अवस्था होती है। यह तो निश्चय है कि जिन दो राजोंके बीचमें तार है वह उसे तोड़ना न चाहेंगे पर दूसरा युद्धकारी राज क्या करे। वह कह सकता है कि तटस्थ राजसे होकर भांति भांतिके समाचार हमारे शत्रुको पहुंचते रहते हैं जिससे हमको क्षति पहुंचती है अतः हम तार काट देंगे। उधर तटस्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज कह सकता है कि तटस्थ होनेका अर्थ ही यह है कि हमारा दोनों पक्षोंसे सम्बन्ध बना रहे अतः उसमें बाधा डालना हमारे ताटस्थ्य-को भङ्ग करना है। यह बात मान ली गयी है कि तटस्थ राजको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिससे तार द्वारा ऐसे समाचार न आयें जायं जिनसे कि एक पक्षकी हानि हो, पर इसका निबाहना बहुत ही कठिन है। यह भी मान लिया गया है कि यदि एक पक्षको इस बातका पूरा पूरा प्रमाण मिल जाय कि उसके शत्रुके पास ऐसे तार द्वारा सैनिक समाचार जाते हैं और इन समाचारोंको रोकने-का और दूसरा कोई भी साधन न हो तो वह तारको काट सकता है। इस नियममें भी उद्दण्डताके लिये पर्याप्त जगह है। ऐसे प्रश्न आपसके सौजन्य और सद्भावसे ही सुलझ सकते हैं। १८५५ के स्पेन—अमेरिकन युद्धका ऊपर उल्लेख हो चुका है। स्पेन यदि चाहता तो यूरोपसे अमेरिका जाने वाले सभी तारोंको काट देता पर उसने सोचा कि इन तारोंसे अमेरिकाको सैनिक सहायता तो कम मिलती है व्यापारादिका काम अधिक होता है अतः उसने सारे यूरोपके व्यापारको अस्तव्यस्त करना उचित न समझ कर तारोंको ज्योंका त्यों छोड़ दिया।

तार काटनेपर यह प्रश्न होता है कि क्षतिपूर्ति देना आवश्यक है या नहीं। शत्रु तो हर्जाना मांग ही नहीं सकता, तटस्थको देने न देनेका प्रश्न है। हेगमें कुछ स्पष्टतया नहीं कहा गया, इतना ही कहा गया कि जहां स्पष्ट नियम न हों वहां यथासंभव स्थल-युद्धके नियमोंसे काम लेना चाहिये। इस दृष्टिसे तटस्थों-की क्षतिपूर्ति करना उचित प्रतीत होता है। स्पेन-अमेरिकन युद्धमें अमेरिकाने इस प्रकारके तार काटे थे पर उसने इस सिद्धा-न्तको स्वीकार नहीं किया कि क्षतिपूर्ति करना उसका कर्तव्य है। फिर भी अन्तमें न्यायके नामपर उसने रुपया दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(घ) 'जब कि तार दो तटस्थ देशोंके बीचमें हो' — इस दशामें सभी इस बातको मानते हैं कि तारको न काटना चाहिये। पर कभी कभी एक अड़चन पड़ती है। तारके दोनों सिरे तो दो तटस्थ देशोंमें होते हैं पर इनमेंसे एक (या दोनों) सिरेका सम्बन्ध उस तटस्थ देशमेंसे हो कर जाने वाले दूसरे तारोंके द्वारा एक युद्धकारी राजसे होता है। ऐसी दशामें दूसरे युद्धकारी राजकी क्षति हो सकती है। ऐसी अवस्थामें यदि समझाने बुझानेसे काम न चले तो उसे तार काटनेका अवश्य अधिकार होगा। पर इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं है।

युद्धकारी राजोंका तीसरा मुख्य कर्तव्य यह है कि किसी तटस्थ प्रदेशमें युद्धकी तैयारी न करें। यह रुकावट प्रत्यक्ष तय्यारीके लिये है।

तटस्थ भूभागमें युद्ध-की तय्यारी न करना

युद्ध-सामग्री मोल लेना, भोज्य पदार्थोंका संग्रह करना, या जहाज़ोंकी परम आवश्यक मरम्मत कर लेना निषिद्ध नहीं है। परन्तु ऐसा कोई काम नहीं किया जा सकता जिससे शत्रु-सैन्यकी प्रत्यक्ष अर्थात् अव्यवहित हानि हो। जो युद्धकारी राज बलात् ऐसा करता है और जो तटस्थ राज अपने देशमें ऐसा होने देता है वह दोनों ही निन्दा और दण्डके पात्र हैं। प्रत्यक्ष तय्यारीके दो ही मुख्य रूप होते हैं और दोनों ही निषिद्ध हैं पर दोनोंका ही स्वरूप अनिश्चितसा है अतः मतभेदकी जगह रह जाती है।

(क) 'तटस्थ नगरको संगराधार* न बनाना चाहिये' — संगराधार उस स्थानको कहते हैं जो लड़ाईका आधार हो, जहां लड़ाईका आयोजन होता हो, जहांसे युद्ध सम्बन्धी काम आरम्भ होते हों। पर यह परिभाषा अब भी गोल है। इसका अंग्रेज़ी

* Base of Operations. (बेस आफ ऑपरेशन्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्य्याय कई सन्धियों तथा हेग नियमावलीमें प्रयुक्त हुआ पर उसकी ठीक ठीक व्याख्या नहीं की गयी। हॉल कहते हैं कि आधारकी पहिचान यह है कि उससे दीर्घकाल तक लगातार काम लिया जाय। इसमें अव्याप्ति दोष प्रतीत होता है। जिस स्थानसे दीर्घकाल तक निरन्तर काम लिया जायगा वह तो निश्चय आधार होगा पर यह भी सम्भव है कि किसी स्थानसे एक बार और वह भी थोड़ी ही देरके लिये काम लेकर कोई ऐसा लाभ उठाया जाय जो दूसरे स्थानके दीर्घकालीन निरन्तर प्रयोगसे प्राप्त न हो सके। ऐसी दशामें उस पहिले स्थान-को संगराधार न कहना समीचीन नहीं जँचता। इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि यदि किसी स्थानसे कोई ऐसा काम, जो स्वतः ताटस्थ्य-विरुद्ध नहीं है इतने काल तक या परिमाणमें लिया जाय जिससे किसी युद्धकारी पक्षको प्रत्यक्ष लाभ पहुंचे तो वह स्थान संगराधार हो गया। उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। तटस्थ नौस्थानमें अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर थोड़ी देरके लिये आश्रय लेना निषिद्ध अर्थात् ताटस्थ्य-विरुद्ध नहीं है। पर यदि तटस्थ नौस्थानमें दीर्घकाल तक ठहरा जाय या अपना जहाज युद्धके लिये सन्नद्ध किया जाय तो वह नौस्थान संगराधार हो गया चाहे यह काम एक ही बार किया गया हो।

(ख) 'तटस्थ भूभागसे शत्रुपर चढ़ाई न करनी चाहिये'—यह नियम भी सुननेमें बड़ा ही सरल प्रतीत होता है पर चढ़ाई* शब्दका अर्थ ठीक नहीं निकलता। इसके अंग्रेजी पर्यायकी भी ठीक यही दशा है। यदि सैनिक, अफसर, शस्त्र इत्यादि सभी उपकरण उपस्थित हों तब तो सन्देहका कोई स्थल ही नहीं रह जाता पर अड़चन वहां पड़ती है जहां उनमेंसे एकाध अङ्गका

* Expedition. (एक्सपीडीशन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभाव हो। दो प्रसिद्ध उदाहरण इस बातको समझनेमें बड़ी सहायता देंगे।

१८८५ में पुर्तगालमें यादवीय हो गयी। एक दलने तो तत्कालीन महारानी डॉना मेरिआका साथ दिया, दूसरेने उनके विरोधी डॉन मीगेलका पक्ष लिया। डॉना मेरिआके कई सौ सिपाही किसी प्रकार इंग्लैण्ड पहुंच गये थे। वहांसे उन लोगों ने फिर पुर्तगालकी ओर जाकर युद्धमें सम्मिलित होनेकी तय्यारी की। पहिले तो अपने शस्त्र एक जहाज़पर भेज दिये, फिर स्वयं सातसौ सैनिक प्लीमथ नौस्थानसे टसीइराके लिये, जो डॉना मेरिआके अधीन था, चले। ब्रिटिश सर्कारने उन्हें रोकनेके लिये एक जहाज भेजा। उस जहाज़के अफ़सर, कप्तान वैल्पोल, ने उनसे कहा कि आप टसीइरा छोड़कर जहां चाहें जायं क्योंकि टसीइरा जाना 'चढ़ाई' करना होगा। उन लोगोंने कहना तो न माना पर कप्तान वैल्पोलने उनके जहाज़को बलात् उधरसे हटा दिया। सभी आचार्य्योंने ब्रिटिश सर्कारके इस कामको उचित माना है। यद्यपि उन पुर्तगालियोंके पास शस्त्र न थे पर वह उस समय भी सैनिक थे, उनका अफसर सैनिक अफसर था, उनको जहाज़परसे उतरते ही शस्त्र मिल जाना निश्चित था। अतः उनके विषयमें चढ़ाईका शब्द प्रयुक्त हो सकता था।

१९२७ में फ्रेंच-जर्मन युद्धके समय कई सौ फ्रेंच और जर्मन अमेरिकासे स्वदेश लौटे पर इनमेंसे अधिकांश छोटी छोटी टुकड़ियोंमें गये। इसपर किसीने आक्षेप न किया पर एक वार १२०० फ्रांसीसी एकही जहाजपर सवार हुए जिसपर बन्दूक और गोला-बारूद भी थी। जर्मन सर्कारने इसपर आपत्ति की परन्तु अमेरिकन सर्कारने उत्तरमें कहा कि इसे चढ़ाई नहीं कह सकते क्योंकि अभी फ्रांसीसी न तो सिपाही हैं न किसी सैनिक अफसरके अधीन जा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन दोनों उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो गया कि शस्त्रका होना न होना चढ़ाईका पर्याप्त लिङ्ग नहीं है। तत्काल ही युद्धमें सम्मिलित होनेका उद्देश्य, सैनिक रीतिसे संगठन और सैनिक अफ़सरके अधीन होना—यह तीन मुख्य लक्षण माने जाते हैं।

प्रत्येक तटस्थ राजको यह अधिकार है कि अपनी तटस्थताकी रक्षाके लिये किसी युद्धके आरम्भ होने पर विशेष नियम बना दे। भिन्न भिन्न राजोंने भिन्न भिन्न अवसरों-पर ऐसे नियम बनाये भी हैं। जहां विशेष नियम प्रकाशित नहीं किये जाते वहां साधारण अन्ताराष्ट्रिय उपचारसे ही काम चलता है।

ताटस्थ्यकी रक्षाके लिये बने हुए नियमोंका पालन

नियम कई प्रकारके होते हैं। साधारणतः उभय पक्षके जहाज़ थोड़े समयके लिये तटस्थ नौस्थानमें ठहर सकते हैं पर उनका प्रवेश तटस्थ राजकी इच्छापर निर्भर है। तटस्थको अधिकार है कि अपने नौस्थानोंमें युद्धकारी राष्ट्रोंके जहाज़ोंका प्रवेश एकदम निषिद्ध कर दे। इस आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया जा सकता पर तटस्थको चाहिये कि दोनों पक्षोंके साथ निष्पक्ष व्यवहार करे। यदि जहाज बिल्कुल बेकाम होजाय तो निषेधाज्ञाका उल्लंघन क्षम्य हो सकता है। जहां प्रवेशका निषेध नहीं होता वहां भी प्रायः ऐसे नियम बना दिये जाते हैं कि जो जहाज आये वह इतने दिन ठहरे, इतना कोयला और खाना ले, अमुक अमुक प्रकारकी मरम्मत करे इत्यादि।

स्थलयुद्धमें किसी भी पक्षकी सेना तटस्थ सीमाके भीतर नहीं जा सकती पर यदि शत्रु पीछा करते करते किसी सेनाको तटस्थ सीमा तक हटा ले जाय और वह विवश होकर तटस्थ देश-में आ हो जाय तो उसके हथियार रखवा लिये जाते हैं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिपाही नजरबन्द* कर दिये जाते हैं। तटस्थ सर्कार इनका भरण पोषण करती है। युद्ध समाप्त होने पर उनकी सर्कार कुल रुपया चुका देती है और वह अपने घर चले जाते हैं पर युद्धकालमें भागने या घर जानेका प्रयत्न करना या फिर तटस्थ सीमाको पार करनेकी चेष्टा करना या गुप्त रूपसे शत्रुके विरुद्ध किसी प्रकारका आचरण करना या अपने पास शस्त्र छिपा रखना आश्रय देने वाले तटस्थ राजकी तटस्थताको भग्न करना, अतः दण्डार्ह, है।

हम कई बार क्षतिपूर्ति† का उल्लेख कर चुके हैं। क्षति-पूर्तिके सैकड़ों अवसर आते हैं। नियम इतने अधिक और टेढ़े हैं कि उनमें से एक न एक टूटता ही रहता है।

जिस राजकी तटस्थता भग्न की जाय उसकी क्षतिपूर्ति करना

सर्कारोंकी चाहे जो इच्छा हो, यह असम्भव है कि लड़ाईकी गर्मागर्मीके समय उत्साही सेनापति और सिपाही अन्ताराष्ट्रिय विधानकी पोथी खोलकर बैठें और उसके आदेशोंके अनुसार फूँक फूँक कर पाँव रक्खें। यदि कोई सम्पत्ति अवैध रूपसे जब्त कर ली गयी है तो वह लौटायी जा सकती है या यदि वह नष्ट कर दी गयी है तो उसका मूल्य दिया जा सकता है पर इतनेसे ही क्षतिपूर्ति नहीं होती। जिस नियम या स्वत्वका उल्लंघन हो और तीव्र या मन्द जिस कोटिका उल्लंघन हो उसी परिमाणसे क्षतिपूर्ति होनी चाहिये पर अन्ताराष्ट्रिय विधानने इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं बनाया है। कभी साधारण खेद-प्रकाशसे काम चल जाता है, कहीं विशद क्षमायाचना करनी होती है, कहीं तटस्थ

---

* Intern (इण्टर्न)
† Reparations. (रिपैरेशन्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजके झण्डेको, जिस स्थानपर ताटस्थ्यका उल्लंघन हुआ होता है, वहीं पर उल्लंघन करने वाले राजके सेनापति या मंत्री आकर सलाम करते हैं, कहीं रुपया देना पड़ता है, कभी कभी उल्लंघन करने वाला सेनापति निकाल दिया जाता है, कभी कभी यह सब कुछ करना पड़ता है। पर किस अवसरपर क्या हो और किस रूपमें हो यह कुछ तो अवसरपर, कुछ उभयपक्षके बलाबलपर निर्भर है।

हम ऊपर कह आये हैं कि तटस्थ राजके तटलग्न जलमें कोई सामरिक कार्य्यवाही नहीं हो सकती। यदि किसी युद्धकारी पक्षका जहाज किसी तटस्थ नौस्थानमें लङ्गर डाले पड़ा है तो वह उस समयके लिये उस तटस्थ राजकी शरणमें है। यदि उसे दूसरे पक्षका कोई जहाज किसी प्रकारकी क्षति पहुंचाता है तो वह उस तटस्थ राजका अपमान करता है अतः तटस्थ राज ही उससे क्षतिपूर्ति करायेगा, इसके बाद वह तटस्थ राज जैसा उचित प्रतीत होगा उस जहाजके स्वामियोंकी क्षतिपूर्ति कर देगा।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके भीतर एक विचित्र सिद्धान्त है जिसे 'अंगरी'* विधान कहते हैं। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त नहीं है और इधर बहुत दिनोंसे इससे काम भी नहीं लिया गया है। इसका तात्पर्य्य यह है कि अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर तटस्थ सम्पत्ति लड़ाईके काममें लायी जा सकती है या नष्ट की जा सकती है। तटस्थ सम्पत्ति दो अवस्थाओंमें अपने हाथ आ सकती है। या तो शत्रुके किसी प्रदेशपर अधिकार हो जाय और वहां तटस्थ सम्पत्ति हो या अपने ही देशमें वर्तमान हो। ऐसा हो सकता है कि शत्रुके किसी प्रदेशपर अधिकार करने-

अंगरी

* Droit d' angarie, jus angariae, angary.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर मुल्कगीरी सेनाको वहां किसी तटस्थ राजके शस्त्र या रेलवे एञ्जिन या यंत्र मिल जायँ या अपने ही नौस्थानोंमें किसी तटस्थ देशके जहाज़ हों। अंगरीके समर्थकोंका कहना है कि अत्यन्त सामरिक आवश्यकता पड़नेपर इनसे काम ले सकते हैं या नष्ट कर सकते हैं। आजकल अधिकांश सम्मति इसके सर्वथा प्रतिकूल है क्योंकि यह वस्तुतः एक प्रकारकी लूट है और तादस्थ्यके तत्वतः विरुद्ध है। जो लोग इसका समर्थन करते हैं वह भी इतना मानते हैं कि यदि अंगरी नियमसे काम लिया ही जाय तो छीनी हुई वस्तु जितना शीघ्र हो सके लौटा दी जाय और क्षमा-याचनाके साथ पूरी पूरी क्षतिपूर्ति की जाय। यह नियम इतना बुरा है कि आज कल स्यात् ही कोई इसका समर्थन करता है, कमसे कम लगभग ५० वर्षसे किसी राजने इससे काम नहीं लिया है। १९२७ में जर्मनोंने छः अंग्रेजी कोयला लादने वाले जहाजोंको सीन नदीमें ड्यूकेयरके पास डुबा दिया। उनका कहना यह था कि उधरसे फ्रेंच जहाज आ रहे थे उनको रोकनेका इसके सिवाय इस समय कोई दूसरा साधन न था। अंग्रेजोंको क्षतिपूर्ति स्वरूप रुपया मिला। यही स्यात् अंगरीसे काम लेनेका अन्तिम उदाहरण मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा अध्याय।

युद्धकारी राजोंके प्रति तटस्थ राजोंके कर्त्तव्य।

पहिले तो यह कर्तव्य बहुत ही अनिश्चित अवस्थामें थे पर १९६४ के हेग सम्मेलनके पीछे इनका रूप बहुत कुछ स्थिर हो गया है। अब भी कई बातें विवादास्पद रह गयी हैं, उनका निर्णय राजोंकी न्यायबुद्धि और समयोपयोगितापर निर्भर है। लारेंसने इन कर्तव्योंको पाँच कोटियोंमें विभक्त किया है, आत्मनियंत्रणात्मक, परनियंत्रणात्मक, सहिष्णुतात्मक, प्रत्यर्पणात्मक और क्षतिपूर्त्यात्मक। हम इन पांचों विभागों और इनके अन्तर्गत कर्तव्योंपर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

(१) आत्मनियंत्रणात्मक कर्तव्य। *

आत्मनियंत्रणका अर्थ हुआ अपने ऊपर नियंत्रण करना, अपने ऊपर अंकुश रखना। इस कोटिमें वह काम परिगणित हैं जिन्हें युद्धकालमें तटस्थ राज स्वयं नहीं करता, यद्यपि दूसरे समय उसे उन्हें करनेका पूरा अधिकार प्राप्त है।

इस प्रकारके कर्तव्योंमें तीन मुख्य हैं—

(क) 'किसी पक्षको सशस्त्र सहायता न देना'—अब महाभारतका समय नहीं रहा जब कि एक राज दोनों पक्षोंका समर्थन कर सकता था जैसा कि श्रीकृष्णने अपनी सेना कौरवोंको देकर और आप पाण्डवोंसे मिलकर किया। अब, जैसा कि यूरोपमें पहिले होता था कि किसी पुरानी सन्धिके अनुसार एक पक्षको सहायता देकर भी ताटस्थ्य बना रहता था, नहीं हो

---

* Duties of Abstention. (ड्यूटीज़ आफ ऐब्सटेंशन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता। जो किसी भी पक्षकी सहायता करता है वह तटस्थ नहीं माना जा सकता।

(ख) 'किसी पक्षके साथ पक्षपात न करना अर्थात् उभयपक्षको समान अधिकार देना'—पक्षपातमय ताटस्थ्य भी पहिले बहुत प्रचलित था। १८५५ में फ्रांस और संयुक्त राजमें जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार फ्रांसको यह विशेष अधिकार मिला था कि यदि उससे किसी राजसे युद्ध हो जाय तो फ्रांसीसी जहाज शत्रुके जहाजोंको पकड़ कर अमेरिकन नौस्थानोंमें रख सकें पर कोई दूसरा राज ऐसा न कर सके। उस समय अमेरिकाको कुछ ऐसी गरज़ थी कि उसने यह शर्त मान ली पर इससे तटस्थतामें बाधा पड़ती थी। उसने इससे छुटकारा पाना चाहा पर फ्रांस सहमत न होता था। १८५७ में जाकर पिण्ड छूटा। अब कोई राज ऐसी शर्तें नहीं करता। हम तीसरे अध्यायमें लिख आये हैं कि तटस्थ राजको अधिकार है कि अपने राज्यमें युद्धकारी राजोंके जहाजोंके आनेका निषेध कर दे पर यह आज्ञा उभयपक्षके लिये होनी चाहिये। ऐसा न करना युद्धमें सम्मिलित होनेके बराबर है।

(ग) 'किसी पक्षको न तो रुपया योंही दे देना न ऋण देना और न किसी पक्षको सैनिक सामग्री देना न किसीके हाथ सैनिक सामग्री बेचना'—इस सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। रुपया योंही उठाकर दे देना अथवा ऋण देना दोनों बराबर है। दोनों दशाओंमें एक पक्षको सहायता मिलती है। स्वयं ऋण न देकर किसी दूसरेसे दिला देना या ऋण लेनेमें मध्यस्थ बनना या जामिन बनना भी उसी प्रकार निषिद्ध है। पर यह नियम केवल तटस्थ राजोंके लिये है, प्रजाके लिये नहीं। प्रजाको उभयपक्षके साथ व्यापार करनेका पूर्ण अधिकार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋण देना भी व्यापार है अतः वह भी मना नहीं है। आज-कल स्यात् ही कोई बड़ा युद्ध होता होगा कि जिसमें तटस्थ व्यापारियोंसे ऋण न लिया जाता हो। प्रजा ऋण दे सकती है। दान देना सम्भवतः अनुचित समझा जायगा परन्तु इसकी इतनी युक्तियां निकल सकती हैं कि अड़चन बचायी जा सकती है।

शस्त्र देना या वेचना भी पूर्णतया निषिद्ध है। हेगमें स्पष्ट शब्दोंमें निश्चित हुआ था कि 'किसी तटस्थ शक्तिका किसी युद्ध-कारी शक्तिको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी रूपसे, रणपोत, किसी प्रकारकी युद्ध-सामग्री या रसद* देना निषिद्ध है' (जलयुद्धमें तटस्थोंके स्वत्व और कर्तव्य—धारा ६)। परन्तु रुपये वाला नियम यहां भी लगता है, राज स्वयं शस्त्रादि नहीं दे सकता पर अपनी प्रजाको रोकना उसका कर्तव्य नहीं है। यदि प्रजा चाहे तो उभयपक्षके हाथ रणसामग्री वेच सकती है। गत महासमरके प्रथम तीन वर्षोंमें इसी प्रकारके व्यापारसे अमेरिका मालामाल हो गया। हेग नियमावलीके अनुसार 'किसी तटस्थ राजका यह कर्तव्य नहीं है कि वह किसी पक्षके लिये भेजे जाते हुए शस्त्र, रणसामग्री, या साधारणतः किसी ऐसी वस्तुका, जो किसी स्थल या जल सेनाके लिये उपयोगी हो सकती है, निर्यात या गमनागमन रोके' (स्थल तथा जल युद्धमें तटस्थोंके स्वत्व और कर्तव्य—धारा ७)।

यह नियम तो स्पष्ट है पर कभी कभी इसकी व्याख्याके सम्बन्ध-में मतभेद हो सकता है। १९६० में जापानने आर्जेण्टिनासे दो बड़े रणपोत मोल लिये। इसके कुछ ही महीने पीछे उससे रूससे युद्ध छिड़ा। सम्भवतः जापानने इस युद्धके लिये ही इन पोतों-

* सेनाके खाने पीने पहिननेकी सामग्री तथा जहाज़ोंके लिये ईंधन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को मोल लिया होगा पर इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि आर्जेण्टिनाको यह ज्ञात था कि युद्ध होगा। यदि प्रमाण हो भी तो उसे दोषी नहीं ठहरा सकते क्योंकि बिक्रीके समय युद्ध नहीं हो रहा था अतः ताटस्थ्यका प्रश्न ही नहीं उठ सकता। यदि बिक्रीकी सब कार्य्यवाही पूरी होनेके पहिले युद्ध छिड़ गया होता तो आर्जेण्टिनाका यह कर्तव्य होता कि युद्ध-समाप्ति तक जहाज़ोंको रोक ले। १९२७ में जब कि फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध हो रहा था, अमेरिकन सर्कारने बहुत सी पुरानी तोपें, बन्दूकें तथा अन्य रणसामग्री बेची। किसी न किसी प्रकार इसमेंसे बहुत सी वस्तुएं फ्रांस पहुंच गयीं। इससे यह निश्चय है कि मोल लेने वालोंमें फ्रांसके एजेण्ट थे। जर्मनीने इसपर आपत्ति की। जाँच पड़तालके बाद भी अमेरिकन सर्कारने अपनेको निर्दोष ठहराया। उसका कहना यह था कि हमने जानबूझ कर फ्रांसके हाथ कोई वस्तु नहीं बेची। अपना रद्दी माल खुले मैदान बेचा, चाहे कोई ले। उस समय बात यहीं तक रह गयी पर अमेरिकन सर्कारका तर्क बहुत सन्तोषजनक नहीं है। कमसे कम अब तो हेगमें यह निश्चय हो ही गया है कि 'प्रत्यक्ष' अथवा 'अप्रत्यक्ष' रूपसे सहायता देना निषिद्ध है। इसका ठीक ठीक पालन तो इसी प्रकार हो सकता है कि या तो ऐसे समय रणसामग्री, चाहे वह कैसी ही रद्दी हो, बेची ही न जाय और यदि बेची भी जाय तो इस बातका पूरा प्रबन्ध किया जाय कि किसी युद्धकारी पक्षके एजेण्टोंके हाथ न लग जाय। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इसकी रोकथाम नहीं हो सकती। यदि अमेरिकन सर्कारसे सारी सामग्री कुछ अमेरिकन व्यापारी मोल ले लेते और फिर वह उसे फ्रांसके हाथ बेच देते तो जर्मनीको आपत्ति करनेका कोई अवसर न मिलता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) परनियंत्रणात्मक कर्तव्य । *

परनियंत्रणका अर्थ हुआ दूसरेका नियंत्रण करना, दूसरेको रोकना। 'पर' शब्दके तीन लक्ष्य हैं। एक तो तटस्थ राजको दोनों युद्धकारी पक्षोंका नियंत्रण करना पड़ता है, दूसरे उसे अपनी प्रजाका नियंत्रण करना पड़ता है, तीसरे उसे अन्य व्यक्तियोंका, जो दोमेंसे एक पक्षकी ओरसे काम कर रहे हों, नियंत्रण करना पड़ता है। ताटस्थ्य-विरुद्ध कामोंको न होने देना, उनके करनेसे 'यथाशक्य' रोकना, ही नियंत्रण है। हमने ऊपर 'यथाशक्य' लिखा है। इसका ठीक ठीक अर्थ लगाना कठिन है। 'शक्य' की नाप नहीं हो सकती। कोई तटस्थ राज अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है या नहीं इसका निर्णय करना बड़ा कठिन होता है। अंग्रेज़ीमें जो शब्द आता था उसका अर्थ है "समुचित प्रयत्नशीलता"† पर इसका भी अर्थ गोल है। १९२८ में ब्रिटेन और अमेरिकामें इस सम्बन्धमें विवाद उठा। ब्रिटेनकी ओरसे कहा गया 'किसी विशेष उद्देश्यके लिये जितनी सावधानतासे काम लेनेके लिये सर्कार बाध्य है' ‡ उसे समुचित प्रयत्नशीलता कहते हैं। अमेरिकाने कहा कि वह प्रयत्नशीलता समुचित है जो 'अवसरकी आवश्यकता, या अनवधानताके परिणामोंके महत्त्व, के अनुरूप' हो§ । जो लोग इस विवादमें पंच

---

* Duties of Prevention. (ड्युटीज़ आफ प्रिवेंशन) † Due Diligence. (ड्यु डिलिजेन्स) ‡ 'that measure of care which the government is under an obligation to use for a given purpose.' § 'commensurate with the emergency or with the magnitude of the results of negligence.'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाये गये उन्होंने कहा कि तटस्थोंको चाहिये कि यह देखें कि 'उनके अपने ताटस्थ्य-सम्बन्धी कर्तव्योंके पालन न करनेसे किसी युद्धकारी पक्षकी कितनी हानि होनेकी आशंका है और उसी हिसाबसे' § प्रयत्नशील होना चाहिये। जैसा कि लारेंसने कहा है यह तीनों ही व्याख्याएँ सदोष हैं। न तो इनसे कोई स्पष्ट अर्थ ही निकलता है न प्रयत्नशीलताकी कोई मात्रा ही निश्चित होती है। हेग सम्मेलन भी इसकी व्याख्या करनेमें सफल न हुआ। उसने समुचित प्रयत्नशीलताके स्थानमें लिखा है तटस्थ सर्कार-का कर्तव्य है कि 'जो साधन उसे प्राप्त हों' उनसे काम ले। यह भी स्पष्ट नहीं है। इसमें जो 'साधन' शब्द आया है वह गोल है। यदि वह केवल तोप, बन्दूक, रणपोत, सेना आदिके लिये ही प्रयुक्त होता तो स्यात् कठिनाई न पड़ती। पर इसका अर्थ और भी व्यापक है। किसी किसी देशमें ऐसे विधान हैं या हो सकते हैं कि उच्चपदस्थ सर्कारी कर्मचारी बिना पार्लमेण्टके परामर्शके अमुक अमुक अधिकारसे काम न लें। ऐसी दशामें सम्भव है कि ताटस्थ्यकी रक्षा जल्दीमें न हो सके। अतः उचित यह था कि सब मुख्य मुख्य साधनोंका नामतः उद्देश कर दिया जाता।

अब हम उन मुख्य कर्तव्योंका पृथक् पृथक् वर्णन करेंगे जो परनियंत्रणके अन्तर्गत हैं।

(क) 'अपने राज्यमें युद्ध न होने देना'—इसका कई बार उल्लेख हो चुका है और अब अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। राज्यसे तटलग्न जलसे भी अभिप्राय है।

(ख) 'अपने राज्यमेंसे किसी पक्षकी स्थल सेनाको न जाने

§ 'in exact proportion to the risks to which either of the belligerents may be exposed from a failure to fulfil the obligations of neutrality on their part.'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देना'—यह भी स्पष्ट है। जल-सेनाके लिये यह नियम नहीं है। यदि कोई डमरूमध्य किसी तटस्थ राजके तटलग्न जलके अन्तर्गत हो तो वह उसे बन्द नहीं कर सकता। उभयपक्षके रणपोतोंको उसमेंसे गमनागमनका पूर्ण अधिकार है। यह हम पहिले कह चुके हैं कि तटस्थ राजोंको अधिकार है कि युद्धकारी राजोंके जहाजोंको अपने नौस्थानोंमें प्रवेश करनेसे निषेध कर दें पर इस सम्बन्धमें मतभेद है कि तटलग्न जलमेंसे होकर आने जानेका निषेध करनेका अधिकार है या नहीं।

(ग) 'अपने राज्यमें न चढ़ाईकी तय्यारी होने देना, न चढ़ाईकी यात्रा आरम्भ होने देना'—चढ़ाईकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है। युद्धकारियोंका तो कर्तव्य है ही कि तटस्थ प्रदेशमें ऐसा न करें, तटस्थोंको भी चाहिये कि उन्हें रोकें। हेग नियमावलीमें लिखा है कि प्रत्येक राजको चाहिये कि अपने किसी नौ-स्थानसे ऐसे किसी जहाजको शस्त्रान्वित या सज्जित न होने दे जिसके विषयमें यह आशंका हो कि यह किसी ऐसे राजके विरुद्ध कोई सामरिक कार्य्य करनेके उद्देश्यसे जा रहा है जिससे इससे (अर्थात् जिस तटस्थ राजका नौ-स्थान है) मैत्री है। ऐसे व्यापारिक जहाजोंको बाहर जानेसे रोकनेका भी आदेश है जो तटस्थ प्रदेशके भीतर रह कर पूर्णतया या अंशतया युद्ध योग्य बना दिये गये हों। यह नियम हैं तो बड़े ही व्यापक पर इनमें भी झगड़ेके कई स्थल हैं। 'शस्त्रान्वित होनेका'* ठीक अर्थ क्या है? जहाजपर जितने मनुष्य हैं इन सबके पास किसी न किसी प्रकारका शस्त्र हो पर जहाजपर तोपें न हों तो उसे 'शस्त्रान्वित' मानें या न मानें? कितने और किस प्रकारके शस्त्रोंके होनेसे

* Arming (आर्मिङ्ग)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाजको शस्त्रान्वित कहना चाहिये? सज्जित † का अभिप्राय क्या है? सबसे टेढ़ा प्रश्न उद्देश्य§ का है। इस बातका निश्चय कैसे किया जाय कि अमुक जहाज किस उद्देश्यसे बाहर जा रहा है? ऐसे ऐसे शब्दोंके पीछे कभी कभी बहुत विवाद बढ़ जाता है। इनका प्रयोग इस बातका प्रमाण है कि स्वयं नियामक लोगोंमें ही मतैक्य न हो पाया।

(घ) 'अपने राज्यमें किसी पक्षकी स्थल या जल सेनाके लिये सैनिक भर्ती न होने देना'—यह नियम भी स्पष्ट है। कोई युद्धकारी राज किसी तटस्थ देशमें सिपाहियोंकी भर्तीका प्रबन्ध नहीं कर सकता। यदि वह करना भी चाहे तो तटस्थ देशको उसे रोकना चाहिये। आत्मसम्मानी स्वतन्त्र देश ऐसा करते भी हैं। गत महासमरमें नैपाल तटस्थ था, कमसे कम न तो उसने जर्मनी आदि-के विरुद्ध किसी प्रकारकी रणघोषणा की, न सन्धि परिषद्में ही किसीने उससे बात पूछी फिर भी कई सहस्र गुर्खे अंग्रेजी सेनाके लिये स्पष्ट रूपसे नैपालमें भर्ती हुए। यह नैपाल सर्कारकी आत्म-सम्मानहीनताका प्रमाण है। यदि नैपालका सचमुच अन्ताराष्ट्रिय जगत्में कोई स्थान होता, जैसा कि अपनेको स्वतन्त्र कहने वाले राजका होना चाहिये, तो उसे लेनेके देने पड़ जाते। अस्तु, यह नियम तो है पर कभी कभी इसका उल्लंघन भी हो जाता है। जब यूनान-वासी तुर्की आधिपत्यसे निकल कर स्वतन्त्र होनेका प्रयत्न कर रहे थे उस समय ब्रिटेन तटस्थ था पर अंग्रेजोंको यूनानके नामसे प्रेम था अतः बहुत से अंग्रेज जाकर यूनानी सेनामें भर्ती हुए। कई बार तुर्कोंका यूरोपके सबल राजोंसे युद्ध हुआ है। ऐसे अवसरोंपर भारतके मुसलमानोंने तुर्कोंके साथ बड़ी सहानुभूति दिखलायी है। यदि उनमें सचमुच वीर्य्य होता तो

† Fitting out. (फिटिंग आउट) § Intent. (इंटेंट)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्भवतः तुर्कोंकी ओरसे लड़ने भी जाते। ऐसे अवसरोंपर तटस्थ राजोंके लिये अपनी प्रजाका उत्साह संवरण करना बड़ा कठिन होता है। इसलिये वह आंख बन्द करके चुप्पी साध लेते हैं। यदि दूसरे पक्षने आक्षेप किया तो यही कह सकते हैं कि हम अपने भर सक ऐसा नहीं होने देते, यदि कुछ लोग चुपकेसे निकल जाते हैं तो हमें दुःख है पर हम विवश हैं। परन्तु ऐसा होने देना ताटस्थ्यके सर्वथा विरुद्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

(ङ) 'युद्धकारी रणपोतों और उनके गिरफ्तार किये हुए जहाजोंको अपने नौ-स्थानों और तटलग्न सागरोंमें अनुचित आश्रय न लेने देना'—अनुचित 'आश्रय' के दो अर्थ हैं। उसका एक लक्ष्य तो रणपोतोंकी संख्याकी ओर है, दूसरा लक्ष्य उस समयकी ओर है जिसके भीतर जहाजोंको चले जाना चाहिये। पहिले तो इस सम्बन्धमें कोई नियम न था पर १९६४ के हेग सम्मेलनने यह निश्चित कर दिया कि किसी तटस्थ नौस्थान या तटलग्न सागरमें किसी एक युद्धकारी राजके तीनसे अधिक रणपोत एक ही समय नहीं रह सकते पर विशेष आवश्यकता देखकर तटस्थ राज इस संख्याको बढ़ा घटा सकता है।

ठहरनेके समयके विषयमें भी बहुत मतभेद था। पहिले पहिल ब्रिटेनने यह नियम बनाया कि कोई युद्धकारी रणपोत किसी ब्रिटिश नौस्थान या तटलग्न सागरमें २४ घण्टेसे अधिक नहीं ठहर सकता। हेग सम्मेलनने इस नियमको सार्वभौम बना दिया पर फ्रांस और जर्मनीके विरोधके कारण तटस्थ राजोंको विशेष नियम बनानेका अधिकार दे दिया। यह भी नियम हो गया कि यदि युद्ध छिड़नेके समय कोई युद्धकारी रणपोत किसी तटस्थ सागरमें हो तो उसे २४ घण्टेके भीतर चले जाना चाहिये। पर तटस्थ राजोंको अधिकार है कि वह २४ घण्टेके स्थानमें अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने यहां कोई और अवधि नियत कर दें। जो नियत अवधि हो उसका अतिक्रमण उसी अवस्थामें हो सकता है जब कि जहाज खराब हो गया हो या ऋतु प्रतिकूल हो। इस रुकावटके दूर होते ही चले जाना चाहिये। यदि कोई रणपोत कोयला लेनेके लिये आये तो उसे भी २४ घण्टेके भीतर चले जाना चाहिये।

कभी कभी एक ही नौस्थानमें दोनों विरोधी पक्षोंके जहाज आ जाते हैं। इस अवस्थाके लिए यह नियम है कि यदि दोनों ही रणपोत हों तो जो जहाज पहिले आया हो वह पहिले जाय और उसके जानेके २४ घण्टेके पीछे दूसरा जाय। यदि पहिले आया हुआ जहाज बेकार हो गया हो तो उसे पीछे जानेकी अनुज्ञा दी जा सकती है। यदि एक पक्षका जहाज रणपोत हो और दूसरे पक्षका व्यापारिक पोत हो तो पहिले व्यापारिक पोत जायगा और रणपोत उसके २४ घण्टे बाद निकलेगा।

गिरफ्तार किये हुए जहाजोंके सम्बन्धके नियम अच्छे नहीं हैं। ब्रिटेनने अपने यहांके लिये तो यह नियम बना लिया है कि कोई गिरफ्तार किया हुआ जहाज ब्रिटिश तटस्थताकी दशामें किसी ब्रिटिश नौस्थान या समुद्रमें लाया जा ही नहीं सकता। जापानका भी यही मत है। पर अन्य राज इसे पसन्द नहीं करते। हेगमें यह नियम बना कि यदि गिरफ्तार किया हुआ जहाज खराब हो गया हो, ऋतु प्रतिकूल हो, कोयला न रह गया हो या रसद चूक गयी हो तो उसे (गिरफ्तार किये हुए जहाजको) तटस्थ सीमाके भीतर ला सकते हैं। यह शर्तें तो उतनी बुरी नहीं हैं पर पीछेसे एक बहुत ही खराब शर्त जोड़ दी गयी। वह यह है कि यदि रणपोत अपने शिकारको स्वदेशके किसी नौस्थानमें न पहुंचा सके और उस गिरफ्तार किये हुए जहाजके विषयमें (युद्धकारी राज्यमें स्थित) न्यायालयमें कागजोंके आधारपर विचार हो रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो तो न्यायालयके निर्णय सुनाने तक रक्षाके लिये उसे तटस्थ समुद्र या नौस्थानमें रख सकते हैं।

(च) 'रणपोतोंकी शक्तिमें वृद्धि न होने देना'—शक्तिकी वृद्धि रणसामग्री संग्रह करने और सिपाही भर्ती करनेसे होती है। यह तो रोका जा सकता है पर एक नियम यह भी है कि रण-पोतोंको ऐसी मरम्मत करनेकी अनुज्ञा दे दी जाय जिससे वह समुद्रमें चलने योग्य हो जायँ पर उनकी सामरिक शक्ति न बढ़े। यह नियम अस्पष्ट है। यदि कोई जहाज खराब हो रहा है तो उसकी सामरिक शक्ति भी गिर गयी है। यदि वह समुद्रमें चलने योग्य बनाया जायगा तो उसकी सामरिक शक्ति भी बढ़ेगी। फिर भी जब नियम है तो उसका किसी न किसी प्रकार पालन होता ही है। जो अति शीघ्र मरम्मत हो सकता है उसको अनुज्ञा दे दी जाती है। स्थानीय अधिकारी देखते रहते हैं कि विशेष काम न होने पावे। यदि किसी जहाजको बहुत मरम्मतकी आव-श्यकता होती है तो उसे निःशस्त्र करके मरम्मत होने देते हैं और युद्धकी समाप्ति तक जाने नहीं देते।

(छ) 'किसी पक्षके जहाजोंको बार बार और अनुचित परिमा-णमें रसद संग्रह करनेसे रोकना'—यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि तटस्थ राजका कर्तव्य केवल अपने राज्यके भीतर रोकना है और यह नियम केवल अनिषिद्ध रसदके लिये है। निषिद्ध रसद अर्थात् गोला-बारूद-शस्त्र तो किसी अवस्थामें नहीं संग्रह किया जा सकता।

रसद शब्द यहां दो अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है। उसका पहिला और साधारण अर्थ भोज्य पदार्थ है। इसके लिये यही नियम है कि जितनी रसद शान्तिकालमें इस जहाजपर रहती है उतनी ली जा सकती है। इस परिमाणका अन्तिम निर्णय तटस्थ राज-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अधिकारियोंके हाथमें रहता है। इसके लिये सकृदसकृत्का भी कोई नियम नहीं है। जब जब रसद चूक जाय तब तब लेने आ सकते हैं पर तटस्थ अधिकारियोंको यह अधिकार है कि वह देना अस्वीकार कर दें।

रसदका दूसरा अर्थ ईंधन है। पहिले केवल कोयला प्रयुक्त होता था, अब तेलसे अधिक काम लिया जाने लगा है। इस सम्बन्धमें अभी एक सम्मति नहीं है। हेग सम्मेलन भी कुछ निश्चित न कर सका। जर्मनी, रूस और फ्रांसके पास ऐसे स्थान कम हैं जहां एक बार ईंधन चूक जानेपर उनको फिर सुगमतासे मिल सके। ब्रिटेनका राज्य पृथ्वीके कोने कोनेमें है अतः उसके जहाजोंको सुगमतासे ईंधन मिल सकता है। इस लिये इन दोनों पक्षोंका सहमत होना असम्भव था। इस समय दो नियम हैं। पहिला तो वह है जिसके लिये ब्रिटेनका आग्रह था अर्थात् यह कि इतना ईंधन दिया जाय जिससे वह जहाज अपने राजके निकटतम नौस्थान तक, या किसी तटस्थ देशके ऐसे नौस्थान तक जिसका नाम बतला दिया जाय, पहुंच जाय। 'जिसका नाम बतला दिया जाय' एक गोल सा वाक्य है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि ईंधन लेनेकी अनुज्ञा देनेवाला तटस्थ राज कह सकता है कि हम तुमको अमुक तटस्थ राजके अमुक नौस्थान तक पहुंचने भर ईंधन देंगे। दूसरा नियम वह है जिसे जर्मनी आदिके आग्रहपर हेग सम्मेलनने स्वीकार किया। उसके अनुसार, तटस्थ राजको अधिकार है कि जहाजको इतना ईंधन लेने दे जितनेसे उसका ईंधन रखनेका स्थान सारा भर जाय। ब्रिटेनके आग्रहसे जर्मनीको छोड़कर अन्य राजोंने यह नियम भी मान लिया कि एक बार ईंधन लेनेके बाद फिर वही जहाज उसी तटस्थ राजके किसी भी नौस्थानसे तीन महीनेके भीतर ईंधन नहीं पा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभी ईंधन सम्बन्धी, विशेषतः उसके परिमाण सम्बन्धी नियमोंको और कड़ा बनानेकी आवश्यकता है। इस बातकी आवश्यकता है कि जो जहाज लड़ाईपर जा रहे हैं उनको तटस्थ देशोंमें विशेष सुविधा न मिले।

(ज) 'अपने राज्यके किसी भागको किसी पक्षका समाचार-संग्रह-स्थान न बनने देना'—तटस्थ राज्यों द्वारा दो प्रकारसे समाचारोंका संग्रह हो सकता है। एक प्रकार तो यह है कि युद्धकारी राज स्वयं तारघर, बेतारके तारका स्टेशन या अन्य कोई ऐसा यंत्र-मन्दिर बनवाये जिसके द्वारा समाचार भेजा जा सकता हो। हेग नियमावलीमें इसका स्पष्ट निषेध है और तटस्थ राजोंको आदेश है कि युद्धकारी राजोंको ऐसा न करने दें। पर जो तार (या बेतार) तटस्थ राजमें पहिलेसे चल रहा हो, चाहे वह स्वयं राजका हो, चाहे किसी कम्पनीका हो, चाहे किसी एक व्यक्तिका हो, उसके विषयमें तटस्थ राज स्वतन्त्र है। उसकी इच्छा हो युद्धकारियोंको उससे काम लेने दे, न इच्छा हो न लेने दे पर एक शर्त अनिवार्य्य है: उसका व्यवहार पक्षपातहीन होना चाहिये, जो वर्ताव किया जाय वह दोनों पक्षोंके साथ किया जाय। अच्छा यही प्रतीत होता है कि तटस्थ राज युद्ध-सम्बन्धी समाचारोंका आना जाना एकदम बन्द कर दें।

अब हम तटस्थ राजोंके तीसरी कोटिके कर्तव्योंकी ओर आते हैं।

(३) सहिष्णुतात्मक कर्तव्य।*

तटस्थको असाधारण सहिष्णुता दिखलानी पड़ती है। उसके प्रजावर्गीय हताहत हो सकते हैं, उनकी सम्पत्ति नष्ट हो सकती

* Duties of Acquiescence. (ड्यूटीज़ आफ एक्वीएसेन्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, उनके जहाज डुबाये या गिरफ्तार किये जा सकते हैं, पर उसे सब कुछ चुपचाप सह लेना पड़ता है। जबतक अन्ता-राष्ट्रिय विधानका स्पष्ट उल्लंघन नहीं होता तब तक वह कुछ नहीं कर सकता। हां, यदि कोई पक्ष नियमोल्लंघन करे और कहने पर भी समुचित क्षतिपूर्ति न करे तो उसे अधिकार है कि उस राजके साथ युद्ध छेड़ दे।

(४) प्रत्यर्पणात्मक कर्तव्य*

प्रत्यर्पणका अर्थ है लौटाना। प्रत्यर्पणात्मक कर्तव्यका एक उदाहरण दिया जा चुका है। यदि एक युद्धकारी पक्षका रण-पोत किसी तटस्थके तटलग्न जलके भीतर दूसरे पक्षके किसी जहा-जको गिरफ्तार करे तो उस तटस्थको अधिकार है कि 'चाहे जैसे बन पड़े' उस जहाजको छुड़ाकर जिसका था उसे लौटा दे। यदि जहाज नहीं ही मिल सके अर्थात् यदि वह नष्ट कर दिया गया हो तो जो रुपया क्षतिपूर्तिमें मिले वह उसे दे दिया जाय। 'चाहे जैसे बन पड़े' बहुत व्यापक अर्थका द्योतक है। बात है भी यही। यदि जहाज तटस्थ समुद्रके भीतर ही हो तो तटस्थको अधिकार है कि बलप्रयोग करके पकड़े हुए जहाजको छुड़ा ले और उसपर पकड़नेवाले जहाजके जो नाविक रक्खे गये हों उन्हें नजरबन्द कर दे। यदि जहाज बाहर निकल गया हो तो पत्रव्यवहारसे या अन्तारािष्ट्रय न्यायालयमें अपीलसे काम लेना चाहिये। इन सब बातोंके अतिरिक्त उसे अपनी मानरक्षाके लिये युद्ध करनेका अधिकार है।

एक और दशामें प्रत्यर्पणका कर्तव्य उपस्थित होता है। हम परनियन्त्रणके सम्बन्धमें बतला चुके हैं कि किन किन अवस्था-

* Duties of Restoration. (ड्युटीज़ आफ रेस्टोरेशन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओंमें पकड़े हुए जहाज तटस्थ समुद्रमें लाये जा सकते हैं। यदि इन अवस्थाओंके सिवाय किसी और दशामें कोई पकड़ा हुआ जहाज लाया जाय तो तटस्थ राजका कर्तव्य होगा कि उसे छुड़ा कर उसके स्वामियोंको लौटा दे और उसपर पकड़नेवाले जहाजके जो नाविक हों उन्हें नजरबन्द कर दे।

(५) क्षतिपूर्त्यात्मक कर्तव्य।*

ऊपर बार बार कहा जा चुका है कि तटस्थका कर्तव्य है कि इस बातका भरसक प्रयत्न करे कि उसके द्वारा किसी पक्षको सहायता न मिले और किसी पक्षकी क्षति न हो। यदि पूरा प्रयत्न करनेपर भी उसे सफलता न हो तो वह निर्दोष है पर यदि उसकी भूल या असावधानतासे किसी स्पष्ट कर्तव्यका उल्लंघन हुआ तो वह दोषी है। वह चाहे यह प्रमाणित कर दे कि उसका उद्देश्य शुद्ध था पर इससे उसका अपराध मिट नहीं जाता। ऐसी अवस्थामें उसका यह कर्तव्य होगा कि जिस युद्धकारी पक्षकी हानि हुई है उसकी समुचित क्षतिपूर्ति करे। यह क्षतिपूर्ति क्या और कितनी हो इसका निर्णय या तो दोनों राज स्वयं आपसमें कर लेंगे या किसी तीसरे राजको पंच मान कर करा लेंगे या अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय करेगा।

यह पांच कर्तव्य-कोटियां तो सर्वसम्मत हैं ही, इनके साथही एक छठेंको जोड़नेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। उसे हम शान्ति-स्थापनात्मक कर्तव्य कह सकते हैं। प्रत्येक तटस्थ राजको शान्तिका पुनः स्थापित कराना अपना परम कर्तव्य समझना चाहिये। इस सम्बन्धमें तटस्थ राजोंको यथासम्भव मिलकर काम करना चाहिये। इसके लिये सभी उचित साधनोंसे काम

---

* Duties of Reparation. (ड्युटीज़ आफ रिपैरेशन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेना चाहिये। यदि युद्धकारी राजोंके साथ किसी प्रकारकी रियायत न की जाय, प्रत्येक नियम-प्रतिकूल कामके लिये पूरा पूरा दण्ड दिया जाय और क्षतिपूर्ति स्वरूप बहुत सा रुपया लिया जाय और मेल करानेका निरन्तर प्रयत्न किया जाय तो युद्ध बहुत जल्द समाप्त हो। पर यह तभी हो सकता है जब राज-समाजसे अन्ध स्वार्थ उठ जाय। जबतक यह धारणा रहेगी कि दो राजोंके लड़कर दुर्बल हो जानेमें अपना हित है तब तक यह शान्ति-स्थापनका भाव नहीं आ सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँचवाँ अध्याय।

युद्धकारी राज और तटस्थ व्यक्तियोंका साधारण वाणिज्य।

तीसरे और चौथे अध्यायोंमें युद्धकारी और तटस्थ राजोंके पारस्परिक व्यवहारका वर्णन हुआ है। अब हमको युद्धकारी राजों और तटस्थ व्यक्तियोंके सम्बन्धपर विचार करना है अर्थात् यह देखना है कि युद्धकारी राज तटस्थ व्यक्तियोंके साथ कैसा बर्ताव कर सकते हैं। इस प्रसंगमें 'तटस्थ' शब्द उन लोगों-के लिये नहीं आया है जो अपने विचारोंके कारण उभय पक्षकी ओरसे उदासीन हैं वरन् उन लोगोंके लिये जो तटस्थ राजोंकी प्रजा हैं। चूंकि युद्धकालमें भी व्यापार होता रहता है और तटस्थ राज्योंके निवासी उभय पक्षके साथ व्यापार करते हैं इसलिये उनको युद्धकारी राजोंसे निपटनेके लिये प्रस्तुत रहना पड़ता है। प्रत्येक पक्षका यह लक्ष्य होता है कि दूसरे पक्षको कष्ट पहुंचे और व्यापार बन्द करना इसका एक प्रबल साधन है इसलिये स्वभावतः व्यापारियोंपर, जिनमें युद्धकालमें बहुधा अधिकतर तटस्थ देशीय होते हैं, कुदृष्टि रहती है। फिर भी अब इस सम्बन्धमें बहुतसे नियमोपनियम बन गये हैं, उन्हींका यहाँ दिग्दर्शन कराना है।

जो नियम बने हैं वह दो सिद्धान्तोंके संघर्षके प्रतिफल स्वरूप हैं। एक ओर तो युद्धकारियोंका यह सिद्धान्त है कि हमें शत्रुको पंगु बनानेके सब साधनोंसे काम लेनेका पूरा अधिकार है, दूसरी ओर तटस्थोंका यह सिद्धान्त है कि हमको अपने मित्रोंके साथ व्यापार करनेका पूरा अधिकार है। इस संघर्षमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यापारियोंका पक्ष धीरे धीरे प्रबल होता गया है क्योंकि अब व्यापारका रूप अन्ताराष्ट्रिय हो गया है और प्रायः सभी देशोंके व्यापारियोंका हित मिल जाता है। स्थल युद्धमें यह प्रश्न उतना कठिन रूप धारण नहीं करता। पृथ्वीका प्रायः प्रत्येक भाग किसी न किसी राजके राज्यमें है; युद्धकारी देशोंके भीतर तटस्थ सम्पत्ति बहुत ही कम पायी जा सकती है। जो सम्पत्ति होगी वह भी आयात-कर देकर आयी होगी और यदि अचल होगी तो भी अन्य सम्पत्तिकी भांति उसपर भी साधारण राज-कर लगते होंगे। अतः यदि मुल्कगीरी सेनाके हाथ ऐसी सम्पत्ति लग जाय तो वह उसे शत्रु-सम्पत्तिवत् वर्त सकती है। खुले समुद्रपर किसीका शासन नहीं है, कोई कर नहीं लगता। तटस्थोंके भी जहाज होते हैं और युद्धकारियोंके भी। युद्धकारी जहाजोंपर तटस्थ सम्पत्ति और तटस्थ जहाजोंपर युद्धकारी सम्पत्ति पायी जाती है। इसीलिये समस्या जटिल हो जाती है। बिना मित्रको क्षति पहुंचाये शत्रुको हानि पहुंचाना तो अभीष्ट होता है पर इसकी सिद्धि बड़ी कठिन होती है।

अगले दो अध्यायोंमें भी तटस्थोंके युद्धकालीन वाणिज्यका वर्णन होगा पर वह वाणिज्य विशेष प्रकारका और विशेष दशाका होगा। यहां हमें साधारण वाणिज्यका--जैसा वाणिज्य व्यापार साधारणतः शान्तिकालमें भी होता है—विचार करना है। इसके विषयमें समय समयपर दो सिद्धान्त माने गये हैं और आजकल जो नियमोपनियम प्रचलित हैं वह उन्हींके आधारपर बने हैं। वह सिद्धान्त यह हैं—

(१) मालका स्वरूप उसके स्वामीके अनुरूप होगा। तटस्थ स्वामीका माल शत्रुपोतपर भी अग्राह्य है, शत्रुका माल तटस्थ पोतपर भी ग्राह्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) मालका स्वरूप जहाजके अनुरूप होगा। शत्रुपोतपरका सब माल, चाहे वह किसीका हो, ग्राह्य है; तटस्थ पोतपरका सब माल, चाहे वह किसीका हो, अग्राह्य है।

यह दो तो मुख्य सिद्धान्त हैं पर कुछ दिनोंके लिये फ्रांसने एक तीसरा सिद्धान्त निकाला जिसे संसर्गदोष सिद्धान्त* कहते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि शत्रुमालके संसर्गसे तटस्थ सम्पत्ति भी दूषित हो जाती है। यदि शत्रुपोतपर तटस्थ माल लदा हो तो वह भी शत्रुका माल हो जाता है और यदि तटस्थ पोतपर शत्रुका माल लदा हो तो वह जहाज भी शत्रुपोत हो जाता है।

सत्रहवीं शताब्दीमें यूरोपमें नौबलसम्पन्न राष्ट्रोंका अभ्युदय आरम्भ हुआ। ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, हालैण्ड, पुर्तगाल, प्रशा, रूस और अमेरिकाकी नौ-सेनाकी वृद्धिके साथ साथ वाणिज्य व्यापारकी भी वृद्धि होने लगी। इस बीचमें कई बड़े युद्ध हुए जो वर्षों तक चले। इन युद्धोंमें भिन्न भिन्न राज उपर्युक्त तीनों नियमोंको स्वेच्छापूर्वक बर्तते थे। एक ही साथ कई प्रकारके नियमोंके बर्ते जानेके कारण व्यापार नष्ट भ्रष्ट हो जाता था क्योंकि व्यापारियोंको यह निश्चय ही नहीं रहता था कि किस समय किस नियमके चंगुलमें फंस जायंगे। जो राज एक समय एक नियम बर्तता था वही दूसरे समय दूसरा नियम बर्तता था। ब्रिटेन हंसवत् नीर-क्षीर-विवेक करनेका पक्षपाती था। वह शत्रुपोतपर लदे हुए तटस्थ मालको छोड़कर केवल पोतको गिरफ्तार करता था और तटस्थ पोतपर लदे हुए शत्रुमालको भी गिरफ्तार करता था। यह अवस्था या अनवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती थी।

१९१२ में क्रीमियन युद्ध हुआ। इसमें एक ओर तुर्की, ब्रिटेन और फ्रांस थे, दूसरी ओर रूस था। युद्धके अन्तमें सन्धि परि-

*Doctrine of Infection. (डाक्ट्रिन आफ इंफेक्शन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षद् पैरिसमें बैठो। जिस सन्धि द्वारा युद्ध समाप्त हुआ उसका नाम पैरिसकी सन्धि है। उसी अवसरपर एकत्र हुए प्रतिनिधियोंने एक और बड़े महत्त्वका काम किया। उन्होंने पैरिसकी घोषणा उस विवादग्रस्त प्रश्नपर भी जिसका दिग्दर्शन हमने इस अध्यायमें किया है, विचार किया। अन्तमें आपसमें समझौता करके जो निश्चय हुआ उसे पैरिसकी घोषणा* कहते हैं। उसपर ३ वैशाख १९१३ को हस्ताक्षर हुए। घोषणाकी दूसरी और तीसरी धाराएँ बड़े महत्त्वकी हैं। उन्होंने जिस सिद्धान्तका समर्थन किया है वह आजकल सर्वमान्य है। उसका आशय यह है कि जहाजपरके मालका रूप उस जहाजके झण्डेके अनुरूप होता है और तटस्थ सम्पत्ति सदैव अग्राह्य है। तटस्थ जहाजपरका सब माल तटस्थ और शत्रुजहाजपरका सब माल शत्रु माल माना जाता है। परन्तु शत्रुपोतपरका तटस्थ माल तटस्थ ही रहता है। वह धाराएं इस प्रकार हैं—

निषिद्ध वस्तुओंको छोड़ कर शत्रुके सब मालकी रक्षा तटस्थ झण्डा करता है (धारा २)।

निषिद्ध वस्तुओंको छोड़कर शत्रुझण्डेके नीचेकी तटस्थ सम्पत्ति जब्त नहीं की जा सकती (धारा ३)

पहिलेकी अपेक्षा यह नियम बहुत उदार हैं और सम्प्रति तटस्थ वाणिज्यकी इससे अधिक रक्षाकी आशा नहीं की जा सकती।

इस घोषणाकी अन्तिम धारा कहती है कि यह घोषणा उन्हीं राजोंको बाध्य कर सकेगी जो इसपर हस्ताक्षर कर देंगे। अमेरिका, चीन, स्पेन आदि कई राजोंने आरम्भमें हस्ताक्षर नहीं किया। इस सम्बन्धमें दो प्रश्न उठते हैं: यदि दो ऐसे राजोंमें युद्ध हो जिन्होंने हस्ताक्षर न किया हो या दो ऐसे राजोंमें युद्ध हो जिनमेंसे एकने

* Declaration of Paris. [डिक्लैरेशन आफ परिस]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हस्ताक्षर न किया हो तो उस दशामें क्या होगा? इन प्रश्नोंका उत्तर राजोंका व्यवहार देता है। १९५५ में स्पेन और अमेरिकामें युद्ध हुआ। इन दोनोंने हस्ताक्षर नहीं किया था पर दोनोंने इसका पालन किया। १९५१ में चीन और जापानमें युद्ध हुआ। चीनने हस्ताक्षर नहीं किया था पर घोषणाका अनुगमन किया। १९२०-१९२८ के फ्रांसीसी जर्मन युद्धमें स्पेन और अमेरिकाके वाणिज्यके साथ इसीके अनुसार दोनों पक्षोंने व्यवहार किया था यद्यपि स्पेन और अमेरिकाने हस्ताक्षर नहीं किया था। इन उदाहरणोंसे यह निर्विवाद है कि हस्ताक्षर किया हो या न किया हो, सभी राजोंने इसे मान लिया है।

मूल झगड़ा तो तय हो गया पर अभी दो तीन गौण विवादस्थल रह गये हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि युद्धके समय एक युद्धकारी पक्ष कोई ऐसा व्यापार, जो शान्तिकालमें केवल उसके प्रजावर्गीयोंके हाथमें रहता है, तटस्थोंको सौंप देता है। ब्रिटेनका कहना है कि जो तटस्थ इस अनुज्ञासे लाभ उठाएंगे वह शत्रुके सहायक होंगे और इस लिये उनके साथ शत्रुवत् आचरण किया जायगा। अमेरिकाका मत इसके विरुद्ध है। ब्रिटेन और अमेरिका दोनोंके साथ कई प्रबल राज हैं। सम्भव है यह प्रश्न भी महत्त्व पकड़े और भविष्यत्में लड़ाईका कारण बन जाय।

दो विवादास्पद प्रश्न

दूसरा प्रश्न सशस्त्र व्यापारिक पोतोंके सम्बन्धमें उठता है। आजकल व्यापारिक पोतोंपर भी रक्षार्थ कुछ शस्त्रादि रहते हैं। मान लीजिये कि किसी युद्धकारी देशीय व्यापारिक जहाजपर तटस्थ माल है। यदि यह जहाज शत्रुके हाथ पड़ जाय तो मालकी क्या दशा होगी। ब्रिटेनका कहना है कि सशस्त्र जहाजपर होनेके कारण उसका तटस्थ स्वरूप चला गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमेरिकाका सिद्धान्त है कि यदि तटस्थ व्यापारीकी अनुमतिसे शस्त्र रक्खे गये और उनसे काम लिया गया हो तो तटस्थ रूपका क्षय हुआ अन्यथा नहीं। यह प्रश्न भी झगड़ेका घर हो सकता है। इसी लिये लारेन्स कहते हैं कि पैरिसकी घोषणा अत्युत्तम वस्तु है पर उसके लिये एक प्रामाणिक भाष्यकी आवश्यकता है।

एक और प्रश्न था जो बड़े झगड़े खड़े कर रहा था। कई तटस्थ राजोंका यह कहना था कि यदि हमारे वाणिज्यपोतोंके साथ हमारे रणपोतोंका गारद* रहे तो उन वाणिज्यपोतोंकी तलाशी न ली जाय। रणपोतोंका साथ होना ही इस बातका प्रमाण मान लिया जाय कि इसपर कोई शत्रुसम्पत्ति नहीं है। अन्य राज इसका विरोध करते थे। कई बार लड़ाइयां भी हो गयीं। परन्तु लन्दनकी घोषणा‡ (१९०९) ने इस झगड़ेका भी अन्त कर दिया। उसने यह निश्चय कर दिया कि यदि तटस्थ जहाजोंके साथ उनके राजके रणपोतोंका गारद हो तो उनकी तलाशी न ली जाय। यह निश्चय हुआ कि यदि इस प्रकार किसी रक्षित जहाजका किसी युद्धकारी रणपोतसे सामना हो जाय तो गारद पोतका अध्यक्ष शत्रुपोतको व्यापारिक पोतके माल आदिका पूरा ब्योरा दे दे। यदि रणपोत इससे सन्तुष्ट न हो तो गारद पोतका अध्यक्ष व्यापारिक पोतकी स्वतः जांच करे। यदि उसे भी कुछ सन्देह हो तो वह उसे रणपोतको सौंप दे और आप हट जाय, यदि नहीं तो दोनों अफसरोंके मतभेदकी अवस्थामें उस समय कुछ नहीं हो सकता। पीछेसे उस युद्धकारी राजकी सर्कार और तटस्थ राजकी सर्कारमें लिखा-पढ़ी होती रहेगी।

गारद

* Convoy (कॉनवाय) ‡ Declaration of London. (डिक्लैरेशन आफ लण्डन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छठवाँ अध्याय ।

निषिद्ध व्यापार ।

पाँचवें अध्यायमें भी निषिद्ध व्यापार अर्थात् निषिद्ध वस्तुओंके व्यापारका उल्लेख आचुका है। निषिद्ध वस्तु* 'खुले समुद्रमें या किसी युद्धकारी पक्षके तटलग्न जलमें जहाजपर लदी हुई उस तटस्थ सम्पत्तिको कहते हैं जो युद्धमें उपयोगी हो सकती है और शत्रुके सामरिक कार्य्योंमें सहायता पहुंचानेके लिये जा रही है'। यह परिभाषा समझनेमें कठिन नहीं है। युद्धकालमें भी तटस्थदेशीय प्रजा उभय-पक्षसे वाणिज्य-सम्बन्ध रखती है। वह उभयपक्षके हाथ भाँति भाँतिकी वस्तुएँ वेचती है। इनमेंसे कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जो लड़ाईके लिये उपयोगी होती हैं। इसलिये यदि एक पक्षके लिये ऐसी कोई वस्तु जाती होगी तो दूसरा पक्ष उसे अवश्य रोकना चाहेगा। उसकी दृष्टिमें वह वस्तु निषिद्ध होगी। परन्तु यह निश्चय हो जाना चाहिये कि वह वस्तु वस्तुतः शत्रुके पास जा रही है। यदि वह किसी तटस्थके पास जा रही है तो निषिद्ध नहीं हो सकती।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके पुराने आचार्य्य ग्रोशिअसने वाणिज्य-सामग्रीको तीन विभागोंमें बांटा था—

(१) शस्त्रादि जो केवल युद्धके लिये उपयोगी होते हैं।

(२) ऐसी वस्तुएँ जिनका युद्धमें कोई उपयोग नहीं है, जैसे घड़ी, ब्रश, पुस्तकें इत्यादि।

(३) ऐसी वस्तुएं जो शान्ति और युद्ध दोनों कालमें उपयोगी होती हैं, जैसे रुपया, जहाज, अन्न इत्यादि।

---

* Contraband articles. (कॉण्ट्राबैंड आर्टिकल्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनमेंसे द्वितीय विभाग कदापि निषिद्ध नहीं ठहराया जा सकता और प्रथम सदैव ही निषिद्ध ठहराया जायगा। द्वितीयके विषयमें ही विवाद हो सकता है। आजकल भी कुछ उलट फेरके उपरान्त लगभग इसी प्रकारका विभाग किया जाता है—

(१) पूर्ण निषिद्ध*—वह युद्धोपयोगी वस्तुएं जो (यदि वह शत्रु देशको जा रही हों) तत्काल जब्त की जा सकती हैं।

(२) गौण निषिद्ध‡—वह वस्तुएं जो तभी जब्त की जा सकती हैं जब वह शत्रु सेनाके उपयोगके लिये जा रही हों।

(३) विहित वस्तु§—वह वस्तुएं जो किसी भी दशामें निषिद्ध नहीं ठहरायी जा सकतीं।

पूर्ण और गौण निषिद्ध वस्तुओंमें भेद तो बहुत दिनोंसे माना जाने लगा है पर यह निर्णय करना कठिन होता है कि किस अवस्थामें वस्तु गौण और किस अवस्थामें पूर्ण निषिद्ध है। १८५५ में सर वाल्टर स्काटने कहा था कि सबसे बड़ा भेद यह है कि वह वस्तुएं जीवनके साधारण कामों या व्यापारिक पोतोंके कामके लियें जा रही हैं या इस बातकी अधिक सम्भावना है कि वह सैनिक उपयोगके लिये जा रही हैं। जिस नौस्थानको वस्तुएं जा रही हैं उसका स्वरूप बुरी पहिचान नहीं है। यदि वह साधारण व्यापारिक नौ-स्थान है तो यद्यपि वहां एकाध रणपोत बन भी जाता हो तो यही मानना चाहिये कि वस्तुएं नागरिक कामोंके लिये जा रही हैं। परन्तु यदि वह प्रधानतया सैनिक नौस्थान हो तो चाहे वहां व्यापारिक पोत भी जाते हों; पर यही मानना चाहिये कि वस्तुएं सैनिक कामके लिये जा रही हैं। इस सिद्धान्तके मान

* Absolute contraband. (एब्सोल्यूट कॉण्ट्राबैंड)

‡ Conditional contraband. (कॉन्डिश्नल कण्ट्राबैंड)

§ Free goods. (फ्री गुड्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेनेपर भी यह प्रश्न रह जाता है कि किन किन वस्तुओंको पूर्ण निषिद्ध मानें। भिन्न भिन्न राज अपनी अपनी इच्छाओंके अनुसार समय समयपर काम करते थे। अन्तमें यह प्रश्न लन्दनकी कांफरेंसके सामने १९६४ में आया।

लन्दनकी घोषणाकी २२ वीं धारामें पूर्ण निषिद्ध वस्तुओंकी एक सूची दी है। वह धारा इस प्रकार है—

लन्दनकी घोषणाके अनुसार पूर्ण निषिद्ध वस्तुएं

निम्नलिखित वस्तुएं पूर्ण निषिद्धके नामसे बिना पहिलेसे सूचना दिये ही निषिद्ध ठहरायी जा सकती हैं—

१ हर प्रकारके शस्त्र (इनमें शिकारके कामके शस्त्र भी अन्तर्गत हैं) और उनके अवयव।

२ बन्दूकों और तोपोंसे फेंकी जानेवाली वस्तुएं, तोपों और बन्दूकोंमें भरी जानेवाली वस्तुएं, कारतूसें और इन वस्तुओंके अवयव।

३ युद्धके लिये विशेष रूपसे बनायी गयी बारूद और विस्फोटक।

४ तोप चढ़ानेके यन्त्र, तोप खींचनेकी गाड़ियां, सैनिक गाड़ियां, युद्ध-स्थलमें ढलाई करनेके यन्त्र और उनके अवयव।

५ सैनिक कामके कपड़े।

६ सैनिक कामके साज।

७ सवारी और ढुलाईके पशु।

८ फौजी पड़ावमें काम आनेवाली वस्तुएं और उनके अवयव।

९ (जहाजोंकी रक्षाके लिये) धातुकी चादर।

१० रणपोत और नावें और उनके ऐसे अवयव जो केवल रणपोतोंके ही काम आ सकते हैं।

११ स्थल या जलपर काम आनेवाले शस्त्रों या अन्य रणोपयोगी वस्तुओंके बनाने और मरम्मत करनेके यन्त्र।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह सूची उस समयके लिये तो पर्याप्त थी पर वैज्ञानिक आविष्कारोंके युगमें यह नहीं कहा जा सकता कि किस समय कौन सी नयी रणोपयोगी वस्तु निकल आयेगी। इसलिये २३ वीं धाराके अनुसार सर्कारोंको यह अधिकार दिया गया कि अन्य विशेषतया रणोपयोगी वस्तुओंका नाम इस तालिकामें जोड़ लें पर इसकी सूचना दूसरी सर्कारोंको दे देनी चाहिये। यदि युद्ध छिड़नेके पीछे तालिकामें वृद्धि की जाय तो केवल तटस्थ राजोंको सूचित करना चाहिये।

निरन्तर यात्रा

निरन्तर यात्रा* का प्रश्न भी पुराना है। ऐसा हो सकता है कि निषिद्ध जातिका माल एक तटस्थ देशसे दूसरे तटस्थ देशको भेजा जाय और फिर वहांसे एक युद्धकारी देशको भेज दिया जाय। बोअर युद्धमें ऐसा ही होता था। यूरोपके तटस्थ देशोंसे चला हुआ निषिद्ध माल अफ्रिकाके किसी तटस्थ भूभाग (जैसे जर्मन या पुर्तगीज प्रदेश) में उतारा जाता था, क्योंकि बोअर राजके पास कोई नौस्थान न था और फिर वहांसे ट्रांसवाल पहुंचाया जाता था। या यह हो सकता है कि माल किसी तटस्थ नौस्थानमें उतरे और वहांसे दूसरे जहाजपर लाद कर तब आगे जाय। ऐसी दशामें व्यापारियोंको यह कहनेका अवसर रहेगा कि हम तो मालको एक तटस्थ देशसे दूसरे तटस्थ देशको ले जाते हैं, अतः यह निषिद्ध नहीं है। इसी प्रकारके प्रश्नोंके कारण निरन्तर यात्राका सिद्धान्त निकला था। एक अर्थात् तटस्थ पक्ष कहता था कि मालको तभी निषिद्ध ठहराना चाहिये जब उसकी यात्रा निरन्तर अर्थात् अविच्छिन्न रही हो। दूसरा अर्थात् युद्धकारी पक्ष स्वभावतः इसका विरोध करता था। लन्दनकी घोषणाने अपनी ३० वीं

---

* Continuous voyage. (कॉंटिन्युअस वॉएज)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारामें स्पष्ट कर दिया कि यात्राका निरन्तर होना आवश्यक नहीं है। यदि माल शत्रुके लिये जा रहा है तो वह निषिद्ध है चाहे उसकी यात्रा कितने ही टुकड़ोंमें हो। इस सम्बन्धमें ब्रिटिश सर्कारने यह स्पष्ट कर दिया था कि इस नियमसे उसी अवस्थामें काम लिया जायगा जब कि माल पहिलेसे शत्रुदेश भेजनेके लिये सोच कर रवाना किया गया हो। यदि कोई व्यापारी अपना माल इस आशापर ले जाय कि स्यात् तटस्थ भूमिपर पहुंचनेपर इसके लिये ग्राहक मिल जायं तो वह निषिद्ध न माना जायगा।

निषिद्ध मालका निषिद्धत्व उसके ठिकानेपर निर्भर है। यदि वह शत्रुके पास जा रहा है तो निषिद्ध है, यदि तटस्थ देशको जा रहा है तो निषिद्ध नहीं है। इसलिये

ठिकानेका प्रमाण

ठिकानेके प्रमाण § का सर्वोपरि महत्त्व होता है। लन्दनकी घोषणाने इस सम्बन्धमें यह निश्चित किया कि यदि माल किसी शत्रु नौस्थानको जा रहा हो या शत्रुसेनाके लिये भेजा जा रहा हो, या उसके कागजोंके अनुसार यह सिद्‌ध होते हुए भी कि माल किसी तटस्थ नौस्थानको जा रहा है, जहाज बीचमें किसी शत्रु नौस्थानपर रुकनेवाला हो, या उससे शत्रुसेनासे भेंट होनेवाली हो या, उसके कागजोंसे यह सिद्‌ध होनेपर भी कि माल किसी तटस्थ नौस्थानको जा रहा है, जहाज ठीक रास्तेको छोड़कर अन्य मार्गसे जा रहा हो और इसका ठीक ठीक कारण न बता सके, तो इन सब अवस्थाओंमें 'ठिकानेका प्रमाण' पूर्ण होता है अर्थात् यह बात निर्विवाद हो जाती है कि माल शत्रुके लिये जा रहा है और इसलिये निषिद्‌ध है। इस सम्बन्धमें यह स्मरण रखना चाहिये कि शत्रु नौस्थानमें वह स्थान भी परिगणित हैं जो सम्प्रति शत्रुसेनाके अधिकारमें हैं।

§ Proof of destination. (प्रूफ आफ डेस्टिनेशन).

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लन्दन कान्फरेन्सके सामने गौण निषिद्ध वस्तुओंका भी प्रश्न था। कुछ राजोंकी सम्मति तो यह थी कि गौण निषिद्ध विभाग ही उठा दिया जाय पर अन्य राज इसपर सहमत न हुए। अन्तमें कान्फरेन्सने अपनी घोषणामें गौण निषिद्ध वस्तुओंकी भी एक तालिका निकाली और साथ ही राजोंको यह अधिकार दे दिया कि समुचित सूचना देकर इस तालिकामें वृद्धि कर लें। घोषणाकी २४ वीं धारा इस प्रकार है—

लन्दन-घोषणाके अनुसार गौण निषिद्ध वस्तुएं

निम्नलिखित वस्तुएं जो युद्ध और शान्ति दोनों अवस्थाओंमें काममें आ सकती हैं गौण निषिद्धके नामसे विना पूर्व सूचना दिये ही निषिद्ध ठहरायी जा सकती हैं—

(१) भोज्य पदार्थ।
(२) पशुओंके खाने योग्य घास और अन्न।
(३) कपड़े, कपड़े बनानेकी सामग्री और रणोपयोगी जूते।
(४) सोना और चाँदी तथा कागजका सिक्का।
(५) हर प्रकारकी रणोपयोगी गाड़ियां और उनके अवयव।
(६) हर प्रकारकी नावें और चल नावाश्रय*।
(७) हर प्रकारकी रेल, तार, बेतार तथा टेलिफोन-सम्बन्धी सामग्री।
(८) गुब्बारे और वायुयान, इनके अवयव और सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुएं।
(९) हर प्रकारका ईंधन तथा मशीनोंमें देनेका तेल, चर्बी आदि।
(१०) बारूद और विस्फोटक जो विशेषतया युद्धके लिये न बने हों।

* Dock (डॉक)—वह स्थान जहां जहाजोंकी मरम्मत होती है। लड़ाईके दिनोंमें चल अर्थात् पानीपर चलनेवाले नावाश्रयोंसे भी काम लिया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(११) कांटेदार तार और उसे बैठाने तथा काटनेका यन्त्र।
(१२) नाल और नालबन्दीकी सामग्री।
(१३) हर प्रकारका साज।
(१४) हर प्रकारकी दूरबीन और क्रोनोमिटर, घड़ियां तथा जहाजोंके कामके यन्त्र।

गौण निषिद्ध वस्तुओंके लिये निरन्तर यात्राका नियम नहीं है। यदि जहाजके कागजोंसे यह सिद्ध हो कि वह शत्रु देशको नहीं जा रहा है या यह कि उसपरका माल शत्रु सेनाके लिये नहीं है और जहाज अपने निर्दिष्ट मार्गसे विचलित न हुआ हो तो उसके सम्बन्धमें निरन्तर यात्राका प्रश्न नहीं उठाया जाता। ठिकानेका निश्चय इस प्रकार होता है कि यदि माल शत्रुके किसी रणपोत नौस्थान, किले, किलेदार नगर, संगराधार या सैनिक पड़ावको जा रहा हो, या शत्रुदेशीय किसी ऐसे ठेकेदारके पास जा रहा हो जो शत्रु सर्कारके हाथ ऐसी वस्तुएं बेचा करता है या किसी सर्कारी विभागके लिये जा रहा हो तो वह निषिद्ध है। पर हां यदि यह प्रमाणित हो सके कि वह युद्धके कामका ही नहीं है तो छोड़ा जा सकता है।

निरन्तर यात्रा और ठिकानेका प्रमाण

तटस्थ व्यापारियोंके साथ और भी कई प्रकारकी रियायतें की गयी हैं। यदि किसी जहाजपर गौण निषिद्ध माल लदा हो और वह यह प्रमाणित कर सके कि उसे युद्ध छिड़नेका पता न था तो जहाज और उसपरका अन्य माल छोड़ दिया जायगा और निषिद्ध माल समुचित मूल्य देकर ले लिया जायगा, उसे योंही जब्त नहीं कर सकते। समुचित मूल्यके लिये कोई निश्चित नियम तो नहीं है परन्तु प्रायः मालका बाजार-भावके अनुसार

तटस्थ व्यापारियोंकी सुविधाएँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दाम, ढुलाईका व्यय और दस रुपया सैकड़ा लाभ जोड़कर दे देते हैं। यदि किसी जहाजपर एक बार निषिद्ध माल लदा रहा हो और वह माल उतार देनेके बाद पता मिले तो उसे किसी प्रकार-का दण्ड नहीं दिया जा सकता पर यदि यह प्रमाणित हो जाय कि अपनेको बचानेके लिये उसने अपने कागजोंमें जाल किया था तो उसे जब्त करना अन्याय्य न होगा। कमसे कम ब्रिटेनने ऐसा दण्ड कई बार दिया है। इसी प्रकार यदि कोई निषिद्ध माल किसी ऐसे स्थानके लिये भेजा गया हो जो उस समय शत्रुके कब्जे-में रहा हो पर पीछेसे शत्रुके अधिकारसे निकल गया हो तो फिर वह माल जब्त नहीं किया जा सकता। पहिले जहाज भी जब्त कर लिया जाता था पर आजकल, यदि वह जहाज मालके मालिककी ही सम्पत्ति न हो और उसके कागजोंमें किसी किस्मकी जालसाजी न हो तो, ऐसा नहीं किया जाता। यह भी नियम है कि यदि जहाजपर जो कुछ माल हो उसके आधेसे अधिक निषिद्ध हो तो वह जहाज जब्त किया जा सकता है। जहाजपर निषिद्धके अतिरिक्त जो माल होता है उसमें हाथ नहीं लगाया जाता पर यदि वह निषिद्ध वस्तुके स्वामीका ही हो तो जब्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त नियमोंके अतिरिक्त २८ वीं धाराने निम्न-लिखित वस्तुओंको नित्य-विहित ठहराया—

(१) रूई, रेशम, ऊन, पटुआ, सन इत्यादि कपड़ा बनानेका कच्चा माल।

(२) तेलहन।

(३) रबड़, गोंद, लाह, बिरोजा।

(४) बे कमाया चमड़ा, सींग, हड्डी और हाथीदाँत।

(५) हर प्रकारकी प्राकृतिक और कृत्रिम खाद।

(६) खानसे निकली हुई बे साफ की हुई धातु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(७) मिट्टी, चूना, खरी, पत्थर, संगमर्मर, ईंट, स्लेट, खपड़े ।
(८) चीनीकी बनी चीजें और कांच ।
(९) कागज और कागज बनानेकी सामग्री ।
(१०) साबुन, रंग, वार्निश और उनके बनानेकी सामग्री ।
(११) रंग उड़ानेकी दवा, सोडा क्षार, कास्टिक सोडा, अमोनिया, तूतिया इत्यादि ।
(१२) कृषि, खनिज, मुद्रण और कपड़ा बनानेके यंत्र ।
(१३) रत्न, उपरत्न, मोती, सीप और मूंगा ।
(१४) क्रोनोमिटरके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी घड़ियां ।
(१५) फैशन और शौकीनीकी सामग्री ।
(१६) पर, बाल और रोएं (सूअर आदिके शरीरके कांटेके समान रोएं) ।
(१७) घर और दफ्तरकी सजावटका सामान ।

यह तालिकाएं और बढ़ायी जा सकती हैं। घोषणाने यह नियम कर दिया कि इस प्रकारकी अन्य वस्तुएं भी विहित मानी जायँ। इनके अतिरिक्त २९ वें नियमके अनुसार रोगियों और आहतोंकी सुश्रूषाकी सामग्री तथा वह वस्तुएं जो यात्रियों और नाविकोंके उपभोग मात्रके लिये हों, व्यापारके लिये नहीं, निषिद्ध न मानी जायँगी। परन्तु यदि सुश्रूषाकी सामग्री शत्रुके पास जा रही हो तो अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर, निषिद्ध न होते हुए भी, पूरा दाम देकर उसे रोक सकते हैं।

यूरोपियन महासमरने इन सब नियमोपनियमोंकी निःसारता प्रमाणित कर दी। युद्ध छिड़ते ही जर्मनी और आस्ट्रियाने यह घोषित किया कि हम लन्दनकी घोषणाका अनुसरण करेंगे। ब्रिटेन, फ्रांस और रूसने कुछ परिवर्तनके साथ अनुसरण करनेकी घोषणा की। इटलीने भी कुछ संशोधन किया। इसपर जर्मनी और आस्ट्रि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याने भी संशोधन किये। यह सब बातें युद्ध छिड़नेके तीन महीनेके भीतर हो गयीं। पर यहीं अन्त न हुआ। प्रायः तीन वर्ष तक संशोधन और परिवर्तन होता रहा। लोहा, तांबा, निकल, सीसा, ऐल्युमिनियम, मोटर गाड़ियां, मोटरटायर, रबड़, गन्धक, कांटेदार तार, गन्धकका तेजाब, ग्लिसरीन, रेंडीका तेल, रांगा, ऊन, ऊनी कपड़े, चमड़ा, कोयला, मशीनें, रूई, क्रमशः यह वस्तुएं पूर्ण निषिद्ध-सूचीमें आगयीं। गौण और पूर्ण निषिद्धका भेद तो एक प्रकारसे मिट ही गया। निरन्तर यात्राका नियम गौण निषिद्धोंके लिये भी लगा दिया गया। इन बातोंसे तटस्थ व्यापारकी भारी क्षति हुई पर जब पृथ्वीके महत्तम राज युद्धमें सम्मिलित थे तो रोकता कौन।

महायुद्ध और निषिद्ध व्यापार

इन राजोंको लन्दनकी घोषणामें परिवर्तन और संशोधन करनेका अवसर एक तो इसलिये मिल गया कि स्वयं उसने ही सूचियोंके घटाने बढ़ानेकी अनुज्ञा दे रक्खी है, दूसरे उसपर सब राजोंके हस्ताक्षर भी नहीं हुए हैं अतः इन लोगोंने कह दिया कि उसमें परिवर्तन करना अवैध नहीं है।

निषिद्ध व्यापार सम्बन्धी नियमोंमें अभी बहुत संशोधनकी आवश्यकता है। यदि विहित और निषिद्धका भेद न मिटाया जासके तो गौण निषिद्धका वर्ग तो तोड़ ही देना चाहिये और राष्ट्रसंघकी ओरसे पूर्णनिषिद्ध वस्तुओंकी एक सूची निकलनी चाहिये जो सर्वमान्य हो। जैसा कि जे. बी. मूरने दिखलाया है गौण निषिद्ध सम्बन्धी नियम निरर्थक हैं। जो माल सेनाके लिये जाता है वह पूर्ण निषिद्ध माना जाता है। इसी प्रकार जो माल किसी किलाबन्द नगरको जाता है वह पूर्ण निषिद्ध होता है। परन्तु

निषिद्ध व्यापार सम्बन्धी नियमोंमें संशोधनकी अत्यन्त आवश्यकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक तो प्रायः सभी प्रधान नगरोंमें किलाबन्दी होती है, दूसरे यह हो सकता है कि किलाबन्द नगरमें गया हुआ माल नागरिकोंके ही काम आये। फिर, जो माल नागरिकोंके लिये आता है अतः गौणनिषिद्ध होनेके कारण पकड़ा नहीं जाता, सर्कार उसे भी तो ले सकती है। उसे पूरा अधिकार है कि अपने यहाँके व्यापारियोंको अपने हाथ माल बेचनेपर विवश करे। इसलिये इन जटिल नियमोंसे विशेष लाभ नहीं होता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवाँ अध्याय।

तटावरोध।

तटावरोध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके सदृश स्थल युद्धमें कोई प्रक्रिया नहीं मिलती। स्थल युद्धमें यह तो बहुधा होता है कि शत्रुका कोई गढ़ या नगर घेर लिया जाय पर इसमें और तटावरोधमें बहुत अन्तर है। किले या नगरके घेरनेका उद्देश्य उसपर कब्जा करना होता है; तटावरोधका उद्देश्य यह भी हो सकता है पर प्रधान उद्देश्य प्रायः यही होता है कि उस मार्ग-से शत्रु-देशमें किसी प्रकारका माल न जाने पावे। तटावरोधमें अवरुद्ध तट समुद्रकी ओरसे ही बन्द रहता है। इससे शत्रुकी तो क्षति होती ही है, तटस्थोंकी भारी हानि होती है। अवरुद्ध स्थानमें गौण निषिद्ध अथवा विहित वस्तुका भी प्रवेश नहीं हो सकता।

पहिले पहिल डच लोगोंने इस क्रियासे काम लेना आरम्भ किया। ग्रोशिअसकी यह सम्मति थी कि यदि किसी अवरुद्ध स्थानके शीघ्र ही आत्मसमर्पण करने अथवा शान्तिके पुनः स्थापित होनेकी सम्भावना हो तो ऐसे स्थानको रसद पहुंचाकर सहायता देना दण्डय है पर डच सर्कार इसके बहुत आगे बढ़ गयी। उसने यह घोषणा की (१६८७) कि यदि डच नौबल किसी तटका अवरोध कर रहा हो तो उसमें प्रवेश करना या उसमेंसे बाहर निकलना अपराध है। इतना ही नहीं, यदि कोई जहाज खुले समुद्रमें मिल जाय और यह प्रमाणित हो जाय कि वह किसी अवरुद्ध नौस्थानमें प्रवेश करनेका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार रखता है या किसी अवरुद्ध नौ-स्थानसे निकल भागा है तो भी वह दण्डनीय है। इन सब अपराधोंका एकमात्र दण्ड था जहाज और मालकी जब्ती।

ज्यों ज्यों अन्य राजोंकी नौशक्ति बढ़ती गयी त्यों त्यों अवरोधका प्रयोग बढ़ता गया। अवरोध सम्बन्धी नियमोंमें भी भयङ्कर विभिन्नता थी। फ्रेञ्च प्रजातंत्रकी स्थापनाके बाद फ्रांसको सारे यूरोप, और विशेष कर ब्रिटेन, से लड़ना पड़ा। इस लड़ाईमें अवरोधसे जैसा काम लिया गया उसे अन्याय्य, अनुचित और शक्तिके दुरुपयोगके सिवाय और कुछ नहीं कह सकते। कागजी अवरोधोंकी भरमार थी। ब्रिटेनने घोषणा कर दी कि वह सब तटवर्ती नगर अवरुद्ध हैं जहां ब्रिटिश व्यापारिक पोत नहीं जा सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि फ्रांसका सारा समुद्रतट अवरुद्ध होगया। इसी प्रकार फ्रांसने ब्रिटेनके सारे समुद्र-तटको अवरुद्ध घोषित कर दिया। ब्रिटेनकी नौशक्ति फ्रांससे अधिक थी फिर भी न तो ब्रिटिश जहाजोंने फ्रांसका सारा तट रोक रक्खा था न फ्रांसीसी जहाजोंने ब्रिटेनको चारों ओरसे घेर लिया था। इसपर भी ब्रिटेन और फ्रांस दोनों ही मतवालोंकी भाँति तटस्थ व्यापारकी हत्या इसलिये कर रहे थे कि दोनों ही देशोंमें तटस्थ माल पहुंच ही जाता था। वाटलूके युद्धके बाद जो सन्धि हुई उसने युद्धका तो अन्त कर दिया परन्तु प्रश्न हल न हुआ। यह अवस्था १९१३ तक चली गयी। उस साल पैरिसकी घोषणाने इसे कुछ सुलझाया। उसने यह महत्त्व-पूर्ण नियम बनाया कि 'वही अवरोध मान्य होगा जो कि सक्षम* होगा'। उस समय सक्षम अवरोधकी यह व्याख्या की गयी कि सक्षम अवरोध वह है जो इतनी सेना द्वारा किया जाय कि भीतर जाना या बाहर आना

* Effective. (इफेक्टिव)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्द हो जाय। पर यह व्याख्या ठीक नहीं है। बहुत बड़े बड़े जहाजोंके बीचमेंसे भी छोटी सी नाव निकल सकती है। इस लिये १९५७ में संयुक्त राजकी सर्कारने जो व्याख्या की वह अधिक युक्तिसंगत है। उसके अनुसार वह अवरोध सक्षम है जो इतनी नौसेनाके द्वारा किया जाय कि भीतर जाना या बाहर आना आशंका-जनक हो अर्थात् आने जानेवालेको पकड़े जानेका पर्य्याप्त भय रहे। यही व्याख्या इस समय सर्वमान्य है। कुछ राज यह कहते थे कि यह भी आवश्यक शर्त होनी चाहिये कि अवरोधक जहाज स्थिर रहें पर यह शर्त मानने योग्य नहीं है। यदि जहाज लङ्गर डालकर पड़े रहें तो दो दिनमें शत्रुकी पनडुब्बियां उन्हें रसातल भेज दें।

अवरोध सक्षम तो होना ही चाहिये; जो अवरोध सक्षम होता है अर्थात् वस्तुतः एक पक्षके रणपोत शत्रुके तटके किसी अंशको रोक लेते हैं तो उसे वास्तविक अवरोध§ भी कहते हैं।

अवरोधके प्रकार

कभी कभी ऐसा होता है कि पहिले यह सूचना दे दी जाती है कि हम अमुक तिथिसे अमुक स्थानका अवरोध करेंगे अर्थात् घोषणात्मक अवरोध* कर दिया जाता है पर वहां नौसेना भेजी नहीं जाती या इतनी कम भेजी जाती है कि अवरोध सक्षम नहीं होता। इसे काग़ज़ी अवरोध‡ कहते हैं। यह सर्वथा अवैध है। घोषणात्मक अवरोधके पीछे सक्षम अवरोध ही होना चाहिये।

सक्षम अवरोध भी दो प्रकारका होता है। यदि वह उस स्थानको जीतनेके उद्देश्यसे किया जाय तो उसे अधिकारफलक

§ Blockade de facto. (ब्लॉकेड डी फैक्टो)

* Blockade by notification. (ब्लॉकेड बाइ नोटिफिकेशन)

‡ Paper blockade. (पेपर ब्लॉकेड)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवरोध¶ कहते हैं; अन्यथा, यदि वह केवल व्यापार रोकनेके उद्देश्यसे किया जाय तो, वाणिज्यावरोध§ कहलाता है। कुछ लोगोंकी यह सम्मति है कि वाणिज्यावरोध उठा दिया जाय पर इसकी कोई सम्भावना नहीं है। शत्रुको तङ्ग करनेका यह बड़ा ही सुगम उपाय है। जिस राजका स्थलमार्ग द्वारा अन्य देशोंसे सम्बन्ध नहीं है वह इस साधनसे बड़ी जल्दी तङ्ग किया जा सकता है। यदि दो तीन प्रबल राज मिल जायं तो वह दो चार महीनोंमें ब्रिटेन ऐसे प्रबल राजको विक्षिप्त कर सकते हैं।

अवरोध सम्बन्धी चार मुख्य प्रश्न हैं। उनपर पृथक् पृथक् विचार करना ठीक होगा। लन्दनकी घोषणाने इनमेंसे अधिकांशको सुनिश्चित कर दिया है।

सक्षम अवरोधका लक्षण हम बतला चुके हैं। आजकल कागज़ी अवरोध, जिससे पिछले दिनोंमें फ्रांस और ब्रिटेनने बहुत काम लिया था, नहीं माना जाता। पर कितना बल पर्य्याप्त होगा इसका कोई नियम नहीं है। यह वस्तुस्थितिपर निर्भर है। कहीं बीसों जहाज अपर्य्याप्त होंगे, कहीं दो चारसे काम चल जायगा। क्रीमियन युद्धमें रूसके रीगा नौ-स्थानका अंग्रेज़ोंने अवरोध किया था। इस कामके लिये उससे ६० कोसकी दूरीपर केवल एक रणपोत खड़ा कर दिया गया था। पर वह जगह इतनी संकीर्ण थी कि एक ही जहाज़ पर्याप्त था। दूसरा नियम यह है कि अवरोध इस प्रकार न होना चाहिये कि तटस्थ नौस्थानों या तटोंका मार्ग रुक जाय। तीसरा नियम यह है कि जितनी दूर तक अवरोधकोंका क्षेत्र है उसके बाहर अवरोधके नियम नहीं बर्ते जा सकते। चौथा नियम

अवरोधके नियम

¶ Strategic blockade. (स्ट्रैटेजिक ब्लॉकेड)

§ Commercial blockade. (कमर्शल ब्लॉकेड)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह है कि जहाजोंके अभावमें अवरोध नहीं हो सकता। अवरोधकोंको यह अधिकार है कि पत्थर, पुराने जहाज, इत्यादि डुबा कर मार्ग बन्द करें पर वहां जहाज भी रहने चाहिए।

अवरोध करनेके पहिले उसकी घोषणा करनी होती है। उसमें यह बतलाना होता है कि अवरुद्ध तटकी ठीक ठीक भौगोलिक सीमा क्या है, किस तिथिसे अवरोध आरम्भ होगा और जो तटस्थ जहाज भीतर हैं वह कितने दिनोंके भीतर बाहर निकल जा सकते हैं। प्रायः पन्द्रह दिनकी अवधि दी जाती है। यदि वास्तविक अवरोध और घोषणामें कुछ भी अन्तर हो तो अवरोध अवैध हो जाता है और फिरसे नयी घोषणा करनी पड़ती है। इसके बाद अवरोधक सैन्यके सेनाध्यक्षको अवरुद्ध स्थानोंके अधिकारियोंके प्रति एक ऐसी ही घोषणा करनी पड़ती है। स्थानीय अधिकारियोंका कर्तव्य है कि तत्रस्थ विदेशी वकीलोंको इसकी पूरी सूचना दे दें। अवरोधमें पक्षपात न होना चाहिये। अवरोधकको अपने देशके जहाज़ोंके साथ भी रियायत न करनी चाहिये। यदि वह चाहे तो तटस्थ रणपोतोंको आने जानेकी अनुज्ञा दे सकता है और अत्यन्त आवश्यकताकी दशामें अन्य तटस्थ पोतोंको भी जाने देनेका नियम है।

यदि अवरोधक बेड़ा हार जाय या युद्ध समाप्त हो जाय या बेड़ा हटा लिया जाय तो अवरोध समाप्त हो जाता है। ऋतु-विपर्य्ययके कारण थोड़ी देरके लिये हट जाना दूसरी बात है पर उसे और किसी कामके लिये न हटना चाहिये। यदि वह पर्य्याप्त न हो अर्थात् इतना कम कर दिया जाय कि तटस्थ देशोंकी दृष्टिमें उसकी सक्षमता जाती रहे तो भी उसका अन्त माना जायगा। ऐसी दशाओंमें पुनः घोषणा करके वह पुनः स्थापित किया जा सकता है। यदि अवरुद्ध स्थानपर अवरोधक राजका किसी प्रकार कब्ज़ा हो जाय तो भी अवरोधका अन्त हो जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फ्रांस और कुछ अन्य राज्योंका मत था कि जो तटस्थ जहाज़ अवरुद्ध क्षेत्रके निकट आवे उसको अवरोधकी सूचना देनी चाहिये।

आगन्तुकोंको अवरोधकी सूचना

ब्रिटेनका यह कहना था कि सबको पृथक् पृथक् सूचना देनेकी आवश्यकता नहीं है। अवरोधकको यह मान लेना चाहिये कि आगन्तुक जहाज़को सूचना मिल चुकी है, यह उसका काम है कि अपने अज्ञानका प्रमाण दे। लन्दन कांफरेंसने जो नियम बनाये हैं उनमें दोनों मतोंका समावेश है। यदि अवरोधकी घोषणा होनेके पर्याप्त समयके बाद वह जहाज़ अपने देशसे चला है तो यह मानना अयुक्त नहीं है कि उसे सूचना मिल चुकी है। पर यदि यह निश्चय हो जाय कि उसे सचमुच सूचना नहीं थी तो अवरोधक बेड़ेके किसी अफ़सरको जाकर उसकी लागबुक* में सूचना लिख देनी होती है और तारीख़, समय तथा जहाज़की उस समयकी भौगोलिक स्थिति भी लिख देनी होती है। यदि तटस्थ जहाज़ोंके साथ गारद हो तो गारदके अध्यक्षको सूचना दे दी जाती है और फिर उसका कर्तव्य होता है कि अपने साथके सब जहाज़ोंकी लागबुकमें सूचना लिखा दे।

अवरुद्ध स्थानके भीतर प्रवेश करने, या घोषित अवधिके बाद उसके बाहर निकलने, को अवरोध-भङ्ग § कहते हैं। यह अपराध

अवरोध-भंग

है। यह कह दिया गया है कि जो जहाज़ अवरोधक जहाज़ोंके क्षेत्रके भीतर मिलेगा उसीपर अवरोध-भङ्गका दोष लग सकता है पर क्षेत्रके विस्तारके लिए कोई नियम नहीं है। नियम हो ही

* Log-book (लॉगबुक) एक प्रकारकी डायरी जो प्रत्येक जहाज़के कप्तानको रखनी पड़ती है। इसमें जहाज़के सम्बन्धकी बातें प्रति दिन लिखनी पड़ती हैं। § Violation of blockade. (वॉयलेशन आफ़ ब्लॉकेड)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं सकता। किसी स्थानकी बनावट ऐसी होती है कि उसके अवरोधके लिये अवरोधकोंको बहुत फैलनेकी आवश्यकता नहीं होती, किसीके लिये पचासों कोस तक फैलना पड़ता है। कोई अवरोधक अपना विस्तार इतना आप ही न बढ़ायेगा कि अवरोध-की क्षमता नष्ट हो जाय। यदि कोई जहाज़ किसी अनवरुद्ध तटकी ओर जा रहा है तो उसपर अवरोधभङ्गका दोष नहीं लग सकता। यदि यह पता लग जाय कि धोखा दिया जा रहा है तो उसे पकड़ भी सकते हैं। जब एक बार किसी अवरोध-भञ्जकका पीछा आरम्भ कर दिया जाता है तो वह अवरोध-क्षेत्रके भीतर ही समाप्त नहीं होता। अवरोधकोंको अधिकार है कि उसका जहां तक बन पड़े पीछा करें। यदि वह किसी तटस्थ नौस्थानमें आश्रय लेगा तो बाहर निकलने पर पकड़ा जायगा।

अवरोधभङ्गका एक ही दण्ड है, जहाज़की जब्ती। यदि मालका स्वामी यह प्रमाणित कर सके कि माल लादते समय मुझे यह पता न था कि यह जहाज़ अवरोध-भङ्ग करेगा तो माल छोड़ दिया जाता है, नहीं तो वह भी जब्त कर लिया जाता है।

अवरोधभंगका दंड

महासमरने अन्य अन्ताराष्ट्रिय विधानोंकी भाँति अवरोध-सम्बन्धी विधानकी भी बहुत खींचातानी की। जर्मनीका नौ-बल ब्रिटेनके बराबर तो था ही नहीं, अतः उसे बहुत कुछ सहारा पनडुब्बियों और जल-मग्न विस्फोटकोंका लेना पड़ा। इससे ब्रिटिश व्यापारकी बहुत क्षति हुई। इसलिये ब्रिटेनने समस्त उत्तर सागरको (जिसके आग्नेय तटपर जर्मनी बसा है और जिसमेंसे होकर ही कोई जहाज़ जर्मनी पहुंच सकता है) 'सैनिक क्षेत्र' घोषित किया। इसके उत्तरमें जर्मनीने ब्रिटेनके

महासमरमें अवरोध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चारों ओरके समुद्रको सैनिक क्षेत्र* घोषित कर दिया। इन बातों-का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि दोनोंने जान बूझकर अवरोध शब्दका प्रयोग नहीं किया, परन्तु जर्मनी और ब्रिटेनके समूचे तटका अवरोध हो गया। जर्मनीके लिये यह असम्भव था कि वह ब्रिटेनके अवरोधको सक्षम बना सके अतः उसका अवरोध केवल काग़ज़ी अवरोध रह गया पर ब्रिटेनके पास जहाज़ अधिक थे, उसके मित्रोंके पास भी अच्छा नौबल था फलतः उसने जर्मनीको सचमुच अवरुद्ध कर दिया। रूसके विरोधके कारण पूर्व दिशामें व्यापारका द्वार बन्द ही था, अरबोंके विद्रोह, इराकमें ब्रिटिश सेनाके आक्रमण तथा यूनानकी लड़ाईने तुर्कीका मार्ग भी रोक ही रक्खा था अतः जर्मनीमें बाहरके मालका आना तथा जर्मनीसे माल बाहर जाना एकदम बन्द हो गया। उसकी हारके प्रधान कारणोंमें इसकी भी गणना है।

---

* Military area, zone of war. (मिलिटरी एरिया, ज़ोन आफ वार)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठवाँ अध्याय।

अतटस्थाचरण।

कभी कभी तटस्थ व्यक्ति ऐसे काम कर बैठते हैं जो केवल शत्रुवर्गीयोंके ही हाथसे होने चाहिये। यों तो निषिद्ध व्यापार भी अपराध है पर निषिद्ध व्यापारका मुख्य उद्देश्य अपना लाभ होता है। युद्धकालमें व्यापार करनेमें भय तो अधिक रहता है पर युद्धकारियोंके हाथ उनके कामकी वस्तुएं बेचनेसे लाभ अधिक होता है, इसी लिये लोग ऐसा करते हैं। परन्तु किसी एक पक्षके अफसरों या सैनिकोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान पहुंचाना या उसकी सैनिक खबरें पहुंचाना, उसको प्रत्यक्ष सहायता देना है, इसलिये दूसरा पक्ष इसे कदापि क्षम्य नहीं ठहरा सकता। सम्भव है इन कामोंमें लाभ हो पर लाभका स्थान गौण है, मुख्य स्थान शत्रुको सहायता देनेका है। जो तटस्थ ऐसा करता है वह एक प्रकारसे उतने कालके लिये उस युद्धकारीके यहाँ नौकरी कर लेता है। जैसा कि इस सम्बन्धमें एक अंग्रेज न्यायाधीश सर वाल्टर स्काटने कहा था जो व्यक्ति ऐसा करता है वह ऊपरसे तटस्थ बना हुआ वस्तुतः शत्रुराजका नौकर है और उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये।

अतटस्थाचरणका स्वरूप

फिर निषिद्ध वस्तुकी निषिद्धता इसी बातमें है कि वह शत्रु-देशको भेजी जा रही हो पर बिना एक शत्रु-देशकी ओर गये भी दूसरेकी हानि की जा सकती है। समुद्रमें विस्फोटक फैलाना एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा काम है जो बिना शत्रुदेशको गये भी हो सकता है। सेनोपयोगी समाचार भी तटस्थ देशोंके द्वारा भेजे जा सकते हैं।

इससे स्पष्ट है कि इस प्रकारके काम निषिद्ध व्यापारसे कई अंशोंमें भिन्न हैं। हॉलने इनको निषिद्धसम* कहा है पर यह स्वीकार किया है कि दोनोंमें सादृश्य बहुत कम है। फ्रांसीसी भाषामें इसके पर्यायका अर्थ है विरुद्ध सहायता §। प्रायः यही अर्थ हालैण्डके प्रस्ताव किये हुए नामका है। वह इसे शत्रु सेवा‡ कहते हैं। अंग्रेज सर्कार ऐसे कामोंके लिये अतटस्थ काम † ऐसे नामका प्रयोग करती है। यह नाम सब दृष्टियोंसे उपयुक्त प्रतीत होता है। इसीके अनुसार हमने भी 'अतटस्थाचरण' नामकी रचना की है।

अतटस्थाचरणका प्रश्न बड़े महत्त्वका है। आजकल इसके प्रकार बढ़ते जाते हैं। जहाजकी मरम्मत करना, समाचार भेजनेके लिये जलमग्न तार बिछाना, जहाजोंको कोयला या तेल पहुंचाना ऐसे अपराध हैं जो आजकल वृद्धिपर हैं। इनमेंसे कुछ अपराध तो ऐसे हैं जो आजसे ४०,५० वर्ष पहिले हो ही नहीं सकते थे। ऐसे अपराधोंके लिये कठोर दण्डकी व्यवस्था होनी ही चाहिये और वह दण्ड निषिद्ध व्यापारसे कठोर होना चाहिये। १९०९ की लन्दन कांफरेंसने इस प्रश्नपर विचार किया। उसने पहिले अपराधोंको घोर और मृदु दो कोटियोंमें बाँटा और फिर इनके लिये पृथक् पृथक् दण्डका विधान किया। लन्दन घोषणाकी ४५ वीं तथा ४६ वीं धाराओंमें इसी विषयका विचार किया गया है।

* Analogues of contraband. (एनेलोग्स आफ कॉण्ट्राबैंड) § Assistance hostile. (एसिस्टेंस हॉस्टाइल) ‡ Enemy service. (एनिमी सर्विस) † Un-neutral service. (अन-न्युट्रल सर्विस)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृदु अपराधोंका परिणाम यह होता है कि जहाजकी परि-स्थिति निषिद्ध व्यापाररत जहाज सी हो जाती है। उसका तटस्थ रूप तो नष्ट नहीं होता पर वह दण्डार्ह हो जाता है। मृदु अपराध मुख्यतया दो हैं—

मृदु अपराध

(१) शत्रु सेनाके अङ्गीभूत व्यक्तियोंको पहुंचाने, या शत्रूपयोगी समाचार ले जाने, के मुख्य उद्देश्यसे यात्रा करना।
(२) जहाजके स्वामी या ठेकेदार या कप्तानके ज्ञानमें शत्रु सेनाके किसी टुकड़े या एक या अनेक ऐसे व्यक्तियोंको जो यात्राके बीचमें ही शत्रुके सैनिक कार्योंमें प्रत्यक्ष सहायता दें ले जाना।

(१) और (२) में एक यह बड़ा अन्तर है कि (१) में जिन लोगोंकी ओर संकेत है वह पृथक् पृथक् अपनी निजी हैसियतसे जाते हैं और (२) में सामूहिक रूपसे।

यदि यह प्रमाणित किया जा सके कि जहाजके चलते समय युद्ध नहीं छिड़ा था या यदि कप्तान यह सिद्ध कर सके कि मुझे युद्ध छिड़नेकी सूचना तो मिल गयी थी पर मुझे इन यात्रियोंको कहीं उतार देनेका अवसर ही नहीं मिला तो अपराध क्षमा कर दिया जाता है अन्यथा जहाज जब्त कर लिया जाता है और उसपर उसके स्वामीका जो माल होता है वह भी जब्त कर लिया जाता है। यदि जहाज निर्दोष ठहराया जाय तो उसपरके यात्री रणबन्दी बनाये जा सकते हैं।

४६ वीं धारामें घोर अपराधोंका उल्लेख है। जो जहाज ऐसे अपराध करता है वह अपना तटस्थ रूप पूर्णतया खो बैठता है और उसके साथ शत्रुवत् आचरण किया जाता है। घोर अपराध चार मुख्य कोटियोंमें विभक्त किये गये हैं।

घोर अपराध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) युद्धमें प्रत्यक्ष भाग लेना।
(२) अपने ऊपर शत्रु सर्कार द्वारा नियुक्त किसी व्यक्तिकी आज्ञा या अनुशासनके अनुसार चलना।
(३) शत्रु सर्कारकी अनन्य सेवामें होना।
(४) सम्प्रति अनन्य रूपसे शत्रु सेनाके किसी टुकड़े या शत्रूपयोगी समाचारके ले जानेमें लगे होना।

इन अपराधोंका दण्ड यह है कि जहाजके साथ साथ उसके स्वामीका जो कुछ माल उसपर होगा वह ज़ब्त कर लिया जायगा।

ऊपर दिखलाये गये विभागोंमेंसे पहिला बहुत व्यापक है। वह जान बूझकर ऐसा रक्खा गया। लन्दन कांफरेन्सने उसकी विशेष टीका टिप्पणी करना उचित न समझा। लारेंसने प्रत्यक्ष भाग लेनेके कई उदाहरण दिये हैं। शत्रुके बेड़ेको आक्रमण करनेका ठीक मार्ग बताना, जलमग्न विस्फोटक फैलाना, विस्फोटक हटाना, शत्रु बेड़ेके आगे चल कर उसे परिस्थितिका पता देना, बेतारके तार जानेके मार्गोंको व्यर्थके तार भेज भेज कर रोक रखना इत्यादि।

यह सब अपराध वस्तुतः घोर रूपके हैं और इनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है जो अनजानमें हो सकता हो। जो जहाज इन्हें करता है वह सोच समझकर शत्रुका प्रत्यक्ष साथ देता है। इसलिये किसी किसीकी तो यह सम्मति है कि ऐसे जहाजोंके नाविकोंको गोली मार देनी चाहिये। यदि इतना भी न किया जाय तो उन्हें रणबन्दी तो अवश्य ही बनाना चाहिये। उनका काम शत्रुसे अधिक गर्ह्य है। शत्रु जो कुछ कर सकता है वह न्याय्य है, उससे तो लड़ाई ही है, पर तटस्थोंको इस झगड़ेसे दूर रहना चाहिये।

देखनेमें मृदु और घोर दोनों प्रकारके अपराधोंका दण्ड एकसा प्रतीत होता है पर वस्तुतः दोनोंमें अन्तर है। एक तो घोर अप-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधी अज्ञानका बहाना करके बच नहीं सकता। दूसरे मृदु अपराधी अपराध कर चुकनेके बाद नहीं पकड़ा जा सकता। जब वह शत्रु सेनाके व्यक्तियोंको पहुंचा आया या चिट्ठी-पत्री दे आया तो फिर उससे पूछताछ नहीं हो सकती परन्तु घोर अपराधीके लिये यह नियम नहीं है। खाली जहाज, अपराध कर चुकने, या करनेके पहिले भी, पकड़ा जा सकता है। घोर अपराधी फौरन डुबाया जा सकता है परन्तु मृदु अपराधी उसी दशामें डुबाया जा सकता है जब कि उसके अस्तित्वसे पकड़ने वाले रणपोतकी ही रक्षामें आशंका हो या उसके तत्कालीन सैनिक कार्य्यमें अत्यन्त बाधा पड़ती हो। मृदु अपराधीको अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयमें अपील करनेका पूरा अधिकार रहता है। घोर अपराधीको उसी दशामें यह अधिकार हो सकता है जब वह यह दिखला सके कि मैंने अपराध किया ही नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि घोर अपराधियोंको और भी कठोर दण्ड देना वर्तमान अवस्थामें अन्याय्य न होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

पञ्चम खण्ड—अन्ताराष्ट्रिय संगठन ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहिला अध्याय ।

संगठनकी आवश्यकता और उसके अनिवार्य्य साधन ।

आजसे कुछ वर्ष पहिले अन्ताराष्ट्रिय संगठनका नाम भी अपरिचित था पर आज यह अवस्था नहीं है। आज कल बहुत से विद्वानों एवं राजनीतिज्ञोंको इसकी आवश्यकता प्रतीत होती जाती है। युद्ध जितना भीषण अब हो गया है उतना भीषण पहिले कभी नहीं था। विज्ञान, जिसे समाजका रक्षक होना चाहिये था, उसका भक्षक हो गया है। पहिले

संगठनकी आवश्यकता

समयमें नरेशोंकी महत्त्वाकांक्षा ही प्रायः युद्धका एकमात्र कारण होती थी। इसलिये साधारण प्रजाको विशेष सन्ताप न सहना पड़ता था। यदि चंगेज़ खां या तैमूरलंग ऐसा कोई लुटेरा आया भी तो विपत्ति, चाहे कितनी ही बड़ी हो, जल्दी ही टल जाती थी। आज कल नरेशोंके हाथमें तो अधिकार है नहीं, क्षात्र महत्त्वाकांक्षाका स्थान वैश्य महत्त्वाकांक्षाने लिया है। बड़े बड़े भूखण्डोंको हस्तगत करके उनमें उपनिवेश बसाना, जहां तक बन पड़े जङ्गलों और खानोंपर अधिकार करना, दुर्बल राष्ट्रोंको दबाकर उनसे सस्ते श्रमजीवियोंका काम लेना, अन्य देशोंके व्यापारको नष्ट करके उन्हें अपने यहांके माल मोल लेनेके लिये विवश करना—यह सब वैश्ययुगका चिन्ह है। लक्ष्मीने सरस्वतीको अभिभूत कर लिया है इसलिये विज्ञान कुटिल स्वार्थके साधनका एक यंत्र बन गया है। इसलिये एक एक युद्धमें, चाहे वह पहिले के युद्धोंका दशमांश समय भी न ले, कई सौगुना व्यय होता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कहीं अधिक मनुष्य मरते हैं। युद्ध–समाप्तिके पचीसों वर्ष पीछे तक कुपरिणाम देख पड़ते हैं और राष्ट्र–व्यापी द्वेष बढ़ता जाता है।

इस दुरवस्थाने सारे सभ्य जगत्‌को व्यथित कर रक्खा है। सभी शान्ति चाहते हैं पर परस्परका अविश्वास शान्ति होने नहीं देता। कोई आत्मसम्मानी राष्ट्र अपमान सहकर शान्तिका पक्षपाती नहीं रह सकता। ऐसी शान्ति श्रेयस्कर भी नहीं हो सकती। कापुरुषका चुप रह जाना क्षमा नहीं है। जो शान्ति चरित्रको दुर्बल बनाती है उससे युद्ध लाख गुणा भला है इसलिये शान्तिकी अभिलाषा सबको है पर सभी युद्धकी तैयारीमें लगे हैं। यह तैयारी प्राणघातक हो रही है। जो रुपया शिक्षा, कला, स्वास्थ्य-रक्षा, निर्धनता-निवारण और संस्कृत मनोरञ्जनमें व्यय होता वह युद्ध–सामग्रीके सञ्चयमें लगता है। लोक–संग्रहका साधन लोक-विग्रहका साधन बनाया जाता है।

यह दुरवस्था तभी दूर हो जब सारी पृथ्वीपर एक सर्कार हो। ऐसे सार्वभौम राजका स्वप्न तो बहुत से नरेशों तथा विद्वानोंने देखा परन्तु अभी तक यह स्वप्न स्वप्न ही रहा। सम्भव है भविष्यत्‌में कभी ऐसा हो जाय पर आशा कम है। जब तक कोई ऐसा राज नहीं स्थापित होता तब तक बिना किसी प्रकारके अन्ताराष्ट्रिय संगठनके शान्तिकी रक्षा नहीं हो सकती। प्राचीन कालमें दो ऐसी वस्तुएं थीं जो इस उद्देश्यको अंशतः पूरा कर सकती थीं।

पहिली वस्तु साम्राज्योंका अस्तित्व थी। जो देश एक साम्राज्यके अधीन होते थे उनमें झगड़े नहीं होने पाते थे। साम्राज्यकी प्रधान सर्कार उनको दबा देती थी। प्रायः साम्राज्योंका अधिपति एक व्यक्ति, सम्राट्, होता था। प्रान्तोंको न्यूनाधिक जैसे भी अधिकार रहते हों परन्तु प्रधान अधिकार उसी जातिके हाथमें रहता था

साम्राज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसने अपने पड़ोसियोंको जीतकर साम्राज्यकी नींव डाली थी। सम्राट् भी उसी जातिका होता था। साम्राज्य दो प्रकारके होते थे। एकमें तो सम्राट्के अधीन कई मण्डलेश्वर अर्थात् प्रादेशिक नरेश होते थे। यह लोग अपने अपने राज्यमें स्वतंत्रप्राय होते थे। समय समयपर सम्राट्को कर या सैनिक सहायता दे देनेमें ही इनकी साम्राज्यके प्रति इतिकर्तव्यता थी। युधिष्ठिर, मान्धाता, भरत इसी प्रकारके सम्राट् थे। दूसरे प्रकारके साम्राज्यमें कुछ प्रान्तोंमें अंशप्रभु नरेश हों या न हों परन्तु साम्राज्यका बहुत बड़ा भाग सम्राट्के ही अधीन होता था। अशोक, गुप्त-वंशीय नरेश, हर्षवर्द्धन, अकबर इसी कोटिमें थे। ब्रिटिशसाम्राज्य इसी प्रकारका साम्राज्य है।

साम्राज्य चाहे किसी प्रकारका हो, उसमें कई दोष होते हैं। एक तो वह सम्राटोंके व्यक्तित्वपर निर्भर है। मौर्य, गुप्त, मुग़ल सभी साम्राज्योंके इतिहास यही रोना रोते हैं। अधीन राज अपनी स्थितिसे कदापि सन्तुष्ट नहीं रहते, नित्य स्वतंत्र होनेका अवसर ढूँढते रहते हैं। द्वितीय प्रकारके साम्राज्योंमें भी इसी भांतिका घुन लग जाता है। अधीन राष्ट्र शासक राष्ट्रका आतङ्क नहीं सह सकते, जब कभी शासक और शासितमें विवाद हो उठता है तो सम्राट्की सर्कार अगत्या पक्षपात करती है। इन बातोंका परिणाम यह होता है कि ऊपरसे युद्धाभाव देख पड़ते हुए भी आग भीतर भीतर धधकती रहती है। इसका निश्चय नहीं होता कि किस दिन साम्राज्यका अन्त हो जाय। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि साम्राज्य कई होते हैं अतः उनमें तो युद्ध होता ही है। इसलिये कोई भी साम्राज्य सार्वभौम शान्तिका साधक नहीं हो सकता पर हाँ प्रबल साम्राज्य युद्धोंकी संख्याको कम कर सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरी वस्तु जो इस उद्देश्यका न्यूनाधिक पालन कर सकती थी वह धर्म्म थी। प्राचीनकालके धर्म्मोंमेंसे वैदिक धर्म्म, पारसी धर्म्म, बौद्ध धर्म्म तथा जैन धर्म्ममें यह क्षमता विशेप रूपसे न थी। वस्तुतः पारसी, बौद्ध और जैन धर्म्म वैदिक धर्म्मके रूपान्तर या शाखास्वरूप थे। वैदिक धर्म्म उदार था, दया, क्षमा, अहिंसाका उपदेश देता था, 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ाता था पर युद्धको रोक नहीं सकता था। इस्लाममें यह शक्ति थोड़ी बहुत थी। इस्लामके अनुसार, मुसलमानोंका एक धार्म्मिक नेता था जिसे ख़लीफा कहते थे। वह इस्लामका मुख्य रक्षक था। इस पद्धतिका फल यह होता था कि जब कभी काफ़िरों अर्थात् अन्य धर्म्मावलम्बियोंसे जिहाद (धर्म्मयुद्ध) की घोषणा हो जाती थी सब मुसल्मान एक हो जाते थे। पर इस प्रथासे अन्ताराष्ट्रिय शान्तिकी स्थापनामें स्यात् ही कुछ सहायता मिली। काफ़िरोंसे लड़नेके लिये मुसलमान राज भले ही मिल जायं और कुछ कालके लिये अपने झगड़े बन्द कर दें पर अन्य समय आपसमें तो भीषण युद्ध होते ही थे, ख़लीफ़ासे भी लड़नेमें कोई संकोच नहीं होता था क्योंकि वह भी एक संसारी नरेश ही होता था। फिर काफ़िरोंसे लड़नेका तो नित्य ही अवसर मिलता था।

धर्म्म

वस्तुतः शान्ति रखनेकी क्षमता ईसाई धर्म्मके रोमन कैथॉलिक सम्प्रदायमें थी। किसी समय प्रायः सभी ईसाई इसी सम्प्रदायके अनुयायी थे। इसके माननेवालोंका यह विश्वास है कि ईसाने स्वर्गकी कुञ्जी अपने शिष्य सेण्ट पीटरको दे दी है। पीटर स्वर्गके द्वारपर बैठे रहते हैं। अपने जीवनकालमें उन्होंने रोमके मठकी स्थापना की थी अतः रोमके मठाधीश, जो पोप कहलाते हैं, सेण्ट पीटरकी गद्दीपर बैठते हैं। वह जिस मनुष्यको आशीर्वाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दे दें उसके सारे पाप भस्म हो जायं। जिसको पोप बहिष्कृत कर दें उससे जो कोई बात करे या किसी प्रकारका संसर्ग रक्खे वह नरकगामी होता है। पोपके प्रत्येक कामका समर्थन सेण्ट-पीटर अथच ईसामसीह और तद्व्याजेन स्वयं ईश्वर करता है। इस विश्वासके कारण सभी पोपसे डरते थे। बड़े बड़े नरेश काँपते थे। पोपने बादशाहोंको कोड़े लगवाये हैं। इसलिये जब पोप चाहते थे तब ईसाई देशोंमें शान्ति रहती थी। पोपोंकी अभिलाषा यही थी कि सारा जगत् हमारे धर्म्ममें मिल जाय और हम धर्म्मके झण्डेके नीचे अखण्ड शान्ति स्थापित करें।

धर्मकी असफलताके कारण

पर साम्राज्यवादकी भाँति धर्म्म भी अपने उद्देश्यमें सफल न हुआ। दोनोंके भीतर दुर्बलता और असफलताके बीज पहिलेसे ही थे। एक तो इस प्रकारका धर्म्म तभी तक दृढ़ रह सकता है जब तक उसके प्रधानाध्यक्षोंकी परम्परामें सदाचारी और तपस्वी हों। पोप-गद्दीपर बहुत से स्वार्थी, दुराचारी और विषयभोगी मनुष्य बैठे, इससे गद्दी और तदधीन धर्म्मकी मर्य्यादा बिगड़ गयी। रागद्वेष, महत्त्वाकांक्षा और विषयपरताने उनकी निष्पक्षता नष्ट कर दी। फिर जब तक धर्म्मके विषयमें 'मम और तव' बुद्धि बनी रहेगी तब तक अशान्ति दूर नहीं हो सकती। मैं इस धर्म्मकी उन्नति करूँ क्योंकि यह मेरा है और उस धर्म्मके मानने वालोंसे युद्ध करूं क्योंकि वह मेरा नहीं है—इस भावने न जाने कितनी लड़ाइयां करायी हैं। यदि मनुष्योंमें धर्म्मके मूल मंत्र और उसके मुख्य अंगों अर्थात् आस्तिकता, दया, सत्य, परोपकार और आत्मसंयमका प्रचार हो जाय तो वैर विरोध आप ही मिट जाय पर किसी सम्प्रदाय विशेषका प्राधान्य यह अवस्था नहीं ला सकता। यह बात तभी होगी जब लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्प्रदायसे बढ़कर धर्म्मको समझें और 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना भगवान्से करते हुए 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का अभ्यास करें।

अभी तक न ऐसा हुआ न धर्म्मके द्वारा युद्धका अन्त हुआ। आजकल एक और प्रकारका भाव चल पड़ा है जिससे कुछ लोगोंको चिर-शान्तिकी आशा है। इसे विश्व-संस्कृति* कह सकते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि यदि मनुष्योंमें समान संस्कृति--अर्थात् साहित्य, विज्ञान, कला, कर्तव्याकर्तव्य बुद्धि--का प्रचार हो तो वह धर्म्म और स्वदेशके भेदका अतिक्रमण कर जायंगे। यही दोनों भेद झगड़ेके घर हैं। यदि सब लोग अपनेको एक देश विशेषका नागरिक न समझकर पृथ्वीमात्रका नागरिक समझें, यदि वस्तुतः 'अयं निजः परोवा' का स्थान 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव ले ले तो विरोधकी जड़ ही कट जाय। पर अभी इस नये सिद्धान्तकी परीक्षा नहीं हुई है। बहुत लोगोंका यह मत है कि थोड़े से मनुष्योंकी दूसरी बात है पर जनसाधारण इतने ऊंचे पहुंच ही नहीं सकते, क्योंकि यह सिद्धान्त स्वार्थके आगे टिक नहीं सकता। जो लोग यह आक्षेप करते हैं उनकी यह धारणा है कि राज या धर्म्म ही साधारण मनुष्योंकी शास्ति कर सकता है।

विश्व-संस्कृति

अस्तु, ऐसी दशामें हमको एक मात्र अन्ताराष्ट्रिय संगठनका आश्रय लेना पड़ता है। हमको यह मान लेना पड़ता है कि इस समय पृथ्वीपर बहुत से पृथक् पृथक् राज हैं जो एक दूसरेके अधीन नहीं हैं, इन राजोंके स्वार्थमें भेद है, इनके प्रजावर्गीय भिन्न भिन्न जातियों और धर्म्मोंके हैं और हित-वैषम्यके कारण इनमें परस्पर झगड़े भी खड़े होते रहते हैं। अब हमको यह प्रयत्न करना है कि जिस प्रकार भिन्न भिन्न मतावलम्बी तथा भिन्न भिन्न

---

* Cosmopolitanism. (कॉज़्मोपॉलिटनिज़्म)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वार्थाभिभूत मनुष्योंके संठगनसे राज बनते हैं उसी प्रकार भिन्न भिन्न राजोंके संगठनसे एक राजसंघकी सृष्टि हो। इस संघका स्वरूप क्या होगा इसका विचार तो आगे होगा पर यहां हमको यह देखना है कि उसके अनिवार्य्य साधन कौन कौन से हैं।

सबसे बड़ा साधन स्वतन्त्र राष्ट्रीय राजोंकी सत्ता है। यहां राज शब्दके जो दो विशेषण रक्खे गये हैं वह दोनों महत्त्वके हैं।

स्वतंत्र राष्ट्रीय राज

राज कई प्रकारके हो सकते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य भी एक राज है जिसके अन्तर्गत कई राष्ट्र हैं। इसके विपरीत महासमरके पहिले पोलिश राष्ट्रके तीन टुकड़े होकर जर्मन, आस्ट्रियन और रूसी साम्राज्योंमें पड़े हुए थे। यह दोनों दशाएं बुरी हैं। इन राजोंको उतनी स्थिरता नहीं हो सकती जितनी राष्ट्रीय राजों* को होती है। राष्ट्रीय राज उस राजको कहते हैं जिसकी प्रजा एक ही राष्ट्रकी हो। आजसे सौ दो सौ वर्ष पहिले एक राजमें कई राष्ट्रोंका और एक राष्ट्रका कई राजोंमें रहना सम्भव था पर अब वायुकी दिशा दूसरी हो गयी है। राजभक्तिकी जगह राष्ट्रभक्तिने ली है और देश-भक्ति तथा राष्ट्र-भक्ति पर्य्यायवाची नाम होते जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि पुराने ढङ्गके राज टूट रहे हैं और नये राष्ट्रीय राज बन रहे हैं। जो दो चार पुराने राज बच गये हैं उनका शीघ्र संगठन अवश्यम्भावी है। उनकी प्रजा भी अपनी दशासे असन्तुष्ट है।

यह भी आवश्यक है कि यह राज स्वतन्त्र रहें। जब तक एक दूसरेको दबाये रक्खेगा तब तक अशान्ति रहेगी। सच्चा संगठन बराबरवालोंका ही होता है।

आजकल बड़े और छोटे, महाशक्ति और अल्पशक्ति, का भेद अन्ताराष्ट्रिय संगठनमें बड़ी बाधा डालता है। राजोंके समत्वका

---

* National State. (नैशनल स्टेट)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्धान्त सिद्धान्तमात्र ही रह जाता है, व्यवहारमें उसका बर्ता जाना कठिन है। यह असम्भव है कि ब्रिटेन या अमेरिका लाइबी-रिया या पनामाको अपने बराबर समझें। यह वैषम्य ही आपसके अविश्वासको दूर नहीं होने देता। जब कभी कोई अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन होता है तो बड़े राज समझते हैं कि छोटे मिलकर हमें दबाना चाहते हैं और छोटे समझते हैं कि बड़े हमें और भी दुर्बल करना चाहते हैं। यदि बड़े राज स्वतन्त्र राष्ट्रीय राजोंमें बँट जायँ तो सचमुच बहुत कुछ समता आ जाय।

एक लाभ और होगा। संगठन एक या दोमें नहीं हो सकता। उसके लिये यह आवश्यक है कि बहुत से समानाधिकारी परन्तु भिन्न प्रकृतिके व्यक्ति हों। जो लोग पूर्णतया समान हैं उनमें संगठनका स्थान ही नहीं हो सकता। सांख्यदर्शनके अनुसार पुरुषोंकी संख्या नहीं है पर इनमें किसी प्रकारका संगठन नहीं है क्योंकि सभी गुणातीत, चिद्घन, सत्स्वरूप अर्थात् स्वभावेन पूर्णतया अभिन्न हैं। यदि बहुत से स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज हो जायँ तो इनमें राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, भौगोलिक, धार्म्मिक आदि भेदोंके कारण हितवैषम्य अवश्य होगा अतः संगठनका स्थान होगा। हम यह नहीं कहते कि इस प्रकारका वैषम्य अच्छा है या बुरा पर इतना दिखलाना चाहते हैं कि उसके अभावमें संगठनका भी अभाव होगा।

परन्तु इतना वैषम्य भी नहीं चाहिये जो बीचमें पक्की दीवार खड़ी कर दे। यह प्रायः असम्भव है कि कोई ऐसा संगठन स्थायी हो सके जिसके एक ओर तो पश्चिमी
ईषत् विश्व-संस्कृति यूरोपके राज और दूसरी ओर मध्य अफ्रिकाके राज सदस्य हों। विचार-धाराएं पृथक भले ही हों पर उनको कहीं न कहीं तो मिलना चाहिये। इस लिये कुछ न कुछ विश्वसंस्कृतिके प्रचारकी भी आवश्यकता है। एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्ख और एक पण्डित, एक नरमांसभक्षी और एक अहिंसाव्रतीका मेल चिरस्थायी नहीं हो सकता।

राज्योंमें कुछ न कुछ हितसाम्य भी होना चाहिये। आजकल यह शर्त पूरी हो रही है। आपसमें अपरिमित प्रतिद्वन्द्विता है, एक राष्ट्र सदैव दूसरेसे सतर्क और सशंक रहता है पर हितसाम्य भी है। आजकल एक-देशीय व्यापारका दिन नहीं है। व्यापारका संगठन अन्ताराष्ट्रिय है। सभी सभ्य देश एक दूसरेके ऋणी हैं। इस लिये यदि एकका व्यापार नष्ट हो जाय तो सबपर इसका प्रभाव पड़ता है। एक देशमें खनिज पदार्थ उत्पन्न होते हैं, दूसरेमें अन्न होता है, तीसरेमें रूई उपजती है, चौथेमें तेल निकलता है, पाँचवें-की जनसंख्या और दरिद्रता इतनी अधिक है कि वहांके निवासी मजदूरीके लिये लालायित होकर विश्वाटन किया करते हैं। इन सभोंका कल्याण एक ही सूत्रमें बँधा है। इसी लिये तो प्रसिद्ध शान्ति-वादी नार्मन ऐन्जेलने कहा था कि इस युगमें युद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह विजित और विजेता दोनोंके लिये विघातक होगा।

हितसाम्य

जिस प्रकार सामाजिक संगठनके लिये कुछ स्थिरताकी आवश्यकता है उसी प्रकार अन्ताराष्ट्रिय संगठन भी स्थिरताकी अपेक्षा करता है। अधिक स्थिरता तो संगठनके पीछे होती है पर कुछ स्थिरता पहिले भी चाहिये। यदि राज्योंमें नित्य युद्ध या राज्यविप्लव होता रहे तो संगठन नहीं हो सकता।

स्थिरता

शान्तिकी इच्छा भी परमावश्यक वस्तु है। यूरोपमें संगठन-के अन्य कई साधनोंके वर्तमान होते हुए भी इसलिये संगठन न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो सका कि किसीको शान्तिकी प्रबल इच्छा न थी। शान्ति महत्त्वाकांक्षाका मार्ग बन्द कर देती। परन्तु

शान्तिकी इच्छा महायुद्धके परिणामोंने आँखें खोल दी हैं। अब युद्धसे कुछ कुछ चित्त हटा है और यह इच्छा होने लगी है कि झगड़ोंके निपटानेका कोई और साधन मिले। यह भाव संगठनके अनुकूल है। संगठन हठात् तो हो नहीं सकता। जो संगठन हठात् होगा वह एक प्रकारका साम्राज्य हो जायगा और साम्राज्योंकी भाँति नष्ट भी होगा। स्थायी वही संगठन हो सकता है जिसके सब सदस्य अपनी इच्छा और प्रसन्नतासे, संगठनके लाभोंसे परितुष्ट होकर, उसके अवयव बने रहें।

इन सब बातोंके साथ साथ यह भी आवश्यक है कि उन राजोंमें परस्परका सम्बन्ध स्थापित हो चुका हो। यह शर्त भी आजकल पूरी हो रही है। अब राज एक

अन्ताराष्ट्रिय संबंध दूसरेसे पृथक् नहीं हैं। युद्ध, सन्धि और ताटस्थ्य सभी अवस्थाओंके लिये नियम बन गये हैं और बनते जाते हैं। आये दिन अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन हुआ करते हैं, तार बेतारने सारी पृथ्वीको वेष्टित कर दिया है। अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयोंके सामने बड़े बड़े राज वादी-प्रतिवादी बन कर आते हैं, एक राज दूसरे राजके महाजनोंका ऋणी है। इन बातोंके कारण लोगोंको एक दूसरेका अधिकाधिक परिचय होता जाता है और सहयोगका अभ्यास बढ़ता जाता है। पर अभी यह सहयोग नियमित और नित्य नहीं है। कभी होता है कभी नहीं होता। परस्परका अविश्वास इसे सुदृढ़ नहीं होने देता। यदि बड़े और प्रबल राज अन्ताराष्ट्रिय सदाचारके विरुद्ध आचरण करें तो उन्हें समुचित दण्ड देनेका कोई साधन नहीं है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठीक है कि अन्ताराष्ट्रिय लोकमत ऐसे उच्छृङ्खल राजके विरुद्ध हो जायगा जिससे कि अन्तमें उसकी क्षति ही होगी पर यह देरका मार्ग है। कोई क्षिप्रफलदायी साधन होना चाहिये। इन्हीं सब बातोंके लिये संगठनकी आवश्यकता है। मार्ग धीरे धीरे निष्कपटक होता जाता है, अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो रही है, सम्भव है पृथ्वीका भाग्य खुल जाय और संगठन सचमुच हो जाय।

इस समय कई आवश्यक साधन विद्यमान हैं। शेषकी धीरे धीरे सृष्टि हो रही है। संगठनसे जो लाभ होगा उसकी ओर हम पहिले ही संकेत कर चुके हैं। हमने कहा है कि संगठनका उद्देश्य है शान्तिकी स्थापना और उसकी रक्षा। युद्धके अभावको ही शान्ति नहीं कहते। ऐसी शान्ति तो कभी कभी आजकल भी देख पड़ती है। जब तक बड़े छोटेका भेद है, स्पर्धा है, युद्धकी तैयारी है तब तक शान्ति नहीं हो सकती। शान्तिका अर्थ यह होगा कि अन्ताराष्ट्रिय कुटुम्बके सब अङ्ग, अर्थात् सब राज, तुल्यप्रतिष्ठ होंगे, उनका मताधिकार बराबर होगा। एक प्रकारकी अन्ताराष्ट्रिय पुलिस होगी जो इस बातको देखेगी कि कोई राज प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे ऐसे शस्त्रों या रासायनिक द्रव्योंका संग्रह न करे जिनसे दूसरे राजोंको क्षति पहुंचे। यदि कोई राज दूसरे राजकी भूमि दबा ले या उसके किसी अन्य स्वत्वपर आघात करे तो उसे असहयोग या अन्य प्रकारसे दण्ड देनेका प्रबन्ध करना होगा। खाने पहिनने जलाने आदि उपयोगी कामोंकी सामग्रीका इस प्रकार विनिमय करना होगा कि सबकी आवश्यकता पूरी होती रहे। कला, कौशल, विद्या और धर्म्मके प्रचारके मार्गसे विघ्न बाधाओंको दूर करना होगा। स्पर्धा-भावको नष्ट करनेका प्रयत्न व्यर्थ है। स्पर्धा भले ही रहे परन्तु परस्वाप-

संगठनसे लाभ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरणमें नहीं, सेवामें। जो राष्ट्र दूसरोंको दबाता है उसके स्थानमें जो राष्ट्र दूसरोंकी अधिक सेवा करता है वह श्रेष्ठतर समझा जाय।

यह असम्भव कल्पनाएं नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी इसी ओर बढ़ रही है। यदि ऐसी अवस्था एक दिन सचमुच आगयी तो मनुष्यको सचमुच सब प्राणियोंमें अपनी ही आत्माका प्रतिबिम्ब देख पड़ेगा और वह जाति, कुल, वर्ण, देश, सम्प्रदाय आदि कृत्रिम बन्धनोंका अतिक्रमण करके स्वरूपानुभूतिका अधिकारी बनेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा अध्याय।

आंशिक अन्ताराष्ट्रिय संगठन।

पृथ्वीके इतिहासके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि किसी प्रकारका महान् परिवर्तन यकायक नहीं हो जाता। पहिले उसके अनुकूल परिस्थितिकी सृष्टि होती है, उसका कुछ कुछ पूर्वरूप देख पड़ने लगता है, लोगोंके हृदयोंमें उसके प्रति प्रतीक्षा, आशा, श्रद्धाके भाव उत्पन होते हैं, फिर उसका उदय होता है। सामाजिक, धार्म्मिक, राजनीतिक सभी युगान्तरकारी परिवर्तनोंकी यही दशा है। अन्ताराष्ट्रिय संगठनके युगान्तरकारी होनेमें कोई सन्देह नहीं है। यदि सचमुच संगठन हो जाय तो युद्धका अन्त हो जाय और पृथ्वीमें विश्रुत 'रामराज्य' से भी अधिक सुख-समृद्धि उपलब्ध होने लग जाय। परन्तु अभी हम उसके पात्र नहीं हैं, धीरे धीरे पात्रता आ रही है, इस लिये संगठनका पूर्व-रूप भी धीरे धीरे देख पड़ने लगा। कई ऐसी बातें हुईं और हो रही हैं जिनसे संगठनके समर्थकोंका पथ निष्कण्टक होता है, जो भावी संगठनके अंग हैं। यह बातें एक प्रकारसे आकस्मिक हैं अर्थात् संगठनके उद्देश्यसे नहीं की गयी हैं परन्तु पृथ्वीकी सूत्रात्माको इस समय संगठन अभिप्रेत है इस लिये बिना जाने बूझे भी लोग तदुन्मुख होकर चल रहे हैं।

सबसे बड़ी बात जो हो रही है वह यह है कि आपसका अविश्वास कुछ कुछ कम हो रहा है और सहयोगका अभ्यास बढ़ रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि महायुद्ध और उसके बादकी वर्सेल्स सन्धिने शान्तिको बड़ा धक्का पहुंचाया है पर यह रुकावट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्थायी है। इससे प्रवाह न तो बन्द होता है न उसकी दिशा परिवर्तित होती है।

असर्कारी अन्ताराष्ट्रिय समितियाँ और सम्मेलन

संगठनके सहायकोंमें पहिला स्थान असर्कारी अन्ताराष्ट्रिय समित्तियों और सम्मेलनोंका है। इस प्रकारकी कई समितियां हैं और कई सम्मेलन हो चुके हैं। इनसे सर्कारोंसे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है परन्तु सभी देशोंके विद्वान् तथा अन्य गण्यमान्य लोग इनमें सम्मिलित होते हैं। इसलिये इनका प्रभाव बहुत पड़ता है और लोगोंको यह अनुभव होता जाता है कि बहुत सी बातोंमें भिन्न भिन्न देशोंके निवासी अन्योन्याश्रित हैं।

ऐसी सभाएं अनेक प्रकारकी हैं। उदाहरणके लिये हम अन्ताराष्ट्रिय चिकित्सा समिति,* अन्ताराष्ट्रिय विधान समिति,† अन्ताराष्ट्रिय सार्वजनिक कला परिषद्,‡ अन्ताराष्ट्रिय पशुरक्षा समिति,§ इत्यादिका नाम ले सकते हैं। निम्न-लिखित तालिक से पता लगेगा कि इस प्रकारकी समितियोंकी कितनी बैठकें होती हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि बैठकें सदैव एक ही नगरमें नहीं होतीं।

---

* Internatiocal Association of Medicine (इण्टर नैशनल एसोसियेशन आफ मेडिसिन) † Institute of International Law (इन्स्टिट्युट आफ इण्टरनैशनल लॉ) ‡ International Institute of Public Art. (इण्टर नैशनल इंस्टिट्युट आफ पब्लिक आर्ट)

§ International Society for the Protection of Animals (इण्टनैशनल सोसाइटी फार दि प्रोटेक्शन आफ एनिमल्स)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्ष	बैठकोंकी संख्या
१८९७ से १९०६ तक	१०
१९०७ से १९१६ ,,	१८
१९१७ से १९२६ ,,	६४
१९२७ से १९३६ ,,	१३९
१९३७ से १९४६ ,,	२७२
१९४७ से १९५६ ,,	४७५
१९५७ से १९६६ ,,	९८५
१९६७ से १९७१ ,,	४५८

इस तालिकाके अङ्क स्वतः स्पष्ट हैं। ज्यों ज्यों हम वर्तमान समयके निकट आते जाते हैं त्यों त्यों बैठकोंकी संख्या बढ़ती जाती है। १९७१ में महायुद्ध छिड़ गया नहीं तो १९६७ से १९७६ तककी संख्या सम्भवतः १५००—१८०० के बीचमें होती। ऊपर जो नाम हमने उदाहरणार्थ दिये हैं उनसे यह विदित होता है कि कला, नीति, विधान, विज्ञान सभी विषयोंकी अन्ताराष्ट्रिय समितियां हैं। एक ओलिम्पिक गेम्स कमेटी है जो प्रतिवर्ष दौड़ना, कुश्ती, मुक्की आदि खेल कराती है और पुरस्कार देती है। एशियाटिक सोसायटी, रायल सोसायटी, मैथेमेटिकल सोसायटी, स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूट, नैशनल अकैडेमी आदि साहित्यिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक समितियां भिन्न भिन्न देशोंके विद्वानोंमें सौहार्द फैलती हैं। बड़े बड़े विश्वविद्यालय जिनमें दूर दूरसे आकर विद्यार्थी पढ़ते हैं यही काम कर रहे हैं। इस सम्बन्धमें आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज (ब्रिटेन), गटिंगेन (जर्मनी), हार्वर्ड, कलम्बिया और कैलिफोर्निया (अमेरिका) के नाम उल्लेख्य हैं। डा० जगदीश चन्द्र बोसका वैज्ञानिक अन्वेषणालय और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरका विश्वभारती विश्वविद्यालय भी इसी कोटिकी संस्थाएं हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकारकी संस्थाओंके ऊपर सर्कारी संस्थाओंका स्थान है। ऐसी संस्थाओंमें कुछ तो स्थायी और कुछ अस्थायी हैं। पहिले हम स्थायी संस्थाओंको लेते हैं। ऐसी संस्थाओंमें से कईने बहुत उपयोगी काम किया है। उदाहरणार्थ हम पोस्टल समिति§, कृषि परिषद्*, समुद्रान्वेषण कमेटी†, अन्ताराष्ट्रिय भूकम्प शास्त्र समिति‡ का नाम ले सकते हैं। इनमेंसे कुछका तो शासनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अन्ताराष्ट्रिय डाक पहुंचानेका प्रबन्ध पोस्टल समितिके सिपुर्द है। मिश्र और ब्रिटेन मिलकर सूदानपर शासन कर रहे हैं।

स्थायी सर्कारी अन्ताराष्ट्रिय संस्थाएं

इन समितियोंमेंसे अधिकांश समाचार पहुंचानेका काम करती हैं। राजोंमें मनमुटाव बहुधा इसलिये होता है कि एक दूसरेके आवश्यक समाचार नहीं ज्ञात होते। एक राज दूसरेसे सीधे पूछनेमें मानहानि समझता है और दूसरोंको कोई कुछ ठीक ठीक बताता नहीं। यदि वह जाननेका विशेष प्रयत्न करें तो बुरा माना जाता है। परन्तु अन्ताराष्ट्रिय समितियोंको इन रुकावटोंका सामना नहीं करना पड़ता। उनके संगठनमें सभी सदस्य राजोंका हाथ रहता है इसलिये वह आवश्यक बातोंका पता सुगमतासे लगाकर प्रकाशित कर देती हैं या सब राजोंके पास भेज देती हैं। भिन्न भिन्न राजोंमें किस किस मालपर क्या आयात निर्यात

§ Postal Union. (पोस्टल युनिअन)

* Institute of Agriculture (इन्स्टिट्यूट आफ एग्रिकल्चर)

† Committee for the Exploration of the Sea (कमिटी फार दि एक्सप्लोरेशन आफ दि सी)

‡ International Institute of Seismology. (इण्टर नैशनल इन्स्टिट्यूट आफ सिस्मॉलॉजी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर लगता है, कौन कौन से खनिज निकलते हैं, क्या क्या अन्न उपजता है, व्यापार और कल कारखानोंके सम्बन्धमें क्या क्या नियमोपनियम हैं, इसी प्रकारके समाचारोंका संग्रह होता है। कुछ समितियां दुष्ट रोगोंके उन्मूलनके लिये हैं। यह समितियां उन रोगोंके लिये उपयुक्त उपाय निर्धारित करती हैं जिनको सब सर्कारें अपने अपने यहां बर्तती हैं। गुलामीकी प्रथा उठानेकी प्रतिज्ञा अन्ताराष्ट्रिय है और सभी सभ्य राज इसमें योग देना अपना कर्तव्य समझते हैं।

अस्थायी संस्थाएँ भी बड़े कामकी होती हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए वाशिंगटनमें अन्ताराष्ट्रिय निःशस्त्रीकरण सभा हुई है।

अस्थायी सर्कारी अन्ताराष्ट्रिय संस्थाएं

विएना, पैरिस, लन्दनके अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन, जिनका इस पुस्तकमें कई बार उल्लेख हो चुका है, इसी प्रकारकी संस्थाएं थीं। युद्धोंके अन्तमें जो सन्धि परिषदें बैठा करती हैं वह भी बहुत ही उपयोगी काम करती हैं। पहिले ऐसे ही अवसरपर अन्ताराष्ट्रिय परिषदें बैठा करती थीं। पर धीरे धीरे लोगोंकी समझमें यह बात आने लगी कि यदि युद्धके पहिले ही सम्मेलन हुआ करें तो युद्ध करनेकी आवश्यकता ही न पड़े। जो बातें पहिले साधारण बातचीत या किसीके बीचबिचावसे तय हो सकती हैं उन्हींके पीछे लाखों मनुष्योंको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता है और करोड़ों रुपये मिट्टीमें मिल जाते हैं। जैसा कि १८७१ में पुर्तगालके बादशाहने अपनी पार्लमेण्टके उद्घाटनके समय कहा था, युद्धके बादकी परिषद्में बलवानोंके लाभोंका ही समर्थन होता है। ऐसा स्यात् ही कभी होता है कि सन्धिपरिषद् विजेताको दबा सके। जिसके कब्जेमें जो आ गया उसका हो गया। विजितके आँसू पोंछनेके लिये चाहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो किया जाय पर उसके द्वेष और क्रोधको शान्त करना कठिन है इसलिये युद्धको रोकनेके उद्देश्यसे ही सम्मेलन होना चाहिये।

यह विचार क्रमशः जड़ पकड़ता गया है। नीचेकी तालिकासे विदित होगा कि संवत् १८९७ से १९७० तक अर्थात् लगभग १०० वर्षमें कितनी सभाएं हुई हैं।

वर्ष	स्थान	विषय
१८९७	ट्रोपाउ	यूरोपकी शान्ति
१८९८	लेबैख्	,,
१८९९	वेरोना	,,
१९०३	पनामा	अमेरिकाकी शान्ति
१९०४	लन्दन	ग्रीसकी अवस्था
१९०७	,,	बेल्जियमकी अवस्था
१९२४	लीमा	अमेरिकाकी शान्ति
१९३२	विएना	क्रीमियन युद्ध
१९३५	पैरिस	डैन्यूब तटवर्ती छोटे राज
१९३७	,,	शामका प्रश्न
१९४१	लन्दन	श्लेस्विग होलसटाइनका प्रश्न
१९४४	,,	लक्सेम्बर्गका प्रश्न
१९४६	पैरिस	क्रीटका प्रश्न
१९४८	लन्दन	कृष्णसागरका प्रश्न
१९५३	कुस्तुन्तुनिया	बाल्कन प्रायद्वीपकी दशा
१९५५	बर्लिन	,,
१९५७	पेकिंग	चीनकी अवस्था
१९६३	अल्जेसिरस	मरक्कोका प्रश्न
१९७०	लन्दन	बाल्कन प्रायद्वीपकी दशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनमेंसे अधिकांश प्रश्न बड़े ही जटिल थे। उनका निर्णय बिना युद्धके कठिन प्रतीत होता था। यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि युद्ध द्वारा निर्णय हो ही जाता क्योंकि गत महासमरका कड़ुआ अनुभव तो यही बतलाता है कि एक युद्ध दूसरे युद्धके लिये अवसर खड़ा करता है। वर्सैल्स और सेवरकी सन्धियां न जाने कितने असन्तोष और तत्फलस्वरूप आर्थिक हानि तथा हिंसाके लिये उत्तरदायी हैं।

हमने ऊपर जान बूझ कर दो अन्ताराष्ट्रिय संस्थाओंका उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण उनका महत्त्व है। उनका पृथक् वर्णन करना ही ठीक है।

हेग सम्मेलन

इनमेंसे पहिली संस्था हेग सम्मेलन है। इसका इस पुस्तकमें बीसों बार उल्लेख हो चुका है। हम इसका संक्षिप्त इतिहास भी दे चुके हैं और उपयुक्त स्थलोंमें दिखला चुके हैं कि इसके द्वारा कैसे कैसे उपयोगी काम हुए हैं। युद्ध, शान्ति और ताटस्थ्य सम्बन्धी अन्ताराष्ट्रिय नियमोंपर सर्वत्र इसकी छाप है। इसको पूर्ण सफलता भले ही न हुई हो पर इसने जितना काम किया वही बहुत है। वस्तुतः राष्ट्रसंघ इसीकी सन्तति है।

अन्ताराष्ट्रिय श्रमजीवि–परिषद्

दूसरी संस्था अन्ताराष्ट्रिय श्रमजीवि–परिषद्* है। इसके अन्तर्गत यूरोपके सभी देशोंके श्रमजीवियोंकी समितियां हैं। जो इसके अन्तर्गत नहीं हैं वह किसी न किसी प्रकार इससे सम्बद्ध हैं। ऐसी तो कोई भी श्रमजीवि-समिति न होगी जिसपर इसका प्रभाव न पड़ता हो। यूरोपकी सर्कारोंसे इसका कोई सम्बन्ध न था पर इसका आतङ्क न्यूनाधिक सब मानते थे।

*International Labour Union (इण्टर नैशनल लेबर युनिअन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण यह था कि श्रमजीवियोंकी संख्या करोड़ों तक पहुंचती है और पार्लमेण्टरी देशोंमें उनमेंसे बहुतोंको मत देनेका अधिकार था। इस लिये वह वैध रूपसे सर्कारपर दबाव डाल सकते थे। फिर अवैध आन्दोलन भी उनके लिये कठिन न था। इतने मनुष्य हड़ताल ही कर बैठें तो सारे काम रुक जायं।

युद्धके पीछे एक नयी स्थिति उत्पन्न हुई। रूसमें श्रमजीवियों-के ही हाथमें शासनका सूत्र चला गया। यह लोग कार्ल मार्क्सके पक्के अनुयायी हैं। इनके समष्टिवाद* (बोल्शेविज्म) से यूरोपके अन्य राज, जिनमें धनिकोंका प्राधान्य है, थर्रा उठे। जर्मनीमें श्रमजीवियोंके एक दूसरे दल, सोशल डेमोक्रैट्स, का ज़ोर है। यह लोग बोल्शेवियोंकी उग्र नीतिका तो समर्थन नहीं करते परन्तु पूंजीपतियोंके लिये यह भी भयावह हैं। इस समय स्वयं ब्रिटेन ऐसे धनिक-प्रधान देशमें शासन श्रमजीवियोंके हाथमें है। यह लोग साम्यवादी हैं। इस प्रकार सभी देशोंमें श्रमजीवियोंका प्रभाव बढ़ता जाता है। रूसमें श्रमजीवी वर्गमें कृषक भी सम्मि-लित हैं। यह सच है कि इस समय श्रमजीवियोंमें कई दल हो गये हैं पर इससे श्रमजीवनकी अन्ताराष्ट्रियता नष्ट नहीं होती। सभी दल साम्यवादी हैं और सभी मार्क्सको अपना आचार्य मानते हैं। भेद इतना ही है कि कोई साम्यवादकी बड़ी उग्र व्याख्या करता है, कोई मृदु। आपसमें बहुत कुछ सहानुभूति है और यदि इसी प्रकार साम्यवादी विचारोंका प्रचार होता गया और धीरे धीरे शासनका सूत्र श्रमजीवियोंके हाथमें आता गया तो एक नए प्रकारकी सभ्यताका उदय होगा और अन्ताराष्ट्रिय संगठनको एक प्रबल और अद्यावधि कल्पनातीत सहारा मिल जायगा।

---

* Communism. (कम्युनिज़्म)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरा अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायत ।

हम इस विषयका भी पहिले उल्लेख कर चुके हैं। राजोंका साधारण व्यापार दूतोंके द्वारा होता है। यदि दूत अपना कर्तव्य पालन करें और करने पायें तो स्यात् कभी झगड़े न हों, पर ऐसा होता नहीं। अविश्वास और स्वार्थके कारण दूतोंके सामने सब बातें रक्खी नहीं जातीं, जो बातें उनके सामने आती हैं उनके सम्बन्धमें भी स्वानुकूल तर्क ही उपस्थित किये जाते हैं और दूत भी अपनी ही सर्कारके दृक्कोणसे देखते हैं। परिणाम यह होता है कि छोटीसे छोटी बातोंका पहाड़ बन जाता है, फिर युद्धके सिवाय निपटारेका कोई दूसरा साधन ही नहीं रह जाता। युद्धसे जो निर्णय होता है वह न्याय्य हो या न हो पर सम्प्रति उसे मानना ही पड़ता है।

युद्ध छिड़नेपर निष्पक्ष तटस्थ राजोंके लिये दो मार्ग हैं। या तो वह उसे होने दें और तमाशा देखें या बीचमें पड़कर बन्द करानेका प्रयत्न करें। बीचमें पड़ना दो प्रकारसे हो सकता है। पहिलेको सत्सेवा कहते हैं। सत्सेवाका अर्थ इतना ही है कि

सत्सेवा

वह तटस्थ दोनों राजोंसे कहे कि आप लोग एक बार विवादग्रस्त प्रश्नोंपर फिरसे विचार कीजिये। मैं स्थान आदिका प्रबन्ध किये देता हूं। सत्सेवा कभी कभी बहुत ही सफल होती है। ऐसा होता है कि दोनों पक्ष युद्धसे हटना चाहते हैं पर लज्जाके मारे कोई पहिले मुंह नहीं खोलता। ऐसे अवसरपर सत्सेवासे एक अच्छा बहाना मिल जाता है। बहुधा सन्तोषजनक निर्णय भी हो जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है क्योंकि जैसा कि हम बार बार कह चुके हैं कितने झगड़े तो केवल इसी कारण होते हैं कि एकको दूसरेकी हार्दिक इच्छाओं और हेतुओंका पता ही नहीं होता।

सत्सेवाके ऊपर मध्यस्थताका स्थान है। मध्यस्थ केवल दोनों पक्षोंका सामना कराके ही नहीं बैठ रहता वरन् निर्णयमें स्वयं भाग लेता है। वह जितना ही निष्पक्ष और प्रभावशाली होगा उतनी ही सफलता उसकी मध्यस्थताको होगी। मध्यस्थता भी दो अवस्थाओंमें होती है।

मध्यस्थता

या तो युद्धको रोकनेकी इच्छासे कोई तटस्थ स्वयं दोनों पक्षोंसे कहे कि मैं मध्यस्थ बनता हूं, आप लोग युद्ध स्थगित करके सब प्रश्नोंपर शान्ति-पूर्वक विचार कीजिये या दोनों युद्धकारी पक्षोंमेंसे ही एक पक्ष किसी तटस्थसे कहता है कि आप बीचमें पड़कर निर्णय करा दीजिये। यह निश्चय है कि सत्सेवा और मध्यस्थता दोनोंकी ही सफलता इस बातपर निर्भर है कि दोनों युद्धकारी पक्ष बात माननेके लिये तय्यार हों।

सत्सेवा और मध्यस्थता दोनों ही युद्ध छिड़नेपर होती हैं। इनका परिणाम किसी न किसी प्रकारकी सन्धिके रूपमें देख पड़ता है। परन्तु यह सबको ही विदित होता जाता है कि आग लगाकर बुझानेकी अपेक्षा आग न लगने देना अधिक श्रेयस्कर है। इसलिये आजकल इस बातकी ओर ध्यान गया है कि यथासम्भव विवादके स्थल दूर किये जायं। जैसा कि हमने पहिले भी कहा है विवादका एक कारण यह है कि दोनों पक्षों-को एक दूसरेका मत ज्ञात नहीं होता। दोनों ही अर्द्ध सत्यको पूर्ण सत्य मानकर उसके पीछे लड़ते हैं। इसलिये आजकल अनुसन्धान मण्डल* नियुक्त

अनुसन्धान मण्डल

* Commission of Enquiry (कमिशन आफ इन्क्वायरी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करनेकी प्रथा चल पड़ी है। यह प्रथा अत्यन्त उपयोगी है। जब दो राजोंमें किसी बातपर मतभेद हो जाता है तो दोनों अपनी अपनी ओरसे कुछ प्रतिनिधि नियुक्त कर देते हैं। इन प्रतिनिधियोंके ऊपर कभी कभी किसी तटस्थ देशसे प्रार्थना करके उसका एक प्रतिनिधि सभापति-स्वरूपेण रख दिया जाता है। इस मण्डलीको अनुसन्धान मण्डल कहते हैं। कभी कभी कोई राज अपने देशमें ही किसी उद्देश्य विशेषसे अनुसन्धान करनेके लिये कुछ लोगोंको नियुक्त करता है। उनके समूहको भी अनुसन्धान मण्डल ही कहते हैं। इसलिये, ताकि अर्थ समझनेमें भ्रम न हो, जिस मण्डलमें दो या अधिक राजोंके प्रतिनिधि होते हैं उसे बहुधा मिश्र अनुसन्धान मण्डल § भी कहते हैं। मण्डलका यह काम होता है कि वह विवादग्रस्त प्रश्नकी पूरी पूरी जांच करे। वह तत्सम्बन्धी सब कागजोंको देखता है, सब पक्षोंके साक्षियोंकी बातें सुनता है और यदि किसी स्थान-विशेषके विषयमें झगड़ा हो तो उसे भी जाकर देखता है। फिर वह अपनी रिपोर्ट अपने नियोजकोंके पास भेज देता है। चूंकि मण्डलमें उभयपक्षके प्रतिनिधि होते हैं, इसलिये उसपर पक्षपातका आरोप नहीं हो सकता। परिणाम यह होता है कि बहुधा मण्डलकी रिपोर्ट सभी मान लेते हैं और उसीको आधार मानकर उनके प्रतिनिधि बैठकर विवादग्रस्त प्रश्नका निर्णय कर डालते हैं। सच्ची वस्तुस्थितिपर निर्धारित होनेके कारण यह निर्णय प्रायशः नीतिसंगत होता है।

सत्सेवा और मध्यस्थतासे झगड़ेका अन्त हो सकता है पर यह दोनों पक्षोंकी इच्छापर निर्भर है। ऐसा भी हो सकता है

§ Mixed Commission of Enquiry. (मिक्स्ड कमिशन आफ इन्क्वायरी)

२९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि दोनों या एकको सत्सेवा या मध्यस्थता स्वीकार ही न हो या मध्यस्थता स्वीकार होनेपर भी मध्यस्थका निर्णय स्वीकार न हो। इसलिये बहुधा तटस्थ राज मध्यस्थ बनना पसन्द नहीं करते। यदि उनसे एक (या दोनों) पक्षकी ओरसे मध्यस्थ बननेका आग्रह किया जाता है तो वह कह देते हैं कि पहिले यह प्रतिज्ञा करो कि मैं जो निर्णय करूंगा उसे मान लोगे अर्थात् मुझे पञ्च मान लो। इस पञ्चायतकी प्रथासे भी बहुत लाभ हुआ है। कई बार राजोंने अपने विवादोंमें एक तीसरेको पञ्च मानकर उसके हाथमें निर्णय छोड़ दिया है। इसके लाभोंको देखकर बहुत से राजोंने आपसमें ऐसी सन्धियां कर ली हैं कि हम अपने अमुक अमुक प्रकारके झगड़े पञ्चायत द्वारा ही निपटायेंगे। इसे अनिवार्य्य पञ्चायत कहते हैं। नीचेकी तालिकाएं इस बातका प्रमाण हैं कि वर्तमान समयमें पञ्चायतकी प्रथा कितनी लोकप्रिय होती जाती है।

पञ्चायत

तालिका (क)

वर्ष	अनिवार्य्य पञ्चायतकी सन्धियां
१९०२—१९११	१
१९१२—१९२१	२
१९२२—१९३१	११
१९३२—१९४१	९
१२४२—१९५१	१०
१९५२—१९५६	२५
१२५७—१९६३	६५
१९६४—१९७१	१००

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तालिका (ख)

वर्ष	कितने प्रश्नोंका निर्णय पञ्चायत द्वारा हुआ
१८९८—१९१७	१९
१९१८—१९३७	४४
१९३८—१९५७	८९
१९५८—१९७१	२००

ज्यों ज्यों हम वर्तमान कालके निकट आते जाते हैं त्यों त्यों पञ्चायतकी प्रतिष्ठा और उसपर लोगोंका विश्वास बढ़ता जाता है। बड़े राजोंमेंसे गत १२५ वर्षोंमें ब्रिटेनने लगभग ७०, अमेरिकाने ५६ और फ्रांसने २६ प्रश्नोंका निर्णय पञ्चायत द्वारा कराया है।

पञ्चायतोंके सामने दो प्रकारके प्रश्न आ सकते हैं। एक तो वह प्रश्न जिनमें दो राज वादी प्रतिवादी हैं, दूसरे वह जिनमें वादी किसी राजकी प्रजा है और प्रतिवादी दूसरा राज है। अधिकांश अभियोग इस दूसरे ही वर्गके होते हैं परन्तु लोगोंका ध्यान बहुधा पहिले प्रकारके अभियोगोंकी ओर अधिक जाता है। समाचारपत्रोंमें उन्हींकी अधिक चर्चा होती है। पञ्चायत एक प्रकारका न्यायालय है अतः उसमें न्यूनाधिक न्यायालयोंकी ही प्रक्रिया बर्ती जाती है। फलतः ऐसे ही प्रश्नोंपर विचार होता है जिनके सम्बन्धमें स्पष्ट विधान या नियम मिलते हों। अधिकांश काम तो सन्धियों और समय-पत्रोंके ठीक ठीक अर्थ लगानेका होता है।

दो प्रश्न पञ्चायतके सामने कभी नहीं रक्खे जाते, एक तो राष्ट्रीय गौरव और दूसरे राष्ट्रीय स्वाधीनता सम्बन्धी। इस अपवादका कारण स्पष्ट है। कोई आत्माभिमानी राज यह नहीं स्वीकार करता कि मैंने कोई नीच या अप्रतिष्ठाजनक काम किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकारका सन्देह भी होना गौरवमें बट्टा लग जानेके बराबर है इसलिये कोई राष्ट्र इस बाततकको स्वीकार नहीं करता कि मेरे गौरवके विषयमें कोई सन्देह है या इस बातकी सम्भावना है कि कोई मेरे किसी कामको गौरव-विरुद्ध या नीच समझे। इसी प्रकार कोई राज अपने स्वातन्त्र्यको किसी पञ्चायतके हाथमें नहीं सौंप सकता। स्वातन्त्र्यकी रक्षा प्राणपणसे की जाती है। उसके ऊपर सब कुछ न्योछावर कर दिया जाता है। किसी सर्कारको यह अधिकार नहीं है कि राष्ट्रके स्वातन्त्र्यको दावपर लगा दे।

पञ्चायतमें जो निर्णय होता है वह अन्तिम होता है। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि उभय पक्ष पहिलेहीसे प्रतिज्ञा कर देते हैं कि हम पञ्चकी बात मान लेंगे, दूसरे कोई बड़ा न्यायालय भी नहीं होता जिसके सामने अपील की जाय।

एक और प्रकारकी पञ्चायत होती है जिसे अनिवार्य पञ्चायतका एक रूप कह सकते हैं। इससे भी कुछ विवादोंका निर्णय होता है यद्यपि आजकल इसका विशेष अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व नहीं है। यदि दोनों पक्षोंका एक अधिपति हो तो वह उनके झगड़ोंमें मध्यस्थ या पञ्च होगा। यूरोपमें आजसे तीन चार सौ वर्ष पहिले पोप ऐसा किया करते थे। आज भारतमें ब्रिटिश सर्कार देशी राजोंके प्रति ऐसा ही करती है। या तो वह दो विवदमान राजोंके प्रतिनिधियोंको एकत्र करके उनको निर्णय करनेका अवसर देती है या स्वयं निर्णय कर देती है। दोनों पक्षोंको उसकी बात माननी ही पड़ती है।

इस प्रकारकी पञ्चायतमें कई दोष थे। एक तो यह कि पञ्चोंके चुनने और न्यायालयकी प्रक्रिया निश्चित करनेमें बहुत समय लगता था। इसी उद्देश्यसे, अर्थात् पञ्चायतका समुचित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्ध करनेके लिये, हेगका अन्तारात्ष्ट्रिय न्यायालय खुला। इसका संक्षिप्त विवरण दूसरे खण्डके छठें अध्यायमें दिया है। उसी अध्यायमें राष्ट्र-संघ द्वारा नियुक्त अन्तारात्ष्ट्रिय न्यायालयका भी उल्लेख है। यदि स्वार्थी चतुर्महत्तने विरोध न किया होता तो यह न्यायालय वस्तुतः अन्तारात्ष्ट्रिय शांतिका एक बहुत बड़ा साधन हो जाता पर ऐसा न होने पाया। इनके स्वार्थने उसे पंगु बना दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा अध्याय।

राष्ट्रसंघ और मानवसमाजका भविष्य।

राष्ट्रसंघका कुछ वर्णन प्रथम खण्डके द्वितीय अध्यायमें आचुका है। उसे यहां दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है। इस अध्यायमें हमको केवल दो एक सैद्धान्तिक प्रश्नोंपर विचार करना है।

किसी न किसी प्रकारके संघका विचार बहुत पुराना है। राजनीतिके आचार्यों, धर्माध्यक्षों, महत्त्वाकांक्षी नरेशों सभीने इसके स्वप्न देखे हैं। कोई इसे धर्मप्रचार, कोई प्रभाववृद्धि, कोई न्यायका साधन समझता था। संघ-स्थापनके कई प्रकार सोचे गये पर कोई कार्य्यान्वित न हो सका। एक तो किसीको किसी दूसरेका विश्वास न था, इसलिये दूसरेकी सोची हुई अच्छीसे अच्छी बातमें स्वार्थकी दुर्गन्ध आती थी, दूसरे सहयोगका अनुभव न था, तीसरे हितसाम्य बहुत कम था। अब धीरे धीरे यह अवस्था सुधरी है। सहयोग बढ़ गया है, हितसाम्यकी मात्रा बहुत अधिक है पर अभी अविश्वास और स्वार्थमें विशेष कमी नहीं हुई है। वस्तुतः स्वार्थ ही अविश्वासकी जड़ है। एक एक राज विस्तृत साम्राज्योंपर शासन करना चाहता है। पर अब धीरे धीरे यह बात भी जा रही है। राष्ट्रीय राजोंका उदय हो रहा है। बड़े बड़े साम्राज्य टूट रहे हैं और उनके टुकड़े स्वतंत्र राज होते जा रहे हैं। सम्भवतः भविष्यत्में न साम्राज्य रह जायंगे, न उनकी सम्भावना रह जायगी, अतः स्वार्थकी सामग्री कम हो जायगी। ऐसी दशामें राष्ट्रोंका मिलकर काम करना और भी सुकर हो जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर इस स्थलपर एक अड़चन पड़ती है। कुछ लोग एक कानूनी शंका उठाते हैं। उनका कहना यह है कि राजनीतिशास्त्रके अनुसार प्रत्येक स्वतन्त्र राज प्रभु है परन्तु किसी प्रकारके राष्ट्रसंघमें सम्मिलित होनेसे यह प्रभुत्व खण्डित हो जायगा अतः उसका स्वातन्त्र्य ही खण्डित हो जायगा। इन लोगोंके अनुसार राष्ट्रसंघकी सदस्यताका अर्थ अपनेको बांध देना है। जो राज यह मान लेता है कि हम अमुक अमुक परिस्थितिमें संघ, अर्थात् न्यूनाधिक अन्य राजों, के आदेशोंका पालन करेंगे वह अपनी स्वाधीनतासे हाथ धो बैठता है।

यह आक्षेप विचार करने योग्य है। सौभाग्यकी बात यह है कि इनका उत्तर दिया जा सकता है। यदि राष्ट्रसंघमें सम्मिलित होना अपनेको पराधीन बनाना है तो किसी राजसे किसी भी प्रकारकी संधि करना पराधीन बनाना है। पर लोग ऐसा नहीं मानते। बात यह है कि यदि कोई सन्धि डण्डेके जोरसे लिखवायी जाय तो उसपर हस्ताक्षर करना पराधीनताका चिन्ह है पर जो सन्धि अपनी इच्छासे लिखी जाय उसमें यह दोष नहीं आता। इसी प्रकार यदि कोई राज अपनी इच्छासे राष्ट्रसंघमें सम्मिलित होता है तो उसकी स्वाधीनतापर हर्फ़ नहीं आता। उसका संघमें सम्मिलित होना और संघकी शर्तोंको स्वीकार करना उसके प्रभुत्वका ही लक्षण है। इसका एक प्रमाण यह है कि जो राज प्रभु नहीं हैं वह साधारणतः संघके सदस्य नहीं हो सकते। अभी तो अनिवार्य पञ्चायतका नियम है ही नहीं पर यदि यह नियम बन जाय कि सब राजोंको अपने सभी झगड़ोंका निपटारा अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयमें कराना ही होगा तब भी बुरा न होगा क्योंकि यह नियम सदस्योंका ही बनाया होगा अतः इसके बननेसे उनके स्वातन्त्र्यका ह्रास न होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहांपर एक आक्षेप यह किया जाता है कि सद्योजात राजोंके साथ और ऐसे राजोंके साथ जो सदस्य नहीं हैं अन्ताराष्ट्रिय नियम न बर्त्ते जाने चाहिये। इसका उत्तर यह है कि यदि वह राज अन्य राजोंके साथ किसी प्रकारका सम्पर्क न रक्खे, उनसे सर्वथा पृथक् रहे तो दूसरी बात है अन्यथा उसे भी अन्ताराष्ट्रिय संगठनके भीतर आना चाहिये। कमसे कम अन्य राजोंका उसके साथ अन्ताराष्ट्रिय नियमोंके अनुसार व्यवहार करना सर्वथा उचित होगा। यह नहीं हो सकता कि कोई राज अन्य राजोंके साथ व्यवहार करे और उस व्यवहारसे लाभ उठाये पर उन नियमोंसे अपनेको उन्मुक्त समझे जिनसे उन्होंने अपनेको बांध रक्खा है। राजसमाजमें सम्मिलित होना प्रभुत्वका अंश है पर एक बार सम्मिलित होकर आंशिक सदस्यता नहीं हो सकती।

पूर्वपक्षी समुदायका एक आक्षेप और है। वह कहते हैं कि साधारणतः सन्धियोंमें कोई अवधि दी रहती है या यह लिखा रहता है कि यदि एक पक्ष परिस्थितिके परिवर्तनके कारण सन्धिसे असन्तुष्ट हो जाय तो वह दूसरेको पर्य्याप्त सूचना देकर अलग हो सकता है पर राष्ट्रसंघमें कोई इस प्रकारका नियम नहीं है अतः इसमें वस्तुतः सदाके लिये अपना अपना हाथ कट जाता है। यह तर्क भी बहुत गम्भीर नहीं है। यदि परिस्थितिमें परिवर्तन हो तो सदस्योंको आंदोलन करके समयानुकूल नियम बनवाने चाहिये। यदि कोई बाहरी बलात् हमसे किसी नियमका पालन कराये तो उसका विरोध येनकेन प्रकारेण किया जा सकता है पर जिस संस्थाके हम स्वयं सदस्य हैं उसको छोड़ देना उचित नहीं है। उसमें रहकर ही सुधार करना श्रेयस्कर है। विदेशी शासकके विरुद्ध हिंसात्मक अथवा अहिंसात्मक असहयोग ठीक है पर स्वदेशी शासनसे यथासम्भव वैध आंदोलन ही करना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्तु, राष्ट्रसंघके विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किये जाते हैं वह लचर हैं, इसमें सन्देह नहीं। इस बातका उत्तरोत्तर विश्वास ही इस बातका कारण है कि धीरे धीरे संघके पक्षपातियोंकी संख्या बढ़ती गयी है। यदि बड़े राज, जो एक प्रकारसे संघके अभिभावक हैं, निःस्वार्थ बुद्धिसे काम कर सकते और सचमुच स्थायी जगच्छान्तिके प्रेमी होते तो संघको अत्यन्त सफलता होती, वस्तुतः निःस्वार्थतासे ही उनके सच्चे हितोंकी भी पूरी पूरी रक्षा होती। पर अपरिष्कृत बुद्धिने अन्धा कर रक्खा है। राजनीतिकी कौन कहे, नैतिक बातोंमें भी क्षुद्र स्वार्थसे काम लिया जाता है। इसका एकही उदाहरण पर्य्याप्त है। राष्ट्रसंघने अफीमका व्यापार रोकनेके उद्देश्यसे एक उप-परिषद्की बैठक करायी। उसमें यह निश्चय हुआ कि सिवाय औषध-सम्बन्धी कामोंके लोगोंके अन्य कामोंके लिये अफीम न मिला करे। यह बात सभी राजोंको पसन्द थी पर ब्रिटिश सर्कार तो स्वयं अफीम बेचती है, चीनको एक बार लड़ कर अफीम मोल लेनेके लिये विवश कर चुकी है। जिसमें दूसरोंका शारीरिक और नैतिक पतन है उसीमें उसका लाभ है। इस लिये उसे यह नियम भला न लगा। उसने 'औषध-सम्बन्धी'* के स्थानमें 'उचित' † शब्द रखवाया। जिसको अफीम खानेका अभ्यास है उसके लिये अफीमका प्रयोग उचित ही है, चाहे इस सेवनका परिणाम विष-सेवनके ही तुल्य क्यों न हो अतः इस शब्दके भीतर अफीम खानेवालों और बेचनेवालों अर्थात् ब्रिटिश सर्कार दोनोंके लिये पर्य्याप्त अवकाश है। इसी प्रकारके धूर्ततामय काम संघकी प्रतिष्ठा गिराते हैं पर यदि छोटे राजोंका प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता गया और बड़े बड़े साम्राज्योंका विध्वंस होकर राष्ट्रीय राज बनते गये तो सम्भवतः यह दोष आपही दूर हो जायंगे।

---

* Medical (मेडिकल) †Legitimate (लेजिटिमेट)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु यदि पृथ्वीपर सुख-शान्तिको चिरस्थायी होना है तो इतनेसे ही काम न चलेगा। जैसा कि हमने प्रथम खण्डके तृतीय अध्यायमें दिखलाया है, संघोंकी दो ही गति होती है। या तो संघ धीरे धीरे टूट जाता है और उसके अंग तितर बितर हो जाते हैं या उसका बल बढ़ता जाता है और वह क्रमशः संयुक्त राज अमेरिकाकी भाँति एक लिङ्गशेष राजका स्वरूप धारण कर लेता है। पृथ्वीका कल्याण इसीमें है कि राष्ट्रसंघ धीरे धीरे एक बृहत् लिङ्गशेष राज बन जाय। राष्ट्रीय सर्कारें अपने अपने देशोंका शासन करें परन्तु अन्ताराष्ट्रिय सर्कारके अधीन रह कर। भिन्न भिन्न राष्ट्रीय सेनाओंके स्थानमें एक अन्ताराष्ट्रिय सेना या पुलिस हो। पृथ्वीकी खनिज और क्षेत्रज सम्पत्तिसे मनुष्यमात्रकी आवश्यकताओंकी पूर्ति की जाय।

हम नहीं कह सकते कि ऐसा कभी होगा या नहीं पर जिस दिन ऐसा होगा उसी दिन मनुष्य सचमुच मनुष्य होगा। उसी दिन वह जाति, देश, सम्प्रदाय आदिके कृत्रिम बन्धनोंका अतिक्रमण करके

ईशावास्यमिद्ं ँ सर्वम्, यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मागृधः कस्यस्विद्धनम्॥

की श्रुतिके अनुसार पूर्णरूपेण चलेगा उसी दिन मनुष्य समष्टि-रूपसे अपवर्गका अधिकारी होगा, उसी दिन वसुन्धरा अपना नाम सार्थक करके स्वर्गादि दिव्य लोकोंके लिये आदर्श बनेगी। ईश्वर वह दिन शीघ्र लाये!

इति शम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट*—१

[अवतरणोंके सामनेका प्रथम अङ्क अधिकरण, द्वितीय प्रकरणका तथा तृतीय वाक्यका सूचक है—अवतरणोंका पारस्परिक सम्बन्ध दिखलानेके लिये बीच बीचमें ग्रंथकारद्वारा जो नोट दिये गये हैं उनके साथ कोष्टमें ग्रं: लिख दिया है।]

राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः (८।१२८।१)

प्रकृति शब्दका संक्षिप्त अर्थ राजा तथा राज्य है। [हमारी परिभाषाके अनुसार राज्यके स्थानमें राज कहना अधिक संगत होगा–ग्रं:]

राजात्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः (६।९७।१६)

तस्मान्मित्रमरिमित्रं मित्रमित्रमरिमित्रमित्रम् चानन्तर्येण भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात्। पश्चात्पार्ष्णिग्राह आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति। भूम्यनन्तरः प्रकृत्यमित्रः तुल्याभिजनः सहजः। विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः। भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रं मातापितृसंबद्धं सहजम्। धनजीवितहेतोराश्रितं कृत्रिममिति। अरिविजिगीष्वोर्भूम्यनन्तरः संहतासंहतयोरनुग्रहसमर्थो निग्रहे चासंहतयोर्मध्यमः। अरिविजिगीषुमध्यानां बहिः प्रकृतिभ्यो बलवत्तरः संहतासंहतानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे चासंहतानामुदासीनः। (६।९७।२३–३०)

---

* पृष्ठ ४६४ का फुटनोट देखिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विजिगीषु (जीतनेकी इच्छावाला) राजा वही है जो कि गुणी, शक्तिसम्पन्न तथा प्रभुत्वशक्तिसंयुक्त हो। विजिगीषुके सामने मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र तथा अरि-मित्र-मित्र प्रायः होते हैं। उसके पीछे पार्ष्णिग्राह (पीठ-परका दुश्मन). आक्रन्द (पीठपरका दोस्त), पार्ष्णि-ग्राहासार (पार्ष्णिग्राहका मित्र) तथा आक्रन्दासार (आक्रन्दका मित्र) होते हैं। उसके राजसे सटे, समान कुल वाले तथा स्वभावसे ही शत्रुको सहज और जो विरुद्ध हो या दूसरोंको भड़काता हो उसे कृत्रिम कहते हैं। इसी प्रकार सीमासे जुड़े, रिश्तेदार तथा स्वभावसे ही मित्रको सहज तथा जो जीवन धनके हेतु मित्र बन गया हो उसे कृत्रिम समझना चाहिये। शान्ति तथा युद्धमें, निग्रह और अनुग्रहमें समर्थ अरि तथ. विजिगीषुके मध्यमें स्थित राजाको मध्यम और जो शक्तिशाली, अनुग्रहमें समर्थ दूर राष्ट्रका राजा हो उसे उदासीन कहते हैं।

[यह नियम महत्त्वाकांक्षी राजोंके लिये है। जो राज अपना साम्राज्य फैलाना चाहता हो उसे विजिगीषु कहते हैं। वह जिसपर विजय प्राप्त करना चाहता हो वह अरि है। उस विजिगीषुके सभी अन्य राज सहायक तो होंगे नहीं, कुछ मित्र होंगे, कुछ सहायक होंगे, कुछ तटस्थ होंगे। अतः उसे अपने चारों ओर १२ राजोंका एक मण्डल बनाना चाहिये। इस मण्डलमें यदि शत्रुओंकी संख्या कम की जा सके तो ठीक ही है नहीं तो कमसे कम शक्तिसाम्य तो रहेगा ही। मण्डलका संगठन इस चित्रसे समझमें आ जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

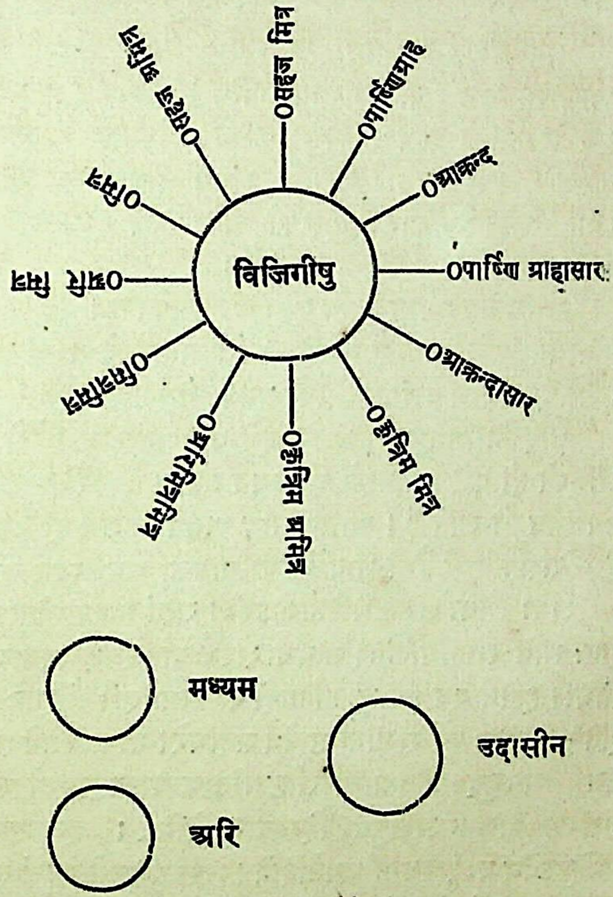

इसी प्रकारके मण्डल अरि आदिके भी होंगे—ग्रं:].

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः। संधिविग्रहासनयान-संश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्य्याः (७।९८-९९।१-२)

प्रकृतिमण्डलपर ही षाड्गुण्य निर्भर है। पुराने आचार्य्य संधि (शर्तोंके साथ शान्ति), विग्रह (हानिकारक उपायोंको प्रत्यक्ष रूपसे करना), आसन (उपेक्षा करना), यान (चढ़ाई करना), संश्रय (दूसरेका सहारा लेना) और द्वैधीभाव (दुतरफी चाल) को ही षाड्गुण्य (६ प्रकारकी राजनीति) मानते हैं।

सन्धिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ सन्धिमुपेयात्। विग्रहे हि क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवाया भवन्ति। तेनासनयानयोरासनं व्याख्यातम्। द्वैधीभावसंश्रययोर्द्वैधीभावं गच्छेत्॥ (७।१००।१-४)

यदि विजिगीषु सन्धि विग्रहमें एक सदृश लाभ देखे तो संधिको ही करे। विग्रहमें क्षय व्यय प्रवास तथा विघ्न आदि उपस्थित हो जाते हैं। आसन तथा यानमें आसन ही उत्तम है। संशय तथा द्वैधी-भावमें द्वैधी-भावका अवलम्बन करे।

शमः संधिः समाधिरित्येकोऽर्थः। राज्ञां विश्वासोपगमः शमः संधिः समाधिरिति। सत्यं वा शपथो वा परत्रेह च स्थावरः संधिः। इहार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः। संहिताः स्म इति सत्यसंधाः पूर्वे राजानः सत्येन संदधिरे। तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिस्कन्धाश्वपृष्ठरथोपस्थशस्त्ररत्न बीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे। हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैनं यः शपथमतिक्रामेदिति। शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यबन्धः प्रतिभूः। बन्धुमुख्यप्रग्रहः प्रतिग्रहः (७।१२२-१२३।१-२;६-११;१४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शम, सन्धि तथा समाधि एक दूसरेके पर्य्याय हैं। नरेशोंके विश्वासकी स्थिरता इसीपर निर्भर है। सत्य या शपथपर आश्रित संधि दोनों लोकोंके लिये स्थिर होती है। प्रतिभू तथा प्रतिग्रहपर आश्रित संधि तो इसी लोकके लिये स्थिर होती है और उसकी स्थिरता बलपर निर्भर है। पुराने ज़मानेके राजा 'हमारी संधि है' यह कहकर सत्यपर दृढ़ रहते थे। इसके बाद आग, पानी, खेत, मकान, धातु, हाथीका कंधा, अश्वपृष्ठ, रथकी गद्दी, शस्त्र, रत्न, धान्य, गंध, रस, सोना आदि हाथमें लेकर या छूकर शपथ करने लगे कि जो शपथका उल्लंघन करे उसको अमुक वस्तुएं नष्ट कर दें तथा सदाके लिये छोड़ दें। शपथके उल्लंघन करने पर जिसमें बड़े बड़े तपस्वियों तथा मुखियोंको बीचमें रक्खा जाय उसे प्रतिभू सन्धि कहते हैं। बन्धुओं तथा मुखियोंको जिसमें ज़मानतकी भांति रक्खा जाय (अर्थात् एक पक्षके बन्धु या मुखिया दूसरेके यहां जमानतकी भांति रख दिये जायं) उसे प्रतिग्रह सन्धि कहते हैं।

परदुर्गमवस्कन्द्य स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभिपन्नमुक्तकेशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुध्यमानेभ्यश्च दद्यः

(१३।१७४-१७५।६८)

शत्रुके किलेको जीतकर विजिगीषु उन सैनिकोंको अभयदान दे जो कि युद्धक्षेत्रमें पड़े हों, जो उसके पक्षमें हो गये हों, जिनके बाल बिखरे हुए हों, हथियार इधर उधर पड़े हों, जो डरसे विरूप हो गये हों या जो न लड़े हों।

३०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवमवाप्य लाभं परदोषान्स्वगुणैश्छादयेत्। गुणान्गुण-द्वैगुण्येनस्वधर्म्मकर्म्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृति-प्रियहितान्यनुवर्तेत । यथा सम्भाषितं च कृत्यपक्षमुपग्रा-हयेत् । तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत्। देश-दैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत। (१३।१७६। ५-७,१०-११)

नवीन प्रदेशको जीतते ही शत्रुके दोषोंको अपने गुणोंसे ढँक दे। यदि शत्रु गुणी हो तो उससे दुगुने गुणोंको दिखावे। प्रजा तथा प्रकृतिका हित धर्म्म, कर्म्म, अनुग्रह, परिहार, दान तथा मान सम्बन्धी कामोंसे करे । कृत्यपक्ष (शत्रुसे विरुद्ध होकर जिन्होंने साथ दिया हो उन) को जो वचन दिया हो उसको पूरा करे। विजित देशके समान कपड़ा पहिने, व्यवहार करे, वैसा ही आचरण रक्खे। वहांके दैवत (मंदिर), समाज, उत्सव विहार सम्बन्धी कामोंमें श्रद्धा प्रकट करे।

प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः । शत्रोरपि न पतनीया वृत्तिः (चाणक्य सूत्राणि १६५ तथा ४५०)

प्राण चले जायं पर विश्वासघात न करे। शत्रुसे भी दुर्व्यवहार न करे।*

---

* जैसा कि प्रथम खण्डके दूसरे अध्यायमें संकेत किया गया है इस परिशिष्टमें सब अवतरण कौटिलीय अर्थशास्त्रसे लिये गये हैं। मूलके लिए पञ्जाब संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित तथा डाः जॉली द्वारा सम्पादित संस्करण और अनुवादके लिये उसी बुकडिपो द्वारा प्रकाशित श्री प्राणनाथ विद्यालंकारके अनुवादसे काम लिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट—२

अन्ताराष्ट्रिय समाजके सदस्योंकी नामावली।

[इस तालिकामें कनाडा आदि वह ब्रिटिश उपनिवेश भी सम्मिलित हैं जिन्हें स्वायत्त शासनका अधिकार प्राप्त है और जो राष्ट्रसंघके सदस्य हैं। सदस्य तो भारत भी है पर उसकी जो दशा है वह भारतवासियोंसे छिपी नहीं है इसीलिए उसके नामके सामने प्रश्नका चिह्न कर दिया गया है।]

एशिया महाद्वीप

भारत (?)	स्याम	अफ़्गानिस्तान	तुर्की
नैपाल	चीन	हजाज़	
फ़ारस	जापान	इराक़	

यूरोप महाद्वीप

आल्बेनिया	जर्मनी	लिथुएनिया	स्वीडन
आस्ट्रिया	ब्रिटेन	हालैण्ड	पोलैण्ड
बेल्जियम	यूनान	पुर्तगाल	रूस
बल्गेरिया	हंगरी	रुमानिया	
जेको-स्लोवेकिया	इटली	स्पेन	
एस्थोनिया	स्वतंत्रआयरिशराज	स्वीज़रलैण्ड	
फ़िनलैण्ड	यूगोस्लेविया	डेन्मार्क	
फ्रांस	लैट्विया	नार्वे	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अफ्रीका महाद्वीप

मिश्र	हब्श (अबिसीनिया)	लाइबीरिया	दक्षिण अफ्रिका

अमेरिका महाद्वीप

आर्जेण्टिना	डोमिनिकन प्रजातंत्र	सैल्वाडोर
बोलिविया	ग्वाटिमाला	संयुक्त राज
ब्रेज़ील	हायटि	युरुग्वे
कनाडा	हॉण्डुरास	वेनेज्वीला
चिली	मेक्सिको	
कॉलम्बिया	निकाराग्युआ	
कॉस्टारिका	पनामा	
क्यूबा	पैराग्वे	
ईक्वेडोर	पेरू	

ओशिआनिया महाद्वीप

आस्ट्रेलिआ	न्यूज़ीलैण्ड

इनके अतिरिक्त यूरोपमें पोप और पाँच छोटे अशप्रभु राज अर्थात् ऐण्डॉरा, लीखेंस्टाइन, लक्सेम्बर्ग, मोनाको और सैन मैरीनो एक प्रकारसे अर्द्ध-सदस्य हैं। यही दशा कुछ कुछ एशियामें जार्जिआ और आर्मिनिआ तथा अफ्रीकामें मरक्कोकी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट—३

प्राचीन कालमें सन्धियोंके प्रकार

कामन्दकीय नीतिसारमें १६ प्रकारकी सन्धियोंका वर्णन है। नीचे हमने उनका जो तात्पर्य्य लिखा है वह श्री शङ्कराचार्य्यकी जयमङ्गलाटीकाके अनुसार है यद्यपि टीका भी कहीं कहीं स्पष्ट नहीं है। मूलके लिये त्रिवान्द्रम संस्कृत सीरीजकी श्री गणपति शास्त्री सम्पादित प्रतिसे काम लिया गया है।

कपाल उपहारश्च, सन्तानः सङ्गतस्तथा।
उपन्यासः प्रतीकारः, संयोगः पुरुषान्तरः॥
अदृष्टनर आदिष्ट, आत्मामिष उपग्रहः।
परिक्रमस्तथोच्छिन्नस्तथा च परदूषणः॥
स्कन्धापनेयः सन्धिश्च, षोडशः परिकीर्तितः।
इति षोडशकं प्राहुः, सन्धि सन्धि-विचक्षणाः॥

(कामन्दकीय नीतिसार, नवमः सर्गः, सन्धिविकल्प प्रकरणम्, श्लोक २–४–५ से २० तक के श्लोकोंमें इनकी व्याख्या की गयी है)

(१) कपाल सन्धि—जिसमें लड़ाईके पीछे ऊपरसे मेल हो जाय पर उभयपक्षमेंसे किसीकी भी विजय-पराजय न हो। युद्धके पूर्वकीसी अवस्था रह जाय। जिस प्रकार मिट्टीके घड़ेके चिटख जानेपर उसके दोनों टुकड़े (कपाल) इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि देखनेमें घड़ा पूववत् प्रतीत होता है पर जो रेखा पड़ गयी वह मिट नहीं सकती, उसी प्रकार यह सन्धि होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) उपहार सन्धि—जिसमें शत्रुको द्रव्य (क्षति-पूर्ति) देकर मेल किया जाय।

(३) सन्तान सन्धि—जिसमें शत्रुको लड़की देकर मेल किया जाय।

(४) सङ्गत सन्धि—जिसमें दोनों पक्ष मैत्रीसे प्रेरित होकर मिलते हैं। यह सन्धि 'यावदायुः प्रमाणं' (जन्म-भरके लिये) या सदा के लिये की जाती है। इसको सुवर्ण या काञ्चन सन्धि भी कहते हैं।

(५) उपन्यास सन्धि—जो सन्धि किसी विशेष उद्देश्यके लिये, जैसे किसी समान शत्रुके विरुद्ध, की जाती है।

(६) प्रतीकार सन्धि—मैं इसके साथ इस समय उपकार करूँ, आगे चल कर कभी यह मेरे साथ भी उपकार करेगा अथवा इसने पहिले मेरे साथ उपकार किया है अतः इस समय मुझे इसके साथ भी उपकार करना ही चाहिए, इन भावोंसे प्रेरित होकर जो सन्धि की जाय।

(७) संयोग सन्धि—इसका लक्षण मूल पुस्तकमें इस प्रकार दिया है।

एकार्थां सम्यगुद्दिश्य, यात्रां यत्र हि गच्छतः।
स संहतप्रयाणस्तु, संयोग इति कथ्यते।

इस लक्षणमें और

भव्यामेकार्थसिद्धिं तु, समुद्दिश्यक्रियेत यः।
स उपन्यासकुशलैरुपन्यास उदाहृतः॥

उपन्यास सन्धिका जो यह लक्षण बतलाया गया है उसमें बहुत कम भेद प्रतीत होता है। टीकाकारोंने 'गच्छतः' का अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अरि विजिगीषू', किया है। तात्पर्य्य स्यात् यह हुआ कि दोनों शत्रु यदि लड़ाई स्थगित करके किसी उद्देश्य विशेष की सिद्धिके लिये मिल जायं तो उनकी सन्धि संयोग सन्धि कहलायगी। जो अन्य दो राष्ट्रोंमें इस प्रकारकी सन्धि होगी वह उपन्यास सन्धि कहलायगी।

(८) पुरुषान्तर सन्धि—जिसमें किसीसे इस शर्तपर सन्धि की जाय कि तुम अपने प्रधान सैनिकोंको मेरी सेनाके साथ काम करनेके लिये भेज दो ताकि दोनों सेनाएं मिलकर मेरा अमुक कार्य्य सम्पादित करें।

(९) अदृष्टपुरुष सन्धि—जिसमें यह शर्त हो कि तुम अकेली अपनी सेनासे मेरा अमुक काम करा दो।

(१०) आदिष्ट सन्धि जिसमें वलवान् शत्रुको अपने राज्यका एक भाग दिया जाय।

(११) आत्मामिष सन्धि इसका लक्षण मूलमें इस प्रकार बतलाया है।

स्वसैन्येन तु सन्धानमात्मामिष इति स्मृत।

इसका अर्थ जयमंगला टीकामें यह किया है कि ('स्वसैन्येन सह स्वयं शत्रुसमीपमुपगम्य') अपनी सेनाके साथ शत्रुके पास 'या उसकी शरणमें' जाकर जो सन्धि की जाय वह आत्मामिष सन्धि होती है। यही अर्थ उपाध्यायनिरपेक्षसारिणी टीकामें भी दिया गया है। पर इसमें दोष यह है कि इस सन्धिका वक्ष्यमाण उपग्रह सन्धिमें अन्तर्भाव हो जाता है। श्री भगवान्दासजी इसका यह अर्थ करते हैं कि आत्मामिष वह सन्धि है जो अपनी सेनाके साथ (स्वसैन्येन तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्धानम्) किया जाय वह आत्माभिष (अपने लिये प्राण-घातक) है। यह अर्थ युक्तियुक्त और इतिहास-सम्मत प्रतीत होता है। जब कोई राजा अपनी सेनाको बहुत प्रबल हो जाने देता है तो अन्तमें सेना शासनको ही दबा लेती है और उसे प्रसन्न करनेके लिये राजाको भाँति भाँतिकी शर्तें स्वीकार करनी पड़ती हैं जो अन्तमें उसे नाश करके ही छोड़ती हैं। रोमन साम्राज्यका अन्तकालीन इतिहास तथा सिक्खराजका इतिहास इसके उदाहरण हैं।

(१२) उपग्रह सन्धि—जो सर्वदान द्वारा (अपनेको पूर्णतया शत्रुके हाथमें समर्पित करके) की जाय।

(१३) परिक्रम सन्धि—जो सन्धि प्रबल शत्रुके आक्रमण करनेपर उसको धनादि देकर इसलिये की जाय कि वह लौट जाय।

(१४) उच्छिन्न सन्धि—जिसमें एक पक्ष अपने राज्यकी ऐसी सारवती भूमि (उर्वरा या खनिज सम्पन्न भूमि) देनेपर विवश किया जाय जिससे सत्ता बच रहनेपर भी उसकी समृद्धि नष्टप्राय हो जाय।

(१५) परदूषण सन्धि—जिसमें एक पक्ष अपने राज्यकी वार्षिक आय सदाके लिये शत्रुको देनेकी प्रतिज्ञा करनेपर विवश किया जाय। मूलमें 'सर्व' शब्द आया है। यदि सर्वका अर्थ शब्दशः किया जय तो सम्पूर्ण आय देनेकी शर्त होगी। यह तो उपग्रहके अन्तर्गत हो गयी। अतः सर्वका अर्थ 'आयका बड़ा भाग' लेना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१६) स्कन्धोपनेय सन्धि—जिसमें एक पत्त बँधे समयोंपर नियतसंख्यक द्रव्य दूसरे पत्तको देनेके लिये बाध्य किया जाय ।

नोट—कामन्दकीय नीतिसारके इस प्रकरणकी ओर श्री भगवान्दासजीने मेरा ध्यान आकर्षित किया था। इसके लिये मैं उनका ऋणी हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट—४

एक नये प्रकारकी सन्धि

अभी हालमें ब्रिटिश सरकार तथा रूसकी सोवियत सरकारमें जो सन्धि हुई है वह अन्ताराष्ट्रिय जगतमें एक विशेष स्थान रखती है। सभी सभ्य देशोंमें एक दृष्टप्रभु, चाहे वह नरेश हो चाहे राष्ट्रपति, रहता है। सन्धिपत्रोंमें उसका उल्लेख भी आता है। प्रतिनिधियोंके सम्बन्धमें इसी प्रकार लिखा जाता है कि अमुक अमुक उद्देश्यसे अमुक देशके अमुक श्रीमान् नरेश अथवा अमुक श्रीमान् राष्ट्रपतिने अमुक अमुकको प्रतिनिधि नियुक्त किया था अमुक अमुक नरेश (या राष्ट्रपति) अमुक अमुक शर्तों पर सन्धि करना उचित समझते हैं, इत्यादि। पर रूस सरकारका कोई अध्यक्ष नहीं है अतः वह अपनी ओरसे केवल सोविएत सरकारका नाम लिखती है। यदि सन्धिपत्रमें ब्रिटिश नरेशका नाम आता तो उनकी अप्रतिष्ठा होती क्योंकि उधरसे कोई बराबरीका नाम नहीं था अतः इधरसे भी केवल ब्रिटिश सरकारका नाम लिखा गया ताकि पल्ला बराबर रहे। यह एक नये ढंगका सन्धिपत्र है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट—५

पारिभाषिक शब्दोंकी सूची ।

[क]

(हिन्दी शब्दोंके अंग्रेजी पर्य्याय)

अङ्गरी	Angary (Droitd' angarie, jus angariae)
अतटस्थाचरण	Unneutral Service
अधिकार पत्र	Letter of credence (credentials)
,, , प्रतीक्षात्मक	Expectant Power
अधिकृति	Occupation
अधिपति	Suzerain
अनधिकार समर्पणपत्र	Sponsion
अनुज्ञापत्र	Exequatur
अनुसन्धान मण्डल	Commission of Enquiry
,, ,, , मिश्र	Mixed commission of Enquiry
अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र	Subjects of International Law
अन्ताराष्ट्रिय शील	Comity of Nations
,, सदाचार	International Morality

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपराधि-प्रत्यर्पण	Extradition
अपहृतोद्धार	Salvage
अभयदान	Quarter, Safe-guard
अरि	Belligerent
अरिताकी स्वीकृति	Recognition of Belligerency
अवकाश	Days of grace
अवरोध	Blockade
,, , अधिकारफलक	Strategic Blockade
,, , काग़ज़ी	Paper Blockade
,, , घोषणात्मक	Blockade by notification
,, , तट (=तटावरोध)	Blockade
,, , नौ (=नाववरोध)	Embargo
,, , वाणिज्य (=वाणिज्यावरोध)	Commercial Blockade
,, , वास्तविक	Blockade de facto
,, , सक्षम	Effective Blockade
,, भङ्ग	Violation of Blockade
आदेश (शासनादेश)	Mandate
आदिष्ट	Mandated
आदेश, स—(=सादेश)	Mandatory
उद्धरण शुल्क	Salvage money
उपभोग	Prescription
गारद	Convoy
चिकित्सालय	Hospital
,, , अचल	Fixed Hospital
,, चल	Field (mobile) hospital

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जलमग्न विस्फोटक	Sub-marine Mines
जानपद समारोह	Levies en masse
तटलग्नजल (तटलग्नसमुद्र)	Marginal waters (Littoral or Jurisdictional or Territorial waters)
तटस्थीकरण	Neutralization
ताटस्थ्य	Neutrality
दूत, उप—	Charged' affairs
,, , परिमितार्थं	Resident Minister
,, , मितार्थ	Envoy
,, , विशिष्ट	Minister Plenipotentiary
दौत्य	Diplomacy
नज़रबन्दी	Internment
नागरिकता	Citizenship
नाववरोध	Embargo
,, , युद्धात्मक	Hostile Embargo
,, , शान्तिमय	Pacific Embargo
निवास	Domicile
निषिद्ध	Contraband
,, , गौण	Conditional Contraband
,, , पूर्ण	Absolute Contraband
परवाना	Letter of Marque
पात्र, अन्ताराष्ट्रिय विधानके	Subjects of International Law
पैरोल	Parole
पोत	Ship
,, , कुमक	Privateer

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पोत , परिचर्य्या	Cartelships
,, , परिणत वणिक	Converted Merchantman
पंचायत	Arbitration
,, , अनिवार्य्य	Obligatory Arbitration
पंचनामा	Compromisd'arbitrage
प्रजा	Subject
प्रजा, अंगीकृत	Naturalized Subject
,, , अनन्य	Natural-born Subject
प्रतिघात	Reprisal
प्रतिभू	Hostage
प्रभु	Sovereign
,, , अल्प—	Part-Sovereign
,, , दृष्ट—	Nominal Sovereign
,,—त्व	Sovereignty
बेहरी	Contribution
मध्यस्थता	Mediation
यात्राधिकार (यात्रानुज्ञा)	Pass-port
यादवीय	Civil War
युद्ध (समर, संगर)	War
युद्धकारी सभ्य समुदाय, राजातिरिक्त	Civilized Belligerent Community not being a State
रक्षागारद	Safe-guard
रक्षाद्रव्य (रक्षाशल्क)	Ransom
,, -पत्र	Ransom Bill
रक्षावचन	Safe-Conduct

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज	State
,, , अनुगामी (मुवक्किल)	Client State
,, , अपूर्ण संयुक्त	Imperfect-Union
,, , अलिङ्ग संयुक्त	Incorporate Union
,, , आकस्मिक संयुक्त	Personal Union
,, , औपनिवेशिक संरक्षित	Colonial Protectorate
,, , निरवयव	Unitary State
,, , पूर्ण संयुक्त	Perfect Union
,, , राष्ट्रीय	National State
,, , लिङ्गशेष	Federal Union
,, , व्यक्तिशेष	Real Union
,, , सावयव	Composite State
राष्ट्रसंघ =	League of Nations
,, की स्थायी समिति	Council of the League of Nations
वस्तु, विहित	Free goods
विद्रोहित्वकी स्वीकृति	Recognition of Insurgency
विधान	Law
,, —शास्त्र	Jurisprudence
,, , आवश्यक	Necessary Law
,, , नागरिक	Jus Civile
,, , प्राकृतिक	Jus Naturalae (Natural Law)
,, , राष्ट्रोंका	Jus Gentium
,, , विहित	Instituted Law
,, , सिद्ध	Positive
,, , सैनिक	Martial

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विनष्टि	Devastation
विराम, रण	Truce (Armistice)
,, —पताका	Flag of Truce
विश्वसंस्कृति	Cosmopolitanism
वृद्धि, प्राकृतिक	Free goods
व्यापाराधिकार	License to trade
शक्ति	Power
,, , महा—	Great Power
,, —गोष्ठी	Concert of Powers
,, —साम्य	Balance of Power
शासनादेश	Mandate
समझौता, सामरिक	Cartel
समयपत्र	Covenant
समर	War
समष्टिवाद	Communism
समर्पणपत्र	Capitulation
सामरिक क्षेत्र	Military Zone (Zone of war)
सेना, अनियमित	Guerilla Troops
,, , आपत्कालिक	Reserve Troops (Reserves)
,, , नियमित	Regular Troops
संगराधार	Base of Operations
सन्धि (सन्धिपत्र)	Treaty
,, , अर्थद्योतक	Treaty declaratory of International Law
,, . उप—	Preliminary Treaty
,, , पूर्ण	Definitive Treaty

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्धि, विधायक	Pure Law-making Treaty
,, , व्यवस्थापक	Law-making Treaty
हस्तान्तर; हस्तक्षेप	Cession; Intervention

[ख]

(अंग्रेजी शब्दोंके हिन्दी पर्य्याय)

Accretion	प्राकृतिक वृद्धि
Ambassador	निःशेपदूत
Angary (Droitd' angarie, jus angariae)	अंगरी
Arbitration	पंचायत
,, , obligatory	अनिवार्य्य पंचायत
Armistice	रणविराम
Army of occupation	मुल्कगीरी सेना
Auxiliary	सहायक
Base of operations	संगराधार
Belligerency	अरिता
,, , Recognition of	अरिताकी स्वीकृति
Belligerent	अरि, शत्रु
,, communities not being States, Civilized	राजातिरिक्त युद्धकारी सभ्य समुदाय
Blockade	तटावरोध
,, , Commercial	वाणिज्यावरोध
,, , Effective	सक्षम अवरोध
,, , Paper	कागज़ी अवरोध
,, , Strategic	अधिकारफलक अवरोध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Blockade, Violation of	अवरोधभंग
,, de facto	वास्तविक अवरोध
,, by notification	घोषणात्मक अवरोध
Capitulation	समर्पणपत्र
Cartel	सामरिक समझौता
,, Ships	परिचर्य्या पोत
Cession	हस्तान्तर
Charge d' affaires	उपदूत
Citizenship	नागरिकता
Comity of Nations	अन्ताराष्ट्रिय शील
Commission of Enquiry	अनुसन्धान मण्डल
,, ,, ,,—,, mixed	मिश्र अनुसन्धान मण्डल
Communism	समष्टिवाद
Compromis d' arbitrage	पञ्चनामा
Condominium	सम्मिलित स्वाम्य
Confederation	संघ
Consul	वकील
Contraband	निषिद्ध
,, , absolute	पूर्ण निषिद्ध
,, , Conditional	गौण निषिद्ध
Contribution	वेहरी
Convoy	गारद
Cosmopolitanism	विश्वसंस्कृति
Covenant	समयपत्र
Days of Grace	अवकाश
Devastation	विनष्टि
Doctrine of infection	संसर्गदोष सिद्धांत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Domicile	निवास
Embargo	नाववरोध
,, , Pacific	शांतिमय नाववरोध
,, , Hostile	युद्धात्मक नाववरोध
Envoy	मितार्थ दूत
Exequatur	अनुज्ञा पत्र
Extradition	अपराधिप्रत्यर्पण
Goods, free	विहित वस्तु
Hospital, field or mobile	चल चिकित्सालय
,, , fixed	अचल चिकित्सालय
Hostage	प्रतिभू
Insurgency, Recognition of	विद्रोहित्वकी स्वीकृति
Internment	नजरबन्दी
Intervention	हस्तक्षेप
Jurisprudence	विधानशास्त्र
Jus Civile	नागरिक विधान
,, Gentium	राष्ट्रोंका विधान
,, Naturalae	प्राकृतिक विधान
Law, Instituted	विहित विधान
,, , Martial	सैनिक विधान
,, , Necessary	आवश्यक विधान
,, of Nature	प्राकृतिक विधान
,, , Positive	सिद्ध विधान
League of Nations	राष्ट्रसंघ
,, ,, , Council of the	राष्ट्रसंघकी स्थायी समिति
Letter of credence (Credentials)	अधिकार पत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Letter of Marque	परवाना
Levies en Masse	जानपद समारोह
License to trade	व्यापाराधिकार
Mandate	आदेश, शासनादेश
Mandatory	सादेश
Mandated	आदिष्ट
Mediation	मध्यस्थता
Merchantman, Converted	परिणत वणिक्पोत
Mines, Submarine	जलमग्न विस्फोटक
Minister, Resident	परिमितार्थ दूत
" Plenipotentiary	विशिष्ट दूत
Morality, International	अन्ताराष्ट्रिय सदाचार
Neutralisation	तटस्थीकरण
Neutrality	ताटस्थ्य
Objects of International Law	अन्ताराष्ट्रिय विधानके लक्ष्य
Occupation	अधिकृति
Parole	पैरोल
Pass-port	यात्रानुज्ञा, यात्राधिकार
Power	शक्ति
" , Great	महाशक्ति
" , Balance of	शक्तिसाम्य
" , Concert of	शक्ति-गोष्ठी
" , Expectant	प्रतीक्षात्मक अधिकार
Prescription	उपभोग
Privateer	कुमक पोत
Protectorate, Colonial	औपनिवेशिक संरक्षित राज
Quarter	अभयदान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Ransom	रक्षाशुल्क, रक्षाद्रव्य
" Bill	रक्षाद्रव्य-पत्र
Ratification	समर्थन
Reparation	क्षतिपूर्ति
Reprisal	प्रतिघात
Requisition	वस्तुमांग
Safe-conduct	रक्षावचन
Safe-guard	अभयदान, रक्षागारद
Salvage	अपहृतोद्धार
" money	उद्धरण शुल्क
Service, unneutral	अतटस्थाचरण
Sovereign,-ty	प्रभु, प्रभुत्व
" , part-	अल्प प्रभु
" , Nominal	दृष्ट प्रभु
Sponsion	अनधिकार समर्पणपत्र
State	राज
" , Client	अनुगामी राज, मुवक्किल राज
" , Composite	सावयव राज
" , National	राष्ट्रीय राज
" , Unitary	निरवयव राज
Subject	प्रजा
" , Natural-born	अनन्य प्रजा
" , Naturalized	अङ्गीकृत प्रजा
" of International Law	अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र
Surrender	आत्मसमर्पण
Suzerain	अधिपति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Treaty	संधि, सन्धिपत्र
„ Declaratory of International Law	अर्थद्योतक संधि
„ , Definitive	पूर्णसंधि
„ , Law-making	व्यवस्थापक संधि
„ Preliminary	उपसंधि
„ , Pure Law-making	विधायक संधि
Troops, Guerilla	अनियमित सेना
„ , Regular	नियमित सेना
„ , Reserve (Reserves)	आपत्कालिक सेना
Truce	रणविराम
, Flag of	विरामपताका
Union, Federal	लिंगशेष राज
„ , Imperfect	अपूर्ण संयुक्त राज
„ , Incorporate	अलिंग संयुक्त राज
„ , Perfect	पूर्ण संयुक्त राज
„ , Personal	आकस्मिक संयुक्त राज
„ , Real	व्यक्तिशेषराज
War	युद्ध, समर, संगर
„ , Civil	यादवीय युद्ध
„ , Zone of	सामरिक क्षेत्र
Waters, Littoral (Marginal, Territorial or Jurisdictional)	तटलग्न जल या तटलग्न समुद्र
Zone, Military	सामरिक क्षेत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट—६

अन्तर्राष्ट्रीय विधान सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तकोंकी सूची

(विशेष अध्ययनके लिये)

(क) सामान्य

ओपेनहाइमकृत इण्टर्नैशनल लॉ	[International Law by Oppenheim.]
फ़िलिप्सनकृत स्टडीज़ इन इण्टर्नैशनल लॉ	[Studies in International Law by Philipson.]

(ख) प्रथम तथा द्वितीय खण्ड सम्बन्धी

बार्चर्डकृत ए गाइड टु डिप्लोमैटिक प्रोटेक्शन आव सिटिज़ंस ऍब्रॉड	[Diplomatic Protection of Citizens Abroad by Borchard.]
सेटोकृत ए गाइड टु डिप्लोमैटिक प्रैक्टिस	[A Guide to Diplomatic Practice by Satow.]
डिकिंसनकृत ईक्वालिटी आव स्टेटस इन इण्टर्नैशनल लॉ	[Equality of States in International Law by Dickinson.]
मायर्सकृत कण्ट्रोल आव फ़ॉरेन रिलेशंस	[Control of Foreign Relations by Myers.]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रैण्डलकृत ट्रीटीज़, देयर मेकिङ्ग ऐण्ड इंफ़ोर्समेण्ट [Treaties, Their Making and Enforcement by Crandall.]

राइटकृत कांस्टिट्यूशनैलिटी आव ट्रीटीज़ [Constitutionality of Treaties by Wright.]

(ग) तृतीय तथा चतुर्थ खण्ड सम्बन्धी

होगनकृत पैसिफ़िक ब्लोकेड [Pacific Blockade by Hogan.]

पाइककृत दि लॉ आव कॉंट्रैबैण्ड आव वार [The Law of Contraband of War by Pyke.]

ताकाहाशीकृत इण्टनैंशनल लॉ एप्लाइड टु दि रशो—जैपनीज़ वार [International Law Applied to the Russo-Japanese War by Takahashi.]

गार्नरकृत इण्टनैंशनल लॉ एण्ड दि वर्ल्ड वार [International Law and the World War by Garner.]

बेकर और क्रोकरकृत लैण्ड वारफ़ेयर [Land Warfare by Baker and Crocker.]

हैजेल्टाइनकृत दि लॉ आव दि एयर [The Law of the Air by Hazeltine.]

स्मिथकृत दि डेस्ट्रक्शन आव मर्चेंट शिप्स अण्डर इण्टनैंशनल लॉ [The Destruction of Merchantships under International Law by Smith.]

बोल्स गिब्सनकृत सी लॉ एण्ड सी पावर [Sea Law and Sea Power by Bowles Gibson.]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(घ) पञ्चम खण्ड सम्बन्धी

हिगिंस कृत दि हेग पीस कांफ़रेंसेज़	[The Hague Peace Conferences by Higgins.]
सिजविककृत डेवेलपमेण्ट आव यूरोपियन पालिटी	[Developmentof European Polity by Sidgwick.]
म्योरकृत नेशनलिज़्म एण्ड इण्टर्नैशनलिज़्म	[Nationalism and Internationalism by Muir]
टेम्पर्लीकृत हिस्ट्री आव दि पीस कांफ़रेंस आव पैरिस	[History of the Peace Conference of Paris by Temperley.]
डार्बीकृत इण्टर्नैशनल आर्बिट्रेशन	[International Arbitration by Darby.]
डिकिंसनकृत प्रॉब्लेम्ज़ आव दि इण्टर्नैशनल सेटलमेण्ट	[Problems of the International Settlement by Dickinson.]
हार्लीकृत लीग आव नेशन्स एण्ड दि न्यू इण्टर्नैशनल लॉ	[The League of Nations and the New International Law by Harley.]
फ़ोसडिककृत दि लीग आव नेशन्ज़ स्टार्ट्स	[The League of Nations Starts by Fosdick.]

वक्तव्य—इस सूचीमें उन पुस्तकोंके नाम नहीं दिये गये हैं जिनका उल्लेख भूमिकामें हो चुका है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका ।

अ

अंगरीका प्रयोग, जर्मनी द्वारा ३७६
अंगरी विधान ३७५
अंगीकृत प्रजा १८८,१९०
'अंश प्रभु' का अर्थ ४१
अंश प्रभु (अर्द्ध प्रभु) राज ४१
अकबर ४२७
अज्ञ पोत ३०९
अज्ञ पोतों परकी सम्पत्ति ३११
अतटस्थाचरणका स्वरूप ४१८
,, के लिए दंड ४१९-४२२
अतटस्थाचारी नाविकोंको दण्ड ४२१
अधिकारप्राप्त पोत ३०८
अधिकृतप्रदेशकी विनष्टिका निषेध ३०३,३२५
की सम्पत्ति जिसपर कब्जा किया जासकता है २९३
के निवासियोंसे सैनिक सेवा व राजभक्तिकी शपथ लेनेका निषेध २९६,२९७
अधिकृतप्रदेशके साथ प्रतिघातनीति ३०४
के साथ व्यवहार २५३, २५६-२५८,२६०
पर मुल्कगीरी सेनाका अधिकार ३४८
में राजसम्पत्ति २९३
-वासियों का विद्रोह ३३१
-वासियोंको दंड ३०१,३०२
से प्रतिभुओंका लिया जाना ३०४
से बेहरीकी मांग ३००
अधिकृतिकी घोषणा १५२, १५३
अनन्य प्रजाका अर्थ १८५
अनन्य प्रजाके स्वत्व १८७
अनुगामी राज (मुवक्किल राज) ५३
अनुसन्धान मंडल २१०
,, ,, की नियुक्ति ४४७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसन्धान मण्डल द्वारा समझौता २१०
अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका व्यवहार, सद्योजात राजोंके साथ ४५४
,, नियमोंकी उपेक्षा महासमरमें २५९
,, निःशस्त्रीकरण सभा ४४१
,, न्यायालय ९०,१९७, २१५,२१६,२२३,३१९
,, न्यायालयकी स्थापना ३५,३७
,, पंचायत का निर्णय, ब्रिटेनके पक्षमें १२०
,, पंचायतोंके निर्णय ९०
,, प्रश्नोंका निपटारा, राजोंके पत्रव्यवहार द्वारा ९१, विधान शास्त्रियों द्वारा ९०, सन्धियों द्वारा ९१
अन्ताराष्ट्रिय विधान
और स्थानीय विधानोंमें विरोध १२
का उल्लंघन ९१
का उल्लंघन, चीन द्वारा १२४
का उल्लंघन, रूस, आस्ट्रिया तथा जर्मनी द्वारा ८
अन्ताराष्ट्रिय विधान
का कर्त्तव्याकर्त्तव्य शास्त्रसे संबंध ९,१०,११
का क्षेत्र ४,५
का विधानत्व ६,७
का सम्बन्ध, देशके भीतरी शासनसे ४,१२,१३
की उत्पत्ति, १७,२८,२९,६४
की उत्पत्ति, यूरोपमें १३९
की उपयोगिता २७,२८
की गोल बातें ३३२
की परिभाषा १,२,३,१०
की पात्रता, अल्पकालीन ५६-५८
की पात्रताकी स्वीकृति, विज्ञप्ति द्वारा ७३
की पात्रताकी स्वीकृति, सन्धि द्वारा ७४,७५
की पात्रताके लिए आवश्यक गुण (नीचे देखिये) ४२,४३, ५६,५९,७२,७३
की प्रथम पुस्तकें २१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्ताराष्ट्रिय विधान
की प्रधानता, संयुक्त-राजमें, राष्ट्रिय विधानोंकी तुलनामें ३१९
की प्राचीनता १५
की समानता, व्याकरणसे १०
के आचार्य ८३,८४
के आधार ८३
के उल्लंघन-कारियों को दंड ९
के पात्र ३८,४४,४५, ४८,५६,५८,५९,६१,७२
—परिषद्, संवत् १९४५ की १५६
प्राचीन भारत, यूनान व रोममें १६,१७,१८
में पोपकी स्थिति ६३
में व्यक्तियोंका स्थान ५९
में समितियोंका स्थान ६०
वैयक्तिक ६
-संग्रह ३०
-समिति १७५,२३३
अन्ताराष्ट्रिय—
शान्तिका अर्थ ४३५
अन्ताराष्ट्रिय—
शान्तिके साधन ४२६-४२९,४३३-४३५
शील १२
श्रमजीविपरिषद् ४४३
संगठनकी आवश्यकता ४२५,४२६,४३०
संगठनके लिए समयकी आवश्यकता ४३७
संगठनके लिए स्थिरताकी आवश्यकता ४३३
संगठनके सहायक ४३८-४४४
संगठनसे लाभ ४३५
संस्थाएँ, सर्कारी ४४०, ४४१
सदाचार ११
समझौता ९०
समाज ६४, ६५
समितियां व सम्मेलन, असर्कारी ४३८, ४३९
सम्बन्ध, विश्वशान्तिका साधक ४३४
सम्मेलन, ब्रूसेल्समे २५४, लन्दनमें ३१, विएना, पेरिस व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लन्दन इत्यादिमें
४४१, हेगमें ३१
अन्ताराष्ट्रिय
सम्मेलनोंकी तालिका ४४२
सेना ४५६
स्थिति, औपनिवेशिक
संरक्षित राजोंकी ६२
अन्ताराष्ट्रिय स्थिति, कांगोकी ६७, ७३, ७४
कोरियाकी ६६
क्रीटकी ६४
नव स्वतंत्र राजोंकी ७०,७१
वेल्जियमकी ६१
राजोत्तराधिकारके कारण ७८,७९
रूमकी ७५
विद्रोही राजोंका ५७
सर्बियाकी ७५
साइप्रसकी ६३
स्वीज़रलैंडकी ६१
अन्ताराष्ट्रिय स्वरूप, व्यापारका २९४
अपराधियोंका लौटाया जाना १९४,१९५
अपराधियोंका लौटाया जाना, भारतके देशी राजोंमें १९७
अपराधियोंके प्रत्यर्पणकी सन्दिग्ध अवस्थाएं २००,२०१
अपहृत सम्पत्ति (प्राइज़) ३१८
अपहृत सम्पत्ति सम्बन्धी न्यायालय ३१९
अपहृतोद्धार (जहाजोंका लौटाया जाना) ३१३
अपूर्ण संयुक्त राजोंके दो भेद ४७
,, ,, सावयव राज ४५
अफगानिस्तानका स्वाधीन होना १००
अफीमका व्यापार रोकनेका प्रयत्न, राष्ट्रसंघ द्वारा ४५५
,, के व्यापारके संबन्धमें ब्रिटिश सर्कारका हस्तक्षेप ४५५
अभयदान ३४२
,, की प्रथा, प्राचीन आर्यों व वर्तमान यूरोपमें २६५, २६६
,, के पात्र २६६
अभ्यमेरिकन भाव १४४
अमेरिकाका राष्ट्रसंघसे पृथक् रहना ३३
,, का सिद्धान्त, सशस्त्र व्यापारिक पोतोंके सम्बन्धमें ३९८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमेरिकाका हस्तक्षेप, वेनेज्वी-
लाके सम्बन्धमें १४३
,, की धमकी, यूरोपियन
राज्योंको १३४,१४२
,, की मध्यस्थता, रूस-
जापान युद्धमें २१२
,, की मध्यस्थता, स्पेन-
पेरू युद्धमें २१२
अमेरिगो वेस्पूजी १५१
अरविन्द घोष १९५
अरस्तू १७
अरिताकी स्वीकृति २४०
अर्जेण्टिनासे दो रणपोतोंका ख-
रीदा जाना, जापानद्वारा ३७९
अर्थद्योतक सन्धियाँ ८७
अलास्का प्रान्तका विक्रय १६०
अलैक्ज़ेंडर, सर्बियन नरेश १००
अल्प प्रभु—अंश प्रभु देखिये
४९,५०
अवरोधका क्षेत्र ४१६
,, की अवैधता ४१४
,, की घोषणा ४१४
,, की समाप्ति व पुनः
स्थापना ४१४
,, की सूचना, आगन्तु-
कोंको ४१५
अवरोधके नियम ४१३
,, के प्रकार ४११, ४१२
,, —भंग ४१५
,, -भंगका दंड ४१६
,, -विधानकी खींचाता-
नी, महासमरमें ४१६
(तटावरोध भी देखिये)
अशोक ४२७
असहयोग, अहिंसात्मक २२३,
२२४,२३८
असामरिक बलप्रयोगका औ-
चित्य और उपयोग २३४
असामरिक बलप्रयोगके उदा-
हरण २२९,२३०
अस्पताली जहाज २७६-२७८
अस्पताली जहाजोंकी तला-
शीका अधिकार २७७
अस्पताली जहाजोंके प्रति ब-
र्ताव २७७
अस्पतालों की रक्षा, सैनिक
२७३-२७५
,, के परिचायक चिन्ह २७५
अहिंसात्मक व्यापार, युद्ध-
कालमें ३३९
अहिंसात्मक व्यापार, सेना-
ध्यक्षोंकी आज्ञासे ३३९,३४०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ

आत्मसमर्पण ३४३
„ की शर्तें ३४३,३४४
आदिम निवासियोंका अधिकार १५७,१५८
आदिम निवासियोंके संबंधमें शासनादेश १५८
आन्तरिक शासन की स्वतंत्रता ७६,७७,१३२
ओपेन हाइम ५९
„ ऋण-दायित्वके संबंधमें ७९
आर्यकालमें दूत-प्रथा ९४
आलिम्पिक गेम्स कमिटी ४३९
आल्बेरिकस जेण्टाइलिस २२
आवश्यक विधान (नेसेसरी लॉ) २५
आस्टिनका कथन, विधानके संबंधमें ६,७
आस्ट्रियाकी सन्धि, रूस और प्रशाके साथ १३३,१४१
„ में विद्रोह, हंगरीका १३३
आस्ट्रेलियामें एशियावासियोंका वासनिषेध १५५
आस्ट्रेलियामें ब्रिटिशबस्तियां १५५
आहतोंकी सेवा २७१-२७५

इ

इटली का पोपके ऋणमें भाग लेना ८१
„ का विद्रोह ३६२
„ व तुर्कीका युद्ध २३६
„ का प्रतिघात, यूनानपर २२९
इमारतोंकी रक्षा, ऐतिहासिक, धार्मिक इत्यादि ३२३,३२४
इरैज़मस, युद्धके सम्बन्धमें २२२

ई

ईराक, आदिष्ट राज ५३,५४
„ में शासनादेश १६९
ईस्ट इंडिया कम्पनी १७०

उ

उजाड़ करना स्वदेशका, हालैण्ड, मास्को, मेवाड़के उदाहरण ३२६
उद्धरणशुल्क का नियम, ब्रिटेनमें ३१३,३१४
„ जहाजोंके लिए ३१३,३१४
उपचार, दूतोंके गमनागमनके समयके १०३
उपचारोंका महत्त्व १४६,१४७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपभोगद्वारा स्वाम्यप्राप्ति १६३
उपसन्धिका लिखा जाना ३४७
उपसागरों और खाडियों-
पर अधिकार १७५
उपाधियोंकी स्वीकृति १४९

ऋ

ऋक्षसागर १७२
ऋणके कागज जब्त नहीं
किये जाते २८५
ऋण चुकानेसे इन्कार, रूसका २८५
ऋण-दायित्व, विजेताका ७८,
७९, ८१
" की अस्वीकृति, भार-
तीय राष्ट्रसभा द्वारा ८०
" के सम्बन्धमें विवाद,
ब्रिटेन व प्रशामें २८५
" युद्धारम्भके बाद २४३

ए

एक्स-ला-शेपेलकी कांग्रेस ९९
एलची, एक तरहका दूत ९६
एशियाकी दशा १४०,१४१
एशियाटिक सोसाइटी ४३९

ऐ

ऐण्ड्रू कारनेगीका दान, अन्ता-
राष्ट्रय सम्मेलनके लिए ३२

औ

औचित्यानौचित्य, सैनिक
कार्यका ३०३,३०७
औपनिवेशिक संरक्षण १६५,१६६
" संरक्षितराज ६२
" " की पात्रता ६२

क

कमालपाशाकी विजय १७८
कर्त्तव्याकर्त्तव्यशास्त्र,
अन्ताराष्ट्रिय विधानकी
कसौटी १२
कलम्बिया विश्वविद्यालय ४३९
कश्यपायन सागरमें रूसके
जहाज १७६
कांगोका तटस्थीकरण ६७
" पर बेल्जियमका संर-
क्षण व अधिकार ६७,६८
" -राजसे शर्तनामा १७२
काइली नामक अमेरिकन
दूतका इटली द्वारा
स्वीकृत न होना १०१,१०२
कागजी अवरोध ४११-४१३
" " जर्मनी द्वारा ४१७
काफूं और पैक्सोका तटस्थी-
करण ३६२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काफूं पर कब्जा, इटलीका २२९
कार्लमार्क्स ४४४
कार्लाइल, एकान्त वासके संबंधमें ११३
किंग्सफोर्डकी हत्याका प्रयत्न १२०
कियाउचाउ का पट्टा १६७
„ पर जापानका अधिकार १६८
कुमक पोत (प्राइवेटियर) ३३४
कुस्तुन्तुनिया २०
„ कृष्ण सागरकी कुन्जी १७७
„ पर कब्जा करने का प्रयत्न १७८
केनी, जलदस्युताके संबंधमें १९८
केनेडीकी पत्नी व कन्याकी हत्या १२०
केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ४३९
केलिफोर्निया विश्वविद्यालय ४३९
कोरिया, अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र ६६
„ की सम्भुक्ति, जापानमें ५२,६६,७७
„ पर चीनका संरक्षण ५१,६५
कोरिया पर जापानका संरक्षण ५२,६६
कोलम्बियाका पतन ६९,७७
कौटिलीय अर्थशास्त्र १५
क्यूबा, प्रच्छन्न संरक्षणका उदाहरण ५२
„ में विद्रोह ५२,१२२
„ में संरक्षण, संयुक्त राजका १८२
क्रीटकी अन्ताराष्ट्रिय स्थिति ६४
क्रीमियन युद्ध २०८,३९५,४१३
क्लेटन बुल्वर सन्धि ११७
क्षतिपूर्त्ति, जलमग्न तार काटनेपर ३६९
„ जहाजोंकी ज़ब्ती के बदले ३१८
„ जहाजोंपर मिथ्या सन्देहके कारण ३१६
„ तटस्थ सम्पत्तिका प्रयोग करनेपर ३७६
„ ताटस्थ्य-भंगके लिए ३७४

ख

खाड़ियों और उपसागरों पर अधिकार १७५
खुले समुद्रकी रक्षा ३३८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग

गर्टिंगेन विश्वविद्यालय ४३९

गस्टेवस एडल्फस, स्वीडन नरेश, युद्धगत स्वेच्छाचारिताके सम्बन्धमें २३

गांधी, महात्मा गांधी देखो

गिरजों आदिका विनाश, गत महायुद्धमें २९४

गीबेन और ब्रेस्लाउ नामक जर्मन जहाज १७८

गुलामी उठानेकी प्रतिज्ञा ४४१

गुलिस्तां और तुर्कमनशाई-की सन्धियां १७६

गेरीबाल्डी १९५

गोलाबारी, अरक्षित स्थानोंपर २८९

गोलाबारीके पूर्व सूचनाकी आवश्यकता ३२३, ३२४

गोलाबारीके समय चिकित्सालय आदिकी रक्षा ३२३

गोली मारना, अतटस्थाचारी नाविकोंको ४२१

गोले गोलियां, किस तरहकी वर्जित हैं ३२५, ३२६

ग्रोशिअस २८, २९, ८३

„ (ह्यूगो) अन्ताराष्ट्रिय विधानके प्रथम आचार्य २२

ग्रोशिअस अवरोधके सम्बन्धमें ४१०

„ का उपदेश २५

„ की सफलता २४, २५

„ ताटस्थ्यके सम्बन्धमें ३५३

„ वाणिज्य सामग्रीके तीन विभागके सम्बन्धमें ३९९

„ शत्रुसम्पत्तिके सम्बन्धमें २८८

घ

घेरा डालनेका निषेध ३२२

च

चंगेज खां ४२५

चढ़ाईका अर्थ ३७१, ३७३

चतुर्महत् ३३, ३६

चन्द्रगुप्त ९६

'चार' का अर्थ ९५

चार्ल्स पंचम, स्पेननरेश १५२

चार्ल्स षष्ठ, (जर्मनीके सम्राट्) ९२

चिकित्सा-पोत ३०७

चिकित्सा-पोतोंपर की सामग्री ३११

चित्रादिकोंका अपहरण, नेपोलियनकी सेना द्वारा २९४

चिलीमें विद्रोह २४१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चीनका पराभव, विदेशियों-
के हाथ १२४
„ की प्रतिज्ञा, ब्रिटेनसे १७२
चीन-जापान-युद्ध ३९६
चीन-जापान-युद्धमें
जलमग्न तारोंकी रक्षा ३६८
चीनपर आक्रमण, विदे-
शियोंका १२४
„ में आन्दोलन, ईसाइयों-
के विरुद्ध १२३
„ में यादवीय १४१
„ में विदेशियोंके पट्टे १६७,१६८
„ में हस्तक्षेप, विदेशियों
का १२५

ज

जंज़बारमें ब्रिटेनका संरक्षण १६५
जगदीशचन्द्र बोसका वैज्ञा-
निक अन्वेषणालय ४३९
जर्मन पनडुब्बियोंका कार्य,
गत महायुद्धमें ३०७
जर्मन सेनाका फ्रांससे बेहरी
लेना ३०१
जर्मनी और ब्रिटेनमें सन्धि ११८
„ पर दोषारोपण ३२२,३२३
जर्मनोंका अत्याचार, महा-
युद्धमें २९४
जर्मनों द्वारा फ्रांसके जंगली
वृक्षोंका विक्रय २९५
जल-डमरू-मध्य किसकी
सम्पत्ति है १७७
जलदस्युओंपर अधिकार १९८
जलदस्युताकी परिभाषा
१९८,१९९
जलपर स्वाम्य १५५,१५६,१७२
जलमग्न तार काटनेके निमित्त
क्षतिपूर्ति ३६९
जलमग्न तारोंका काटना
अवैध कब है ३७०
जलमग्न तारोंका काटना वैध
कब है ३६८
जलमग्न तारोंके साथ छेड़छाड़ ३६७
जलमग्न विस्फोटक ३३६
जलमग्न विस्फोटक फैलाना,
तटस्थोंका ४२१
जलयुद्धके नियम २६४
जलांतस्तलचारी तारपर कब्जा
२९४
जस जेंशियम (राष्ट्रोंका
विधान) १९
जस जेंशियम, वर्तमान अन्ता-
राष्ट्रिय विधानका पूर्वरूप
२०,२४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जस नेचुरली (प्राकृतिक विधान) २०,२४,२५,२८,२९
जस पोस्ट लिमिनिआइ ३१३
जस सिविली (नागरिक विधान) १९
जहाजके कागज़ ३१७
जहाज छुड़ानेमें तटस्थकी सहायता ३१४
„ जो संरक्ष्य मानेजाते हैं ३०७-३०९
जहाजोंका कृत्रिम विक्रय २८०
„ का जब्त किया जाना २३२
„ का डुबाया जाना ३१७
„ का पीछा करना, जिसपर सन्देह हो ३१५
„ का लौटाया जाना ३१३
„ का विक्रय-पत्र २८०
„ की जब्ती, शत्रुके ३०६
„ की जब्तीके बदले क्षतिपूर्ति ३१८
„ की तलाशी ३०६,३१४, ३१५
„ की तलाशी की कठिनाइयाँ ३१६
„ की तलाशी के बाद क्षमा-याचना ३१६
जहाजोंके प्रश्नकी जटिलता ३९४
„ के रणबन्दियोंके प्रति बर्ताव २७०
„ के लिए उद्धरण शुल्क ३१३
„ को अवकाश देनेकी प्रथा ३०९,३१०
„ को झूठा झंडा लगाने का अधिकार ३०६
जान केवट १५१
जानपद समारोह, लेवी आन मैसे, स्वदेशरक्षाके लिए ३३०
जापानकी गणना, महाशक्तियोंमें १४१
जापान-रूस-युद्ध, रूस-जापान युद्ध देखिये
जासूसोंको दण्ड ३३३
जेण्टाइलिस ८३
जेनीवाका एकरारनामा २७१
„ की अन्ताराष्ट्रिय परिषद्‌ २७१
„ क्रास २७५
„ में स्वीकृत नियमावली २६०
जैक्सनकी हत्या १२०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ट

टेक्ससकी स्वाधीनता ६९
ट्राइट्श्के, जर्मन नीतिविशारद १३८
„ युद्धके सम्बन्धमें २२२
ट्रांसवालकी स्थापना ६६

ठ

ठिकानेका प्रमाण, निषिद्ध मालके सम्बन्धमें ४०३,४०५

ड

डचसर्कारकी घोषणा, तटावरोधके सम्बन्धमें ४१०
डाक रोकी नहीं जाती ३११
डान पन्तेलियन, पुर्तगाली दूत, को फांसी १०६
डान मीगेल, डाना मेरियाका विरोधी ३७२
डाना मेरिया, पुर्तगालकी महारानी ३७२
डी. ब्यूरे बेलिऐक पेलिस, अन्तारराष्ट्रिय विधानकी प्रसिद्ध पुस्तक २३
डेनमार्क और रूसमें सन्धि ८७,३५४
डैम्पियर १५२

त

तटलग्न समुद्र, समुद्र देखिये
तटस्थ जहाजोंका रोका जाना३१४, ३१५
„ तटलग्न डमरूमध्यका द्वारावरोध-निषेध ३८३
तटस्थता, आंशिक ३६२
तटस्थ देशीय प्रजाका अधिकार, ऋण देने व रणसामग्री बेचनेका ३७९
„ नगरको संगराधार बनानेका निषेध ३७०
„ नागरिकोंकी शत्रुसमर्पित सम्पत्ति २८१
„ नौस्थानमें गिरफ्तार जहाजका लाया जाना३८६
„ नौस्थानमें गिरफ्तार जहाजका लौटाया जाना ३९०
„ नौस्थानमें रणपोतोंकी शक्ति न बढ़ने देना ३८७
„ नौस्थानमें रसद-संग्रह ३८७,३८८
„ नौस्थानमें विरोधी पक्षोंके पोत ३८६
„ भूमिमें प्रवेश-निषेध ३७३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तटस्थ भूमिमें युद्धकी तैयारी-
का निषेध ३७०
„ राजकी सीमामें सामरिक
कार्यका निषेध ३६४,३७५
„ राजको युद्ध छेड़नेका
अधिकार ३९०
„ राजको रणसामग्री बेच-
नेकी मनाही ३८०
„ राज द्वारा क्षतिपूर्ति ३९१
„ राज द्वारा युद्धकारी
पोतोंको आश्रयदान-
का निषेध ३८५
„ राज द्वारा सैनिक सहायता
व ऋणदानका निषेध ३७८
„ राज्योंके कर्तव्य, ताटस्थ्य
विरुद्ध काम रोकनेके
लिये ३८१, आत्म-
नियंत्रणात्मक ३७७,
क्षतिपूर्त्यात्मक ३९१
पर—नियंत्रणात्मक
३८१, प्रत्यर्पणात्मक
३९०, शान्तिस्थाप-
नात्मक ३९१, सहि-
ष्णुतात्मक ३८९
तटस्थराज्यमें समाचारसंग्रहका
स्थान न बनने देना ३८९
तटस्थ वाणिज्यपोतोंकी
तलाशी ३९८
„ व्यक्तियोंका सम्बन्ध,
युद्धकारी राज्योंके साथ ३९३
„ व्यापारकी रक्षा ३५६
„ व्यापारियोंके साथ
रियायत ४०५,४०६
„ समुद्रके भीतर आक्रमण ३६५
„ सम्पत्तिका प्रयोग ३७५
„ „ की अग्राह्यता ३९६
तटस्थीकरण, चिरकालीन
३५७,३५८
„ जलमार्गोंका ३६२
„ भारतके देशी राज्योंका ३५८
„ लक्सेमबर्ग व बेल्जियम-
का ३६०
„ मे अड़चनें ३६०
„ सेवायका ३६१
„ स्वीजरलैंडका ३५९
„ स्वेज और पनामाका ३६३
तटस्थीकृत प्रदेश, पूर्ण प्रभु
राज्योंके ३६१
„ राज ६१
„ राज्योंका युद्ध, आत्म-
रक्षाके लिये ३५७
„ राज्यों का विरुद्धाचरण ३६०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तटस्थीकृत राज्योंकी पात्रता ६१,६२
तटस्थोंके मृदु व घोर अपराध ४२०,४२१
,, लिये निषिद्ध कार्य ४१८-४२०
तटावरोध २३२
,, की परिभाषा ४१०
,, की व्याख्या, संयुक्त राज्द्वारा ४१२
,, के सम्बन्धमें डच सर्कारकी घोषणा ४१०
,, -नियमावली २३३
,, फ्रांस-ब्रिटेन युद्धमें ४११
,, यूनानके बन्दरोंका २३२
तांझिनपर अधिकार करनेका प्रयत्न, फ्रांसका २२९
ताटस्थ्य का इतिहास ३५२-३५५
,, की अवहेलना ३५४,३५५
,, की परिभाषा ३५१
,, की हालतमें युद्धमें भाग लेना ३५४,३७७
,, दुर्बलताका सूचक, प्राचीनकालमें ३५२
,, पक्षपातमय ३७८
,, -भंगके लिये क्षतिपूर्ति ३७४
ताटस्थ्य रक्षाके लिये विशेष नियम ३७३
,, सम्बन्धी नियमोंमें अमेरिकाका अग्रसर होना ३५६
तुर्कमनशाई और गुलिस्तांकी सन्धियाँ १७६
तुर्क सर्कारकी दुर्बलता ६३, ६४
,, साम्राज्यकी अवज्ञा, बल्गेरिया इत्यादि द्वारा ५०, ५१
तुर्की-इटली युद्ध २३६
तुर्कीसे छेड़छाड़ २३२
,, हस्तक्षेप १२९, १३०
तैमूरलंग २८८, ४२५

द

दरेदानियाल और बास्फोरस-का विशेष महत्त्व १७७
,, का समझौता १७९
,, पर अन्ताराष्ट्रिय शासन १७८
दायमी पट्टा, राज्यका १६७
दूतप्रथा, आर्यकालमें ९४, ९५
,, यूरोपमें ९६
दूतप्रेषणका अधिकार १००
दूतोंका पौर्वापर्य ९८, ९९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूतों को लौटाने या स्वीकार न करनेका अधिकार १००-१०३
,, की उपयोगिता, राजोंके परस्पर व्यवहारमें ४४५
,, के अधिकार १०५-१०९
,, के आने जानेके समयके उपचार १०३
,, के भेद ९५, ९७, ९८
दूष्टप्रभुका अर्थ ४१
देवास राजका विभक्तीकरण ७७
देशी राजोंमें ब्रिटिश संरक्षण, भारतके. १६५
दौत्य सम्बन्ध (भारतका) बौद्ध कालमें ९६

ध

धर्म, अन्ताराष्ट्रिय शान्तिका साधक ४२८
,, की असफलता, अन्ताराष्ट्रिय शान्तिस्थापनमें ४२९
धर्मयुद्ध १६
धोखेसे मारना ३३८

न

नदियों का स्वाम्य १८२,१८३
,, के सम्बन्धमें समझौते १८३
नपोलियन ३२६
,, की सेना द्वारा चित्रादिकोंका अपहरण २९४
,, की सैनिक नीति, प्रशाके साथ ११८
,, युद्धको स्वावलम्बी-बनानेके सम्बन्धमें ३०१
नपोलियन, तृतीय १३१
नव स्वतंत्र राजोंकी अन्ताराष्ट्रिय स्थिति ६८-७५
नादिरशाह २८८
नारवेका स्वतंत्र होना ७०
नार्मन एंजेल, प्रसिद्ध शान्तिवादी ४३३
नाववरोध २३१
निकोलस, द्वितीय, द्वारा हेग सम्मेलनकी योजना ३१
निरन्तर यात्राका प्रश्न ४०२, ४०५
,, यात्राके सम्बन्धमें ब्रिटिश सर्कार ४०३
निरवयव राज ४५
निवास का अर्थ २५०
,, -दोषसे मुक्ति २५०
निषिद्ध वस्तुएं, गौण रूपसे ४०४
,, ,, पूर्णतः ४०१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निषिद्ध व्यापार ३९९, ४००
,, ,, के नियमोंमें संशोधनकी आवश्यकता ४०८
नेटालमें अंग्रेजोंका बस जाना १५४
नेशनल एकडेमी ४३९
नैपालकी तटस्थता, गत महासमरमें ३८४
,, की स्वतन्त्रता २४६
,, के सैनिक, अंग्रेजी सेनामें २४६
न्यू फाउण्डलैंडके तटपर मछली मारनेका अधिकार १८१
न्यू ब्रिटेन और न्यू आयरलैंडका पता लगाया जाना १५३

प

पञ्चायत और मध्यस्थतामें अन्तर २१३
, की प्रथा ४४८
, -प्रथाकी लोकप्रियता ४४८
,, के सामने रखे जाने वाले व न रखे जाने वाले प्रश्न ४४९
,, द्वारा समझौता २१३
पञ्चायती न्यायालय, मिश्रमें १९४
पताका (श्वेत) आत्म समर्पण सूचक ३४१
,, विराम सूचक ३४०
पनामा ४३२
पनामा नहरकी व्यवस्था १८०
,, व स्वेजका तटस्थीकरण ३६२
परिचर्या पोत ३०८
पवित्र मैत्री, आस्ट्रिया, रूस व प्रशाकी १३३, १४१
पितृराजके विरुद्ध लड़ने वालेको प्राणदण्ड २४५
पीटरबर्ग और स्मोलैंस्क नामक रूसी जहाज ३३५
पुर्तगाल नरेश, अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलनोंके सम्बन्धमें ४८१
पुर्तगालमें यादवीय ३७२
पूर्णप्रभु (स्वतंत्र) राज ४१
पूर्ण संयुक्त राजोंके तीन भेद ४६
पूर्ण संयुक्त सावयव राज ४५
पेकिंगका खाली किया जाना १२४
पेरिसका अन्ताराष्ट्रिय समझौता ३३४
,, का सन्धिपत्र, स्वीजरलैंडकी तटस्थताके संबंधमें ३५९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पेरिसकी घोषणा ८९,३९६,४११
" " का प्रभाव ३९७
" की सन्धि संवत् १९१३ ११९
" " व सन्धिपरिषद् ३९५,३९६
पैरोल (शस्त्र न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा) २६८
पोतस्थ सम्पत्ति विषयक नियम ३१०,३११
पोप, अन्ताराष्ट्रिय शान्ति-का साधक ४२८,४२९
" का स्थान १४७
" की मध्यस्थता, राजोंके परस्पर झगड़ेमें ४५०
" की स्थिति, अन्ताराष्ट्रिय विधानमें ६३
पोर्टरेट १५३
पोल जातिपर अत्याचार १३०
पोलैंड और रूससे सन्धि २०४
पोस्टल समिति ४४०
प्यूफेनडार्फ २८
प्रजाकी राष्ट्रीयता १८१
प्रजांगीकरण १८८
प्रजात्व सम्बन्धी नियम १८८-१९०
" स्वीकार करनेकी स्वाधीनता १८९
प्रजा-सम्पत्तिकी अग्राह्यता २९७
प्रताप, राणा ३२६
प्रतिघात २२९
" और समरमें भेद २३०
" -नीति, अधिकृत प्रदेशके साथ ३०४
प्रतिभुओंका लिया जाना, अधिकृत प्रदेशसे ३०४
प्रतीक्षात्मक अधिकार १७१,१७२
प्रभाव क्षेत्रका अर्थ १६७,१६९
प्रभुत्वका अर्थ ४०
प्रशाकी सन्धि, आस्ट्रिया व रूसके साथ १३३,१४१
" की सन्धि, संयुक्त राजके साथ ८६
प्राइज़, अपहृत सम्पत्ति ३१८
प्राइज़ कोर्ट ३१८,३१९
प्राकृतिक विधान (जस नेचुरली भी देखिये) २८,२९
प्राकृतिक विधानपर आक्षेप २५,२६,२७

फ

फारमूसापर कब्जा, फ्रांसका २२९
फिलिमोर, अमेरिकाके आदिम निवासियोंके सम्बन्धमें १५७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिलिमोर द्वारा स्वाधीनता-
की व्याख्या १३६
फूचाऊपर गोलाबारी, फ्रांस-
की ओरसे २२९
फ्रांस और बेल्जियमका प्रति-
घात, रूर प्रान्तपर २३०
,, और ब्रिटेनमें युद्ध २३१,२३५
,, और संयुक्त राजकी
सन्धि ३७८
,, का प्रतिघात, चीनके
साथ २२९
,, की प्राचीन वस्तुओं-
का अपहरण, इटली
द्वारा २९४
,, की राजक्रान्ति १३२,१३९
,, के जंगली वृक्षोंका
विक्रय, जर्मनों द्वारा २९५
,, –जर्मन युद्ध ८,२५१,३९६
,, ,, में अमेरिका
का फ्रांसीसियोंके
हाथ युद्ध सामग्री
बेचना ३८०
,,–जर्मन युद्धमें लक्सेमबर्ग
की गुप्त सहायता ३६१
,, ब्रिटेन व स्पेनमें संधि,
संवत् १९६४ ११८
फ्रांस-ब्रिटेन युद्धमें तटाव-
रोध ४११
,, व मेक्सिकोका युद्ध ३४७
फ्रांसिस्को सुआरेज २२
फ्रेडरिकका ऋण देनेसे
इनकार करना ९२

ब

बणिक् पोतोंका रणपोत बना
दिया जाना ३३५
बम गिरानेका निषेध ३२२-३२४
बमवर्षा, अरक्षितस्थानोंपर
(गोलाबारी भी देखिये)
२८९
बम्बईकी प्राप्ति, दहेजमें १६०
बर्नहार्डो, जनरल, युद्धके
सम्बन्धमें २२२
बर्लिनकी सन्धि ८,८९
बल-प्रयोग, असामरिक, के
उदाहरण २२९, २३०
,, का मूल सिद्धान्त ३२०
,, विजयका साधन २२०
बाल्थजर अयला २१
बास्फोरसका विशेष महत्त्व १७७
बिंकर शोएक ८३
,, तटलग्न समुद्रकी सीमा
के सम्बन्धमें १७४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बेल्जियम और फ्रांसका प्रतिघात, रूर प्रांतपर २३०
,, और ब्रिटेनका विवाद १६८,१६९
,, का तटस्थीकरण ६१,१४०,३६०
,, का झगड़ा, हालैंडसे ३५९
,, का पूर्ण प्रभुराज होना ७७
,, का विद्रोह ३५९
,, का संरक्षण, कांगोपर ६७,६८
,, की उन्नति १४५
,, की तटस्थताका तोड़ा जाना, जर्मनो द्वारा ३६०
,, की तटस्थतामें हस्तक्षेप २०३
,, के ताटस्थ्यकी समाप्ति ३६०
,, के नाम पट्टा, ब्रिटेन द्वारा १६८
,, पर आकमण, जर्मनी, द्वारा ८,२४३
,, पर दोषारोपण, जर्मनी द्वारा ३६१
,, में हस्तक्षेप, जर्मनीका १२८
बेहरीकी माँग, अधिकृत प्रदेशसे ३००
बोअर युद्ध १७०,२५१,२६९, ३०१,३०४,४०२
,, ,, में भारतीय सैनिक ३३२
,, सेनापतिकी घोषणा २९०
बोस्निआ और हर्जेगोविनाका दिया जाना, आस्ट्रियाको १७१,२०७, २०८
बोस्निआ और हर्जेगोविना पर शासन, आस्ट्रिया द्वारा ८
बौक्सर युद्धमें जर्मनों द्वारा ज्योतियंत्रोंका अपहरण २९४
,, विद्रोह, चीनमें १२४
ब्योनस आयर्सका स्वाधीन होना ६९
ब्राइस, आइसलैंडमें विधानोंकी सत्ताके विषयपर ७
ब्रिटिश बस्तियाँ, आस्ट्रेलियामें १५५
,, ,, नेटालमें १५४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रिटिश संरक्षण, उदयपुर इत्यादिमें ५५
„ „ भारतके देशी राजोंमें १६५
„ „ मिश्रमें ५१
„ साउथअफ्रिका कम्पनी १७०
„ साउथ अफ्रिका कंपनी-की पात्रता ६०
ब्रिटेन और जर्मनीमें सन्धि ११८
„ और फ्रांससे युद्ध २३१,२३५
„ और बेल्जियमका विवाद १६८,१६९
„ और संयुक्त राजमें सन्धि १८१
„ का संरक्षण, जंजबारमें १६५
„ „ „ मिश्रमें १६४
„ का सिद्धान्त, युद्धकारी पक्षके व्यापारके सम्बन्धमें ३९७
„ का सिद्धान्त, सशस्त्र व्यापारिक पोतोंके सम्बन्धमें ३९७
„ का हस्तक्षेप, डेन्मार्कमें १२७
„ का हस्तक्षेप, रूससे १३५
ब्रिटेन, ग्रेट, अलिंगशेष राजका उदाहरण ७८
„ पूर्ण संयुक्त सावयव-राजका उदाहरण ८५
„ -फ्रांस युद्धमें अमेरिकाका पूर्ण ताटस्थ्य ३५५,३५६
„ फ्रांस व स्पेनमें सन्धि संवत् १९६४,११८
„ रूस व हालैंडमें सन्धि २०८
„ व प्रशामें विवाद, ऋणके सम्बन्धमें २८५
„ वासियोंका अमेरिकाकी प्रजा बन जाना १८९
ब्रैजिलका स्वाधीन होना ७०
ब्लाडिमिरौकाकी रक्षा, रूसी कैदियों द्वारा, रूस-जापान युद्धमें ३३१

भ

भारतके देशी राज ४१,५५
„ के देशी राजोंका अनस्तित्व, अन्ताराष्ट्रिय विधानमें ३५८
„ के देशी राजों की तटस्थता ३५८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतमें अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका पालन १६
भारतीय राजोंके झगड़ोंमें ब्रिटिश मध्यस्थता २१३
भूमिकी प्राप्ति, अधिकृति द्वारा १५१
,, ,, उपभोग द्वारा १६३
,, ,, प्रकृति द्वारा १५९
,, ,, विक्रय, हस्तान्तर व भेंट द्वारा १६०
,, ,, विजय द्वारा १६१,१६२
भूमि पर अधिकार १५०-१५२
,, पर अधिकार, आदिम-निवासियोंका १५७
,, पर अधिकारकी सीमा १५५
,, पर स्वाम्य, भोगबन्धक द्वारा १६७,१७१
,, पर स्वाम्य, संरक्षित राजका १६५,१६६
भूमि-विक्रय १६०,१६१

म

मक्काका स्वाधीन होना ७०
मछली मारनेका अधिकार १८१
मछुआहोंकी नावें ३०८
मत्सिनी १९५
मध्यस्थता और पंचायतमें अतर २१३
,, तटस्थ राजोंकी ४४६
,, द्वारा समझौता २११
मनरो, मनरो सिद्धान्त १४२
मनु, दूतके सम्बन्धमें ९५
मनुष्यता और राष्ट्रीयता ३२०
मरक्कोपर फ्रांसका संरक्षण ५१
महमूद ग़ज़नवी २८८
महात्मा गान्धी २२३,२३८
महाभारतके वीरोंमें अहिंसात्मक व्यापार ३३९
महायुद्ध, यूरोपका १४५,१६८, २३६,४०७
, और निषिद्ध व्यापार ४०८
,, में अन्ताराष्ट्रिय नियमोंकी उपेक्षा २५९
,, में जर्मनोंका अत्याचार २९४
महाराष्ट्रसंघ ४५,४६,४७,४९,५०
,, अपूर्ण संयुक्त सावयव राजका उदाहरण ४६
महाशक्तियोंका प्रभाव, १३९-१४०,१४४
महासमर—महायुद्ध देखिये
मांटिनीग्रोकी संभुक्ति, सर्बियामें ७१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मांटीनीग्रोकी स्वतन्त्रता, तुर्कीसे ८९
मार्टिन लूथर, प्रोटेस्टैंट सम्प्रदायका जन्मदाता २१
मिलिशिया और स्वयंसेवक दल २६२,२६३
मिश्रमें ब्रिटेनका संरक्षण १६४
मिसिसिपीके सम्बन्धमें विवाद १८२
मुल्कगीरी सेनाओंको रक्षाशुल्क मांगनेका अधिकार ३०२
मुल्कगीरी-सेना का अधिकार २९३,२९५,२९६,२९८,३०२
,, का अधिकार, अधिकृत प्रदेशपर ३४८
,, की वस्तुमांग २९९
मुल्कगीरी सेनापतिके अधिकार २९८
मुसलमानोंकी सहानुभूति, तुर्कीके साथ ३८४
मूर, जे. बी.; गौण निषिद्ध वस्तुओंके सम्बन्धमें ४०८
मेकियावेली, कूटनीतिका आचार्य २०३
मेक्सिकोमें हस्तक्षेप, ब्रिटेन इत्यादिका १९५
मेगस्थनीज ९६
मेंहदी-विद्रोह १६८,१७१
मैथेमेटिकल सोसाइटी ४३९

य

यशवन्तराव होल्कर ८६
यहूदियोंकी हत्या, रूसमें १२९
यात्रानुज्ञा ३४२
,, रक्षावचन व अभयदान ३४२
यादवीय, पुर्तगालमें ३७२
युद्धका तात्कालिक परिणाम २४२
,, का प्रभाव, सन्धियोंपर २४३
युद्धकारी पक्षका व्यापार, तटस्थके सिपुर्द ३९७
,, राजोंका सम्बन्ध, तटस्थ व्यक्तियोंके साथ ४९३
युद्धकी भीषणता, आधुनिक समयमें ४२५
,, के उपकरण ३२७
,, के उपकरण जिनका प्रयोग अवैध है ३३३, ३३५-३३८
,, के कुपरिणाम ४२५,४२६
,, के दिनोंमें नदियोंका स्वाम्य १८२,१८३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध के निषिद्ध साधन ३११
,, के सम्बन्धमें भिन्न भिन्न विद्वानोंके मत २२२
(समर भी देखिये)
,, के सम्बन्धमें मतपरिवर्तन २२४
,,-प्रथाकी प्राचीनता २२१,२२२
,, में लूट व उच्छृङ्खलता २५४
,, रोकनेका प्रयत्न, सत्सेवा व मध्यस्थता द्वारा ४४५,४४६
,,-समाप्तिके तीन प्रकार ३४७
युद्ध नियमावली, प्राचीन कालमें २२५
,, ,, २६२,२६४,२६७, ३०२,३२१,३२२,३२६
,, ,, की सफलता २७८
,, ,, हेग सम्मेलनकी २५४,२५६, २५८
युद्धस्थलमें भाईचारा ३३९
युद्ध, स्वराजप्राप्ति के लिए २३८
युद्धावसान के तात्कालिक परिणाम ३४८
,, पर जनसाधारणके स्वत्व ३४८
यूनानका राजनीतिक परिवर्तन ७६
यूनानका स्वाधीन होना १३०,१४०
,, के बन्दरोंका तटावरोध २३२
,, में अन्तराष्ट्रिय नियमोंका पालन १७
यूरोपके राजोंका स्वार्थ १२९
यूरोपियनोंकी दण्डव्यवस्था, एशिया व अफ्रिकामें १९४
यूरोपीय इतिहासका तमोयुग २०

र

रक्षागारद ३४२
रक्षा-द्रव्य का निषेध, ब्रिटेन द्वारा ३१३
,, की प्रथा, जलयुद्धमें ३१२
,, के लिये न्यायालयमें अभियोग ३१२
रक्षा-वचन ३४२
,, व अभयदान ३४२
रक्षाशुल्क माँगनेका अधिकार, मुल्कगीरी सेनाको ३०२
रणक्षेत्रकी जाँच, युद्धके पीछे २७२
रणघोषणा २३४, २३५
,, के संबन्धमें हालैंडका प्रस्ताव २३६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रणबन्दियोंकी मुक्ति, द्रव्य या विनिमय द्वारा २६६
,, के प्रति दुर्व्यवहार, जर्मनों द्वारा २७१
,, के प्रति बर्ताव २६६-२७०
,, के प्रति बर्ताव, बोअरोंका २७०
,, के प्रति बर्ताव, ब्रिटेन व जापानका २६६
,, के प्रति बर्ताव, विविध सुविधायें २७०
,, से काम लेने व वेतन देनेका दायित्व २६९
रणविराम ३४४, ३४५
रणसामग्री बेचनेका निषेध, तटस्थ राजको ३८०
रवीन्द्रनाथ ठाकुर ४३९
रसद शब्दके दो अर्थ ३८८
राज और दण्डकी सृष्टि ११५
राजकर उगाहनेका अधिकार, मुल्कगीरी सेनाका २९८
राजका अधिकाराभाव, दूसरेके राज्यमें ११९,१२०
राजकी सम्पत्ति १५०
राजक्रान्तिके समय लूट व हत्या १९५
राजजीवनका अन्त ७७
राजदूतों का झगड़ा, लन्दन वाले जुलूसमें ९८
,, के विशेषाधिकार १०५-१०९
राजनीतिक अपराध २००
,, अपराधियोंका लौटाया जाना १९५
,, सन्धियोंका लोप, राजसत्ताकी समाप्तिपर ७९
राजपरिवर्तनका प्रभाव, नागरिकोंके स्वत्वपर ७८
राजभक्तिकी शपथका निषेध २९७
राज शब्दका अर्थ ३९
राजसत्ताको दैवी मानना ११६
राज समता सिद्धान्त ७१, १३८,१४१,१४५
राजातिरिक्त युद्धकारी सभ्य समुदाय ५८,५९
राजोंका पत्र-व्यवहार ९१
,, के निर्देश, अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधार ९२,९३
राज्यका अर्थ ४०
,, का दायमी पट्टा १६७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज्यवृद्धि, अधिकृति द्वारा १५०-१५३
,, प्राकृतिक १५९,१६०
रामचन्द्रजी, शत्रुताके सम्बन्धमें २६१
रायल सोसाइटी ४३९
राष्ट्रसंघ ७२,९०,११६,१४५, १५८,१६९,१९७,२१५, २२३,२३७,२३८,३१९, ४४३,४५१
,, और अफीमका व्यापार ४५५
,, का पतन ३३,३६
,, की उत्पत्ति ३३
,, की सदस्यता, स्वतन्त्रता की बाधक नहीं ४५३
,, की सफलताका बाधक, बड़े राजोंकी धूर्त्तता ४५५
,, की स्थापनाका विचार, पूर्वकालमें ४५२
,, के उद्देश्य ३४,३५
,, के विरुद्ध आक्षेप ४५३,४५४
,, के समर्थकोंकी संख्या-वृद्धि ४५५
,, वुडरो विल्सनके विचारोंका परिणाम ३३
राष्ट्रसंघसे लाभकी आशा ४५६
राष्ट्रीयता, अवयस्क बच्चों व स्त्रियोंकी ८१
,, विजित देशके नागरिकोंकी ८०
,, सम्बन्धी विधान, ब्रिटेन अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी इत्यादिका १८६
राष्ट्रीय राज (स्वतंत्र), अन्ताराष्ट्रिय शान्तिका साधक ४३१
,, ,, की परिभाषा ४३१
राष्ट्रोंका वैषम्य, पारस्परिक अविश्वासका कारण ४३२
,, का हितसाम्य, विश्व शान्तिका स्थापक ४३३
रूजवेल्ट, अमेरिकन राष्ट्रपति १२३,१४३
रूम (तुर्क साम्राज्य) की अन्ताराष्ट्रिय पात्रता ७५
रूमानियाकी स्वतंत्रता ८९
रूमीलियाका मिलाया जाना, बल्गेरिया द्वारा ५१
रूर और राइनलैंडपर कब्जा, फ्रांसका २३०
,, प्रान्तका प्रश्न २२९,२३०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूस और डेन्मार्कमें सन्धि ८७
,, और पोलैंडमें सन्धि २०४
,, का प्रयत्न, उपनिवेश स्थापनका १४२
,, का सन्धिपत्र, संवत् १९१३ का, कृष्णसागर सम्बन्धी ८
,, की सन्धि, आस्ट्रिया व प्रशाके साथ १३३,१४१
,, को प्रलोभन, ब्रिटेन व फ्रांस द्वारा १७८
रूस-जापान-युद्ध ५२, १६८, २३५ २४७, २६९, २८६,३३०, ३३५
,, में अमेरिकाकी मध्यस्थता २१२
,, में जहाजोंको अवकाश दिया जाना ३१०
,, में जापानियोंकी व्यवस्था, मूल्य चुकानेकी ३००
,, में रेशितेल्नी नामक रूसी जहाजपर आक्रमण, जापान द्वारा ३६६
रूस, ब्रिटेन और हालैंडमें सन्धि २०८
रूसमें ब्रिटेनका हस्तक्षेप १३५
रूस-स्वीडन युद्धमें डेन्मार्कका विचित्र ताटस्थ्य ३५४
रेडक्रॉस २७५
रेशितेल्नी नामक रूसी जहाजपर आक्रमण, जापान द्वारा ३६६
रोगियों और आहतोंकी रक्षा, बोअर सेना द्वारा ३२३
,, और आहतोंकी सेवा २७१-२७५
रोमका नागरिक विधान १९
,, का प्राकृतिक विधान १०
रोमन सम्राट्, जर्मनीके सम्राट्की उपाधि २०
रोममें अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका पालन १७,१८
,, में राष्ट्रोंका विधान १९

ल

लक्सेमबर्गका तटस्थीकरण ३६०
,, पर दोषारोपण ३६१
लन्दनकी कांफ्रेंस ४०१, ४०४,४१५,४१९,४२१,
,, की घोषणा ८,३९८,४०१, ४०२ ४०३, ४१३,४१९
,, की घोषणामें परिवर्तन ४०८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललित कला सम्बन्धी वस्तुओं और पुस्तकोंकः रक्षा ३११
लाइबीरिया ४३२
„ का स्वतंत्र होना ६७
लॉग बुक ४१५
लारेंस कृत तटस्थों के कर्त्तव्य-का श्रेणि-विभाग ३७७
„ , जलमग्न तारोंके सम्बन्धमें ३६७
„ , तटस्थ राजों की प्रयत्न-शीलता के सम्बन्धमें ३८२
„ , तटावरोधके सम्बन्धमें २३४
„ , पैरिसकी घोषणाके संबंधमें ३९८
„ , मुवक्किल राजके संबंधमें ५३
„ , युद्धके सम्बन्धमें २४५
लीयोलीन जेन्किन्स, समुद्र-के संबंधमें १७३
लूइज़ियानाकी प्राप्ति, भेंट द्वारा १६०
लूई, ग्यारहवें, द्वारा दूतप्रेषण ९६
लूटका माल २८६,२८७
„ की प्रथा, प्राचीन कालमें २८८
लेवी ऑन मैसे २६३
लोकमान्यको सज़ा १२०
लोसानमें अन्ताराष्ट्रिय वि-धान परिषद्, संवत् १९४५ की १५६

व

वकील, एक तरहका दूत, ९१,१०८
वर्सेल्ज़की सन्धि २०६,४३७,४४३
वाट्सन साहब, युद्ध के सम्बन्धमें २२४
वाणिज्य पोतोंकी तलाशी, तटस्थ देशीय ३९८
वाणिज्य, साधारण, के दो सिद्धान्त ३९४
वाणिज्य-सामग्रीके तीन वि-भाग ३९९
वाणिज्यावरोध ४१३
वायुपर अधिकार १८३
वाल्टर स्काट, सर, अतटस्था-चरणके सम्बन्धमें ४१८
„ निषिद्ध व्यापारके संबंधमें ४००
विएनाकी कांग्रेस ९८
विग्रहशोधक सन्धियां ८५
विजय, सैनिक विजय देखिये
विजयिनी सेनाका स्वत्व २९०
विजयी सेनापतिकी घोषणा २९०
विजित दुर्ग-रक्षकोंके साथ बर्ताव २६६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विजित देशके नागरिकोंकी राष्ट्रीयता ८०
„ नागरिकोंके प्रति बर्ताव २५३,२५४,२५६
विजेताका कर्तव्य २९०
„ के वैधावैध कार्य १६२
विज्ञान इत्यादि सम्बन्धी संस्थाएं, अग्राह्य २९५
„ स्वार्थ सिद्धिका साधन ४२५,४२६
विदेशी नरेशों व राजदूतोंके लिए नियम १९२
„ निरीक्षण; शासनादिष्ट देश में १६९
„ यात्रियोंके लिए नियम १९१
„ सेना व सैनिक जहाजोंके लिए नियम १९३, १९७
विद्रोहित्वकी स्वीकृति २४१
विद्रोहियोंके साथ व्यवहार, परराज्योंका २३९,२४०
विद्रोही राजके साथ व्यवहार, परराज्योंका ५७
विधान और धर्म १५८
„ और नियममें भेद २,३
विधायक सन्धियाँ ८८,८९
विभीषण, रावणकी अन्त्येष्टिके संबंधमें २६१
विरामपताका ३४०,३४१
„ –वाहकके प्रति बर्ताव ३४०
विरामपत्रकी शर्तोंका उल्लंघन ३४५
विश्वभारती विश्व० ४३६
विश्व संस्कृति, अन्ताराष्ट्रिय शान्तिकी साधक ४३०, ४३७
विषाक्त शस्त्रोंका प्रयोग ३२६
विषैले वाष्पोंका प्रयोग, गत महासमरमें ३२६
विस्फोटक फैलानेका निषेध ३३७
„ फैलानेकी प्रथा, ३२५,३३६
विस्फोटकोंका प्रयोग, गत महासमरमें ३३७
विहित वस्तुएं ४०६,४०७
विहित विधान (इंस्टिट्युटेड लॉ) २९
वुडरो विल्सन, राष्ट्रसंघके प्रवर्त्तक ३३
„ के हस्ताक्षर वर्सैल्स संधिपर २०६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेनिस १७२
वेनेज्वीला का झगड़ा १४३
,, पर बलप्रयोग, हालैंड द्वारा २३०
वेब्सटर, हस्तक्षेपके सम्बन्ध में १२७
वेलिंगटन ड्यूक आफ, द्वारा लूटके अपराधियोंको दंड २८९.
सैनिक विधानके सम्बन्ध में २९६
वेसेल्स (बोअर सेनापति) की घोषणा २९०
वेस्टलेक, सैनिक कार्यके औचित्य या अनौचित्य पर ३०३
वैटेल २८,२९,८३
वैलपोल, ब्रिटिश कप्तान ३७२
वैश्य युगकी प्रधानता ४२५,४२६
व्यक्ति और समाजमें भेद ११६
व्यक्तियोंका स्थान, अन्ताराष्ट्रिय विधानमें ५९
व्यवस्थापक सन्धियाँ ८५
व्यापारका तटस्थोंके सिपुर्द किया जाना, युद्धकारी पक्ष द्वारा ३९७
व्यापारकी क्षति, १७ वीं शताब्दीमें ३९५
व्यापार, निषिद्ध वस्तुओंका ३९९,४००
व्यापाराधिकार, युद्धकालमें ३४१
व्यापारिक जहाजको सैनिक जहाज बनादेनेका अधिकार २६४
,, जहाजोंकी जब्ती ३०७
,, जहाजोंपर शासन १९८
,, नावें, छोटी छोटी ३०८
,, (सशस्त्र) पोतोंका प्रश्न ३९७
,, पोतोंके साथ छेड़छाड़, प्राचीनकालमें ३५३
,, सन्धियोंका पालन, पराजयके बाद भी ७९
व्यापारिमंडल, अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र नहीं १७०
,, द्वारा शासन १७०
व्हीटन, सामरिक आवश्यकताके संबंधमें ३०४
शक्तिगोष्ठी, अमेरिकाकी १४४
,, एशियाकी ४१
,, यूरोपकी १३९, १४०
,, संसारकी १४४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तिसाम्यका सिद्धान्त १३०,१३१
शत्रुओंके साथ बर्ताव, भारत व यूरोपमें २६१
शत्रु की डाक ३११
,, की सम्पत्ति जिसपर कब्जा किया जा सकता है २९३
,, के असैनिकोंके साथ बर्ताव २६४
,, के राज्यांश पर अधिकार २८८
,, के साधारण नागरिकोंके साथ बर्ताव २५५–२५७
,, के स्थायी कब्जेमें आये हुए निवासियों के प्रति बर्ताव २४९
शत्रुप्रजाकी चल व अचल सम्पत्ति २८३,२८४
,, को प्राणदण्ड २९१,२९२
,, को युद्ध—कालमें बसने व व्यापार करनेकी अनुज्ञा २८४
शत्रुराजकी सम्पत्ति २७९-२८
,, की सम्पत्ति, दूसरे शत्रुराजके राज्यमें २८२
शत्रुराज के जहाज २५२
,, के नागरिकोंकी सम्पत्ति २७९
,, के नागरिकोंके साथ बर्ताव २४८ २९१,२९२
,, के नाविकोंके साथ बर्ताव २४६
,, के निवासियोंके प्रति शत्रु राज्यमें बर्ताव २५१
,, के शुश्रूषकोंके साथ रियायत २६०
,, के सैनिकोंके साथ व्यवहार २४५
शत्रुरूपका निवासपर निर्भर रहना २५०
शत्रुवर्गीय उत्तमर्णोंके स्टाक व हुंडियां जब्त नहीं होतीं २८४, २८५
शत्रुसमर्पित सम्पत्ति, तटस्थ नागरिकोंकी २९१
शत्रुसम्पत्ति जो जब्त नहीं की जाती २८०,२८५,३१०,३११
,, जो नष्ट नहीं की जाती २९३
शत्रुसेवा, तटस्थोंकी ४१९
शत्रुसैनिकोंके साथ बर्ताव २६१,२६३-६६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्तिकी इच्छा, विश्व शान्तिकी साधक ४३४
शाम, आदिष्ट राज ५३,५४
शासनादेश ५३,१६९
,, आदिमनिवासियों के सम्बन्धमें १५८
,, की आलोचना ५४
शासनाधिकारके सिद्धान्त १८५
शासनाधिकार, राज्यके बाहर १९३, १९४
शिमोनोसेकी की सन्धि ५२
शुश्रूषा की सामग्री, निपिद्ध नहीं है ४०७
श्यामजी कृष्ण वर्मा १९५
श्रमजीवनकी अन्ताराष्ट्रियता ४४४
श्रमजीवियोंका प्रभाव ४४४
श्रीकृष्णकी सहायता, कौरवों और पांडवांको ३७७
संयुक्त राज अ र ब्रिटेनमें सन्धि १८१
संरक्षण (राजनीतिक) ५१
,, औपनिवेशिक १६५,१६६
,, के तीन प्रकार १६४
,, मिश्र, मरक्को, कोरिया इत्यादिमें ५१,५२
संरक्ष्य जहाज ३०७,३०८
संसर्ग दोष सिद्धान्त, वाणिज्यका ३९५
सक्षम अवरोध ४११,४१२
सत्सेवा और मध्यस्थता द्वारा समझौता २११
,, का प्रयत्न, तटस्थ राजों द्वारा ४४५
की परिणति, मध्यस्थतामें २१२
सनदी राज ५५
सन्दिग्ध जहाज ३१५-३१८
सन्धि और एकरारनामेमें भेद २०२,२०३
,, का समर्थन २०५,२०६
,, कैसे लिखी जाती है २०३,२०४
सन्धिपत्र या समयपत्र (कान्वेनेंट) ३०
सन्धिपर विचार करनेका अधिकार भिन्न भिन्न देशोंमें २०५
सन्धि, पूर्ण, का किया जाना ३४७
सन्धियां, अन्ताराष्ट्रिय विधानकी आधार ८५-८९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्धियोंका उल्लंघन, रूस व तुर्की द्वारा ११९
„ का परिणाम, उदासीन राजोंके लिए २०६
„ की समाप्ति २०७, २४३
„ के महत्त्वकी विषमता ३०
„ पर युद्धका प्रभाव २०८
सभ्यताका अर्थ ४७, ५८, ६५
समझौता, अनुसन्धान मंडल द्वारा २१०
„ पंचायत द्वारा २१३
„ सत्सेवा और मध्यस्थता द्वारा २११
„ स्थायी न्यायालय द्वारा २१५, २१६
समता सिद्धांत ३२२
समत्वका सिद्धांत ७१, १३८, १४१, १४५, ४३२
समय पत्र ८५, ८६
समय पत्रोंका अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व ८६
समरकी परिभाषा २२७
समष्टिवाद ४४४
समाचार विभागका कार्य २६७
समाज और व्यक्तिमें भेद ११६
समाज, प्राचीन १६
सम्मितियोंका स्थान, अंताराष्ट्रिय विधानमें ६०
समुद्र (खुला) किसी राजकी संपत्ति नहीं १७२
„ की रक्षाका भार १७३
„ तटलग्न १७४
„ तटलग्न, तटवर्ती राजकी सम्पत्ति १७४
सम्पत्ति जब्त करनेकी प्रथा २८४
सर्बिया की क्रान्ति और दूतों का हटाया जाना १००
„ की स्वतन्त्रता ७५, ८९
सलामीके नियम १४८
सशस्त्र तटस्थता ८८
सशस्त्र व्यापारिक पोतोंका प्रश्न ३९७
सहायक राज ५३
सांख्यदर्शन ४३२
साइप्रस का पट्टा, ब्रिटेनके नाम ६३
„ की अन्ताराष्ट्रिय स्थिति ६३
„ की प्राप्ति, ब्रिटेनको १७१
साइलीशियन ऋणका प्रश्न ९२
साण्टो डोमिंगोमें अमेरिका का हस्तक्षेप १४३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सादेश राज ५३
सामरिक आवश्यकताका अर्थ ३०३,३०४,३२२, ३७६
सामरिक समझौता ३४१
सामरिक न्यायालय ९१
साम्राज्यके दोष ४२७
साम्राज्योंका अस्तित्व, अन्ताराष्ट्रिय शान्तिका साधक ४२६
साम्राज्योंका अस्तित्व, प्राचीन कालमें ४२६
सावयव राज ४५
सावरकर, विनायक, के संबंधमें फ्रांसका हस्तक्षेप १२०
सिकन्दर, द्वितीय, का प्रयत्न क्रूरता कम करनेका २६१
सिकन्दर, षष्ठ, पोप १५२
सिद्ध विधान (पॉजिटिव लॉ) २९
सिपाही विद्रोह १६५,१७०
सुनयत सेन १९५
सूदान पर शासन, मिश्र व ब्रिटेनका ४४०
" पर सम्मिलित स्वाम्य १७१
" में अराजकता १७१
सेंट पीटर ४२८
सेंट पीटर्सबर्गकी घोषणा ३०, ३२०
सेटो, समुद्रपथकी रक्षाके सम्बन्धमें ३३८
सेनाओंके सहचरियोंके प्रति बर्ताव २४७
सेनाके तीन भेद ३२७
" के लिए आवश्यक वस्तुओंकी प्राप्ति २६६
सेवरकी सन्धि ४४३
सेवापताका २७५
सेवाय का तटस्थीकरण ३६१
" का दिया जाना, फ्रांसको ३६२
सेवासमितियोंका आयोजन, रणबन्दियोंके लिए २७०
सेवासमितियोंका आयोजन, शुश्रूषाके लिए २७३
सेवासमितियोंकी सम्पत्तिका जब्त होना २७४
सैक्विल, ब्रिटिश राजदूतका लौटाया जाना १०२
सैनिक, अनियमित ३२९
सैनिक आवश्यकता ३२२
" कब्जेका क्षेत्र २८९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सैनिक क्षेत्रकी घोषणा, ब्रिटेन व जर्मनी द्वारा ४१६,४१७
" जहाजों पर शासन १६७
सैनिक, रंगीन जातियोंके ३३२
सैनिक वस्तुओंके बदले रसीद देनेकी प्रथा ३००
सैनिकविजय और हस्तान्तर-में भेद १६२
" द्वारा राज्यवृद्धि १६३
" बेल्जियम व फ्रांसकी, जर्मनी द्वारा १६१
" ही भूमिका स्वामित्व नहीं १६१
सैनिक विधान २९१,२९५
" " शान्तिकालीन व युद्ध-कालीन २९६
सैनिक शिक्षा, अनिवार्य, २५१
सैनिक शब्दका अर्थ २६२
सैनिक सेवा, अनिवार्य, ब्रिटेनमें १८९
सैनिकों का निवास, नागरिकोंके घरमें २९७
" को प्राणदंड, देशद्रोहके अपराधमें ३२८
" का झुकर जाना, स्वदेशके विरुद्ध लड़नेसे२५८
सोवियत सर्कारकी स्थापना १३५
सोशल डिमौक्रेट्स ४४४
स्ट्रासबर्गपर जर्मनोंका आक्रमण व स्त्रियों तथा असैनिकोंकी रक्षा ३२३
स्थिरताकी आवश्यकता, अन्ताराष्ट्रिय संगठनके लिए ४३३
स्पेन—अमेरिका-युद्धमें तारोंकी रक्षा ३६७,३६९
" व अमेरिकामें-युद्ध ३९६
स्पेन, ब्रिटेन व फ्रांसमें सन्धि, संवत् १९६४ ११८
स्मिथसोनियन इंस्टिट्युट ४३९
स्मृतिकारोंके ग्रन्थ, अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधार ८३,८४
स्वतंत्र पोतोंपरकी सम्पत्ति ३१०
स्वयंसेवक दल और मिलिशिया २६७,२६२
स्वातंत्र्यका अर्थ ४०,४१,११३, ११६,११९,१२६
" अर्थ मनमानापनसे भिन्न ११६
स्वाधीनताका प्रयत्न, इटलीका ३६२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वाधीनताका प्रयत्न
कांगोका ६७,७३
चिलीका २४१
ट्रांसवालका ६६
बेल्जियमका ३५९
ब्योनस आर्यर्स व पनामाका ६९
ब्रैजिल, स्कैंडिनेविया, मक्का व भारतका ७९
यूनान द्वारा १३०,१४०, ३८४
लाइबीरियाका ६७
हंगरीका १३३
स्वाधीनता-बंधन-स्वनिर्मित ११७
„ परनिर्मित ११८
स्वाम्य और प्रभुत्वमें भेद १६४
„ सम्मिलित १७१
स्वीडनका स्वतन्त्र होना ७०
स्वीजरलैंडका तटस्थीकरण ६१, ३५९
„ की तटस्थताका तोड़ा जाना, नपोलियन द्वारा ३५९
„ का लिंग शेष प्रजातन्त्र होना ७८
स्वेच्छा मौसेना ३३४
स्वेज नहरकी व्यवस्था १७९,१८०
„ व पनामाका तटस्थीकरण ३६३

ह

हङ्गरीका विद्रोह १३३
हताहतोंकी निजी सम्पत्ति २७२
हनोवरका इलेक्टर ४७
हब्शियोंपर अत्याचार, अमेरिकामें १३०
हर्जेगोविना और बोस्निआका दिया जाना, आस्ट्रियाको १७१,२०७,२०८
हर्षवर्धन ४२७
हस्तक्षेप १२१
„ अनुचित १३२
„ अमेरिकाका क्यूबामें १२३
„ आत्मरक्षाके लिए १२६
„ का न्याय्य अवसर १२२-१३१
„ चीनमें, विदेशियोंका १२५
„ डेनमार्कमें, ब्रिटेनका १२७
„ तुर्कीसे १२९,१३०
„ बेल्जियममें, जर्मनो द्वारा १२८
„ मनुष्यताके नाते १२९
„ मेक्सिकोमें, ब्रिटेन इत्यादि द्वारा १२५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हस्तक्षेप यादवीयमें १३४
,, रूससे, ब्रिटेनका १३५
,, विद्रोह-शमनके लिये १३२
,, वेनेज्वीलामें १४३
,, शक्ति-साम्यके निमित्त १३०
,, साण्टोडोमिंगोमें, अमेरिकाका १४३
,, से भारतकी क्षति १३७
हस्ताक्षर करनेके नियम, सन्धि पर १४७
हस्तान्तर और सैनिक विजयमें भेद १६२
,, , भूमिका १६०
हाब्ज, युद्धके सम्बन्धमें २२२
हार्वर्ड विश्वविद्यालय ४३९
हॉल अन्ताराष्ट्रिय विधानकी पागताके सम्बन्धमें ४३,७०
,, औपनिवेशिक संरक्षणके सम्बन्धमें १६६
,, निषिद्धसम व्यापारके सम्बन्धमें ४१९
,, प्रभुत्वके दो हकदारोंके सम्बन्धमें २८२
हाल, संगराधारके सम्बधमें ३७१
हालैंड, रूस और ब्रिटेनमें सन्धि २०८
हेगका अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय ४५१
,, का स्थायी न्यायालय २१४, २१५
हेगनियमावली (युद्ध संबंधी नियमावली भी देखिये) ३२६,३२९,३३६,३३८,३८९
हेग-सम्मेलन, २१४, २१५, २३२, २३३, २३५, २४७, २५३, २७१, २८६, २८९, ४४३
,, की त्रुटियाँ ३२
,, की युद्ध सम्बन्धी नियमावली २५४-२५६, २५८
,, प्रथम, संवत् १९५६ का ३१
,, द्वितीय, संवत् १९६४ का ३१
होल्कर (यशवन्तराव) की सन्धि, अंग्रेजोंके साथ ८५,८६
ह्यूगवान ग्रूट, ग्रोशिअस देखिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

,, प्र

के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi